लघुसिद्धान्तकौमुदी

'श्रीधरमुखोल्लासिनी'-हिन्दीव्याख्यासमन्विता

व्याख्याकारः

गोविन्द प्रसाद शर्मा

सम्पादकः

आचार्य रघुनाथ शास्त्री

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

[illegible]

लघुसिद्धान्तकौमुदी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
420

श्रीमद्विद्वद्वर-वरदराजाचार्यप्रणीता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

श्रीधरमुखोल्लासिनी-हिन्दी-व्याख्यासमन्विता

(पदच्छेद, समास, अनुवृत्तिक्रम, सूत्रार्थ, भावार्थों का विशेष स्फोरण, विस्तृत हिन्दीव्याख्या, प्रयोगसिद्धि के साथ विशेष उदाहरण एवं अभ्यासार्थ प्रश्नावलीसहित)

भाग-2

व्याख्याकार:

गोविन्द प्रसाद शर्मा

(गोविन्दाचार्य)

सम्पादक:

आचार्य रघुनाथ शास्त्री

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542)2335263

प्रथम संस्करण 2007 ई०

मूल्य : 1500.00 (1-3 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011)32996391 फैक्स: (011)23286537

ई-मेल : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : (011)23856391

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542)2420404

मुद्रक

ए. के. लिथोग्राफर

दिल्ली

The
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
420

THE LAGHUSIDDHĀNTAKAUMUDĪ
of
SRĪ VARADARĀJĀCĀRYA

Vol.-2

Hindi Commentary by

GOVIND PRASAD SHARMA
(Govindacharya)

Edited by

ACHARYA RAGHUNATH SHASTRI

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

Publishers :
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K-37/117, Gopal Mandir Lane,
Post Box No. 1129, Varanasi-221001
Tel. : (0542)2335263

First Edition : 2007

Price : 1500.00 (1-3 part complete)

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : (011)32996391 Fax: (011)23286537
e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

❖

CHOWKHAMBA SANSKRIT PRATIṢTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007
Tel. : (011)23856391

❖

CHAUKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. : (0542)2420404

Printed by
A.K. Lithographers, Delhi

विषयाणामनुक्रमः

लघुसिद्धान्तकौमुदी

अथ तिङन्ते भ्वादयः

लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्।
एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः।

लकारार्थविधायकं विधिसूत्रम्

३७३. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३।४।६९।।

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब आप **तिङन्त** में प्रवेश कर रहे हैं। जैसे सुप्+अन्त=सुबन्त होता है, वैसे ही **तिङ्+अन्त=तिङन्त** है। जैसे अजन्तपुँल्लिङ्ग से हलन्तनपुंसकलिङ्ग तक सुबन्त कहलाता है, उसी प्रकार **भ्वादिप्रकरण** से लेकर **लकारार्थप्रकरण** तक तिङन्त कहलाता है। तिङ् भी एक प्रत्याहार है जो तिप् के ति से शुरू करके महिङ् के ङकार को लेकर बना है। तिङ् प्रत्याहार में अठारह प्रत्यय हैं। जिनका क्रमशः वर्णन हम आगे करेंगे।

धातुओं का यह प्रकरण संस्कृतव्याकरण का प्राण है। धातुओं से ही क्रियारूपों और कृदन्तरूपों की रचना होती है। माना यह जाता है कि संस्कृतजगत में जितने भी शब्द हैं, वे सब धातुओं से ही बने हैं। अतः छात्रों को यदि विद्वान् बनना हो या संस्कृत भाषा को आत्मसात् करना हो तो तिङन्तप्रकरण को पूर्णतः कण्ठाग्र कर लेना चाहिए। जिस छात्र की इस प्रकरण में जितनी गति होगी उसका संस्कृत-भाषा पर उतना ही अधिकार होगा। यह प्रकरण अन्य प्रकरणों की अपेक्षा कठिन है फिर भी आपको घबराने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि हम आपके साथ हैं। इस ग्रन्थ के नामानुसार हम सरल से सरल तरीके से आपको समझायेंगे किन्तु आपको धैर्य धारण करना होगा एवं ज्ञान के लिए कटिबद्ध बने रहना होगा।

वैसे भी हमने व्याख्या की जो शैली अपनायी है, वह वास्तव में लिखने की व्याख्यात्मक शैली नहीं है अपितु २७ वर्ष तक व्याकरण पढ़ाने का जो अनुभव है, जिस प्रकार से छात्र समझ सकता है, उस पाठन शैली को लिपिबद्ध किया है। अतः यह ग्रन्थ उन विद्वानों के लिए नहीं है जो व्याकरणशास्त्र का ज्ञान कर चुके हैं। उन्हें यहाँ पर नूतन कुछ भी नहीं मिलेगा, क्योंकि हमने उन छात्रों के लिये यह लिखा है जो कि जो सरलता से **लघुसिद्धान्तकौमुदी** या **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में प्रविष्ट नहीं हो पाते हैं। उनका मित्र बनकर व्याकरण-शास्त्र की प्रारम्भिक बातें उनके मस्तिष्क में बैठा सकूँ, जो मेरे शिष्यत्व में अध्ययन कर रहे हैं या करने के लिए आते हैं। यदि इससे अन्य लोगों को भी

लाभ मिला तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। हाँ, नूतन जिज्ञासु छात्रों के लिए यह मेरी सरल प्रक्रिया है। अतः उन्हें तो इसमें पूर्ण आशावान् होना चाहिए और धैर्यता पूर्वक पूरा ग्रन्थ पढ़ लेना चाहिए। आइए, अब तिङन्त प्रकरण की बात करते हैं। एक बात यहाँ पर यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि पूववर्ती व्याख्याताओं ने हिन्दी में धातु-शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में किया है किन्तु मैंने संस्कृत भाषा की तरह पुँल्लिङ्ग और हिन्दी की तरह स्त्रीलिङ्ग दोनों लिङ्गों में ही प्रयोग किया है।

तिङन्त पद क्रियापद है। इसमें तीन भाग होंगे- १- धातु, २- तिङ् प्रत्यय और ३- धातु और प्रत्ययों के बीच में होने वाले शप् आदि विकरण प्रत्यय। जैसे पाणिनि ने सूत्रपाठ अष्टाध्यायी के रूप में बनाया है, उसी प्रकार धातुपाठ भी बनाया है और धातुओं का सामान्य अर्थ भी बताया है। कई आचार्यों का मत है कि धातु के अर्थ पाणिनि जी के द्वारा निर्मित नहीं है अपितु भीमसेन नामक किसी विद्वान् ने जोड़ा है। धातुपाठ को दस भागों में विभाजित किया है। १. भ्वादिगण, २. अदादिगण, ३. जुहोत्यादिगण, ४. दिवादिगण, ५. स्वादिगण, ६. तुदादिगण, ७. रुधादिगण, ८. तनादिगण, ९. क्र्यादिगण और १०. चुरादिगण।

यहाँ सर्वप्रथम भ्वादिगण से प्रारम्भ कर रहे हैं। दसों गणों में तिङ् ही प्रत्यय लगेंगे। तिङ् यद्यपि आदेश हैं फिर भी धातुओं से होने वाले जो लट् आदि लकार के रूप में प्रत्यय हैं, उनके स्थान पर होने के कारण स्थानिवद्भाव से या **प्रत्ययः** सूत्र के अधिकार में पठित होने के कारण भी प्रत्यय ही कहलाते हैं। **लट्, लिट्** आदि जो प्रत्यय हैं इनमें अनुबन्धलोप होकर केवल **ल्** मात्र शेष बचता है, अतः इन्हें लकार भी कहा जाता है। इनमें से पाँचवाँ लेट्-लकार केवल वेद में प्रयुक्त होता है, लौकिक संस्कृत साहित्य में नहीं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट् इन ६ लकारों में टकार की इत्संज्ञा होती है। अतः ये टित् लकार हैं और टित् को मानकर जो भी कार्य होगा वह इन्हीं लकारों के विषय में होगा। लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ् इनमें ङकार की इत्संज्ञा होती है, अतः ये ङित् लकार हैं। ङित् को मानकर होने वाले कार्य इन्हीं लकारों में होंगे।

ये लकार भिन्न-भिन्न अर्थों को लेकर होते हैं, उनमें से मुख्यतया तो काल अर्थात् समय के आधार पर ही हैं। जैसे वर्तमान काल के लिए लट् लकार, भूतकाल के लिए लिट्, लङ् और लुङ् लकार और भविष्यत्काल के लिए लुट् और लृट् लकार हैं। लेट् लकार तो वेद का विषय है। शेष लोट् लकार और लिङ् लकार आज्ञा आदि अर्थ में तथा लृङ् लकार क्रियातिपत्ति अर्थात् क्रिया की असिद्धि अर्थ में होते हैं।

धातु से लकार होंगे और लकार के स्थान पर तिङ् प्रत्यय होंगें। तिङ् भी अठारह हैं- **तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्।** अठारह में से नौ-नौ करके दो भागों में बँटे हैं। प्रथम नौ परस्मैपदी हैं और दूसरे नौ आत्मनेपदी हैं। इनका भी विवरण आगे देखेंगे।

धातु और तिप्, तस् आदि प्रत्ययों के बीच में आने वाले जो प्रत्यय हैं, उन्हें विकरण कहते हैं। उनमें से भ्वादिगण में शप्, अदादि में शप् होकर शप् का लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर शप् का श्लु, दिवादि में श्यन्, स्वादि में श्नु, तुदादि में श, रुधादिगण में श्नम्, तनादि में उ, क्र्यादि में श्ना और चुरादि में णिच् प्रत्यय होकर शप् होते हैं।

धातुओं को **सकर्मक** और **अकर्मक** इन दो भागों मे बाँटा गया है। सकर्मक और अकर्मक के लक्षण और परिभाषा के विषय में आगे जाकर इससे बड़े ग्रन्थों में विशेष वर्णन

आता है। हम यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदीस्तरीय** छात्रों को सरलता से बोध कराने के लिए इतना बता रहे हैं कि जिस धातु अर्थात् क्रिया के साथ कर्म लग सकता है, वह धातु सकर्मक और जिस धातु अर्थात् क्रिया के साथ कर्म लग ही नहीं सकता है, वह धातु अकर्मक है। जैसे- **रामः पठति** (राम पढ़ता है) में राम क्या पढ़ता है? **रामः व्याकरणं पठति** में पठति क्रिया के साथ **व्याकरणम्** यह कर्म लगा। अतः पठ् धातु सकर्मक है। इसी प्रकार **रामः शेते** (राम सोता है) में राम क्या सोता है? यह प्रश्न भी नहीं बनता है और उत्तर भी क्या दें? राम क्या सोता है? कोई उत्तर नहीं। कर्म लगने की योग्यता ही नहीं है। अतः सोने के अर्थ वाला **शी** यह धातु अकर्मक है। इसी प्रकार आप समस्त धातुओं के वाक्य बनाकर प्रयोग करना। आपको सकर्मक और अकर्मक का ज्ञान हो जायेगा।

इससे ज्यादा समझने के लिए सकर्मक और अकर्मक का मुख्य अर्थ समझना पड़ेगा। धातु के दो अर्थ हैं- **फल** और **व्यापार**। जैसे **रामः पचति** में पच् धातु है। इसमें पकाने का सारा कार्य जैसे चावल धोना, पकाने वाले बरतन में रखना, आग जलाना, चूल्हे पर रखना, करछूल से चलाना, बीच-बीच में पका कि नहीं यह जानने के लिए चावल के दानों को देखना, पानी ज्यादा हो तो निकाल देना और बरतन को चूल्हे से नीचे उतारने तक की सारी क्रियायें पच् धातु का व्यापार है। क्रिया को ही व्यापार कहते हैं और उस व्यापार का जो परिणाम है उसे फल कहा जाता है। जैसे- पकाने रूप व्यापार का फल चावल में कोमलता, नरमपन आना आदि है, जिसे विक्लिति कहा जाता है। इसी तरह सभी धातुओं के दो-दो अर्थ होते हैं- **फल** और **व्यापार**। व्यापार हमेशा कर्ता के अधीन रहता है अर्थात् कर्ता के आश्रय में रहता है और फल कभी कर्म के अधीन तो कभी कर्ता के। सकर्मक धातुओं में व्यापार कर्ता में और फल कर्म में रहता है तो अकर्मक धातुओं में व्यापार और फल दोनों कर्ता में ही आश्रित रहते हैं, क्योंकि अकर्मक धातुओं में कर्म होता ही नहीं। **देवदत्तः तण्डुलान् पचति** इस वाक्य में सम्पूर्ण क्रिया देवदत्त में निहित है और फल जो नरमपन है, वह कर्म अर्थात् तण्डुल(चावल) में रहता है। अतः कहा जाता है कि **फलाश्रयः कर्म** और **व्यापाराश्रयः कर्ता।**

कहीं-कहीं फल और व्यापार को इस प्रकार से अलग-अलग में आश्रित नहीं दिखा सकते। जैसे- **रामः शेते**। राम सोता है, इस वाक्य में सोने का सारा कार्य राम कर रहा है इस लिए व्यापार राम के अधीन है किन्तु फल किस में है? किसी अन्य में? नहीं। शयन का जो फल है, वह भी राम में ही निहित है। ऐसे धातुओं को अकर्मक कहते हैं।

सकर्मक धातुओं का लक्षण है- **फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्** अर्थात् **जिस धातु का फल और व्यापार भिन्न भिन्न अधिकरण में रहता है, वह धातु सकर्मक है।** तात्पर्य यह है कि जिन धातुओं के फल और व्यापार के आश्रय भिन्न-भिन्न हों, वे धातु सकर्मक कहलाते हैं। जैसे- **देवदत्तः तण्डुलान् पचति** में व्यापार देवदत्त में आश्रित है और फल तण्डुल में।

अकर्मक धातुओं का लक्षण- **फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्** अर्थात् **जिस धातु का फल और व्यापार एक ही अधिकरण में रहता है, वह धातु अकर्मक है।** तात्पर्य यह है कि जिन धातुओं के फल और व्यापार का आश्रय एक ही हो, वे धातु अकर्मक कहलाते हैं। जैसे- **रामः शेते** अर्थात् राम सोता है। इस वाक्य में व्यापार और फल एक ही व्यक्ति राम में आश्रित है। अतः **शी (शेते)** धातु अकर्मक है। अकर्मक

लट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

३७४. वर्तमाने लट् ३।२।१२३।।

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम्। **भू सत्तायाम्**।।१।। कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते।

....

धातुओं की सामान्यतया पहचान के लिए एक पद्य प्रचलित है-

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं, वृद्धि-क्षय-भय-जीवित-मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः।।

लज्जा, सत्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, नाश, भय, जीना, मरना, सोना, खेलना, रुचि और दीप्ति अर्थ वाले धातुओं को आचार्यों ने अकर्मक माना है। यह सामान्यतः कथन है। इसके अलावा भी **हस्**(हँसना), **वृष्**(बरसना) आदि अनेक धातुएँ अकर्मक हैं।

पूरे तिङन्तप्रकरण में प्रत्ययों का जहाँ भी विधान हो रहा हैं, वहाँ **धातोः** इस सूत्र का अधिकार है। अतः सारे प्रत्यय धातु के बाद हीं होंगे।

३७३- **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः**। न विद्यते कर्म येषां तेऽकर्मकास्तेभ्यः। लः प्रथमान्तं, कर्मणि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, भावे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अकर्मकेभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि कृत्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है। चकारात् **कर्तरि** पद का अनुकर्षण भी होता है। इस तरह अर्थ में **कर्तरि** पद का दो बार प्रयोग होता है।

सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म अर्थ में एवं अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में लकार होते हैं।

इस सूत्र का अर्थ करते समय इसके दो भाग करते हैं। एक भाग का अर्थ यह है कि **सकर्मक धातुओं से लकार कर्म और कर्ता अर्थ में हों** और दूसरे भाग का अर्थ यह है कि **अकर्मक धातुओं से लकार कर्ता और भाव अर्थ में हों**। जब धातुओं को सकर्मक और अकर्मक के रूप में दो भागों में बाँटा गया तो उसका पहला फल यही है कि **सकर्मक धातुओं से लकार का विधान हो तो वे लकार कर्ता और कर्म अर्थ को लेकर के ही आयेंगे** और **अकर्मक धातुओं से लकार का विधान हो तो वे लकार कर्ता और भाव अर्थ को लेकर के ही आयेंगे**। जो प्रत्यय जिस अर्थ में होते हैं, वे उसी अर्थ को दर्शाते हैं। यहाँ पर इस सूत्र से लकार कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में हो रहे हैं तो उनके स्थान पर होने वाले जो भी तिङ् आदेश हैं, उनके भी कर्ता, कर्म और भाव अर्थ ही होंगे। इसी प्रकार से जिस काल अर्थात् समय-विशेष को आधार मानकर लकार का विधान होगा। वे लकारादेश तिङ् प्रत्यय उन्हीं कालों को दर्शायेंगे। आगे जाकर वचनों में इनका विभाजन होगा तो लकार का अर्थ वचन अर्थात् संख्या भी माना जायेगा। इस प्रकार से लकार के अर्थ हुए- कर्ता, कर्म या भाव, संख्या और काल।

सकर्मक-धातुओं से कर्ता-अर्थ में प्रत्यय होने पर **कर्तृवाच्य** के और कर्म अर्थ में प्रत्यय होने पर **कर्मवाच्य** के वाक्य बनेंगे। इसी प्रकार अकर्मक-धातुओं से भी कर्ता-अर्थ में प्रत्यय होने पर **कर्तृवाच्य** और भाव अर्थ में प्रत्यय होने पर **भाववाच्य** वाले वाक्य बनते हैं।

३७४- **वर्तमाने लट्**। वर्तमाने सप्तम्यन्तं, लट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। तिङन्त में प्रत्यय

लकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३७५. तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-तातां-झ-थासाथां-ध्वमिड्-वहि-महिङ् ३।४।७८।।

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः।

....

करने वाले सभी सूत्रों में **धातोः** का अधिकार है तो इस सूत्र में भी **धातोः** का अधिकार है। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार भी चल रहा है।

वर्तमान कालिक क्रिया से युक्त अर्थात् वर्तमान काल की क्रिया को जब धातु प्रकट करती है, तब उस अर्थ में धातु से लट् लकार होता है।

वैयाकरणों का मानना है कि धातु ही भूत, वर्तमान और भविष्यत् अर्थ को कहता है, लकार तो उस अर्थ को द्योतित करने के लिए आते हैं। इसीलिए **वर्तमानेऽर्थे धातोर्लट् भवति** ऐसा न कहकर **वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट्** ऐसा वृत्ति में कहा गया। इसी प्रकार अन्य लकारों के विषय में भी समझना चाहिए।

लट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा तथा अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होगा। केवल **ल्** बचेगा। उच्चारण किये जाने के कारण लकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा नहीं होगी, अन्यथा विधान ही व्यर्थ हो जायेगा।

भू धातु **सत्ता** अर्थ में है। अपने आपको धारण करने का नाम **सत्ता** है। **राम होता है** इस वाक्य में **राम अपने स्थिति को धारण कर रहा है** यह तात्पर्य निकलता है। **सत्ता** भी एक प्रकार की क्रिया ही है। **भ्वादिगण** में पठित और **क्रियावाचक** होने के कारण **भू** की **भूवादयो धातवः** से धातुसंज्ञा होती है।

जिस प्रथम क्षण से आरम्भ होकर कोई कार्य जिस अन्तिम क्षण में समाप्त होता है, उस समग्र काल को **वर्तमान काल** कहते हैं। जैसे **रामः पचति**(राम पकाता है।) में राम आग जलाता है, बरतन को चूल्हे पर रखता है, पानी गरम करता है, उसमें चावल डालता है, करछुल से हिलाता है, चावल के गले व अधगले का निश्चय करने के लिए बार-बार थोड़ा-थोड़ा निकालकर अंगुलियों से मसल कर परीक्षा करता है तथा सिद्ध हो जाने पर बरतन को चूल्हे से नीचे उतारता है। राम की इन सभी क्रियाओं को **पकाता है** इस एक ही क्रिया से व्यवहार करते हैं। इतनी सारी क्रियायें वर्तमान काल में ही आती हैं।

३७५- तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्। तिप् च तश्च, झिश्च, सिप् च, थश्च, थश्च, मिप् च, वश्च, मश्च, तश्च, आताञ्च, झश्च, थाश्च, आथाञ्च, ध्वञ्च, इट् च, वहिश्च, महिङ् च, तेषां समाहारद्वन्द्वः तिप्तस्झिसिप्थस्-थमिब्वस्मस्-तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्। सम्पूर्णं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लस्य** और **प्रत्ययः** का अधिकार है।

लकार के स्थान पर तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् ये अठारह आदेश होते हैं।

दसों लकारों के स्थान पर ये अठारह आदेश के रूप में होंगे। इनमें से तिप्, सिप्, मिप् में पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और **इट्** में **टकार** की एवं **महिङ्** में **ङकार**

परस्मैपदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३७६. लः परस्मैपदम् १।४।९९॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः।

आत्मनेपदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३७७. तङानावात्मनेपदम् १।४।१००॥

तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञाऽपवादः।

....

की। इत्संज्ञक वर्ण का **तस्य लोपः** से लोप होता है। तस्, थस्, वस्, मस् और थास् के सकार की तथा आताम्, आथाम्, ध्वम् में मकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा तो प्राप्त होती है किन्तु **न विभक्तौ तुस्माः** उसका निषेध कर देता है। अन्य किसी वर्ण की तो इत्संज्ञा प्राप्त ही नहीं है।

पकार की इत्संज्ञा पित् को मानकर होने वाले कार्य= स्वरविधान, गुण आदि के लिए और **ङकार** की इत्संज्ञा ङित् को मानकर होने वाले कार्य के लिए है। इट् में टकार स्पष्ट समझने के लिए पढ़ा गया है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। **महिङ्** में ङकार तिङ् और तङ् प्रत्याहार के लिए पढ़ा गया है।

३७६- लः परस्मैपदम्। लः षष्ठ्यन्तं, परस्मैपदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लकार के स्थान पर जो तिप्, तस्, झि आदि आदेश हुए, वे परस्मैपदसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र से तिप् आदि अठारहों की परस्मैपदसंज्ञा की प्राप्ति होती है, इस पर अग्रिम सूत्र **तङानावात्मनेपदम्** आता है।

३७७- तङानावात्मनेपदम्। तङ् च आनश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- तङानौ। तङानौ प्रथमान्तम्, आत्मनेपदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लः परस्मैपदम्** से **लः** की अनुवृत्ति आती है।

तङ् प्रत्याहार और शानच्-कानच् प्रत्यय आत्मनेपदसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र में **आन** शब्द से **शानच्** और **कानच्** प्रत्ययों का बोध होता है क्योंकि दोनों में शकार और ककार की इत्संज्ञा करने पर **आन** ही शेष रहता है। शानच् और कानच् ये दोनों कृत्प्रकरण में होने वाले प्रत्यय हैं, इनकी आत्मनेपदसंज्ञा करने से आत्मनेपद के निमित्त वाले अनुदात्तेत् ङित् आदि धातुओं से ये प्रत्यय होते हैं। तङ् अर्थात् त, आताम् वाले त से महिङ् के ङकार को लेकर माना गया नौ आदेशों वाला प्रत्याहार। **लः परस्मैपदम्** से अठारहों की परस्मैपदसंज्ञा प्राप्त थी तो इस सूत्र ने उसे बाधकर यह नियम कर दिया कि उन अठारह आदेशों में से द्वितीय जो नौ तङ् प्रत्याहार में आने वाले आदेश हैं, उनकी तो आत्मनेपदसंज्ञा होगी। इस प्रकार द्वितीय नवक की आत्मनेपदसंज्ञा हो जाने के बाद शेष जो प्रथम नवक तिप् से मस् तक के आदेश हैं, इनकी पूर्वसूत्र से परस्मैपदसंज्ञा हो जायेगी। इस प्रकार से अठारह तिप् तस् आदि आदेशों को दो भागों में बाँटा गया। तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, ये नौ परस्मैपदसंज्ञक और त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् ये नौ आत्मनेपदसंज्ञक हो गये। यद्यपि ये सब लकार के स्थान पर होने वाले

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

३७८. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२।।

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्।

उभयपदविधायकं विधिसूत्रम्

३७९. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२।।

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले।

....

आदेश हैं तथापि धातुओं से विहित लकार को प्रत्यय माना गया है। अतः स्थानिवद्भाव से या **प्रत्ययः** सूत्र के अधिकार में आने से ये **प्रत्यय** भी कहलाते हैं। इसलिए आगे इनका तिबादि प्रत्ययों के रूप में व्यवहार किया जायेगा।

अब कैसे धातुओं से परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों का विधान हो और कैसे धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययों का? इसका निर्णय आगे के सूत्रों से किया जा रहा है।

३७८- अनुदात्तङित आत्मनेपदम्। अनुदात्तश्च ङ् च अनुदात्तङौ, तौ इतौ यस्य सः- अनुदात्तङित्, तस्मात् अनुदात्तङितः। अनुदात्तङितः पञ्चम्यन्तम्, आत्मनेपदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भूवादयो धातवः** से **धातवः** प्रथमान्त पद को पञ्चमी एकवचन में बदल कर **धातोः** की अनुवृत्ति की जाती है।

अनुदात्त-इत्संज्ञक धातु और ङकार-इत्संज्ञक धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

छात्रों को **लः परस्मैपदम्, तङानावात्मनेपदम्** और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्, स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले, शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** इन सूत्रों का अन्तर स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। पहले के दो सूत्र परस्मैपद और आत्मनेपद किसे कहते हैं, यह बताने के लिए अर्थात् परस्मैपदसंज्ञा और आत्मनेपदसंज्ञा करने के लिए हैं। बाद के **अनुदात्तङितः** आदि सूत्र उन परस्मैपदसंज्ञक तिप्, तस् आदि और आत्मनेपदसंज्ञक त, आताम् आदि के विधान के लिए हैं। अर्थात् पहले के दो सूत्र संज्ञासूत्र हैं और बाद के दो सूत्र विधिसूत्र हैं।

धातुपाठ में पाणिनि जी ने इसी प्रयोजन के लिए ही धातुओं में अनुबन्ध लगाया है। जिस धातु में ङकार या अनुदात्त स्वर वाला वर्ण अनुबन्ध लगा हो (अनुबन्ध तो इत्संज्ञा और लोप के लिए होता है, अतः उनकी इत्संज्ञा हुई हो) ऐसे अनुदात्तेत् और ङित् धातुओं से आत्मनेपद अर्थात् तङ्-प्रत्याहार वाले त, आताम्, झ आदि का ही प्रयोग करना चाहिए। इस सूत्र के प्रसंग में आने वाले धातुओं को आत्मनेपदी धातु कहा जाता है। अर्थात् जिन धातुओं से आत्मनेपद का विधान हो, ऐसी धातुएँ **आत्मनेपदी** और जिन धातुओं से परस्मैपद का विधान हो, ऐसी धातुएँ **परस्मैपदी** तथा जिन धातुओं से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों का विधान होता है ऐसी धातुएँ **उभयपदी** मानी जाती हैं।

३७९- स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले। स्वरितश्च ञ् च स्वरितञौ, तौ इतौ यस्य स स्वरितञित्, तस्मात्- स्वरितञितः। कर्तारम् अभिप्रैति=गच्छति इति कर्त्रभिप्रायम्(फलम्) तस्मिन्। क्रियायाः फलं क्रियाफलं, तस्मिन्। स्वरितञितः पञ्चम्यन्तं, कर्त्रभिप्राये सप्तम्यन्तं,

परस्मैपदविधायकं विधिसूत्रम्

३८०. शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात्।

प्रथमादिपुरुषसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३८१. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः।

....

क्रियाफले सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **भूवादयो धातवः** से **धातवः** प्रथमान्त पद को पञ्चमी एकवचन में बदल कर **धातोः** की अनुवृत्ति की जाती है।

जिस धातु में स्वरित की या ञकार की इत्संज्ञा हुई हो, उस धातु से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय होता है यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो रहा हो तो, (अन्यथा परस्मैपद का प्रयोग होता है)।

इस सूत्र के प्रसंग में आने वाले धातुओं को **उभयपदी** कहा जाता है। क्रिया का जो मुख्य उद्देश्य (जिसकी सिद्धि के लिए क्रिया की जा रही हो) उसे क्रियाफल कहा जाता है। अतः क्रिया का फल यदि कर्ता को मिल रहा हो तो आत्मनेपद, नहीं तो परस्मैपद का विधान इस सूत्र से हुआ। जैसे पच्-धातु का (भात, दाल आदि) पकाना अर्थ है। यदि पकाने वाला पाचक अपने लिए पका रहा है अर्थात् पाचनक्रिया का फल(प्रयोजन) उसे ही मिल रहा है तो पच्-धातु से आत्मनेपद का प्रयोग होकर **पचते** बनेगा और यदि दूसरों के लिए पका रहा है अर्थात् पाचनक्रिया का फल किसी अन्य को मिलने वाला है तो परस्मैपद का प्रयोग होकर **पचति** बनेगा। आत्मने (पदम्) अर्थात् अपने लिए और परस्मै (पदम्) अर्थात् दूसरे के लिए ऐसा अन्वर्थ(कर्ता के अनुसार की जाने वाले) संज्ञा समझनी चाहिए।

३८०- शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्। शेषात् पञ्चम्यन्तं, कर्तरि सप्तम्यन्तं, परस्मैपदं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **भूवादयो धातवः** से **धातवः** प्रथमान्त पद को पञ्चमी एकवचन में बदल कर **धातोः** की अनुवृत्ति की जाती है।

आत्मनेपद के निमित्तों से रहित धातुओं से कर्ता में परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

जिस धातु में आत्मनेपद प्रयोग के लिए जो-जो भी कारण बताये गये हैं, यदि वे कारण न हों तो उन धातुओं से परस्मैपद होना चाहिए। **शेष** का अर्थ कहने से जो बचे- **उक्तादन्यः शेषः।**

आत्मनेपद के विधान के लिए अनेकों सूत्र हैं। इस प्रकरण में तो बस दो ही सूत्र दिये गये हैं। जो धातु उन सूत्रों के कथन के अन्तर्गत नहीं आती हैं, उन समस्त धातुओं से परस्मैपद का विधान करना इस सूत्र का कार्य है।

३८१- तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः। प्रथमश्च मध्यमश्च उत्तमश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः प्रथममध्यमोत्तमाः। तिङः षष्ठ्यन्तं, त्रीणि प्रथमान्तं, त्रीणि प्रथमान्तं, प्रथममध्यमोत्तमाः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लः परस्मैपदम्** से **परस्मैपदम्** और **तङानावात्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** इन दोनों पदों को षष्ठीविभक्ति में बदलकर **परस्मैपदस्य,**

एकवचनादिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३८२. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२।।

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः।

....

आत्मनेपदस्य की अनुवृत्ति लायी जाती है। इसीको सूत्र की वृत्ति में **उभयोः पदयोः** से कहा गया है।

तिङ् के दोनों पदों अर्थात् आत्मनेपद और परस्मैपद के तीन-तीन त्रिक क्रम से प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुषसंज्ञक होते हैं।

त्रिक का अर्थ **तीन का समूह**। परस्मैपद के नौ और आत्मनेपद के नौ इन प्रत्ययों के तीन-तीन त्रिक बना लिए गये। परस्मैपद में **तिप्, तस्, झि** का एक त्रिक, **सिप्, थस्, थ** का दूसरा त्रिक और **मिप्, वस्, मस्** का तीसरा त्रिक, इसी प्रकार आत्मनेपद में भी **त, आताम्, झ** का एक त्रिक, **थास्, आथाम्, ध्वम्** का दूसरा त्रिक और **इट्, वहि, महिङ्** का तीसरा त्रिक, इस प्रकार से तीन तीन त्रिक बनाकर इन त्रिकों की क्रमशः **प्रथमपुरुषसंज्ञा, मध्यमपुरुषसंज्ञा** और **उत्तमपुरुषसंज्ञा** होती है। इस प्रकार से परस्मैपद में **तिप्, तस्, झि** की **प्रथमपुरुषसंज्ञा**, **सिप्, थस्, थ** की **मध्यमपुरुषसंज्ञा** और **मिप्, वस्, मस्** की **उत्तमपुरुषसंज्ञा** हुई। आत्मनेपद में भी **त, आताम्, झ** की **प्रथमपुरुषसंज्ञा**, **थास्, आथाम्, ध्वम्** की **मध्यमपुरुषसंज्ञा** और **इट्, वहि, महिङ्** की **उत्तमपुरुषसंज्ञा** हुई। इस प्रकार इन प्रत्ययों को प्रथमादि पुरुष में विभाजित करने के बाद अग्रिमसूत्र से एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञाएँ की जाती हैं।

३८२- तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः। एकवचनञ्च द्विवचनञ्च बहुवचनञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः एकवचनद्विवचनबहुवचनानि। तानि प्रथमान्तम्, एकवचनद्विवचनबहुवचनानि प्रथमान्तम्, एकशः अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** से **तिङः** और **त्रीणि त्रीणि** की अनुवृत्ति आती है।

प्रथमपुरुष आदि संज्ञा होने के बाद जो त्रिक में तीन-तीन हैं, वे क्रमशः एकवचनसंज्ञक, द्विवचनसंज्ञक और बहुवचनसंज्ञक होते हैं।

इसी तरह सुप् की भी एकवचन आदि संज्ञा की गई थी।

परस्मैपद

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	तिप्	तस्	झि
मध्यमपुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तमपुरुष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	त	आताम्	झ
मध्यमपुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	इट्	वहि	महिङ्

मध्यमपुरुषविधायकं विधिसूत्रम्

३८३. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः।

....

अब ये प्रथमपुरुषसंज्ञक, मध्यमपुरुषसंज्ञक और उत्तमपुरुषसंज्ञक प्रत्यय कहाँ हों, इसके लिए आगे तीन विधिसूत्र लिखे गये हैं-

३८३- **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः**। युष्मदि सप्तम्यन्तम्, उपपदे सप्तम्यन्तं, समानाधिकरणे सप्तम्यन्तं, स्थानिनि सप्तम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, मध्यमः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

तिङ् के वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्ता अथवा कर्म), उन्हें बताने वाले युष्मद्-शब्द के उपपद में होने पर, उस युष्मद् शब्द का प्रयोग होने पर या प्रयोग न होने पर विवक्षा मात्र होने पर भी मध्यमपुरुष होता है।

सूत्र में पठित **समानाधिकरणे** का ही अर्थ है- तिङ्-वाच्य-कारकवाचिनि। **समानाधिकरण** एक ही अधिकरण में रहने वाले को कहते हैं। अर्थ में शब्द वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध से रहता है। अतः **अर्थ** ही शब्द का अधिकरण(आधार) होता है। यदि दो शब्दों के समान अर्थ हो तो उन शब्दों को समानाधिकरण शब्द कहा जाता है। जब तिङ्-प्रत्यय का कर्ता या कर्म अर्थ होता है और उसी अर्थ को युष्मद् शब्द कहता है तो समानाधिकरण युष्मद्-शब्द हो जाता है। जैसे **त्वं पठसि** में कर्ता अर्थ में विहित लकार के स्थान में **सिप्** आदेश होने से उसका भी कर्ता ही अर्थ है और उसी कर्ता अर्थ को प्रथमान्त युष्मद्-शब्द अर्थात् **त्वम्** कह रहा है। अतः तिङ्-वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्ता), उसका वाचक युष्मद्-शब्द होने से अर्थात् समानाधिकरण होने से मध्यमपुरुष हुआ है। उसी प्रकार **मया त्वं ज्ञायसे**(मुझ से तुम जाने जा रहे हो) में कर्म अर्थ में विहित लकार के स्थान पर आए हुए **से**(थास्) का भी कर्म ही अर्थ होता है और उसी कर्म अर्थ को इस वाक्य में प्रथमान्त युष्मद्-शब्द कह रहा है। अतः तिङ् का वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्म) उसका वाचक युष्मद्-शब्द होने से अर्थात् समानाधिकरण होने से मध्यम पुरुष होता है। लकार कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में होते हैं। अतः उसके स्थान पर आये हुए तिङ् का भी वही अर्थ होता है। तिङ् के वाच्य भाव(क्रिया) के साथ समानाधिकरण अर्थात् उसी अर्थ को कहने वाला युष्मद्-शब्द कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए अवशिष्ट तिङ् का वाच्य कारक जो कर्ता या कर्म, उस अर्थ को कहने वाले युष्मद्-शब्द होने पर मध्यमपुरुष होता है। इसी प्रकार **अस्मद्युत्तमः** सूत्र में **समानाधिकरणे** जाकर **अस्मदि** का विशेषण बनता है। अतः उस सूत्र का तिङ्-वाच्य कारक कर्ता या कर्म तद्वाचक अस्मद्-शब्द के उपपद में होने पर उत्तमपुरुष हो, ऐसा अर्थ बनता है। जहाँ युष्मद् और अस्मद् दोनों समानाधिकरण न हो अर्थात् युष्मद् और अस्मद् शब्द तिङ्वाच्य कारक कर्ता या कर्म के वाचक न हों, अपितु कोई दूसरा समानाधिकरण हो तब प्रथमपुरुष होता है।

उपपदम्। उप=समीप में उच्चारित, **पदम्**=पद। युष्मद् शब्द के समीप में उच्चारित होने पर मध्यम पुरुष होता है किन्तु वह युष्मद् शब्द **तिङ् के वाच्य कारक** कर्ता या कर्म के **वाची** के रूप में समान अधिकरण में हो तो। तात्पर्य यह है कि उस वाक्य की जो क्रिया

उत्तमपुरुषविधायकं विधिसूत्रम्

३८४. अस्मद्युत्तमः १।४।१०७॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः।

प्रथमपुरुषविधायकं विधिसूत्रम्

३८५. शेषे प्रथमः १।४।१०८॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्। भू ति इति जाते।

....

है, उसमें लकार, तिप् आदि जिस अर्थ में हुआ है उसी अर्थ के लिए युष्मद् शब्द का प्रयोग किया जाता हो। जैसे- **त्वं पुस्तकं पठसि** इस वाक्य में पठसि क्रिया में लट् लकार कर्ता अर्थ में है और वाक्य में भी युष्मद् शब्द का प्रथमान्त रूप **त्वम्** कर्ता अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। अतः दोनों का एक ही अधिकरण हुआ। एकाधिकरण अर्थात् समानाधिकरण होने से **पठ्** धातु से मध्यमपुरुष हुआ। यदि भिन्न अधिकरण होगा तो मध्यमपुरुष नहीं होगा। जैसे- **रामस्त्वां पश्यति** इस वाक्य में दृश् धातु से लकार तो कर्ता अर्थ में हुआ और युष्मद् शब्द भी कर्म अर्थ में द्वितीयान्त होकर प्रयुक्त हो रहा है फिर भी कर्ता और कर्म भिन्न-भिन्न अधिकरण होने के कारण समानाधिकरण नहीं हुआ। अतः मध्यमपुरुष न होकर प्रथमपुरुष हुआ। इसी तरह **अहं त्वां कथयामि** इस वाक्य में भी कथय से लकार कर्ता अर्थ में हुआ है और युष्मद् शब्द का द्वितीयान्त रूप कर्म अर्थ में प्रयुक्त हुआ। इसलिए यहाँ भी युष्मद् शब्द समानाधिकरण नहीं हुआ। अतः मध्यमपुरुष नहीं हुआ।

प्रयोग हो या प्रयोग की सम्भावना हो कहने का तात्पर्य यह है कि कभी-कभी युष्मद-शब्द के प्रयोग न होने पर भी किन्तु उस समय में भी अन्य किसी शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे- **त्वं गच्छसि** या **गच्छसि।** युष्मत् शब्द के साक्षात् प्रयोग में तो मध्यमपुरुष होता ही है साथ ही उसकी सम्भावना मात्र में भी मध्यमपुरुष होता है। इसके लिए ही सूत्र में **स्थानिनि** शब्द का प्रयोग हुआ है। **स्थानिनि** पद का अर्थ वृत्ति में **अप्रयुज्यमाने** किया है। जिसको आदेश होता है, उसे **स्थानी** कहते हैं। आदेश होने के बाद स्थानी का लोप हो जाता है अर्थात् प्रयोग में नहीं रहता। अतः **स्थानिनि** का **स्थानी के प्रयोग न होने पर** इतना अर्थ हुआ। **स्थानिन्यपि** इसमें **अपि** शब्द के जुड़ने से **अप्रयुज्यमाने प्रयुज्यमाने च** अर्थात् **प्रयोग न होने पर** और **प्रयोग होने पर भी**, यह अर्थ निकलता है।

२८४- अस्मद्युत्तमः। अस्मदि सप्तम्यन्तम्, उत्तमः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से **उपपदे समानाधिकरणे स्थानिनि अपि** इतने पदों की अनुवृत्ति होती है।

तिङ् के वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्ता अथवा कर्म), उसको बताने वाले अस्मद्-शब्द के उपपद में होने पर, उस अस्मद् शब्द का प्रयोग होने पर या प्रयोग न होने पर विवक्षा मात्र होने पर भी उत्तम-पुरुष होता है।

इसकी व्याख्या भी पूर्वसूत्र की तरह ही समझनी चाहिए। वहाँ युष्मद् शब्द के विषय में मध्यमपुरुष का विधान है तो यहाँ अस्मद्-शब्द के विषय में उत्तमपुरुष का विध ान है। जैसे **अहं गच्छामि** अथवा **गच्छामि** इन प्रयोगों में अस्मद् शब्द का प्रथमान्त रूप

सार्वधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३८६. तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः॥

शप्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

३८७. कर्तरि शप् ३।१।६८॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्।

....

अहम् कर्ता के रूप में प्रयुक्त है अथवा **गच्छामि** इस क्रिया में कर्ता **अहम्** विवक्षित है, क्योंकि लट् लकार कर्ता अर्थ में हुआ है। अतः समानाधिकरण है। फलतः उत्तमपुरुष का प्रयोग हुआ।

३८५- **शेषे प्रथमः**। शेषे सप्तम्यन्तं, प्रथमः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष का विषय न होने पर प्रथमपुरुष होता है।

उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष के लिए प्रयोग होने में जो कारण बताये गये, उससे भिन्न शेष हुआ अर्थात् **उक्तादन्यः शेषः**। इसके पूर्व दो सूत्रों के द्वारा कथित कारणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थिति में प्रथमपुरुष का प्रयोग होना चाहिए। इस प्रकार से इन तीन सूत्रों से जो व्यवस्था दी गई, वह यह कि युष्मत्-शब्द के प्रयोग या प्रयोग की विवक्षा में मध्यमपुरुष, अस्मत्-शब्द के प्रयोग या प्रयोग की विवक्षा होने पर उत्तमपुरुष और शेष सर्वत्र प्रथमपुरुष का प्रयोग होता है।

३८६- **तिङ्शित्सार्वधातुकम्**। श् इत् यस्य स शित्, बहुव्रीहिः। तिङ् च शिच्च तयोः समाहारद्वन्द्वः तिङ्शित्। तिङ्शित् प्रथमान्तं, सार्वधातुकं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः** सूत्र का अधिकार है।

धातु से किये गये तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुकसंज्ञक होते हैं।

यह सूत्र सार्वधातुकसंज्ञा करता है उनकी, जो धातु से विधान किए गए हों और वे या तो तिङ् हों या शकार-इत्संज्ञक प्रत्यय हों। इससे पूरे तिङ् की सार्वधातुकसंज्ञा होती है किन्तु लिट् और आशीर्लिङ् में इस सूत्र को बाधकर **लिट् च** एवं **लिङाशिषि** सूत्र से **आर्धधातुकसंज्ञा** भी होती है। **कर्तरि शप्** से होने वाले शप्-प्रत्यय की भी इसी सूत्र से सार्वधातुकसंज्ञा होती है।

३८७- **कर्तरि शप्**। कर्तरि सप्तम्यन्तं, शप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति है।

कर्ता अर्थ में किये गये सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे रहने पर धातु से शप् प्रत्यय होता है।

शप् में पकार की **हलन्त्यम्** से और शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। केवल **अ** ही बचता है। यह शप् प्रकृति धातु और प्रत्यय तिङ् के बीच में होता है। अतः **प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये यः पतति स विकरणः** अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के बीच में जो होता है, वह विकरण है, इस नियम से **शप्** को **विकरण** माना जाता है। भ्वादि में शप् होता है। अतः भ्वादिगणीय धातु को शब्विकरणधातु कहा जाता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

३८८. सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः। अवादेशः। भवति। भवतः।

....

३८८- सार्वधातुकार्धधातुकयोः। सार्वधातुकञ्च आर्धधातुकञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सार्वधातुकार्धधातुके, तयोः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। सार्वधातुकार्धधातुकयोः सप्तम्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **इको गुणवृद्धी** इस परिभाषासूत्र से **इकः** यह पद भी आता है।

सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे रहने पर इगन्त अङ्ग को गुण होता है।

अलोऽन्त्यस्य के नियम से अन्त्य वर्ण इकार, उकार, ऋकार और ऌकार के स्थान पर गुण आदेश हो जाता है। **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** के नियम से सार्वधातुक और आर्धधातुक के अव्यवहित पूर्व के स्थान पर गुण होता है।

भवति। **भू** धातु है। **भू सत्तायाम्।** भू धातु का अर्थ सत्ता है। सत्ता माने स्थिति। इस प्रकरण में सबसे पहले भू धातु है, भू धातु आदि में होने के कारण इस प्रकरण के सारे धातु भ्वादिगणीय धातु माने जाते हैं। भू में उकार को पाणिनि जी ने अनुनासिक नहीं माना, इसलिए **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से उसकी इत्संज्ञा नहीं हुई। इस धातु में कभी कर्म नहीं लग सकता है, इसलिए यह धातु अकर्मक है। अकर्मक धातु से **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** के अनुसार कर्ता अर्थ में लकार होने का विधान हुआ तो **वर्तमाने लट्** ने वर्तमान अर्थ में भू-धातु से लट्-लकार का विधान हुआ।

भू लट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **भू+ल्** बना। लकार के स्थान पर **तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्** से तिप् आदि अठारहों आदेश प्राप्त हुए। उनमें प्रथम-नवक तिप् आदि की **लः परस्मैपदम्** से परस्मैपदसंज्ञा और द्वितीय-नवक त, आताम् आदि की **तङानावात्मनेपदम्** से आत्मनेपदसंज्ञा हुई। इसके बाद **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** से प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुषसंज्ञा हुई। आत्मनेपद के विधान होने के लिए कोई कारण न होने के निमित्त **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** से भू-धातु के बाद परस्मैपद का विधान हुआ। परस्मैपद में भी नौ-प्रत्यय और तीन पुरुष हैं। मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष का विषय न होने के कारण **शेषे प्रथमः** से प्रथमपुरुष का विधान हुआ।

एकत्वसंख्या की विवक्षा में **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** के नियम से एकवचन तिप् आया। तिप् में पकार की **हलन्त्यम्** इस सूत्र से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से उसका लोप हुआ। केवल ति बचा, **भू+ति** बना। ति धातु से विहित तिङ् है। अतः **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से ति की सार्वधातुकसंज्ञा हुई। इसके बाद सूत्र लगा- **कर्तरि शप्।** कर्ता अर्थ में सार्वधातुक परे है ति, क्योंकि लकार कर्ता अर्थ में हुआ है और उसके स्थान पर हुए ति में भी कर्ता अर्थ स्थानिवद्भाव से विद्यमान है। अतः भू धातु से शप् प्रत्यय का विधान हुआ। शप् में पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हुई। दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। केवल अ बचा, **भू+अ+ति** बना।

अन्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३८९. झोऽन्तः ७।१।३॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः। **अतो गुणे**। भवन्ति।

भवसि। भवथः। भवथ।

....

शप् वाले अकार की भी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई, क्योंकि शप् भी धातु से विहित है और शकार की इत्संज्ञा होने के कारण शित् भी है। अब सूत्र लगा- **सार्वधातुकार्धधातुकयोः**। सार्वधातुक परे है शप् वाला अकार और इगन्त अङ्ग है भू, उसके अन्त में है- ऊकार। इसको गुण हुआ तो उ के स्थान पर यत्किञ्चत् स्थानसाम्यता से ओ गुण होता है। भू के ऊकार के स्थान पर गुण होकर भो हुआ, **भो+अ+ति** बना। **भो+अ** में **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश हुआ- **भ्+अव्+अ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **भ्+अ=भ** और **व्+अ=व**, ति= **भवति** यह रूप सिद्ध हुआ।

आप इस प्रक्रिया को अनेक बार करना, क्योंकि जैसे रामशब्द की अच्छी तैयारी से आगे के शब्दों की सिद्धि में सरलता होती है, उसी प्रकार भू धातु को ठीक से मुखाग्र करने पर आगे के धातुओं की सिद्धि में सरलता होगी।

भवतः। इसकी प्रक्रिया भी भवति के समान ही है। लट् लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आता है। **भू+तस्**, बना, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवतस्** बना है, सकार का रुत्व और विसर्ग हो जाने के बाद **भवतः** सिद्ध हो गया।

३८९- झोऽन्तः। झः षष्ठ्यन्तम्, अन्तः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **प्रत्ययस्य** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के अवयव झकार के स्थान पर अन्त् आदेश होता है।

झकार की **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त थी, उसे बाधकर यह सूत्र लगता है।

भवन्ति। भू धातु से प्रथमपुरुष का बहुवचन झि आया, उसमें झकार की इत्संज्ञा प्राप्त थी, उसे बाधकर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश हुआ, **भू+अन्त्+इ** बना। **अन्त्+इ=अन्ति**। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भव+अन्ति** बना है, **अतो गुणे** से पररूप हो जाने के बाद **भवन्ति** ऐसा रूप सिद्ध हो गया।

भवसि। भू धातु से **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से मध्यमपुरुष का विधान, एकवचन सिप्, पकार का लोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्ध लोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवसि** बना।

भवथः। भू धातु से **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से मध्यमपुरुष का विधान, द्विवचन में थस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवथस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **भवथः**।

भवथ। भू धातु से **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से मध्यमपुरुष

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३९०. अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके।

भवामि। भवावः। भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः।

....

का विधान, बहुवचन थ आया, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवथ** बना।

३९०- अतो दीर्घो यञि। अतः षष्ठ्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, यञि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है ही।

अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है यञ् प्रत्याहार आदि में हो ऐसे सार्वधातुक के परे रहते।

इसके द्वारा भू के बाद किये गये शप् के अकार को दीर्घ होता है। प्रश्न यह हो सकता है कि अङ्गसंज्ञा तो प्रकृति की होती है, यहाँ तो प्रकृति केवल भू है, शप् तो प्रत्यय है। ऐसी स्थिति में शप् को अङ्गसंज्ञक कैसे माना गया? इसका उत्तर यह है शप् केवल प्रत्यय न होकर विकरण भी है। अङ्गसंज्ञा विकरण सहित की भी मानी जायेगी। अतः शप् सहित भू को अङ्ग माना जायेगा। शप् के अकार को इस सूत्र से दीर्घ होगा।

भवामि। भू धातु से **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष का विधान, एकवचन मिप्, पकार की इत्संज्ञा होकर लोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भव+मि** बना। मि यञादि सार्वधातुक है, अतः **अतो दीर्घो यञि** से भव के अकार को दीर्घ हुआ- **भवामि।**

भवावः। भू धातु से **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष का विधान, द्विवचन वस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भव+वस्** बना। वस् यञादि सार्वधातुक है, अतः **अतो दीर्घो यञि** से भव के अकार को दीर्घ हुआ- **भवावस्** बना, सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **भवावः।**

भवामः। भू धातु से **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष का विधान हुआ, बहुवचन मस् आया, उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होकर **भव+मस्** बना। **मस्** यञादि सार्वधातुक है, अतः **अतो दीर्घो यञि** से भव के अकार को दीर्घ, **भवामस्** बना, सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **भवामः।**

भू धातु के लट् लकार के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति।
मध्यमपुरुष	भवसि	भवथः	भवथ।
उत्तमपुरुष	भवामि	भवावः	भवामः।

लिट्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

३९१. परोक्षे लिट् ३।२।११५॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः।

णलाद्यादेशविधायकं विधिसूसूत्रम्

३९२. परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः। भू अ इति स्थिते।

वुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

३९३. भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६।४।८८॥

भुवो वुगागमः स्याल्लुङ्लिटोरचि।

....

३९२- **परोक्षे लिट्**। परोक्षे सप्तम्यन्तं, लिट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनद्यतने लट्** से **अनद्यतने** की अनुवृत्ति आती है और **भूते** और **धातोः** का अधिकार चल रहा है।

भूत, अनद्यतन परोक्ष अर्थ में रहने वाली धातुओं से लिट् लकार होता है।

बीते हुए समय को भूत कहते हैं। अपने इन्द्रियों के पीछे को परोक्ष कहते हैं। जो आज का हो उसे अद्यतन कहते हैं और जो आज का नहीं है, उसे अनद्यतन कहते हैं। ये तीनों अर्थात् भूत, अनद्यतन, परोक्ष एक ही क्रिया में हों तो ऐसी धातुओं से लिट् का प्रयोग होता है। केवल भूत में नहीं, केवल परोक्ष में नहीं और केवल अनद्यतन में नहीं, तीनों एक साथ होने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। लिट् में भी टकार और इकार की इत्संज्ञा और लोप हो जाने के बाद ल् ही बचता है तथा लकार के स्थान पर उसी प्रकार से तिप्, तस् आदि होते हैं।

३९२- **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः**। णल् च अतुश्च, उश्च, थल्च, अथुश्च, अश्च, णल् च, वश्च मश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः। परस्मैपदानां षष्ठ्यन्तं णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लिटस्तझयोरेशिरेच्** से **लिटः** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् लकार के स्थान पर आदेश हुए तिप् आदि नौ प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म आदेश होते हैं।

इस प्रकार से तिप् के स्थान पर णल्, तस् के स्थान पर अतुस्, झि के स्थान पर उस्, सिप् के स्थान पर थल्, थस् के स्थान पर अथुस्, थ के स्थान पर अ, मिप् के स्थान पर णल्, वस् के स्थान पर व और मस् के स्थान पर म आदेश होते हैं।

३९३- **भुवो वुग् लुङ्लिटोः**। लुङ् च लिट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, तयोः लुङ्लिटोः। भुवः षष्ठ्यन्तं, वुक् प्रथमान्तं, लुङ्लिटोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है।

लुङ् और लिट् लकार से सम्बन्धित अच् के परे रहने पर भू धातु को वुक् आगम होता है।

वुक् में ककार और उकार की इत्संज्ञा हो जाती है, केवल व् बचता है। ककार

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९४. लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८॥

लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य। भूव् भूव् अ इति स्थिते।

अभ्याससंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३९५. पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्।

हलादिशेषविधायकं विधिसूत्रम्

३९६. हलादिः शेषः ७।४।६०॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः।

....

की इत्संज्ञा होने के कारण कित् हुआ और **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से अन्तावयव होकर बैठता है। भू को वुक् आगम हुआ है, अतः भू के अन्त में बैठेगा।

३९४- लिटि धातोरनभ्यासस्य। लिटि सप्तम्यन्तं, धातोः षष्ठ्यन्तम्, अनभ्यासस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो द्वे प्रथमस्य** और **अजादेर्द्वितीयस्य** का अधिकार आ रहा है।

लिट् के परे होने पर अनभ्यास धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो जाता है परन्तु यदि धातु का आदिभूत (पहला अक्षर) अच् हो तो उस अच् से परे दूसरे एकाच् भाग को द्वित्व होता है।

जिस धातु की अभी तक अभ्यास-संज्ञा नहीं हुई है, उस धातु को द्वित्व होता है, लिट् लकार के परे रहने पर। यदि धातु में अनेक अच् हों तो हल्-सहित प्रथम एक अच् को द्वित्व होता है और यदि धातु का आदिवर्ण अच् हो और धातु अनेकाच् हो तो प्रथम एकाच् को द्वित्व न होकर द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

यद्यपि इस सूत्र की अनेकाच् धातुओं में ही प्रवृत्ति होनी चाहिए, क्योंकि अनेकाच् धातुओं में प्रथम एकाच या द्वितीय एकाच् हो सकता है, फिर भी एकाच् धातुओं में व्यपदेशिवद्भाव से अनेकाच् मानकर द्वित्व किया जाता है।

३९५- पूर्वोऽभ्यासः। पूर्वः प्रथमान्तम्, अभ्यासः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। द्वित्व करने पर दो हो जाते हैं।

इन छठवें अध्याय के सूत्रों से द्वित्व होने पर जो दो-दो बार उच्चारित हो रहे हैं, उनमें पूर्व का रूप अभ्याससंज्ञक होता है।

भूव् को द्वित्व होने पर भूव् भूव् हुआ तो पूर्व **भूव्** की अभ्याससंज्ञा हुई।

३९६- हलादिः शेषः। हल् प्रथमान्तम्, आदिः प्रथमान्तं, शेषः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है और अन्य हलों का लोप होता है।

द्वित्व होने पर पूर्व की जो अभ्याससंज्ञा हुई थी, उसमें यदि अनेक हल् हैं तो आदि में विद्यमान हल् ही शेष रहता है और अन्य हलों का लोप हो जाता है। यह सूत्र **आदि**

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९७. ह्रस्वः ७।४।५९॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्।

अत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९८. भवतेरः ७।४।७३॥

भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि।

चर्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९९. अभ्यासे चर्च ८।४।५४॥

अभ्यासे झशां चरः स्युर्जशश्च। झशां जशः खयां चर इति विवेकः।

बभूव। बभूवतुः। बभूवुः।

....

हल् का शेष हो इतना ही कहता है, आगे **अन्य का लोप हो** यह अर्थ स्वतः आ जाता है। यह सूत्र अचों का लोप नहीं करता। जैसे भूव् में भ् और व् दो हल् है, उनमें से भ् शेष रहता है और व् का लोप होता है। उकार जो अच् है वह तो रहेगा ही।

३९७- ह्रस्वः। ह्रस्वः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास के अच् को ह्रस्व होता है।

भू में ऊकार के स्थान पर ह्रस्व होकर उकार बन जाता है।

३९८- भवतेरः। भवतेः षष्ठ्यन्तम्, अः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **व्यथो लिटि** से **लिटि** और **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आ रही है।

भूधातु के अभ्यास के उकार के स्थान पर अकार आदेश होता है, लिट् के परे होने पर।

भू के ऊकार के स्थान पर अकार आदेश होकर भ बन जायेगा।

३९९- अभ्यासे चर्च। अभ्यासे सप्तम्यन्तं, चर् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **झलां जश् झशि** से **झलां** और **जश्** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में झल् के स्थान पर जश् और चर् आदेश होते हैं।

सूत्रार्थ के अनुसार यहाँ झल् के स्थान पर जश् और चर् दो प्रकार के आदेश हो रहे थे तो झलों को दो भागों में विभाजित किया गया- झश् और खय्। इन दोनों के स्थान पर क्रमशः जश् और चर् आदेश होंगे। झल् में **श्, ष्, स्** भी आते हैं किन्तु उनके स्थान चर् आदेश किया भी जाय तो स्थान, प्रयत्न आदि की साम्यता से शकार के स्थान पर शकार, षकार के स्थान पर षकार और सकार के स्थान पर सकार ही आदेश हो जाते हैं।

बभूव। भू धातु से कर्ता अर्थ में परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार हुआ, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर तिप् आदि आदेश प्राप्त हुए। प्रथमपुरुषसंज्ञा, प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आया। अनुबन्धलोप होकर **भू+ति** बना। यहाँ ति की सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है क्योंकि अग्रिमसूत्र **लिट् च** से सार्वधातुकसंज्ञा को बाधकर लिट्

आर्धधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४००. लिट् च ३।४।११५॥

लिडादेशस्तिङ्ङार्धधातुकसंज्ञः।

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४०१. आर्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्।

बभूविथ। बभूवथुः। बभूव। बभूव। बभूविव। बभूविम।

....

लकार की आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। अतः **कर्तरि शप्** से शप् भी नहीं हुआ। ति के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से णल् आदेश हुआ। णल् में लकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। केवल **अ** बचा। **भू अ** बना। **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से वुक् आगम हुआ, अनुबन्धलोप होकर **व्** बचा, कित् होने के कारण भू के अन्त में बैठा, **भूव् अ** बना। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से भूव् को द्वित्व हुआ, **भूव् भूव् अ** बना। **पूर्वोऽभ्यासः** से पहले वाले **भूव्** की अभ्याससंज्ञा हुई और **हलादि शेषः** से अभ्याससंज्ञक भूव् में जो आदि हल् है भ्, उसका शेष और अन्य हल् वकार का लोप हुआ, **भू भूव् अ** बना। **ह्रस्वः** से अभ्याससंज्ञक **भू** के ऊकार को ह्रस्व होकर **भु** हुआ, **भु भूव् अ** बना। **भवतेरः** से भु के उकार के स्थान पर अकार आदेश हुआ, **भ भूव् अ** बना। **अभ्यासे चर्च** से झश् भकार के स्थान पर जश् बकार आदेश हुआ, **बभूव् अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बभूव** सिद्ध हुआ।

बभूवतुः। बभूवुः। भू धातु से कर्ता अर्थ और परोक्ष, अनद्यतन, भूत काल में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर तिप् आदि आदेश प्राप्त हुए। प्रथमपुरुषसंज्ञा, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आया, भू+तस् बना। यहाँ तस् की सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है क्योंकि अग्रिम सूत्र **लिट् च** से सार्वधातुकसंज्ञा को बाधकर लिट् लकार की आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। अतः **कर्तरि शप्** से शप् भी नहीं हुआ। तस् के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से अतुस् आदेश हुआ, भू अतुस् बना। **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से वुक् आगम, अनुबन्धलोप व् बचा, कित् होने के कारण भू के अन्त में बैठा, **भूव् अतुस्** बना। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से भूव् को द्वित्व हुआ, **भूव् भूव् अतुस्** बना। **पूर्वोऽभ्यासः** से पहले वाले भूव् की अभ्याससंज्ञा हुई और **हलादि शेषः** से अभ्याससंज्ञक भूव् में भ् जो आदि हल् है, उसका शेष और अन्य हल् वकार का लोप, **भू भूव् अतुस्** बना। **ह्रस्वः** से अभ्याससंज्ञक भू के ऊकार को ह्रस्व, **भु भूव् अतुस्** बना। **भवतेरः** से भु के उकार के स्थान पर अकार आदेश, **भ भूव् अतुस्** बना। **अभ्यासे चर्च** से झश् भकार के स्थान पर जश् बकार आदेश, **बभूव् अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बभूवतुस्** बना। सकार के स्थान पर रुत्वविसर्ग हुआ तो **बभूवतुः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहुवचन में झि और उसके स्थान पर उस् आदेश होकर **बभूवुः** बनेगा।

४००- **लिट् च**। लिट् लुप्तषष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से **तिङ्** और **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकम्** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् लकार के स्थान पर आदेश हुए तिङ् आर्धधातुकसंज्ञक होते हैं।

लिट् की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा प्राप्त होती है और उसे बाधकर इस सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। **लिट्** को लुप्तषष्ठीक पद इस लिए माना गया क्योंकि यहाँ पर तिङ् की अनुवृत्ति आने से **लिट्** का अर्थ **लिट् के स्थान पर** ऐसा माना गया है।

४०१- **आर्धधातुकस्येड्वलादेः**। वल् आदौ यस्य स वलादिः, तस्य वलादेः। आर्धधातुकस्य षष्ठ्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, वलादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

वल् प्रत्याहार वाला वर्ण आदि में हो, ऐसे आर्धधातुक को इट् का आगम होता है।

टकार की इत्संज्ञा होती है और टित् होने के कारण यह आर्धधातुक के आदि में आकर बैठता है।

बभूविथ। बभूवथुः। बभूव। बभूव। बभूविव। बभूविम। भू धातु से कर्ता अर्थ और परोक्ष, अनद्यतन, भूत काल में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार हुआ, अनुबन्धलोप हुआ, उसके स्थान पर तिप् आदि आदेश प्राप्त हुए। प्रथमपुरुषादि संज्ञा, मध्यमपुरुष के एकवचन की प्राप्ति, सिप् आया, भू+सिप् बना। पकार का लोप। यहाँ सि की सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है क्योंकि **लिट् च** से सार्वधातुकसंज्ञा को बाधकर लिट् लकार की आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। अतः **कर्तरि शप्** से शप् भी नहीं हुआ। सि के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से **थल्** आदेश हुआ, अनुबन्धलोप, **भू थ** बना। **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से वलादि आर्धधातुक थ को इट् आगम हुआ, टकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ, इ बचा। टित् होने के कारण थ के आदि में बैठा, **भू इ थ** बना। अब यह अजादि बना तो **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से **भू** को **वुक्** आगम हुआ, अनुबन्धलोप होकर व् बचा, कित् होने पर भू के अन्त में बैठा, **भूव् इ थ** बना। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से भूव् को द्वित्व हुआ, **भूव् भूव् इ थ** बना। **पूर्वोऽभ्यासः** से पहले वाले भूव् की अभ्याससंज्ञा हुई और **हलादि शेषः** से अभ्याससंज्ञक भूव् में भ् जो आदि हल् है, उसका शेष और अन्य हल् वकार का लोप हुआ, **भू भूव् इ थ** बना। **ह्रस्वः** से अभ्याससंज्ञक **भू** के **ऊकार** को **ह्रस्व** होकर **भु** हुआ, **भु भूव् इ थ** बना। **भवतेरः** से **भु** के **उकार** के स्थान पर **अकार** आदेश हुआ, **भ भूव् इ थ** बना। **अभ्यासे चर्च** से झश् भकार के स्थान पर जश् बकार आदेश हुआ, बभूव् इ थ वना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बभूविथ** बना।

अब इसी प्रकार मध्यमपुरुष के द्विवचन के **थस्** के स्थान पर **अथुस्** आदेश होकर **बभूवतुः** के समान **बभूवथुः** बनेगा।

मध्यमपुरुष के बहुवचन में **अ** आदेश होकर णल् के ही समान **बभूव** और उत्तमपुरुष के एकवचन में भी णल् आदेश होकर **बभूव** बना। उत्तमपुरुष के द्विवचन में व आदेश होकर **बभूविव** और बहुवचन में म आदेश होकर **बभूविम** बनेंगे। यहाँ पर यह ध्यान देना होगा कि यदि वल् प्रत्याहार आगे है तो इट् का आगम होगा और नहीं तो इट् आगम नहीं होगा। वुक् आगम करने के लिए अच् परे होना जरूरी है। **लिट्** में जहाँ प्रत्यय या आदेश अच् नहीं है, वहाँ पर इट् आगम होने के बाद **अच् परे** मिल जाता है।

लुट्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४०२. अनद्यतने लुट् ३।३।१५॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्।

स्यतासिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

४०३. स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३॥

धातोः 'स्य-तासी' एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः।

शबाद्यपवादः। लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम्।

आर्धधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४०४. आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्। इट्।

डारौरसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४०५. लुटः प्रथमस्य डारौरसः २।४।८५॥

'डा-रौ-रस्' एते क्रमात् स्युः। डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भविता।

....

४०२- **अनद्यतने लुट्**। अनद्यतने सप्तम्यन्तं, लुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भविष्यति गम्यादयः** से **भविष्यति** की अनुवृत्ति आती है।

अनद्यतन भविष्यत् अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है।

आने वाले समय को भविष्यत् कहते हैं। जो आज का है, उसे अद्यतन और जो आज का विषय नहीं है, उसे अनद्यतन कहते हैं। भविष्यत् होते हुए जो आज का विषय न हो ऐसे काल में धातु से लुट् लकार हो। इसका तात्पर्य यह है कि आज के भविष्यत् में लुट् होता ही नहीं है। भविता का अर्थ होगा- आने वाले कल या उसके बाद में होने वाला।

४०३- **स्यतासी लृलुटोः**। स्यश्च तासिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्यतासी। आ च लुट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- लृलुटौ, तयोः लृलुटोः। स्यतासी प्रथमान्तं, लृलुटोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लृट्, लृङ् और लुट् लकार के परे रहने पर धातु से स्य और तासि प्रत्यय होते हैं।

यह सूत्र शप् आदि प्रत्ययों को बाधकर लगता है। लृ से लृट् और लृङ् दोनों लकारों का ग्रहण है। **यथासंख्य** से लृ को स्य और लुट् को तासि हो जाता है।

४०४- **आर्धधातुकं शेषः**। आर्धधातुकं प्रथमान्तं, शेषः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

धातु से विहित एवं तिङ् और शित् से भिन्न प्रत्यय आर्धधातुकसंज्ञक होते हैं।

अष्टाध्यायी में इस सूत्र से पहले **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** पढ़ा गया है। अतः इस सूत्र में शेष का अर्थ हुआ- **तिङ्** और **शित्** से शेष क्योंकि **उक्तादन्यः शेषः** अर्थात् कहने से बचा हुआ जो भी है, वह शेष है। धातु से विहित जितने भी प्रत्यय होंगे, उनमें यदि तिङ् और शित् न हों तो उनकी आर्धधातुकसंज्ञा होती है। यह सूत्र व्यापक है, कृदन्त आदि में भी लगता है। अतः इस सूत्र को ठीक से समझना चाहिए।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४०६. तासस्त्योर्लोपः ७।४।५०॥

तासेरस्तेश्च सस्य लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४०७. रि च ७।४।५१॥

रादौ प्रत्यये परे तथा।

भवितारौ। भवितारः। भवितासि। भवितास्थः। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्वः। भवितास्मः।

....

४०५- लुटः प्रथमस्य डारौरसः। डाश्च रौश्च रश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- डारौरसः। लुटः षष्ठ्यन्तं, प्रथमस्य षष्ठ्यन्तं, डारौरसः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लुट् लकार के प्रथमपुरुष के स्थान पर क्रमशः डा, रौ, रस् ये आदेश होते हैं।

परस्मैपद में **तिप्** के स्थान पर **डा**, **तस्** के स्थान पर **रौ** और **झि** के स्थान पर **रस्** आदेश तथा आत्मनेपद में **त** के स्थान पर **डा**, **आताम्** के स्थान पर **रौ** और **झ** के स्थान पर **रस्** आदेश होंगे।

भविता। भू-धातु से कर्ता अर्थ में **अनद्यतने लुट्** से लुट्-लकार का विधान, अनुबन्धलोप हुआ। लकार के स्थान पर तिप् आदेश, अनुबन्धलोप। **भू+ति** में ति की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई और **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त हुआ, उसे बाध कर **स्यतासी लृलुटोः** से तासि-प्रत्यय हुआ। तासि में इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **भू+तास्+ति** बना। तास् धातु से विहित है, तिङ् और शित् से भिन्न भी है। अतः इसकी **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से तास् को इट् का आगम हुआ तो बना **भू+इ+तास्+ति। भू+इ** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **भो+इ** बना, **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश होकर **भ्+अव्+इ** बना, वर्णसम्मेलन होने पर- **भवि** बना, आगे तास् ति भी है। **भवितास् ति** में ति के स्थान पर **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** से **डा** आदेश हुआ। डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप, **भवितास् आ** बना। भवितास् में अन्त्य अच् है ता का आकार, वह सकार के आदि में है। अतः आस् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और डिद्विधानसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक आस् का लोप हुआ तो बना- **भवित् आ। भवित्+आ** में वर्णसम्मेलन होने पर **भविता** सिद्ध हुआ।

४०६- **तासस्त्योर्लोपः**। ताश्च अस्तिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तासस्ती, तयोस्तासस्त्योः। तासस्त्योः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सः स्यार्धधातुके** से **सि** की अनुवृत्ति आती है।

तासि प्रत्यय के और अस्-धातु के सकार का लोप होता है सकारादि प्रत्यय परे हो तो।

लृट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४०८. लृट् शेषे च ३।३।१३॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा। स्य:। इट्। भविष्यति। भविष्यत:। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथ:। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्याव:। भविष्याम:।

....

४०७- **रि च**। रि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तासस्त्योर्लोप:** पूरा सूत्र अनुवर्तन होकर आता है।

तासि प्रत्यय और अस्-धातु के सकार का लोप होता है रकारादि प्रत्यय के परे होने पर।

भवितारौ। भवितार:। भू-धातु से कर्ता अर्थ में **अनद्यतने लुट्** से लुट्-लकार का विधान हुआ, अनुबन्धलोप लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आदेश हुआ। **भू+तस्** में तस् की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई और **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटो:** से तासि-प्रत्यय हुआ। तासि में इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोप:** से लोप हुआ। **भू+तास्+तस्** बना। तास् धातु से विहित है, तिङ् और शित् से भिन्न भी है। अत: इसकी **आर्धधातुकं शेष:** आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **आर्धधातुकस्येड्वलादे:** से तास् को इट् का आगम हुआ तो बना **भू+इ+तास्+तस्**। **भू+इ** में **सार्वधातुकार्धधातुकयो:** से गुण, **भो+इ** बना, **एचोऽयवायाव:** से अव् आदेश होकर **भ्+अव्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **भवि** बना, आगे तास् तस् भी है। **भवितास् तस्** में तस् के स्थान पर **लुट: प्रथमस्य डारौरस:** से **रौ** आदेश हुआ, **भवितास् रौ** बना। **रि च** से तास् के सकार का लोप हुआ तो **भवितारौ** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से **भवितार:** में भी जानना चाहिए। अन्तर केवल इतना ही है कि यह बहुवचन है और झि आता है तथा उसके स्थान पर **लुट: प्रथमस्य डारौरस:** से रस् आदेश होता है। रस् के सकार का रुत्व और विसर्ग होकर **भवितार:** सिद्ध हो जाता है।

भवितासि। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप् आता है, अनुबन्धलोप। तासि, अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् का आगम, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन के बाद **भवितास् सि** में तास् के सकार का **तासस्त्योर्लोप:** से लोप होकर **भवितासि** सिद्ध हो जाता है।

भवितास्थ:। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्व:। भवितास्म:। इन प्रयोगों में क्रमश: थस्, थ, मिप्, वस्, मस् प्रत्यय आयेंगे। तासि, अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् का आगम, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन करने पर ये रूप सिद्ध हो जायेंगे। सकारादि और रकारादि प्रत्ययों के परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हो रहा है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है किन्तु रूपसिद्धि में आप आलस्य नहीं करना। एक-एक करके सिद्ध करते जाना।

लट् लकार भवति आदि का अर्थ- **होता है** आदि।

लिट् लकार बभूव आदि का अर्थ- **कभी हुए थे** जो मैं ने नहीं देखा

लुट् लकार भविता आदि का अर्थ- **कल या आगे भविष्य में होगा** आदि अर्थ समझना चाहिए।

लोट्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४०९. लोट् च ३।३।१६२॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्।

....

४०८- लृट् **शेषे च**। लृट् प्रथमान्तं, शेषे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **भविष्यति** गम्यादयः से **भविष्यति** और **तुमन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्** से **क्रियायां क्रियार्थायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया उपपद हो या न हो तो (सामान्य) भविष्यत् काल में लृट्-लकार होता है।

सामान्य का तात्पर्य यह है कि इससे पहले **अनद्यतने लुट्** से अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट्-लकार का विधान किया गया था किन्तु प्रस्तुत सूत्र अद्यतन-अनद्यतन दोनों में लृट् करता है। इसमें परोक्ष या अपरोक्ष आदि की भी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि भविष्यत्काल हमेशा परोक्ष ही होता है। एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया का प्रयोग यहाँ उतना प्रसिद्ध नहीं है, उत्तरकृदन्तप्रकरणस्थ तुमुन्-प्रत्यय के प्रकरण में स्पष्ट हो जायेगा। वैसे जब एक क्रिया दूसरी क्रिया के लिए की जाती है तो पहली क्रिया को **क्रियार्थक क्रिया** कहा जाता है। यह सूत्र क्रियार्थक-क्रिया होने पर और क्रियार्थक-क्रिया के न होने पर दोनों अवस्थाओं में धातु से लृट् लकार करता है। जैसे- **पठिष्यति इति गच्छति** में पठन क्रिया के लिए गमन क्रिया है। अतः पठन-क्रियार्थक गमन क्रिया के उपपद में रहते पठ् धातु से लृट् होकर **पठिष्यति** (इति गच्छति) रूप सिद्ध होता है। जब क्रियार्थक क्रिया उपपद में न हो तो भी धातु से सामान्य भविष्यत् अर्थ में लृट् होता है। अतः केवल **पठिष्यति, खादिष्यति** आदि भी होंगे।

भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः। भू-धातु से **लृट् शेषे च** से सामान्य भविष्यत् अर्थ में लृट्-लकार, अनुबन्धलोप, तिप् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् की प्राप्ति, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य-प्रत्यय, **भू+स्य+ति** बना। स्य की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा, उसको **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इडागम, टित् होने के कारण उसके आदि में बैठा, **भू+इ+स्य+ति** बना। भू में ऊकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **भो+इ** में **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश, **भ्+अव्+इ+स्य+ति** बना। इ से परे स्य के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ, वर्णसम्मेलन करके **भविष्यति** बना। **भविष्यतः** में भी यही प्रक्रिया अपनानी है। भिन्नता केवल तस् और सकार के रुत्वविसर्ग करने में है। **भविष्यन्ति** में झि के झकार के स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त्-आदेश और **अतो गुणे** से पररूप करना है। **भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ** भी **भविष्यति** की तरह बनेंगे, द्विवचन में सकार को रुत्वविसर्ग होगा। **भविष्यामि** में **अतो दीर्घो यञि** से स्य के अकार को दीर्घ होगा और **भविष्यावः, भविष्यामः** में दीर्घ के बाद सकार को रुत्वविसर्ग करिये।

४०९- **लोट् च**। लोट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** पूरे सूत्र का अनुवर्तन होता है।

लिङ्लोड्विधायकं विधिसूत्रम्

४१०. आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३॥

उत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४११. एरुः ३।४।८६॥

लोट इकारस्य उः। भवतु।

तातङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४१२. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात्सर्वादेशः। भवतात्।

....

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न एवं प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है।

विधि आदि के विशेष अर्थ आगे **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणा-धीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** में ही स्पष्ट करेंगे।

इस सूत्र के विधान में काल अर्थात् समय से कोई मतलब नहीं है।

४१०- **आशिषि लिङ्लोटौ**। लिङ् च लोट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लिङ्लोटौ। आशिषि सप्तम्यन्तं, लिङ्लोटौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं।

विधि आदि और आशीर्वाद अर्थों में लिङ् और लोट् दोनों लकारों का विधान है।

४११- **एरुः**। एः षष्ठ्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार सम्बन्धी इकार के स्थान पर उकार आदेश होता है।

लोट् लकार में जो भी इकार मिलेगा, उसके स्थान पर यह सूत्र उकार-आदेश करता है।

४१२- **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्**। तुश्च हिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तुही, तयोस्तुह्योः। तुह्योः षष्ठ्यन्तं, तातङ् प्रथमान्तम्, आशिषि सप्तम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

केवल आशीर्वाद अर्थ में हुए जो तु और हि, उनके स्थान पर तातङ् आदेश विकल्प से होता है।

तातङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा, त में अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होने से केवल तात् ही बचता है। तात् ङित् है, अतः ङित् को मानकर होने वाले कार्य सम्पूर्ण स्थानी को आदेश, गुण का अभाव आदि होंगे।

विशेषः- आशीर्वाद अर्थ में लोट् तथा लिङ् दोनों लकार होते हैं, परन्तु लोट् में प्रथमपुरुष और मध्यमपुरुष के एकवचन में दो-दो रूप बनते हैं और बाकी रूप **विधि** आदि अर्थ के समान ही होते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि **विधि** आदि अर्थ में तातङ् नहीं होता और **आशीर्वाद** अर्थ में होता है। लिङ् में सारे रूपों में अन्तर आता है अर्थात् आशीर्वाद

अतिदेशसूत्रम्

४१३. लोटो लङ्वत् ३।४।८५॥

लोटस्तामादयः सलोपश्च।

तामाद्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४१४. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ३।४।१०१॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात् स्युः। भवताम्। भवन्तु।

....

अर्थ में होने वाले लिङ् को आशीर्लिङ् कहते है जिसके रूप **भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः** आदि होते हैं और विधि आदि अर्थ में होने वाले लिङ् को विधिलिङ् कहते हैं जिसके रूप **भवेत्, भवेताम्, भवेयुः** आदि बनते हैं। रूपों का अन्तर स्पष्ट है। अतः **आशीर्लिङ्** नाम से एक अलग ही लकार का प्रयोग होता है।

भवतु, भवतात्। भू-धातु से **लोट् च** इस सूत्र के द्वारा **विधि** आदि अर्थ में लोट् लकार का विधान हुआ, तिप् आया, अनुबन्धलोप हुआ। **भू ति** बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा और **कर्तरि शप्** से शप्, अनुबन्धलोप होने के बाद **भू+अ+ति** बना। शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा, भू में ऊकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **भो+अ+ति** बना। **भो+अ** में **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश, **भ्+अव्+अ+ ति** बना, वर्णसम्मेलन- **भवति** बना। अब सूत्र लगा- **एरुः**। लोट् लकार से सम्बन्धित इकार है भवति का इकार, उसके स्थान पर उकार आदेश हुआ तो बना- **भवतु**। इसके बाद सूत्र लगा- **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्।** आशीर्वाद अर्थ में लोट् लकार होता ही है। अतः **भवतु** बन जाने के बाद तु के स्थान पर इस सूत्र से तातङ् आदेश हुआ। अनुबन्धलोप हुआ, तात् बचा। **भवतात्** बना। यह सूत्र विकल्प से तातङ् आदेश करता है एक पक्ष में आदेश नहीं हुआ तो तु ही रह गया- **भवतु**। इस प्रकार से तिप् में **भवतु** और **भवतात्** ये दो रूप बने।

४१३- लोटो लङ्वत्। लोटः षष्ठ्यन्तं, लङ्वत् अव्ययम्, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लोट् लकार लङ् के समान होता है।

लङ् लकार में ङकार की इत्संज्ञा होने से वह ङित् है। इसी प्रकार लोट् लकार स्वतः ङित् नहीं, टित् है। अतः ङित् को मानकर होने वाले कार्य नहीं हो पा रहे थे। इसीलिए पाणिनि जी ने इस सूत्र को बनाया। लोट् लकार को भी लङ् के समान ङित्-लकार माना जाय, जिससे ङित् को मानकर होने वाले कार्य हो जायें। ङित् को मानकर होने वाले कार्यों का विवरण आगे देखेंगे। यह सूत्र जब **ताम्** आदि आदेश करना हो अथवा **नित्यं ङितः** से सलोप करना हो, तब प्रवृत्त होगा, अन्यत्र नहीं।

४१४- तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः। तश्च थश्च थश्च मिप् च तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तस्थस्थमिपः, तेषां तस्थस्थमिपाम्। ताम् च तम् च तश्च अम् च तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तान्तन्तामः। तस्थस्थमिपां षष्ठ्यन्तं, तान्तन्तामः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नित्यं ङितः** से **ङितः** की अनुवृत्ति आती है।

ङित् लकारों के स्थान पर हुए तस्, थस्, थ और मिप् के स्थान पर क्रमशः ताम्, तम्, त और अम् आदेश होते हैं।

हिविधायकं विधिसूत्रम्

४१५. सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७।।

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च।

हेर्लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

४१६. अतो हेः ६।४।१०५।।

अतः परस्य हेर्लुक्। भव, भवतात्। भवतम्। भवत।

....

भवताम्। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, भू तस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होने के बाद **लोटो लङ्वत्** से लोट् लकार सम्बन्धी **तस्** को **ङिद्वद्भाव** का अतिदेश हुआ। **ङित्** मान लिए जाने के कारण **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से तस् के स्थान पर **ताम्** आदेश होकर **भवताम्** सिद्ध हुआ।

भवन्तु। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का बहुवचन झि आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, झ् के स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश, वर्णसम्मेलन, **भू+अ+अन्ति** बना। गुण, अव् आदेश होकर **भ्+अव्+अ+अन्ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **भव अन्ति** बना। **भव+अन्ति** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ, **भवन्ति** बना। **एरुः** से **ति** में इकार के स्थान पर उत्व होकर **भवन्तु** सिद्ध हुआ।

४१५- **सेर्ह्यपिच्च।** सेः षष्ठ्यन्तं, हिः प्रथमान्तम्, अपित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के सि के स्थान पर हि आदेश होता है और वह अपित् होता होता है।

सिप् में पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः वह स्वतः पित् है। अतः यह सूत्र पित् को अपित् होने का अतिदेश कर रहा है। इसका प्रयोजन आगे **एहि, स्तुहि** आदि में **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् करके **क्ङिति च** से गुण का निषेध करना है किन्तु इस धातु में अपित्-करण का कोई प्रयोजन नहीं है। अभी आपने पहले **लोटो लङ्वत्** से अङित् लकार को ङित् लकार का अतिदेश किया था। अब यहाँ पित् प्रत्यय को अपित् कर रहे हैं। इसी को अतिदेश कहते हैं। **जो वैसा नहीं है, उसको वैसा मान लिया जाय, ऐसा विधान ही अतिदेश कहलाता है।**

४१६- **अतो हेः।** अतः पञ्चम्यन्तं, हेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **चिणो लुक्** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ **अङ्गस्य** इस अधिकृत पद का विभक्तिविपरिणाम करके **अङ्गात्** आ जाता है।

ह्रस्व अकार से परे हि का लुक् हो जाय।

यहाँ ह्रस्व अकार से परे इस लिए कहा गया कि कहीं **एहि, स्तुहि** आदि में हि का लुक् न हो जाय।

भव, भवतात्। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष का एकवचन सिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन आदि होकर के **भवसि** बना। **सेर्ह्यपिच्च** से सि के स्थान पर हि आदेश हुआ,

नि-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

४१७. मेर्निः ३।४।८९॥

लोटो मेर्निः स्यात्।

आडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४१८. आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२॥

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च। हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात्।

....

भवहि बना, हि का **अतो हेः** से लुक् प्राप्त था, उसे बाधकर के **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तातङ् आदेश हुआ, तातङ् में अनुबन्धलोप होकर तात् बचा है, **भवतात्** बन गया। तातङ् आदेश विकल्प से हुआ है, न होने के पक्ष में **अतो हेः** से हि का लुक् होकर **भव** बन जायेगा। इस तरह से सिप् में **भव, भवतात्** दो रूप बनेंगे।

भवतम्। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, मध्यमपुरुष का द्विवचन थस्, **भू थस्** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश करके **भवथस्** बना। **लोटो लङ्वत्** से लोट् लकार सम्बन्धी **थस्** को ङिद्वद्भाव का अतिदेश हुआ, ङित् मान लिए जाने के कारण **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश होकर **भवतम्** सिद्ध हुआ।

भवत। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, मध्यमपुरुष का बहुवचन थ आया, **भू थ** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश करके **भवथ** बना। **लोटो लङ्वत्** से लोट् लकार सम्बन्धी **थ** को ङिद्वद्भाव का अतिदेश हुआ और ङित् मान लिए जाने के कारण **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थ** के स्थान पर **त** आदेश होकर **भवत** सिद्ध हुआ।

४१७- **मेर्निः**। मेः षष्ठ्यन्तं, निः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के मि के स्थान पर नि आदेश होता है।

४१८- **आडुत्तमस्य पिच्च**। आड् प्रथमान्तम्, उत्तमस्य षष्ठ्यन्तं, पित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के उत्तमपुरुष को आट् का आगम होता है और वह आट् सहित उत्तमपुरुष पित् के समान होता है।

उत्तमपुरुष में केवल मिप् तो पित् है किन्तु वस्, मस् पित् नहीं हैं। इनको भी पित् के समान हो जाने का अतिदेश यह सूत्र कर रहा है। आट् में टकार की इत्संज्ञा होगी और टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियमानुसार प्रत्यय के आदि में होगा।

यहाँ भ्वादिगण में यदि आट् का आगम न भी होता तो भी **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **भवानि, भवाव, भवाम** आदि रूप सिद्ध हो जाते, कोई दोष न आता किन्तु अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि में इस सूत्र की नितान्त आवश्यकता पड़ेगी, जिससे **अदानि, अदाव, अदाम, जुहवानि** आदि रूप सिद्ध हो सकेंगे। इसलिए न्यायवशात् यहाँ पर भी इस सूत्र की प्रवृत्ति दिखाई गई है।

हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात्। मि और नि के इकार को **एरुः** से उत्व

उपसर्गविषयकं विधिसूत्रम्

४१९. ते प्राग्धातोः १।४।८०॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञा धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४२०. आनि लोट् ८।४।१६॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि।

वार्तिकम्- **दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः।** दुःस्थितिः। दुर्भवानि।

वार्तिकम्- **अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्।** अन्तर्भवाणि।

....

नहीं होता क्योंकि यदि उकार आदेश ही करना होता तो नि के स्थान पर नु का उच्चारण और हि के स्थान पर हु का उच्चारण करते।

भवानि। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर उत्तमपुरुष का एकवचन मिप् आया। अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **मेर्निः** से मि के स्थान पर **नि** आदेश और **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम, गुण, अवादेश करने पर **भव+आनि** बना और **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **भवानि** सिद्ध हुआ।

४१९- **ते प्राग्धातोः।** ते प्रथमान्तं, प्राक् अव्ययपदं, धातोः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

उन गतिसंज्ञकों और उपसर्गसंज्ञकों का धातु से पहले ही प्रयोग होता है।

अष्टाध्यायी में **उपसर्गाः क्रियायोगे, गतिश्च** आदि सूत्रों से जिनकी गतिसंज्ञा हुई है, उनको इस सूत्र में **ते**(वे) से निर्देश किया गया है। उनका प्रयोग कहाँ हो? धातु के पहले हो या धातु के बाद हो? अव्यवधान में ही हो या व्यवधान होने पर भी हो? इस पर यह सूत्र निर्णय देता है कि धातु से अव्यवहित पूर्व में ही हो। जैसे- **प्र+हरति=प्रहरति, आ+हरति=आहरति, अनु+भवति= अनुभवति** इत्यादि। वेद में **छन्दसि परेऽपि** एवं **व्यवहिताश्च** इत्यादि सूत्रों के द्वारा धातु से पर में और व्यवधान होने पर भी ये गति और उपसर्ग लग जाते हैं।

४२०- **आनि लोट्।** आनि लुप्तषष्ठीकं पदं, लोट् इत्यपि लुप्तषष्ठीकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** की, **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इस सम्पूर्ण सूत्र की **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **रषाभ्यां, नः** और **णः** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे लोट् लकार के आनि के नकार को णकार आदेश होता है।

णत्वविधायक सूत्र अष्टाध्यायी के अष्टमाध्याय के चतुर्थपाद में हैं। **रषाभ्यां नो णः समानपदे, अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इन सूत्रों से णत्व का प्रकरण प्रारम्भ होता है। नकार को णकार होने में रेफ और षकार को निमित्त माना गया है। इनसे परे नकार को णकार होता है। **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** इस वार्तिक से ऋकार को भी णत्व के लिए निमित्त माना गया है। इस तरह णत्व होने के लिए पूर्व में रेफ या षकार अथवा ऋकार होना चाहिए। जिस णत्वविधायक सूत्र में **'उपसर्गस्थ निमित्त'** ऐसा पढ़ा गया हो, उससे यही समझना चाहिए कि नकार से पहले विद्यमान रेफ, षकार और ऋकार। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** के अनुसार यदि निमित्त(रेफ, षकार और ऋकार) से स्थानी(नकार) के बीच किसी का

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२१. नित्यं ङितः ३।४।९९॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। **अलोऽन्त्यस्येति सलोपः।** भवाव। भवाम।

....

व्यवधान हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् का ही हो सकता है, अन्य का नहीं। इनके व्यवधान न होने पर तो णत्व होता ही है। **आनि लोट्** यह सूत्र लोट् लकार के मिप् में नि आदेश और आट् आगम होकर **आनि** बनने के बाद ही लगता है।

प्रभवाणि। प्र+भू से पहले आप **भवानि** बना लें। **प्र+भवानि** बन गया है। यहाँ उपसर्ग है-प्र, णत्व का निमित्त है प्र का रेफ, उससे परे नकार है **भवानि** में **आनि** का **नकार**। रेफ और नकार के बीच अ+भ+अ+व्+आ=**अभवा** का व्यवधान है। ये सभी वर्ण अट् और पवर्ग के बीच में आते हैं। अतः इनके व्यवधान में णत्व के लिए कोई बाधा नहीं है। फलतः नकार को णत्व हो गया- **प्रभवाणि।**

दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **षत्व और णत्व विधि करनी हो तो दुर् का उपसर्गत्व निषेध होता है, ऐसा कहना चाहिए।** यह उपसर्गत्व का निषेधक वार्तिक है। धातु के योग में **दुर्** की **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **उपसर्गसंज्ञा** होती है किन्तु जहाँ षत्व या णत्व करना है वहाँ पर इसे उपसर्ग न माना जाय, यह इस वार्तिक का तात्पर्य है। उपसर्गत्व के अभाव में उपसर्ग को निमित्त मानकर के होने वाले कार्य नहीं हो सकेंगे। जैसे- **दुर्+स्थितिः-दुःस्थितिः** में **उपसर्गात् सुनोति-सुवति०** से होने वाला षत्व बाधित हुआ क्योंकि यह सूत्र उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे सकार को षत्व करता है। इसी तरह **दुर्+भवानि** में **आनि लोट्** से णत्व बाधित हुआ। क्यों कि यह सूत्र उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे नकार को णकार करता है।

अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्। यह वार्तिक है। **अङ्-प्रत्यय के विधान में, किप्रत्यय के विधान में और णत्व के विधान में अन्तर्-शब्द को उपसर्ग कहना चाहिए।** अप्राप्त उपसर्गत्व में उपसर्गत्व का विधान करता है। जैसे- **अन्तर्**-शब्द की उपसर्गसंज्ञा कहीं किसी सूत्र से प्राप्त नहीं है किन्तु उपर्युक्त तीन विधियाँ करनी हों तो उसको उपसर्ग माना जाय। उपसर्ग मानने का फल- **आनि लोट्** से नकार को णत्व करना है। जैसे- **अन्तर्+भवानि** में अन्तर् शब्द के उपसर्गत्व न होने के कारण भवानि के नकार को णत्व प्राप्त नहीं था तो इस वार्तिक से उपसर्ग मान लिये जाने के कारण **आनि लोट्** से णत्व होकर **अन्तर्भवाणि** बन गया।

४२१- नित्यं ङितः। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणं, ङितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स उत्तमस्य** इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **सः** यह षष्ठ्यन्त पद **उत्तमस्य** का विशेषण है। अतः **येन विधिस्तदन्तस्य** से तदन्तविधि होकर **सकारान्त** अर्थ बनता है।

ङित् लकार के सकारान्त उत्तमपुरुष का लोप होता है।

वस् और मस् पूरे का लोप प्राप्त था, **अलोऽन्त्यस्य** के नियम से अन्त्य अल् सकार का ही लोप होता है।

लङ्-लकार-विधायकं विधिसूत्रम्

४२२. अनद्यतने लङ् ३।२।१११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४२३. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१॥

एष्वङ्गस्याट्।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२४. इतश्च ३।४।१००॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः।

अभवत्। अभवताम्। अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवत।

अभवम्। अभवाव। अभवाम।

भवाव। भवाम। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर उत्तमपुरुष का द्विवचन वस् आया, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम हुआ, **भू आवस्** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश होकर **भव आवस्** बना। **भव+आवस्** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हुआ, **भवावस्** बना। **सकार** का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ, **भवाव** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहुवचन में **भवाम** बनाना चाहिए।

४२२- **अनद्यतने लङ्।** अनद्यतने सप्तम्यन्तं, लङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अनद्यतन भूतकाल में लङ् लकार होता है।

पहले भी बताया जा चुका है कि जो आज का विषय है, उसे अद्यतन और जो आज का विषय नहीं है, उसे अनद्यतन कहा जाता है। यहाँ पर भूतकाल ऐसा है जो आज का न हो अर्थात् कल, परसों और उसके पहले का हो। ऐसा होने पर लङ्लकार का प्रयोग करना चाहिए। जैसे "आज सुबह मैंने जलपान किया" इस वाक्य में आज का विषय बताया गया है, अतः यहाँ पर लङ् लकार का प्रयोग नहीं होगा।

४२३- **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः।** लुङ् च लङ् च लृङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो लुङ्लङ्लृङः, तेषु लुङ्लङ्लृङ्क्षु। लुङ्लङ्लृङ्क्षु सप्तम्यन्तम्, अट् प्रथमान्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यहाँ पर **अङ्गस्य** का अधिकार है।

लुङ्, लङ्, लृङ् के परे रहने पर धातु-रूप अङ्ग को अट् आगम का होता है।

अट् में टकार की इत्संज्ञा होती है, टित् होने के कारण धातु के आदि में बैठता है। यह सूत्र स्वर का भी विधान करता है- जो अट् हो वह उदात्त स्वर वाला हो। किन्तु लघुसिद्धान्तकौमुदी में स्वर का विधान दिखाया नहीं गया है।

४२४- **इतश्च।** इतः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नित्यं ङितः** से ङितः तथा **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** से **लोपः परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है।

ङित् लकार के स्थान पर जो परस्मैपद ह्रस्व इकारान्त, उस के अन्त्य(इकार) का लोप होता है।

अभवत्। भू धातु से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् का आगम, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आदेश, अनुबन्धलोप होकर अभू ति बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, अभू अ ति में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू का गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभवति** बना। **ति** में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ- **अभवत्** बना।

अभवताम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट् आगम, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+तस्** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **तस्** के स्थान पर **ताम्** आदेश होकर **अभवताम्** सिद्ध हुआ।

अभवन्। भू से लङ्, अट् आगम, झि, अन्त् आदेश, अभू अन्ति, शप्, अभू अ अन्ति, गुण, अवादेश, अभव अन्ति, **अतो गुणे** से पररूप, **अभवन्ति**, ति के इकार का **इतश्च** से लोप और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अभवन्** सिद्ध हुआ।

अभवः। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, अट् आगम, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष का एकवचन **सिप्** आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+सि** बना। इकार का **इतश्च** से लोप होकर **अभवस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **अभवः।**

अभवतम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट्, मध्यमपुरुष का द्विवचन थस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+थस्** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश होकर **अभवतम्।**

अभवत। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट्, मध्यमपुरुष का बहुवचन थ, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+थ** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थ** के स्थान पर **त** आदेश होकर **अभवत।**

अभवम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट् आगम, उत्तमपुरुष का एकवचन मिप्, अनुबन्धलोप, अट् का आगम, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से मि के स्थान पर अम् आदेश, **अभव अम्** बना। **अतो गुणे** से पररूप होकर **अभवम्** सिद्ध हुआ।

अभवाव। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् आगम, अनुबन्धलोप, उत्तमपुरुष का द्विवचन वस् आदेश होकर **अभू वस्** बना। सि की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अभू अ वस्** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **भू** को गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभव वस्** बना। **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **अभवावस्** बना। सकार का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ- **अभवाव।**

अभवाम। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् आगम, अनुबन्धलोप, उत्तमपुरुष का बहुवचन मस् आदेश होकर **अभू मस्** बना। सि की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अभू अ मस्** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **भू** को गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभव मस्** बना। **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **अभवामस्** बना। सकार का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ- **अभवाम।**

विधिलिङ्लकारविधायकं सूत्रम्

४२५. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१॥

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ्।

यासुडागमविधायकं विधिसूत्रं, ङिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रञ्च

४२६. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च।

....

४२५- **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्।** विधिश्च निणन्त्रणञ्च आमन्त्रणञ्च अधीष्टञ्च, सम्प्रश्नश्च, प्रार्थनञ्च विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनानि, तेषु विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु। विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु सप्तम्यन्तं, लिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है।

यह सूत्र काल के विषय को लेकर लकार का विधान नहीं कर रहा है।

विधि- अपने से छोटे अर्थात् पुत्र, भाई, सेवक आदि को आज्ञा देना **विधि** कहाता है। जैसे- **तुम पुस्तक दो, बेटे! घर जाओ** आदि।

निमन्त्रण- अवश्य-कर्तव्य में प्रेरणा देने को निमन्त्रण कहते हैं। जैसे- श्राद्ध आदि कार्य में दौहित्र अर्थात् अपनी लड़की के लड़के का भी भोजन अनिवार्य होता है तो वहाँ यह अनिवार्यरूप से भोजनार्थ आना ही है इस प्रकार से प्रेरणा देना ही निमन्त्रण है।

आमन्त्रण- ऐसी प्रेरणा का नाम आमन्त्रण है कि जिसमें प्रेरक तो प्रेरणा देगा किन्तु जिसे प्रेरणा दी जाती है वह उस कार्य को करे या नहीं अर्थात् कामचारिता, अपनी इच्छा पर निर्भर होती है। जैसे- **आप सभी सत्संग में आमन्त्रित हैं** इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि सत्संग में जाने की प्रेरणा मिल रही है किन्तु हमें अपनी व्यवस्था के अनुसार जाना है। यदि अवकाश है तो जा सकते हैं, नहीं तो न जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है।

अधीष्ट- किसी बड़े गुरु आदि को सत्कारपूर्वक किसी कार्य को करने की प्रेरणा देना। जैसे किसी आचार्य से कहा जाय कि **आप मेरे पुत्र को पढ़ायें।**

सम्प्रश्न- किसी बड़े के समीप एक निश्चयार्थ प्रश्न करना सम्प्रश्न कहलाता है। जैसे- **गुरु जी! या पिता जी! मैं वेद पढ़ूँ या व्याकरण?**

प्रार्थना- मांगने का नाम प्रार्थन (प्रार्थना) है। जैसे **मैं पानी पीना चाहता हूँ।**

आशीर्वाद- वक्ता का किसी दूसरे के लिए अप्राप्त वस्तु की कामना करना आशीर्वाद कहाता है। जैसे- किसी को कहा जाय कि **आप दीर्घजीवी हों, आपको सम्पदा मिले** आदि।

४२६- **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च।** यासुट् प्रथमान्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, ङित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के परस्मैपदी प्रत्ययों को यासुट् का आगम होता है और वह ङित् जैसा होता है।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२७. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९॥

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते।

इयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४२८. अतो येयः ७।२।८०॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय्। गुणः।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२९. लोपो व्योर्वलि ६।१।६६॥७

भवेत्। भवेताम्।

....

यह सूत्र परस्मैपद में लगता है और **लिङः सीयुट्** आत्मनेपद में लगता है। परस्मैपद में यासुट् का आगम और आत्मनेपद में सीयुट् का आगम होता है। यासुट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है तो केवल यास् ही शेष रह जाता है। टित् होने के कारण जिसको भी विधान किया जाता है, उसके आदि में बैठता है। यह स्वतः ङित् नहीं है, अतः ङित्वप्रयुक्त कार्य की सिद्धि के लिए पाणिनि जी ने इसी सूत्र से यासुट् को ङिद्वद्भाव का अतिदेश भी कर दिया है। अतः यह सूत्र विधिसूत्र भी है और अतिदेशसूत्र भी है।

४२७- लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य। अन्ते भवोऽन्त्यः, न अन्त्यः अनन्त्यः, तस्य अनन्त्यस्य। लिङः षष्ठ्यन्तं, स लुप्तषष्ठीकं पदं, लोपः प्रथमान्तम्, अनन्त्यस्य षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **रुदादिभ्यः सार्वधातुके** से विभक्तिविपरिणाम करके **सार्वधातुकस्य** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य सकार का लोप होता है।

अन्त्य में न हो, ऐसे सकार का ही लोप प्राप्त होता है। भव+यास्+त् में सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर अग्रिम सूत्र लगता है। यह सूत्र सार्वधातुक के सकार का लोप करता है आर्धधातुक सकार का नहीं। **यास्** की स्वतः सार्वधातुकसंज्ञा या आर्धधातुकसंज्ञा तो नहीं होती किन्तु आगम होने के कारण यदि सार्वधातुक को आगम हुआ है तो सार्वधातुक के ग्रहण से सार्वधातुक और आर्धधातुक को आगम हुआ है तो आर्धधातुक के ग्रहण से आर्धधातुक होता है। एक परिभाषा है- **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते।** आगम-जिसको कहे जाते हैं उसी के अङ्ग होते हैं और उसी के ग्रहण से उनका ग्रहण होता है। जिसको आगम हुआ है, वह जिस गुण वाला है, आगम भी उसी गुण वाला हो जाता है। जैसे आगमी यदि णित् है तो आगम भी णित् और आगमी ङित् है तो आगम भी ङित् ही होगा। अतः यह यासुट् सार्वधातुक लिङ् अर्थात् विधिलिङ् में यह सार्वधातुक माना जायेगा और आशीर्लिङ् में लिङ् आर्धधातुक होने के कारण यह आर्धधातुक माना जायेगा।

४२८- अतो येयः। अतः पञ्चम्यन्तं, या लुप्तषष्ठीकं पदम्, इयः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रुदादिभ्यः सार्वधातुके** से विभक्तिविपरिणाम करके **सार्वधातुकस्य** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है, उसका पञ्चम्यन्त में विपरिणाम होता है।

जुसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४३०. झेर्जुस् ३।४।१०८।।

लिङो झेर्जुस् स्यात्।

भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम।

....

अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक के अवयव यास् के स्थान पर इय् आदेश होता है।

४२९- **लोपो व्योर्वलि।** व् च य् च व्यौ, तयोर्व्योः। लोपः प्रथमान्तं, व्योः षष्ठ्यन्तं, वलि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

वल् प्रत्याहार के परे रहने पर पूर्व में विद्यमान वकार और यकार का लोप होता है।

भवेत्। भू धातु से विधि आदि अर्थ में **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ् लकार का विधान हुआ, उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आया, अनुबन्धलोप होने के बाद उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप होकर **भू अ ति** बना। गुण, अवादेश होकर **भव+ति** बना। लिङ् लकार सम्बन्धी ति को **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण ति के आदि में बैठा **भव यास् ति** बना। **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से यास् के सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **अतो येयः** से यास् के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **भव इय् ति** बना। **भव+ इय्** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **भवेय् ति** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ- **भवेति** बना। ति के इकार का **इतश्च** से लोप हुआ तो बना- **भवेत्।**

भवेताम्। भू धातु से **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ् लकार का विधान हुआ, उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आया, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, धातु को गुण, अवादेश करके **भव+तस्** बना। **तस्** के स्थान पर **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **ताम्** आदेश हुआ तो **भव+ताम्** बना। **तस्** को **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण **ताम्** के आदि में बैठा **भव+यास्+ताम्** बना। **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से यास् के सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **अतो येयः** से **यास्** के स्थान पर **इय्** आदेश हुआ- **भव+इय्+ताम्** बना। **भव+इय्** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **भवेय् ताम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप होकर **भवेताम्** बना।

४३०- **झेर्जुस्।** झेः षष्ठ्यन्तं, जुस् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के स्थान पर हुए झि पूरे के स्थान पर जुस् आदेश होता है।

जुस् में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल उस् ही बचता है।

भवेयुः। भू धातु से लिङ्, उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का बहुवचन झि, उसके स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश प्राप्त था, उसको बाधकर **झेर्जुस्** से जुस् आदेश, जुस् में जकार की इत्संज्ञा और लोप, **भू उस्,** सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश, यासुट्

आर्धधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४३१. लिङाशिषि ३।४।११६॥

आशिषि लिङस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः स्यात्।

....

आगम, अनुबन्धलोप, **भव+यास्+उस्** हुआ। **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से यास् के सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर यास् के स्थान पर **अतो येयः** से **इय्** आदेश होकर **भव+इय्+उस्** बना है। वल् प्रत्याहार वाले वर्ण के परे न मिलने पर यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप नहीं हुआ। **भव+इय्** में **आद्गुणः** से गुण हुआ तो **भवेय् उस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **भवेयुस्** बना, सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **भवेयुः**।

भवेः। मध्यमपुरुष का एकवचन सिप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश, यासुट्, अनुबन्धलोप, यकार का लोप, **भव+इ** में गुण, **भवेसि** बना, इकार का **इतश्च** से लोप और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **भवेः** सिद्ध होता है।

भवेतम्। भू लिङ्, मध्यमपुरुष द्विवचन थस्, भू थस्, भू शप् थस्, भू अ थस्, भो अ थस्, भव+थस्, भव+तम्, भव यास् तम्, भव इय् तम्, भवेय् तम्, **भवेतम्**।

भवेत। भू लिङ्, मध्यमपुरुष बहुवचन थ, भू थ, भू शप् थ, भू अ थ, भो अ थ, भव थ, भव त, भव यास् त, भव इय् त, भवेय् त, **भवेत**।

भवेयम्। भू लिङ्, उत्तमपुरुष का एकवचन मिप्, भू मिप्, भू अ मि, भो अ मि, भव मि, भव अम्, भव यास् अम्, भव इय् अम्। भवेय् अम्, **भवेयम्**।

भवेव। **भवेम**। उत्तमपुरुष में द्विवचन और बहुवचन में लकार के स्थान में वस् और मस् आदेश, शप्, गुण, यास्, इय्, गुण, यकार का लोप, सकार का **नित्यं ङितः** से लोप करके **भवेव, भवेम** ये बन जाते हैं।

पहले ही बताया जा चुका है **आशीर्वाद** अर्थ में दो लकार हैं- लोट् और लिङ्। लोट् लकार के विषय में तो **लोट् च** सूत्र में आप पढ़ चुके हैं। अब लिङ् लकार के विषय में बता रहे हैं। वैसे तो लिङ् लकार के विषय में भी आप पढ़ चुके है किन्तु लिङ् लकार विधिलिङ् और आशीर्लिङ् दो भागों में बँटा हुआ है क्यों कि आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उसके लिए भिन्न सूत्र बने हुए हैं और विधि आदि अर्थ में हुए लिङ् लकार के लिए भिन्न सूत्र बने हुए हैं। इसी प्रकार आशीर्वाद अर्थ में हुए लिङ् की आर्धधातुकसंज्ञा होती है और विधि आदि अर्थ में हुए लिङ् की सार्वधातुकसंज्ञा होती है। ऐसे कई अनेंकों कारण हैं कि लिङ् लकार दो भागों में बँट जाता है।

दस लकारों में से लेट् लकार का प्रयोग केवल वेद में ही किये जाने के कारण लोक में केवल नौ लकार ही रह गये थे किन्तु लिङ् लकार को आशीर्लिङ् और विधिलिङ् करके दो भाग बना दिये जाने से पुनः दस ही लकार हो गये हैं।

४३१- लिङाशिषि। लिङ् लुप्तषष्ठीकम्, आशिषि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से तिङ् और **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकम्** की अनुवृत्ति आती है।

आशीर्वाद अर्थ में हुए लिङ् के स्थान पर जो तिङ् प्रत्यय, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है।

फलतः आशीर्लिङ् आर्धधातुकसंज्ञक हो जाता है।

कित्वविधायकमतिदेशसूत्रम्

४३२. किदाशिषि ३।४।१०४।।

आशिषि लिङो यासुट् कित्। **स्कोः संयोगाद्योरिति** सलोपः।

गुणवृद्धिनिषेधकं विधिसूत्रम्

४३३. क्ङिति च १।१।५।।

गित्किङ्न्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः।

भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म।

....

४३२- **किदाशिषि।** कित् प्रथमान्तम्, आशिषि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की और **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से **यासुट्** की अनुवृत्ति आती है।

आशीर्वाद अर्थ में विहित लिङ् लकार के स्थान पर हुए तिङ् को किया गया यासुट् आगम किद्वद्भाव को प्राप्त होता है।

यासुट् तो **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से होगा किन्तु वहाँ किसी ककार की इत्संज्ञा नहीं है, अतः कित् नहीं हैं। अविद्यमान कित् को कित् अर्थात् किद्वद्भाव का अतिदेश इसके द्वारा हो रहा है। कित् करने के अनेक प्रयोजन हैं, जो आगे जाकर स्पष्ट होंगे।

४३३- **क्ङिति च।** ग् च क्, ङ् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः क्क्ङः, ते इतो यस्य स क्ङित्, तस्मिन्। क्ङिति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको गुणवृद्धी** इस सम्पूर्ण सूत्र और **न धातुलोप आर्धधातुके** से **न** का अनुवर्तन किया जाता है।

गित्, कित् और ङित् को निमित्त मानकर इक् के स्थान पर होने वाले गुण और वृद्धि नहीं होते।

विधिसूत्र और निषेधसूत्र एकस्थानीय होते हैं अर्थात् एक ही स्थान पर प्रवृत्त होते हैं।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्।

इस सूत्र लक्षण में निषेधसूत्र को विधिसूत्र की कोटि में माना गया है। इस लिए यह सूत्र भी विधिसूत्र ही है। यह व्यापक सूत्र है। इसकी बहुत आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए इस सूत्र पर ज्यादा ध्यान देना होगा।

भूयात्। भू धातु से **आशिषि लिङ्लोटौ** के द्वारा आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार और उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन ति आया, **भू ति** बना। ति की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा प्राप्त, उसे बाधकर **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई। सार्वधातुक न होने से **कर्तरि शप्** से शप् नहीं हुआ। **भू+ति** में **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से ति को यासुट् का आगम हुआ, अनुबन्धलोप करने पर यास् बचा। टित् होने के कारण ति के आदि में आकर बैठा- **भू यास् ति** बना। यास् को **किदाशिषि** से कित्त्व हुआ। अर्थात् उसको कित् जैसा मान लिया गया। **भू+यास् ति** में ति का जो आर्धधातुकत्व है, वह उसके आगम में भी आ जाता है। अतः यास् इस आर्धधातुक को मानकर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः**

लुङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४३४. लुङ् ३।२।११०॥

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

....

से भू में ऊकार को गुण प्राप्त था, उसे निषेध करने के लिए सूत्र आया- **क्ङिति च।** जब यासुट् को किद्वद्भाव किया गया तो यास् कित् हुआ। इस कित् को मानकर प्राप्त भू के ऊकार के स्थान पर जो गुण है, उसका निषेध हुआ, अर्थात् गुण नहीं हुआ। ति में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ तो बना **भू यास् त्।** स् और त् के बीच में कोई अच् नहीं है, अतः सृत् की **हलोऽनन्तराः संयोगः** से संयोग-संज्ञा हुई और संयोग के आदि में स्थित वर्ण **सकार** का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप हुआ तो बना- **भूयात्।**

भूयास्ताम्। भू धातु से लिङ्, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ **भू+यास्+तस्** बना, यास् को कित् करके गुण का अभाव, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से तस् के स्थान पर ताम् आदेश, **भूयास्ताम्** बना। यहाँ पर स् और त् का संयोग न तो पदान्त में है और न ही इससे झल् परे है। इसलिए **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से सकार का लोप नहीं हुआ और **भूयास्ताम्** सिद्ध हुआ।

भूयासुः। भू लिङ्, भू झि, **झेर्जुस्** से जुस्, अनुबन्धलोप, **भू+उस्, यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ, **भू+यास्+उस्** बना, यास् को किद्वद्भाव करके गुण का निषेध, वर्णसम्मेलन करके **भूयासुस्** बना। सकार को रुत्व और विसर्ग करके **भूयासुः** यह सिद्ध हुआ।

भूयाः। भू से मध्यमपुरुष का एकवचन सिप्, अनुबन्धलोप, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ **भू+यास्+सि** बना, यास् को कित् करके गुण का अभाव, **सि** के सकार का **इतश्च** से लोप करके **भू+यास्+स्** बना। पूर्व सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** लोप और दूसरे सकार को रुत्वविसर्ग करके **भूयाः** सिद्ध हो जाता है।

भूयास्तम्। भूयास्त। मध्यमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन **थस्** और **थ** आये। **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ **भू+यास्+थस्** और **भू+यास्+थ** बने, यास् को कित् करके गुण का अभाव, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः से थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश, और **थ** के स्थान पर **त** आदेश, वर्णसम्मेलन करके **भूयास्तम्** और **भूयास्त** बनाइये।

भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म। उत्तमपुरुष में क्रमशः मिप्, वस्, मस् प्रत्यय। **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ- **भू+यास्+मि, भू+यास्+व्स्** और **भू+यास्+मस्** बने। यास् को कित् करके गुण का अभाव, **भूयास्+मि** में **अम्** आदेश और **वस् मस्** के सकार का **नित्यं ङितः** से लोप एवं शेष प्रक्रिया पूर्ववत् करके उक्त रूप सिद्ध होते हैं।

४३४- लुङ्। लुङ् प्रथमान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार चला आ रहा है।

(सामान्य) भूतकाल में लुङ् लकार होता है।

जैसे- लिट् लकार में विशेष भूतकाल ग्राह्य था कि परोक्ष और अनद्यतन के साथ भूतकाल होना चाहिए। उसी प्रकार लङ् लकार के विषय में अनद्यतन होना चाहिए था किन्तु लुङ् लकार के विषय में सामान्य भूतकाल ही है।

लुङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४३५. माङि लुङ् ३।३।१७५॥

सर्वलकारापवादः।

लङ्लुङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४३६. स्मोत्तरे लङ् ३।३।१७६॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ्।

च्लिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

४३७. च्लि लुङि ३।१।४३॥

शबाद्यपवादः।

सिचादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४३८. च्लेः सिच् ३।१।४४॥

इचावितौ।

....

४३५- **माङि लुङ्**। माङि सप्तम्यन्तं, लुङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** अधिकार पहले से ही आ रहा है।

माङ्-शब्द के उपपद रहते धातु से लुङ् लकार होता है।

यह सभी लकारों का अपवाद है।

४३६- **स्मोत्तरे लङ् च**। स्म उत्तरो यस्मात्, स्मोत्तरम्, तस्मिन् स्मोत्तरे। **माङि लुङ्** से **माङि** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** अधिकार पहले से ही आ रहा है।

स्म परे हो ऐसे माङ्-शब्द के उपपद होने पर धातु से लङ् और लुङ् लकार होते हैं।

सूत्र में **च** पढ़े जाने के कारण **लुङ् लकार** भी होता है, यह अर्थ होता है।

४३७- **च्लि लुङि**। च्लि प्रथमान्तं, लुङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

लुङ् लकार के परे होने पर धातु से च्लि प्रत्यय होता है।

यह शप् आदि का अपवाद है। चकार की **चुटू** से इत्संज्ञा हो जाती है, **लि** का **इकार** उच्चारणार्थक है। अतः केवल **ल्** बचता है।

४३८- **च्लेः सिच्**। च्लेः षष्ठ्यन्तं, सिच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

च्लि के स्थान पर सिच् आदेश होता है।

सिच् में **चकार** की **हलन्त्यम्** से तथा इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि **च्लि** के स्थान पर **सिच्** होता ही है तो सीधे **सिच्** प्रत्यय ही क्यों न किया जाय? **च्लि लुङि** और **च्लेः सिच्** इन दो सूत्र के बदले केवल **सिच् लुङि** पढ़ने पर भी काम हो जाता है? उत्तर संक्षेप में यह है कि आचार्य **च्लि** के स्थान पर जैसे **सिच्** करते हैं, उसी प्रकार आगे कहीं **चङ्**, कहीं, **अङ्** और कहीं **क्स**

सिचो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

४३९. गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २।४।७७॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात्। गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते।

गुणनिषेधकं विधिसूत्रम्

४४०. भूसुवोस्तिङि ७।३।८८॥

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न।

अभूत्। अभूताम्। अभूवन्। अभूः। अभूतम्। अभूत। अभूवम्। अभूव। अभूम।

....

आदेश का भी विधान करते हैं। वहाँ पर बाध्यबाधकभाव से अनेक भिन्न-भिन्न कार्यों की सिद्धि होती है। अतः **सिच्, चङ, अङ्, क्सः** आदि के एक कोई स्थानी का होना आवश्यक है। एतदर्थ **च्लि** ऐसा सामान्य प्रत्यय करके **सिच्** आदि आदेशों का विधान किया है। इस बात को आप **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में अच्छी तरह समझेंगे।

४३९- गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु। गातिश्च स्थाश्च घुश्च पाश्च भूश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गातिस्थाघुपाभुवः, तेभ्यो गातिस्थाघुपाभूभ्यः, गातिस्थाघुपाभूभ्यः पञ्चम्यन्तं, सिचः षष्ठ्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

इण्धातु के स्थान पर हुए गा-धातु, स्था-धातु, घु-संज्ञक-धातु, पाधातु और भू-धातु से परे सिच् का लुक् होता है।

एक स्वतन्त्र **गा**-धातु भी है, उसे सूत्रस्थ **गा** से न लेने के लिए **इणादेश गा** धातु कहा गया अर्थात् इस सूत्र में **इण्** धातु के स्थान पर होने वाला **गा** धातु ही ग्राह्य है, स्वतन्त्र **गा**-धातु या अन्य धातु के स्थान पर होने वाला ग्राह्य नहीं है। दा-रूप और धा-रूप धातुओं की घुसंज्ञा **दाधाघ्वदाप्** सूत्र से हो होती है, उन घुसंज्ञक धातु का ग्रहण है। इसी प्रकार एक स्वतन्त्र पा धातु भी है, किन्तु इस सूत्र में पिब आदेश होने वाला पा धातु ही ग्राह्य है। इसके लिए महाभाष्य प्रमाण है।

४४०- भूसुवोस्तिङि। भूश्च सूश्च भूसुवौ, तयोर्भूसुवोः। भूसुवोः षष्ठ्यन्तं, तिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **न** और **सार्वधातुके** की तथा **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक तिङ् के परे रहने पर भू और सू धातु के इक् को गुण न हो।

अभूत्। भू धातु से सामान्य भूत अर्थ में **लुङ्** से लुङ् लकार का विधान हुआ, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से भू धातु को अट् का आगम, लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन **तिप्** आदेश, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण भू के आदि में बैठा, **अभू ति** बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा, **कर्तरि शप्** से शप् की प्राप्ति, उसको बाधकर **च्लि लुङि** से च्लि प्रत्यय, च्लि में चकार की **चुटू** से इत्संज्ञा, उसके बाद लोप, उच्चारणार्थक इकार के स्वतः चले जाने से **ल्** के स्थान पर **च्लेः सिच्** से सिच् आदेश, अनुबन्धलोप, **अभू स् ति** बना। (सिच् के सकार की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा होती है। जिसका भू धातु

अडाटोर्निषेधकं विधिसूत्रम्

४४१. न माङ्योगे ६।४।७४॥

अडाटौ न स्तः। मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्।

....

में कोई प्रयोजन नहीं है, अन्यत्र प्रयोजन है) सिच् के सकार का **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से लुक् अर्थात् लोप हो गया, **अभू ति** बना। ति सार्वधातुक के परे रहने पर भू के ऊकार के स्थान पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था उसको **भूसुवोस्तिङि** ने निषेध कर दिया। **अभू ति** में ति के इकार का **इतश्च** से लोप हुआ- **अभूत्** बना।

अभूताम्। प्रथमपुरुष के द्विवचन में भी यही विधि होगी। उसमें **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से तस् के स्थान पर ताम् आदेश करना चाहिए और **ताम्** प्रत्यय में इकार न होने के कारण **इतश्च** की प्रवृत्ति नहीं है। शेष कार्य अभूत् की तरह करके **अभूताम्** सिद्ध करें। भू लुङ्, अभू लुङ्, अभू तस्, अभू ताम्, अभू च्लि ताम्, अभू स् ताम्, अभू ताम्, **अभूताम्।**

अभूवन्। लुङ् लकार में अच् परे हो तो **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से वुक् का आगम होता है। **झि** के स्थान पर अन्त् आदेश होने पर तथा मिप् के स्थान पर अम् आदेश होने पर अच् मिलता है। अतः इन दोनों जगह में इस सूत्र से वुक् का आगम होगा। वुक् में ककार और उकार की इत्संज्ञा होकर केवल व् ही शेष रहता है और वह कित् होने के कारण भू के अन्त में बैठता है। शेष कार्य अभूत् की तरह ही है। अभू झि, अभू अन्ति, अभूव् अन्ति, अभूव् स् अन्ति, अभूव् अन्ति, अभूवन्ति, अभूवन् त्, तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अभूवन्** बना।

अभूः। मध्यमपुरुष के एकवचन में अभूत् की तरह ही **अभूः** बनता है। अन्तर केवल इतना ही है कि सि के इकार का **इतश्च** से लोप होने के बाद सकार को रुत्व और विसर्ग होता है।

अभूतम्। अभूत। मध्यमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में ये दो रूप **अभूताम्** की तरह ही बनते हैं अर्थात् धातु से लकार, अट् आगम और तिङ् आदेश के बाद सार्वधातुकसंज्ञा, च्लि, सिच्, सकार का लोप आदि यथावत् ही होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि **अभूताम्** में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **ताम्** आदेश होता है और यहाँ पर क्रमशः **तम्** और **त** आदेश होते हैं।

अभूवम्। उत्तमपुरुष में मिप् के स्थान पर **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से अम् आदेश करके शेष प्रक्रिया **अभूवन्** की तरह ही होती है।

अभूव। अभूम। उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन **वस्** और **मस्** में सकार का **नित्यं ङितः** से लोप करना न भूलें। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है।

४४१- न माङ्योगे। माङो योगो माङ्योगस्तस्मिन्। न अव्ययपदं, माङ्योगे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से **अट्** और **आडजादीनाम्** से **आट्** की अनुवृत्ति आती है।

माङ् इस अव्यय के योग में अट् और आट् आगम नहीं होते।

मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्। ये तीनों **माङि लुङ्** और **स्मोत्तरे लङ् च** के उदाहरण हैं। **माङ्** में **ङ्कार** की इत्संज्ञा होकर केवल **मा** बचा है। उसके योग

लृङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४४२. लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९॥

हेतु-हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्, इत्यादि ज्ञेयम्।

अत सातत्यगमने॥२॥ अतति।

....

में **लुङ्** और **स्म** उत्तर वाले **माङ्** के योग में **लुङ्** और **लङ्** दोनों लकार हुए हैं। उक्त तीनों स्थलों पर **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से **अट्** आगम की प्राप्ति थी, उसका **न माङ्योगे** से निषेध हुआ है। इस तरह **भूत्** यह लुङ् में और **भवत्** यह लङ् में अट् रहित तिप् के रूप हैं। इसी तरह सभी तिप्, तस् आदि प्रत्ययों के परे समझना चाहिए।

४४२- **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ**। लिङः निमित्तं लिङ्निमित्तम्, तस्मिन् लिङ्निमित्ते, षष्ठीतत्पुरुषः।। क्रियायाः अतिपत्ति क्रियातिपत्तिः, तस्याम् क्रियातिपत्तौ, षष्ठीतत्पुरुषः। लिङ्निमित्ते सप्तम्यन्तं, लृङ् प्रथमान्तं, क्रियातिपत्तौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्** से **भविष्यति** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् के निमित्त जो हेतु-हेतुमद्भाव आदि, उसमें क्रिया का भविष्यत्काल में होना (प्रकट करना) हो तो धातु से लृङ् लकार होता है क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर।

हेतु कारण को कहते हैं। **हेतुरस्यास्तीति हेतुमत्,** कारण जिसका है वह अर्थात् कारण वाले कार्य को **हेतुमत्** कहते हैं। **हेतुहेतुमतोर्भावः=हेतुहेतुमद्भावः**, (षष्ठीतत्पुरुषः)। कार्य-कारण के असाधारण धर्मविशेष को अर्थात् कार्यकारणभाव को ही **हेतुहेतुमद्भाव** कहा जाता है। **हेतुहेतुमद्भावः आदिर्यस्य तद् (निमित्तम्) हेतुहेतुमद्भावादि।** कार्यकारणभाव आदि में जिसके ऐसे निमित्त को हेतुहेतुमद्भावादि कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ हेतुहेतुमद्भावरूप सम्बन्ध रहता है, वहाँ **हेतुहेतुमतोर्लिङ्** इस सूत्र से लिङ् लकार होता है। जैसे- **कृष्णं नमेत् चेत् सुखं यायात्** अर्थात् कृष्ण को नमन करे तो सुख प्राप्त करे। इस वाक्य में नमन-क्रिया सुख-प्राप्ति का हेतु है और सुखप्राप्ति-क्रिया सहेतुक है। अतः इसे हेतुमत् कहा जाता है। इस प्रकार यहाँ दोनों क्रियाओं में **हेतुहेतुमद्भाव** रूप सम्बन्ध है। इस प्रकार का सम्बन्ध जहाँ दो क्रियाओं में रहता है वहाँ पर सामान्यतः **हेतुहेतुमतोर्लिङ्** सूत्र से लिङ् लकार होता है परन्तु जब हेतुहेतुमद्भाव आदि सम्बन्ध होने पर **भविष्यत्काल** और **क्रिया की असिद्धि** प्रतीत होती हो तो हेतु और हेतुमत् दोनों क्रियाओं में **लृङ्** लकार होता है। जैसे **सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत्** यदि अच्छी वृष्टि होगी तो सुकाल होगा। यहाँ सुवृष्टि होना क्रिया हेतु तथा सुभिक्ष होना क्रिया हेतुमत् कार्य है। अतः दोनों में **लृङ्** लकार हुआ।

इस तरह हेतु और हेतुमान् भाव का तात्पर्य कार्यकारणभाव ही समझना चाहिए।

जैसे **ईंटे होंगी तो मकान बन जायेगा। परिश्रम से पढ़ोगे तो परीक्षा में उत्तीर्ण होगे।** इन वाक्यों में यह दीखता है कि यदि कारण होगा तो कार्य भी होगा। हेतु विद्यमान रहेगा तो हेतुमान् अर्थात् उससे होने वाला कार्य भी सिद्ध हो जायेगा आदि। अब इन वाक्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि कार्य अभी नहीं हुआ है अर्थात् क्रिया की सिद्धि नहीं हुई है। इसमें भविष्यत्काल होना चाहिए। जैसे अच्छी वृष्टि अर्थात् वर्षा होगी तो अनाज भी अच्छा होगा। हेतु-हेतुमद्भाव तो भूतकाल और वर्तमान काल में भी होते हैं किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति में हेतु-हेतुमद्भाव के होते हुए भविष्यत्काल का होना आवश्यक है।

अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम। हेतु-हेतुमद्भाव और क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होने पर भविष्यत्काल में **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ** से लृङ् लकार का विधान हुआ, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से अट् का आगम, अनुबन्धलोप होकर लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आया, **भू ति** बना, होकर **अभू ति** बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा होकर **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य हुआ। स्य की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम हुआ, **अभू इ स्य ति** बना। भू को गुण अवादेश होकर **अभवि स्य ति** बना। स्य के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **अभविष्यति** बना, ति में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ तो **अभविष्यत्** सिद्ध हुआ।

लृङ् लकार के सम्बन्ध में मोटामोटी रूप में यह समझें कि यह लकार लगभग लृट् लकार जैसा ही है, उससे विशेषता यह है कि धातु के पहले अट् का आगम होता है और **ति, झि, सि** में **इतश्च** से इकार का लोप होता है तथा **तस्, थस्, थ, मिप्** के स्थान पर **ताम्, तम्, त, अम्** ये आदेश एवं वस्, मस् में **नित्यं ङितः** से सकार का लोप ये कार्य विशेष होते है। इस तरह मोटे तौर पर यह कहें कि भविष्यति अट् का आगम और इकार का लोप करके **अभविष्यत्** बना लें। इसी तरह **अभविष्यताम्, अभविष्यन्, अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत, अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम** भी बना लें।

इस तरह से आपने भू धातु के दसों लकारों के रूप बना लिए। एक लकार में नौ रूप हैं तो दस लकारों के नब्बे रूप हो गये। इस तरह प्रत्येक धातु के ९०-९० रूप बनते हैं। यदि धातु उभयपदी अर्थात् परस्मैपदी और आत्मनेपदी है तो रूप दो गुने हो जायेंगे। इस तरह १८० होंगे। उसमें भी कई धातुओं में अनेक कार्यों में वैकल्पिक रूप बनते है। इस तरह रूपों की संख्या और बढ़ जाती है। फिर आगे णिजन्त में लगभग २००, सन्नन्त में लगभग २००, यङन्त में लगभग २००, यङ्लुङन्त में लगभग २०० करके एक धातु के हजार से भी ऊपर रूप बन जाते हैं।

इसके बाद उपसर्ग भी लगते हैं। २२ उपसर्ग हैं, उनमें अधिकतर धातु के साथ जुड़ते हैं। कहीं एक ही उपसर्ग धातु से जुड़ता है तो कहीं एक से अधिक दो, तीन भी लगते हैं। कहीं वे ही उपसर्ग व्यत्यास अर्थात् आगे, पीछे होकर लगते हैं। इस तरह एक धातु के लाखों भी रूप हो सकते हैं। एक धातु को अच्छी तरह से समझ लिया जाय तो हजारों, लाखों शब्दों को समझा जा सकता है।

इस लिए मैं छात्रों से बारम्बार कहता हूँ कि आप जो पढ़ रहे हैं, उसे अच्छी तरह

से समझ लें। क्योंकि कौमुदी में एक शब्द या धातु के उदाहरण दिये जाते हैं। उसके अनुसार आपको अनेकों रूपों की सिद्धि करनी होती है। आपने प्रक्रिया ठीक तरह से समझ ली है और पढ़े हुए विषय को प्रतिदिन आवृत्ति करके उसे विस्मृत होने से बचाया है तो आपको कहीं भी कठिनाई का आभास नहीं होगा।

अत: एक बार आप पुन: लट् लकार से लृङ् लकार के रूप सिद्ध करें जिससे अभ्यास अच्छा बने, क्योंकि आगे जो धातु बताये जायेंगे, उनमें ज्यादातर भू धातु के समान ही रूप होंगे, कुछ ही प्रक्रिया विशेष होगी। यदि भू धातु पूर्णतया कण्ठस्थ नहीं है तो आगे समझ पाना कठिन हो जायेगा। इस बात का विशेष ध्यान रखें। लकार के अनुसार रूपों का उच्चारण भी आपके मुख से होना चाहिए। इतना कण्ठस्थ हो कि जैसे कोई आपसे पूछे- भू-धातु के लिट् लकार के मध्यमपुरुष के द्विवचन में क्या रूप होता है? तो विना सोचे विचारे **बभूवथुः** का उच्चारण आपके मुख से झटिति, तत्काल होना चाहिए। तभी आप शब्दों का भाषण, बोलचाल आदि में प्रयोग कर पायेंगे। अन्यथा एक एक शब्द के लिए सोचते रहना पड़ेगा। अत: आप जो पढ़ रहे हैं, उसे अच्छी तरह से समझते हुए पढ़ें। जहाँ समझ में न आये, वहाँ अपने गुरु जी या किसी भी विद्वान् से पूछने में संकोच न करें।

अब भू धातु के लट् लकार से लृङ् लकार तक के सारे रूपों को तालिका के माध्यम से भी देखें।

भू-धातु लट् लकार

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	भवति	भवत:	भवन्ति
मध्यमपुरुष	भवसि	भवथ:	भवथ
उत्तमपुरुष	भवामि	भवाव:	भवाम:

भू-धातु लिट् लकार

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	बभूव	बभूवतु:	बभूवु:
मध्यमपुरुष	बभूविथ	बभूवथु:	बभूव
उत्तमपुरुष	बभूव	बभूविव	बभूविम

भू-धातु लुट् लकार

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	भविता	भवितारौ	भवितार:
मध्यमपुरुष	भवितासि	भवितास्थ:	भवितास्थ
उत्तमपुरुष	भवितास्मि	भवितास्व:	भवितास्म

भू-धातु लृट् लकार

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	भविष्यति	भविष्यत:	भविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भविष्यसि	भविष्यथ:	भविष्यथ
उत्तमपुरुष	भविष्यामि	भविष्याव:	भविष्याम:

भू-धातु लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवतु,भवतात्	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव, भवतात्	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम:

भू-धातु लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुष	अभव:	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

भू-धातु विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेयु:
मध्यमपुरुष	भवे:	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुष	भवेयम्	भवेव	भवेम

भू-धातु आशीर्लिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासु:
मध्यमपुरुष	भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
उत्तमपुरुष	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

भू-धातु लुङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
मध्यमपुरुष	अभू:	अभूतम्	अभूत
उत्तमपुरुष	अभूवम्	अभूव	अभूम

भू-धातु लृङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
मध्यमपुरुष	अभविष्य:	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उत्तमपुरुष	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

उपसर्गों के सम्बन्ध में

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते। प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।।

उपसर्ग से धातु का अर्थ बदल जाता है। जैसे हृ-धातु से हार बनता है, इसका अर्थ है हरण करना, ले जाना। इसमें प्र उपसर्ग को जोड़ने पर प्रहार करना अर्थात् किसी के प्रति आक्रमण करना अर्थ हो जाता है। इसी प्रकार आ उपसर्ग के लगने से **आहार**=खाना, सं-उपसर्ग के लगने से **संहार** अर्थात् विनाश करना, वि-उपसर्ग के लगने से विहार अर्थात् घूमना और परि-उपसर्ग के लगने से परिहार अर्थात् हटाना या रोकना, ऐसा अर्थ बन जाता

है। तिङन्त में हृ-धातु का **हरति** ऐसा रूप बनता है। इसमें उपसर्गों को धातु से पहले जोड़ने पर **प्रहरति, आहरति, संहरति, विहरति और परिहरति** रूप बनते हैं। इनका अर्थ पूर्वोक्त ही है।

भू धातु से **भवति** आदि रूप बनते हैं। इसके पहले उपसर्गों को जोड़ने से **प्र+भवति=प्रभवति, सम्भवति, परिभवति, पराभवति, अनुभवति** आदि रूप बन जाते हैं। उपसर्ग के लगने से धातु के अर्थ बदल जाने के कारण प्रभवति=समर्थ होता है, सम्भवति=सम्भव होता है, परिभवति=अपमानित होता है, पराभवति=पराजित करता है और अनुभवति=अनुभव करता है आदि अर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक धातु के प्रत्येक लकार के प्रत्येक पुरुष और वचन में ये उपसर्ग लग सकते हैं। जिस प्रकार आपने भू-धातु के दसों लकारों में ९० रूप बनाये, उसी प्रकार से मात्र एक उपसर्ग के जुड़ने से ९० रूप और बन जाते हैं। हाँ, इस बात का ध्यान जरूर रखना कि लङ्-लुङ-लृङ् लकारो में अट् एवं आट् का आगम होता है तो वहाँ पर उपसर्गों का प्रयोग अट्-आट् से पहले ही करना तथा वहाँ कोई यण्, गुण आदि सन्धि प्राप्त है तो सन्धि भी करनी चाहिए। जैसे अनु+भू के लङ् लकार में **अनु+अभवत्**, यण् होकर के **अन्वभवत्** एवं **प्र+अभवत्**, दीर्घ होकर के **प्राभवत्** आदि रूपों को बनाना चाहिए। कहीं कहीं रेफ और षकार वाले उपसर्ग से परे धातु का नकार हो तो उसका णत्व भी हो जाता है और कहीं कहीं धातु के सकार के स्थान पर षकार आदेश भी होता है। इसके लिए विशेष सूत्र **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में मिलेंगे।

हम यहाँ पर अनु-उपसर्ग लगे भू-धातु के रूप दिखा रहे हैं। आगे आप इसी प्रकार से और भी उपसर्गों को लगाकर रूप बनाने का प्रयास करें।

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (वर्तमान काल लट् लकार)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अनुभवति	अनुभवत:	अनुभवन्ति
मध्यमपुरुष	अनुभवसि	अनुभवथ:	अनुभवथ
उत्तमपुरुष	अनुभवामि	अनुभवाव:	अनुभवाम:

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (परोक्ष, अनद्यतन भूतकाल, लिट् लकार)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अनुबभूव	अनुबभूवतु:	अनुबभूवु:
मध्यमपुरुष	अनुबभूविथ	अनुबभूवथु:	अनुबभूव
उत्तमपुरुष	अनुबभूव	अनुबभूविव	अनुबभूविम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (अनद्यतन भविष्यत्काल, लुट् लकार)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अनुभविता	अनुभवितारौ	अनुभवितार:
मध्यमपुरुष	अनुभवितासि	अनुभवितास्थ:	अनुभवितास्थ
उत्तमपुरुष	अनुभवितास्मि	अनुभवितास्व:	अनुभवितास्म

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (सामान्य भविष्यत्काल, लृट् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभविष्यति	अनुभविष्यतः	अनुभविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	अनुभविष्यसि	अनुभविष्यथः	अनुभविष्यथ
उत्तमपुरुष	अनुभविष्यामि	अनुभविष्यावः	अनुभविष्यामः

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (आज्ञार्थक, लोट् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभवतु, अनुभवतात्	अनुभवताम्	अनुभवन्तु
मध्यमपुरुष	अनुभव, अनुभवतात्	अनुभवतम्	अनुभवत
उत्तमपुरुष	अनुभवानि	अनुभवाव	अनुभवाम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (अनद्यतन भूतकाल लङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अन्वभवत्	अन्वभवताम्	अन्वभवन्
मध्यमपुरुष	अन्वभवः	अन्वभवतम्	अन्वभवत
उत्तमपुरुष	अन्वभवम्	अन्वभवाव	अन्वभवाम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (विध्यर्थक, विधिलिङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभवेत्	अनुभवेताम्	अनुभवेयुः
मध्यमपुरुष	अनुभवेः	अनुभवेतम्	अनुभवेत
उत्तमपुरुष	अनुभवेयम्	अनुभवेव	अनुभवेम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (आशीर्लिङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभूयात्	अनुभूयास्ताम्	अनुभूयासुः
मध्यमपुरुष	अनुभूयाः	अनुभूयास्तम्	अनुभूयास्त
उत्तमपुरुष	अनुभूयासम्	अनुभूयास्व	अनुभूयास्म

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (सामान्य भूतकाल, लुङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अन्वभूत्	अन्वभूताम्	अन्वभूवन्
मध्यमपुरुष	अन्वभूः	अन्वभूतम्	अन्वभूत
उत्तमपुरुष	अन्वभूवम्	अन्वभूव	अन्वभूम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (हेतु-हेतुमद्भावादि, लृङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अन्वभविष्यत्	अन्वभविष्यताम्	अन्वभविष्यन्
मध्यमपुरुष	अन्वभविष्यः	अन्वभविष्यतम्	अन्वभविष्यत
उत्तमपुरुष	अन्वभविष्यम्	अन्वभविष्याव	अन्वभविष्याम

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४४३. अत आदेः ७।४।७०॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात्।

आत। आततुः। आतुः। आतिथ। आतथुः। आत। आत। आतिव आतिम। अतिता। अतिष्यति। अततु।

....

आपने अब तक भू-धातु के दसों लकारों के रूपों की सिद्धि और उपसर्ग के प्रयोग के विषय में जाना। अब एक बार पूरी आवृत्ति करके निम्नलिखित अभ्यास भी करिये।

अभ्यासः

१- धातु और शब्दों में आप क्या अन्तर पाते हैं?

२- कौन कौन लकार किस काल और किन अर्थों में होते हैं?

३- किस-किस लकार में सार्वधातुकसंज्ञा और किस-किस लकार में आर्धधातुकसंज्ञा होती है?

४- किन-किन स्थितियों में प्रथम-मध्यम-उत्तमपुरुषों का प्रयोग होता है?

५- कहाँ आत्मनेपद का प्रयोग होता है और कहाँ परस्मैपद या कहाँ उभयपद का? स्पष्ट करें।

६- किन-किन लकारों में अट् का आगम होता है?

७- लिट् और लङ् लकार में क्या अन्तर है?

८- लुट् और लृट् लकार में आप क्या अन्तर पाते हैं?

९- अद्यतन और अनद्यतन के विषय में बताइये।

१०- एक बार भू धातु के सारे रूप मौखिक ही सिद्ध करें।

११- अपनी कापी में प्र-उपसर्ग लगाकर भू धातु के सारे रूप लिखिये।

१२- भ्वादि में अभी तक आपने जितने सूत्र पढ़े, वे वृत्ति-अर्थ सहित आपको कण्ठस्थ हैं क्या? नहीं तो उनको कण्ठस्थ करें।

....

अत सातत्यगमने। अत धातु **निरन्तर चलना** अर्थ में है। **अतति**= चलता ही रहता है। अत में तकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप होता है। अत् शेष रह जाता है। भू में ऊकार की इत्संज्ञा इसलिए नहीं हुई कि उसमें अनुनासिकत्व नहीं है पर **अत** में अकार अनुनासिक है। इसलिए उसकी अनुनासिक मानकर इत्संज्ञा हुई।

अतति। अत सातत्यगमने धातु है। **त** में **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। इससे लट् लकार, तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, ति की सार्वधातुकसंज्ञा और **कर्तरि शप्** से शप्, अनुबन्धलोप करके **अत्+अ+ति** बना, वर्णसम्मेलन होकर **अतति** सिद्ध हुआ। यहाँ इगन्त न होने के कारण गुण नहीं हुआ। अब आगे तस् आदि में भी इसी प्रकार से रूप बनाइये। **तस्, थस्, वस्, मस्** में सकार को रुत्वविसर्ग, झि में अन्त् आदेश, **मिप्, वस् मस्** में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ करके **अतति, अततः, अतन्ति, अतसि, अतथः, अतथ, अतामि, अतावः अतामः** सिद्ध हो जाते हैं।

४४३- अत आदेः। अतः षष्ठ्यन्तम्, आदेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **दीर्घः इणः किति** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में विद्यमान आदि ह्रस्व अकार को दीर्घ होता है।

यद्यपि अत् धातु के अभ्यास को इस सूत्र से दीर्घ होने पर भी और न होने पर भी समान ही रूप बनते हैं, तथापि **अर्च** आदि धातुओं से **आनर्च** आदि बनाने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता होती है। यह सूत्र यहाँ पर भी प्रवृत्त हो सकता है। अतः न्यायसंगति से यहाँ पर ही दिखाया गया है।

आत। अत् से लिट्, तिप्, अनुबन्धलोप, **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से णल् आदेश, अनुबन्धलोप, **अत् अ** बना, **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से धातु को द्वित्व, **अत् अत् अ** बना। अभ्याससंज्ञा और **हलादि शेषः** से हलादिशेष होकर **अ अत् अ** बना, अभ्याससंज्ञक अ का **अत आदेः** से दीर्घ करने पर **आ अत् अ** बना। **आ+अत्** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **आत् अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **आत** बना। इसी प्रकार **आत्** बनाते जाइये और आगे **तस्** आदि के स्थान पर **अतुस्** आदि आदेश करके उसमें मिलाते जाइये। इस प्रकार से आततुः, आतुः, आतिथ (इट् आगम करके), आतथुः, आत, आत, आतिव, आतिम बनते हैं।

याद रहे कि तिप् आदि नौ के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से णल् आदि नौ आदेश होते हैं और **थल्, वस्, मस्** के परे रहने पर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम होता है।

अतिता। अत् से लुट् लकार, तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से तासि, अनुबन्धलोप, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम, **अत् इ तास् ति** बना, **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** से डा आदेश, तास् में **आस्** इस टि का लोप कर के **अत्+इ+त्+आ** बना, वर्णसम्मेलन करके **अतिता** बना। पूरे लुट् लकार में इट् का आगम होगा, गुण प्राप्त ही नहीं है। शेष विधि भू-धातु के समान ही है। इस प्रकार से लुट् में अत् के रूप बनते हैं- अतिता, अतितारौ, अतितारः, अतितासि, अतितास्थः, अतितास्थ, अतितास्मि, अतितास्वः, अतितास्मः।

अतिष्यति। अत् से लृट् लकार, उसके स्थान पर तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम करके **अत् इ स्य ति** बना, वर्णसम्मेलन होकर **अतिस्यति** बना, इकार से परे स्य के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ- **अतिष्यति।** अब इसी प्रकार आगे भी बनाते जाइये। स्य प्रत्यय और इट् का आगम करके इस प्रकार से लृट् में अत् के रूप बनते हैं- **अतिष्यति, अतिष्यतः, अतिष्यन्ति, अतिष्यसि, अतिष्यथः, अतिष्यथ, अतिष्यामि, अतिष्यावः, अतिष्यामः।**

अततु। अत् से लोट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अत् अ ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और **भवतु** के समान **एरुः** से उत्व करके **अततु** बना। **तु** को **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से एक पक्ष में **तातङ्** आदेश होकर **अततात्** भी बनता है। यदि भू-धातु के सारे लकारों के रूप याद हैं तो बनाने में कोई कठिनाई नहीं होगी, अन्यथा समझ में नहीं आयेगा। इस प्रकार से लोट्-लकार में अत् के रूप बनते हैं- **अततु-अततात्, अतताम्, अतन्तु, अत-अततात्, अततम्, अतत, अतानि, अताव, अताम।** तिप् और सिप् में विकल्प से तातङ् आदेश होकर दो-दो रूप बनते हैं।

आडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४४४. आडजादीनाम् ६।४।७२॥

अजादेरङ्गस्याट् लुङ्लङ्लृङ्क्षु।

आतत्। अतेत्। अत्यात्। अत्यास्ताम्। लुङि सिचि इडागमे कृते।

....

४४४- **आडजादीनाम्।** अच् आदिर्येषां ते अजादयस्तेषाम्। आट् प्रथमान्तम्, अजादीनां षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से **लुङ्लङ्लृङ्क्षु** एवं **उदात्त** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का वचनविपरिणाम करके **अङ्गानाम्** का अधिकार आता है।

लुङ्, लङ् और लृङ्, लकार के परे रहने पर अजादि अङ्ग रूप धातु को आट् का आगम होता है।

इससे पूर्व का सूत्र **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** अट् का आगम करता है और यह आट् आगम करता है। यह अजादि धातु में ही लगता है, इसलिए पूर्वसूत्र से यह सूत्र विशेष है। अत एव यह सूत्र पूर्वसूत्र का अपवादसूत्र है। इस प्रकार से लुङ्, लङ् और लृङ्, लकार के परे रहने पर अजादि धातुओं को **आट्** और हलादि धातुओं को **अट्** का आगम होना निश्चित हुआ।

आतत्। अत् धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्-लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** अट् आगम प्राप्त था किन्तु **अत्** धातु के अजादि होने के कारण उसे बाधकर **आडजादीनाम्** से आट् का आगम हुआ, टित् होने के कारण धातु से पहले बैठा, लकार के स्थान पर तिप्, **आ+अत्+ति** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **आ+अत्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई तो **आत् अ ति** में वर्णसम्मेलन करके **आतति** वना, **इतश्च** से इकार का लोप हुआ- **आतत्।** अब तस् आदि में भी यही प्रक्रिया अपनाना। विशेष- **तस्, थस्, थ, मिप्** में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदि आदेश, **सिप्** में **इतश्च** से इकार का लोप और सकार का रुत्वविसर्ग, वस्, मस् में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ तथा सकार का **नित्यं ङितः** से लोप आदि करने से अत् धातु के लङ्-लकार में निम्नानुसार रूप बनते हैं- **आतत्, आतताम्, आतन्, आतः, आततम्, आतत, आतम्, आताव, आताम।**

अतेत्। अत् धातु से **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ्-लकार, उसके स्थान पर तिप् होकर **अत्+ति** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अत्+अति** बना। **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम, अनुबन्धलोप, **अत्+अ+यास्+ति** बना। **यास्** के स्थान पर **अतो येयः** से इय् आदेश, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप करके **अत्+अ+इ+ति** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण करके वर्णसम्मेलन करने पर **इतश्च** से इकार का लोप किया गया तो बना- **अतेत्।** तस् आदि में भी यही प्रक्रिया अपनाना। विशेष यह है कि- **तस्, थस्, थ, मिप्** में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदि आदेश, सिप् में **इतश्च** से इकार का लोप और सकार को रुत्वविसर्ग, **झि** के स्थान पर **झेर्जुस्** से **जुस्** आदेश, वलादि के परे रहने पर यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, अन्यथा नहीं, वस् मस् में सकार का **नित्यं ङितः** से लोप आदि करने से अत् धातु के विधि लिङ्-लकार में निम्नानुसार रूप बनते हैं- **अतेत्, अतेताम्, अतेयुः, अतेः, अतेतम्, अतेत, अतेयम्, अतेव, अतेम।**

ईडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४४५. अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६॥

विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः।

सलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४४६. इट ईटि ८।२।२८॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे।

वार्तिकम्- **सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः।** आतीत्। आतिष्टाम्।

....

आशीर्लिङ् में **अत्** धातु से **आशिषि लिङ्लोटौ** से लिङ्-लकार, तिप् आदि आदेश, उसकी **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा होने के कारण शप् नहीं होगा, यासुट् आगम, अन्त में इकार के रहने पर **इतश्च** से उसका लोप, तिप् और सिप् में सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप, **तस्, थस्, थ, मिप्** के स्थान पर **ताम्, तम्, त, अम्** आदेश, **सिप्** के सकार को रुत्वविसर्ग, **वस्** और **मस्** के सकार का **नित्यं ङितः** से लोप करके निम्न प्रकार के रूप सिद्ध होते हैं- **अत्यात्, अत्यास्ताम्, अत्यासुः, अत्याः, अत्यास्तम्, अत्यास्त, अत्यासम्, अत्यास्व, अत्यास्म।** ध्यान रहे कि आशीर्लिङ् में अत् धातु को गुण प्राप्त ही नहीं है, अतः **क्ङिति च** से निषेध करने की आवश्यकता भी नहीं है।

४४५- **अस्तिसिचोऽपृक्ते।** अस्तिश्च सिच् च तयोः समाहारद्वन्द्वः- अस्तिसिच्, तस्य अस्तिसिचः। यहाँ पर समास की एक अन्य प्रक्रिया भी बताई गई है- सिच् च अस् च तयोः समाहारद्वन्द्वः सिचः, अस्तिश्चासौ सिचश्च अस्तिसिचः, सौत्रात् पञ्चमी का लुक्। अस्तिसिचः पञ्चम्यन्तम्, अपृक्ते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि** और **ब्रुव ईट्** से **ईट्** की अनुवृत्ति आती है।

विद्यमान सिच् प्रत्यय और अस् धातु से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम होता है।

विद्यमान सिच् कहने से यह सूत्र केवल लुङ्-लकार में ही लगेगा, क्योंकि च्लि और च्लि के स्थान में होने वाला सिच् लुङ्-लकार में ही होता है। जो विद्यमान सिच् उससे या अस् धातु से परे अपृक्तसंज्ञक हल् को ईट् आगम का विधान किया गया। इसमें **ई** टित् है और ईकार दीर्घ है। टित् होने से अपृक्त के आदि में बैठेगा। अपृक्त हल् तिप् और सिप् में इनके इकार के लोप होने के बाद ही मिलता है। अतः यह सूत्र तिप् और सिप् में ही लगता है। स्मरण रहे कि एक अल् वाले प्रत्यय की **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से अपृक्तसंज्ञा होती है।

४४६- **इट ईटि।** इटः पञ्चम्यन्तम्, ईटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रात्सस्य** से **सस्य** और **संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

इट् से ईट् परे होने पर बीच के सकार का लोप होता है।

इट् और ईट् दोनों ही आगम हैं। इट् **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** आदि सूत्र से किया गया है और ईट् **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से। **इट ईटि** इस सूत्र से सकार के लोप होने के बाद इ+ई में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ करना था किन्तु **इट ईटि ८.२.२८** यह सूत्र त्रिपादी

जुसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४४७. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९॥

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्।
आतिषु:। आती:। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। **षिध गत्याम्॥३॥**

....

है, इसके द्वारा किया गया कार्य सपादसप्ताध्यायी **अक: सवर्णे दीर्घ:** ६.१.१०१ की दृष्टि में **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियमानुसार असिद्ध है। बीच में सकार दीखने के कारण **अक: सवर्णे दीर्घ:** से दीर्घ एकादेश नहीं हो रहा था तो वार्तिककार को वार्तिक बनाना पड़ा-

सिच्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्य:। एकादेश विधि की कर्तव्यता में सिच् का लोप सिद्ध होता है। अन्यत्र तो सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी असिद्धा होती है किन्तु कोई एकादेश की विधि करनी हो तो सिच् का लोप सिद्ध माना जायेगा। इस प्रकार से दीर्घरूप एकादेश की विधि में सकार का लोप सिद्ध हो जायेगा। फलत: **अक: सवर्णे दीर्घ:** से दीर्घ हो जायेगा।

आतीत्। **अत्** धातु से लुङ् लकार, **आडजादीनाम्** से आट् आगम, तिप् आदेश करके **आ अत् ति** बना, च्लि, सिच् आदेश, अनुबन्धलोप होकर ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **आ+अत्+स्+त्** बना। सिच् के सकार की **आर्धधातुकं शेष:** से आर्धधातुकसंज्ञा, उसको **आर्धधातुकस्येड् वलादे:** से इट् का आगम, टित् होने से सकार के आदि में बैठा, **आ+अत्+ इस्+त्** बना। तकार की अपृक्तसंज्ञा करके **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् का आगम हुआ और वह भी टित् होने के कारण अपृक्त तकार के आदि में बैठा, **आ+अत्+इस्+ई+त्** बना। सकार का **इट ईटि** से लोप हुआ और सवर्णदीर्घ की कर्तव्यता में **सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्य:** इस वार्तिक से त्रिपादी लोप भी **अक: सवर्णे दीर्घ:** की दृष्टि में सिद्ध ही हुआ तो उससे **इ+ई** में सवर्णदीर्घ एकादेश **ई** हुआ। **आ+अत्+ई+त्** बना, **आ+अत्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई और **आत्+ई+त्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **आतीत्।**

आतिष्टाम्। तस् में **आ+अत्+इस्+ताम्** बना लेने के बाद वृद्धि कर **आतिस् ताम्** में सकार का **आदेशप्रत्યययो:** से षत्व और षकार से परे ताम् के तकार को **ष्टुना ष्टु:** से ष्टुत्व होकर टकार बन गया, **आतिष् टाम्** बना हुआ है, वर्णसम्मेलन कर देने पर **आतिष्टाम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **ताम्** यह अपृक्त नहीं है, अत: दीर्घ ईट् आगम नहीं हुआ।

४४७- **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च।** सिच् च अभ्यस्तश्च विदिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व: सिजभ्यस्तविदय:, तेभ्य: सिजभ्यस्तविदिभ्य:। सिजभ्यस्तविदिभ्य: पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नित्यं ङित:** से **ङित:** और **झेर्जुस्** से जुस् की अनुवृत्ति आती है।

सिच्-प्रत्यय, अभ्यस्तसंज्ञक धातु और विद् धातु से परे ङित् लकार के झि के स्थान पर जुस् आदेश होता है।

इस सूत्र के द्वारा आदेश करने पर **अनेकाल् शित्सर्वस्य** के नियम से अनेकाल् जुस् आदेश सम्पूर्ण झि के स्थान पर होता है, **झोऽन्त:** के समान केवल **झ्** के स्थान पर नहीं।

लघुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४४८. ह्रस्वं लघु १।४।१०॥

गुरुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४४९. संयोगे गुरु १।४।११॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात्।

....

आतिषुः। अत् से लुङ्, झि आदेश, आट् का आगम, च्लि, सिच् आदेश, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा और आर्धधातुक को इट् आगम करने पर **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से झि के स्थान पर जुस् आदेश, जुस् में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा करके लोप करने पर **आ+अत्+इ+उस्** बना। **आटश्च** से वृद्धि, षत्व करके वर्णसम्मेलन और उसके सकार को रुत्वविसर्ग करने पर **आतिषुः** यह सिद्ध हुआ।

आतीः। यह रूप **आतीत्** के समान ही सिद्ध होगा किन्तु सकार को रुत्व और विसर्ग विशेष होता है। द्विवचन और बहुवचन में **आतिष्टाम्** की तरह प्रक्रिया होती है। **आतिषम्** में मिप् के स्थान पर अम् आदेश और **वस् मस्** के सकार का लोप करना न भूलें। षत्व सभी जगह होगा। **आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म।**

आतिष्यत्। अत् से लृङ् लकार, आट् का आगम, तिप्, अनुबन्धलोप, ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य, उसकी भी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम, ति में इकार का **इतश्च** से लोप, **आ+अत्** में **आटश्च** से वृद्धि, इ से परे स्य के सकार को षत्वादि करके **आतिष्यत्** बन जाता है। इसके बाद तस् आदि में भी लगभग यही प्रक्रिया होगी। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदि आदेश, झि में **अन्त्** आदेश और **अन्ति** में इकार का लोप एवं तकार का संयोगान्तलोप, वस् और मस् में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ, सकार का लोप आदि कार्य विशेष होंगे। इस प्रकार से अत् धातु के लृङ् लकार में **आतिष्यत्, आतिष्यताम्, आतिष्यन्, आतिष्यः, आतिष्यतम्, आतिष्यत, आतिष्यम्, आतिष्याव, आतिष्याम** ये रूप सिद्ध होते हैं।

षिध धातु **गति** अर्थ में है। धकारोत्तरवर्ती अनुनासिक अकार का लोप होकर **षिध्** बचता है और आदि षकार के स्थान पर **धात्वादेः षः सः** से दन्त्य सकार आदेश होकर **सिध्** बन जाता है। इसके बाद लकार आते हैं। **गति** के चार अर्थ होते हैं- **गमन, प्राप्ति, ज्ञान** और **मोक्ष**। जहाँ जो भी धातु गत्यर्थक होगा, वहाँ ये चारों अर्थ उपस्थित होते हैं और प्रसंग के अनुसार एक अर्थ निश्चित हो जाता है।

४४८- **ह्रस्वं लघु**। ह्रस्वं प्रथमान्तं, लघु प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

ह्रस्व अच् लघुसंज्ञक होता है।

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः से एकमात्रिक की ह्रस्वसंज्ञा, द्विमात्रिक की दीर्घसंज्ञा और त्रिमात्रिक की प्लुतसंज्ञा का विधान संज्ञाप्रकरण में ही हो चुका है। **लघुसंज्ञा** का प्रयोजन **पुगन्तलघूपधस्य च** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है, जो आगे स्पष्ट किया जाएगा।

४४९- **संयोगे गुरु**। संयोगे सप्तम्यन्तं, गुरु प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ह्रस्वं लघु** से **ह्रस्वं** की अनुवृत्ति आती है।

संयोग के परे रहने पर पूर्वस्थ ह्रस्व अच् गुरुसंज्ञक होता है।

गुरुसंज्ञाविधायकं द्वितीयं संज्ञासूत्रम्

४५०. दीर्घं च १।४।१२॥

गुरु स्यात्।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

४५१. पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। **धात्वादेरि**ति सः। सेधति। षत्वम्। सिषेध।

....

हलोऽनन्तराः संयोगः से दो या दो से अधिक हलों के बीच में यदि अच् न हो तो उस हल्-समूह की संयोगसंज्ञा होती है, यह भी संज्ञाप्रकरण में बताया जा चुका है। ऐसे संयोग के परे होने पर पूर्व में जो ह्रस्व वर्ण है, उसकी गुरुसंज्ञा होती है, न कि संयोग की। जैसे पत्रम् में त्र् इन दो वर्णों के बीच में कोई अच् नहीं है, अतः यह संयोग है। इसके परे होने पर प में अकार की गुरुसंज्ञा हुई।

४५०- **दीर्घञ्च**। दीर्घं प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **संयोगे गुरु** से **गुरु** की अनुवृत्ति आती है।

दीर्घ भी गुरुसंज्ञक होता है।

४५१- **पुगन्तलघूपधस्य च**। पुक् अन्ते यस्य तत् पुगन्तम्, लघ्वी उपधा यस्य तद् लघूपधम्, पुगन्तञ्च लघूपधञ्च तयोः समाहारद्वन्द्वः पुगन्तलघूपधम्, तस्य पुगन्तलघूपधस्य। पुगन्तलघूपध्यस्य षष्ठ्यन्तं च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **मिदेर्गुणः** से **गुणः** एवं **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** इस सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **इको गुणवृद्धी** इस परिभाषा-सूत्र से **इकः** यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे होने पर पुक् प्रत्यय अन्त में हो ऐसे अङ्ग के इक् और लघुसंज्ञक वर्ण उपधा में हो ऐसे अङ्ग के इक् को गुण होता है।

पुक् एक आगम है और उपधा एक संज्ञा है जो **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से विहित होती है तथा लघु भी संज्ञा ही है, जो ह्रस्व की होती है। तिङन्तप्रकरण में सामान्यतया गुण करने के लिए **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** और **पुगन्तलघूपधस्य च** ये ही दो सूत्र प्रसिद्ध हैं। पूर्वसूत्र इक् अन्त में हो तो गुण करता है और यह सूत्र इक् उपधा में हो तो गुण करता है (पुक् प्रत्ययान्त अङ्ग के इक् को भी करता है)। स्मरण रहे कि अन्त्य वर्ण से पूर्व के वर्ण की उपधासंज्ञा होती है। ऐसा वर्ण लघु अर्थात् ह्रस्व भी होना चाहिए।

सेधति। षिध धातु में पहले तो धकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होने पर सिध् बना है। उससे लट्-लकार, **तिप्**, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **सिध्+अ+ति** बना। **सिध्** में अन्त्य वर्ण है **ध्**, उससे पूर्व के वर्ण **सि** में **इकार** की उपधासंज्ञा हुई, इसलिए **लघूपध** है **सि** का **इकार**, सार्वधातुक परे है **शप्** वाला **अकार**। इस प्रकार से **सि** में इकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण हुआ। इकार को गुण **ए** होकर **सेध्** बना। **सेध्+अ+ति** में वर्णसम्मेलन हुआ- **सेधति**।

किद्वद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

४५२. असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५।।

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात्।

सिषिधतुः। सिषिधुः। सिषेधिथ। सिषिधथुः। सिषिध। सिषेध। सिषिधिव। सिषिधिम। सेधिता। सेधिष्यति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत्। **एवं चिती संज्ञाने।।४।। शुच शोके।।५।। गद व्यक्तायां वाचि।।६।।** गदति।

इसी प्रकार से **सेधति, सेधतः, सेधन्ति, सेधसि, सेधथः, सेधथ, सेधामि, सेधावः, सेधामः** बनायें।

सिषेध। षिध से सिध् बनने के बाद लिट्-लकार, तिप्, णल् आदेश, अनुबन्ध लोप, **सिध् अ** बना, **लिट् च** से आर्धधातुकसंज्ञा, **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, **सिध् सिध+अ, पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा, **हलादि शेषः** से प्रथम **सिध्** के **धकार** का लोप और **सकार** शेष रहा, **सि सिध् अ** बना। आर्धधातुक के परे रहने पर **सिध्** में इकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण, **सि सेध् अ**, प्रथम **सि** में इण् है इकार, उससे परे द्वितीय **सेध्** के **सकार** के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **सि षेध् अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **सिषेध** सिद्ध हुआ।

४५२- असंयोगाल्लिट् कित्। न संयोगः असंयोगः, तस्मात् असंयोगात्। असंयोगात् पञ्चम्यन्तं, लिट् प्रथमान्तं, कित् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सार्वधातुकमपित्** से **अपित्** की अनुवृत्ति आती है।

असंयोग से परे पित् से भिन्न लिट् लकार को किद्वद्भाव होता है।

यह अतिदेश करता है। इससे जो पहले से कित् नहीं है, उसे कित् जैसा बनाकर **क्ङिति च** आदि सूत्रों से गुणनिषेध आदि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जो आगे स्पष्ट हो जायेंगे।

सिषिधतुः। सिषिधुः। षिध से सिध् बनने के बाद लिट्-लकार, तस्, अतुस् आदेश, **सिध् अतुस्** बना, **लिट् च** से आर्धधातुकसंज्ञा, **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, **सिध् सिध् अतुस्, पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा, **हलादि शेषः** से प्रथम **सिध्** के धकार का लोप और सकार शेष रहा, **सि सिध् अतुस्** बना। **सिसिध्** में कोई संयोग नहीं है, उससे परे लिट्-लकार सम्बन्धी **अतुस्** को **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव, आर्धधातुक के परे रहने पर **सिध्** में इकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण प्राप्त, अतुस् कित् है, अतः **क्ङिति च** से गुण का निषेध, **सिसिध्+अतुस्** है। प्रथम सि में इण् है इकार, उससे परे द्वितीय **सिध्** के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व, **सि षिध् अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **सिषिधतुस्** बना। सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ **सिषिधतुः**। अब इसी प्रकार प्रथमपुरुष के बहुवचन में **झि** और उसके स्थान पर **उस्** आदेश होने के बाद **सिषिधुः** भी सरलता से बन जायेगा।

सिषेधिथ। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप्, थल् आदेश, **थ** वल् प्रत्याहार में आता है, अतः **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम करके शेष कार्य सिषेध के समान करने पर **सिषेधिथ** भी बन जायेगा।

सिषिधथुः। सिषिध। इनको **सिषिधतुः** की तरह बनाइये।

सिषेध। इसको प्रथमपुरुष एकवचन की तरह बनाइये।

सिषिधिव। सिषिधिम। इनको भी **सिषिधतुः** की तरह ही बनाइये। यहाँ पर वलादि आर्धधातुक के परे रहने पर इट् का आगम भी होगा।

सेधिता। षिध से सिध् बन जाने के बाद लुट् लकार, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर तासि प्रत्यय, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, इट् का आगम, सिध् में **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण, डा आदेश आदि करके **सेधिता** बन जायेगा। इसी तरह **सेधितारौ, सेधितारः। सेधितासि, सेधितास्थः, सेधितास्थ। सेधितास्मि, सेधितास्वः, सेधितास्मः** भी बनाइये। यदि आपको भू-धातु में की गई प्रक्रिया आती है तो इन प्रयोगों की सिद्धि में कोई कठिनाई नहीं आयेगी और यदि प्रक्रिया नहीं आती है तो फिर कभी भी नहीं समझेंगे।

लृट् लकार में सिध् ति, सिध् स्य ति, सिध् इ स्य ति, सेध् इ स्य ति, सेध् इ ष्य ति, वर्णसम्मेलन **सेधिष्यति**। आगे- **सेधिष्यतः, सेधिष्यन्ति। सेधिष्यसि, सेधिष्यथः, सेधिष्यथ। सेधिष्यामि, सेधिष्यावः, सेधिष्यामः** भी बनाइये।

लोट् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **सेधतु-सेधतात्, सेधताम्, सेधन्तु। सेध-सेधतात्, सेधतम्, सेधत। सेधानि, सेधाव, सेधाम।**

लङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और हलादिधातु होने के कारण अट् का आगम तथा विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **असेधत्, असेधताम्, असेधन्। असेधः, असेधतम्, असेधत। असेधम्, असेधाव, असेधाम।**

विधिलिङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **सेधेत्, सेधेताम्, सेधेयुः। सेधेः, सेधेतम्, सेधेत। सेधेयम्, सेधेव, सेधेम।**

आशीर्लिङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से प्राप्त गुण का **लिङाशिषि** से यासुट् को किद्वद्भाव करके **क्ङिति च** से निषेध करना न भूलें। इस तरह से बनाइये- **सिध्यात्, सिध्यास्ताम्, सिध्यासुः। सिध्याः, सिध्यास्तम्, सिध्यास्त। सिध्यासम्, सिध्यास्व, सिध्यास्म।**

लुङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें किन्तु हलादि धातु होने के कारण यहाँ अट् आगम होगा, आट् नहीं। विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **असेधीत्, असेधिष्टाम्, असेधिषुः। असेधीः असेधिष्टम्, असेधिष्ट। असेधिषम्, असेधिष्व, असेधिष्म।**

लृङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और हलादिधातु होने के कारण अट् का आगम तथा विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **असेधिष्यत्, असेधिष्यताम्, असेधिष्यन्। असेधिष्यः, असेधिष्यतम्, असेधिष्यत। असेधिष्यम्, असेधिष्याव, असेधिष्याम।**

चिती संज्ञाने। चिती धातु **होश में आना** या **ठीक तरह से जानकारी प्राप्त करना,** इस अर्थ में है।। **चिती** में ईकार की इत्संज्ञा होकर केवल **चित्** ही बचता है। इसके रूप भी **सिध्** धातु की तरह ही बनाइये जैसे कि लघूपधगुण होकर **चेतति** बनता है।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४५३. नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति- वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति- देग्धिषु च ८।४।१७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णो गदादिषु परेषु। प्रणिगदति।

....

लट् के रूप- चेतति, चेततः, चेतन्ति, चेतसि, चेतथः, चेतथ। चेतामि, चेतावः, चेतामः। **लिट्**- चिचेत, चिचिततुः, चिचितुः। चिचेतिथ, चिचितथुः, चिचित। चिचेत, चिचितिव, चिचितिम। **लुट्** चेतिता, चेतितारौ, चेतितारः। चेतितासि, चेतितास्थः, चेतितास्थ। चेतितास्मि, चेतितास्वः, चेतितास्मः। **लृट्**- चेतिष्यति, चेतिष्यतः, चेतिष्यन्ति। चेतिष्यसि, चेतिष्यथः, चेतिष्यथ। चेतिष्यामि, चेतिष्यावः, चेतिष्यामः। **लोट्**- चेततु-चेततात्, चेतताम्, चेतन्तु। चेत-चेततात्, चेततम्, चेतत। चेतानि, चेताव, चेताम। **लङ्**- अचेतत्, अचेतताम्, अचेतन्। अचेतः, अचेततम्, अचेतत। अचेतम्, अचेताव, अचेताम। **विधिलिङ्**- चेतेत्, चेतेताम्, चेतेयुः। चेतेः, चेतेतम्, चेतेत। चेतेयम्, चेतेव, चेतेम। **आशीर्लिङ्**- चित्यात्, चित्यास्ताम्, चित्यासुः। चित्याः, चित्यास्तम्, चित्यास्त। चित्यासम्, चित्यास्व, चित्यास्म। **लुङ्**- अचेतीत्, अचेतिष्टाम्, अचेतिषुः। अचेतीः, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट। अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म। **लृङ्**- अचेतिष्यत्, अचेतिष्यताम्, अचेतिष्यन्। अचेतिष्यः, अचेतिष्यतम्, अचेतिष्यत। अचेतिष्यम्, अचेतिष्याव, अचेतिष्याम।

शुच शोके। शुच् धातु **शोक करना, चिन्ता करना, चिन्तन करना** अर्थ में है। इसमें चकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होकर केवल **शुच्** ही शेष रहता है। लघूपधगुण होकर **शोचति** बनता है। इसके सभी लकारों में **सिध्** और **चित्** के समान ही रूप बनते हैं। **लट**- शोचति, शोचतः, शोचन्ति। शोचसि, शोचथः, शोचथ। शोचामि, शोचावः, शोचामः। **लिट्**- शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः। शुशोचिथ, शुशुचथुः शुशुच। शुशोच, शुशुचिव, शुशुचिम। **लुट्**- शोचिता, शोचितारौ, शोचितारः। शोचितासि, शोचितास्थः, शोचितास्थ। शोचितास्मि, शोचितास्वः, शोचितास्मः। **लृट्**- शोचिष्यति, शोचिष्यतः, शोचिष्यन्ति, शोचिष्यसि, शोचिष्यथः, शोचिष्यथ। शोचिष्यामि, शोचिष्यावः, शोचिष्यामः। **लोट्**- शोचतु-शोचतात्, शोचताम्, शोचन्तु। शोच-शोचतात्, शोचतम्, शोचत। शोचानि, शोचाव, शोचाम। **लङ्**- अशोचत्, अशोचताम्, अशोचन्। अशोचः, अशोचतम्, अशोचत। अशोचम्, अशोचाव, अशोचाम। **विधिलिङ्**- शोचेत्, शोचेताम्, शोचेयुः। शोचेः, शोचेतम्, शोचेत। शोचेयम्, शोचेव, शोचेम। **आशीर्लिङ्**- शुच्यात्, शुच्यास्ताम्, शुच्यासुः। शुच्याः, शुच्यास्तम्, शुच्यास्त। शुच्यासम्, शुच्यास्व, शुच्यास्म। **लुङ्**- अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः। अशोचीः, अशोचिष्टम्, अशोचिष्ट। अशोचिषम्, अशोचिष्व, अशोचिष्म। **लृङ्**- अशोचिष्यत्, अशोचिष्यताम्, अशोचिष्यन्। अशोचिष्यः, अशोचिष्यतम्, अशोचिष्यत। अशोचिष्यम्, अशोचिष्याव, अशोचिष्याम।

गद व्यक्तायां वाचि। गद् धातु **स्पष्ट उच्चारण करना** अर्थ में है। इसमें दकारोत्तरवर्ती **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होने पर **गद्** बचता है।

गदति। गद्, गद् लट्, गद् तिप्, गद् ति, गद् शप् ति, गद् अ ति, **गदति**। आगे गदतः, गदन्ति। गदसि, गदथः, गदथ। गदामि, गदावः, गदामः।

चवर्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४५४. कुहोश्चुः ७।४।६२॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४५५. अत उपधायाः ७।२।११६॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे।

जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद।

....

४५३- **नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च।** गदश्च नदश्च पतश्च पदश्च घुश्च माश्च स्यतिश्च हन्तिश्च यातिश्च वातिश्च द्रातिश्च प्सातिश्च वपतिश्च वहतिच शाम्यतिश्च चिनोतिच देग्धिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धयः, तेषु गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु। नेः पञ्चम्यन्तं, गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इस पूरे सूत्र की तथा **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **रषाभ्यां, नः, णः** की एवञ्च **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्गस्थ निमित्त(रेफ, षकार और ऋकार) से परे नि उपसर्ग के नकार को णत्व होता है गद्, नद्, पत्, पद्, घुसंज्ञक धातु, मा, षो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि, दिह् इन धातुओं के परे होने पर।

यह उक्त धातुओं के परे होने पर उपसर्गों में स्थित रेफ और षकार हो और उसके बाद द्वितीय उपसर्ग **नि** हो तो उसी नि के नकार को णत्व करता है। जैसे गदति के पहले प्र और नि उपसर्ग लगने पर **प्रनि+गदति** है। इस सूत्र से णत्व होने पर **प्रणिगदति** बन गया। इसी तरह **प्रनि+नदति=प्रणिनदति, प्रनि+पतति=प्रणिपतति** इत्यादि। आगे **प्रणिजगाद, प्रणिगदिता** इत्यादि भी समझना चाहिए।

४५४- **कुहोश्चुः।** कुश्च ह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कुहौ, तयोः कुहोः। कुहोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में विद्यमान कवर्ग और हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है।

इस सूत्र से केवल अभ्यास में ही कार्य करने के कारण जहाँ-जहाँ द्वित्व होता है वहीं-वहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि जहाँ द्वित्व होता है, अभ्यास भी वहीं मिलता है।

४५५- **अत उपधायाः।** अतः षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** तथा **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् और णित् प्रत्यय के परे रहने पर उपधाभूत ह्रस्व अकार की वृद्धि होती है।

जगाद। गद् से लिट्, तिप्, णल्, अ, **गद्+अ** में द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष करने पर **ग+गद्+अ** बना। अभ्यास के कवर्ग गकार के स्थान पर **कुहोश्चुः** से चवर्ग आदेश

णित्वातिदेशविधायकम् अतिदेशसूत्रम्

४५६. णलुत्तमो वा ७।१।९१॥

उत्तमो णल् वा णित् स्यात्।

जगाद, जगद। जगदिव। जगदिम। गदिता। गदिष्यति। गदतु। अगदत्। गदेत्। गद्यात्।

....

हुआ तो ग् के स्थान पर ज् हुआ, **ज+गद्+अ** बना। जगद् में गकारोत्तरवर्ती अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा हुई और **अत उपधायाः** से उपधा में स्थित ह्रस्व अकार की वृद्धि हुई तो **जगाद्+अ** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **जगाद** सिद्ध हुआ। यहाँ पर णित् प्रत्यय परे है अ, क्योंकि जब तिप् के स्थान पर णल् हुआ तो णकार की इत्संज्ञा की गई थी। इस तरह लिट्-लकार में प्रथमपुरुष एकवचन और उत्तमपुरुष एकवचन में णित् मिलेगा एवं उसी के परे रहने पर ही वृद्धि होगी अन्यत्र नहीं।

जगदतुः। जगदुः। गद् से तस्, अतुस्, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, कवर्ग आदेश, **जगद्+अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ तो **जगदतुः** बना। इसी तरह **जगदुः** भी बनेगा।

जगदिथ। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप् के स्थान पर थल् होगा और उसको इट् का आगम करके शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही रहेगी। द्विवचन और बहुवचन में **जगदतुः** की तरह ही प्रक्रिया करके **जगदथुः** और **जगद** भी बनाइये।

४५६- णलुत्तमो वा। णल् प्रथमान्तम्, उत्तमः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **गोतो णित्** से **णित्** की अनुवृत्ति आती है।

उत्तम पुरुष वाले णल् को विकल्प से णित् माना जाय।

प्रथमपुरुष और उत्तमपुरुष में दो णल् हैं, इसलिए प्रथमपुरुष के णल् को रोकने के लिए **उत्तमः** को पढ़ा गया। यह अतिदेश सूत्र है। णल् में णित् तो स्वतः रहता ही है, किन्तु विशेष कार्यसिद्धि के लिए पहले से विद्यमान णित्त्व को इस सूत्र में विकल्प से णित्त्व मानने का विधान प्राप्त होता है। णित्व होते हुए भी एक बार उसे णित् माना जाय और एक बार न माना जाय। वैकल्पिक णित्व का प्रयोजन **जगाद-जगद** आदि दो रूप बनाना है।

जगाद, जगद। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् करके **अत उपधायाः** से वृद्धि करने से पहले **णलुत्तमो वा** से णिद्विकल्प करके उसके बाद वृद्धि करें। णित्व के पक्ष में **अत उपधायाः** से वृद्धि होगी और णित् न होने के पक्ष में वृद्धि नहीं होगी। इस तरह दो रूप बनते हैं।

जगदिव। जगदिम। इनमें विशेषतया वस्, मस् के स्थान पर व और म आदेश होने के बाद **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् आगम होकर **जगदिव, जगदिम** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

इस तरह से गद् के लिट् लकार में निम्नानुसार रूप बने- **जगाद, जगदतुः, जगदुः, जगदिथ, जगदथुः, जगद, जगाद-जगद, जगदिव, जगदिम।**

लुट् में गद् से तिप् आदि आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् को बाधकर तासि प्रत्यय, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, उसको इट् का आगम, डा आदि आदेश, टि का लोप, वर्णसम्मेलन

वैकल्पिकवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४५७. अतो हलादेर्लघोः ७।२।७।।

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि।

अगादीत्, अगदीत्। अगदिष्यत्। **णद अव्यक्ते शब्दे।।७।।**

....

आदि करके रूप बनते हैं- गदिता, गदितारौ, गदितारः। गदितासि, गदितास्थः, गदितास्थ। गदितास्मि, गदितास्वः, गदितास्मः।

लृट्- गदिष्यति, गदिष्यतः, गदिष्यन्ति। गदिष्यसि, गदिष्यथः, गदिष्यथ। गदिष्यामि, गदिष्यावः, गदिष्यामः। **लोट्**- गदतु-गदतात्, गदताम्, गदन्तु। गद-गदतात्, गदतम्, गदत, गदानि, गदाव, गदाम। **लङ्**- अगदत्, अगदताम्, अगदन्। अगदः, अगदतम्, अगदत। अगदम्, अगदाव, अगदाम। **विधिलिङ्**- गदेत्, गदेताम्, गदेयुः। गदेः, गदेतम्, गदेत। गदेयम्, गदेव, गदेम। **आशीर्लिङ्**- गद्यात्, गद्यास्ताम्, गद्यासुः। गद्याः, गद्यास्तम्, गद्यास्त। गद्यासम्, गद्यास्व, गद्यास्म।

५५७- **अतो हलादेर्लघोः**। हल् आदौ यस्य स हलादिः, तस्य हलादेः। अतः षष्ठ्यन्तं, हलादेः षष्ठ्यन्तं, लघोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **नेटि** से **इटि**, **ऊर्णोतेर्विभाषा** से **विभाषा** और **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति होती है।

हलादि धातु के लघुसंज्ञक अकार के स्थान पर विकल्प से वृद्धि होती है। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से प्राप्त वृद्धि का **नेटि** से निषेध प्राप्त था, उसे भी बाधकर यह सूत्र इट् आगम आदि में हो ऐसे सिच् के परे रहने पर हलादि धातु में विद्यमान ह्रस्व अकार की विकल्प से वृद्धि का विधान करता है।

अगादीत्, अगदीत्। गद् से लुङ्, अट् का आगम, तिप्, **अगद् ति** बना। च्लि, उसके स्थान पर सिच्, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम करके **अगद् इस् ति** बना है। ति में इकार की **इतश्च** से इत्संज्ञा और लोप करके **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से त् को ईट् का आगम करके **अगद्+इस्+ईत्** बना है। ऐसी स्थिति में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से प्राप्त वृद्धि का **नेटि** से निषेध प्राप्त था, उसे भी बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि हुई। **अगाद्+इस्+ईत्** बना, **इट ईटि** से सकार का लोप, सवर्णदीर्घ आदि करके वर्णसम्मेलन करने पर **अगादीत्** ऐसा रूप बनता है। वृद्धि न होने के पक्ष **अगदीत्** ही रहेगा। इस प्रकार गद् धातु के लुङ् लकार में दो-दो रूप बनते हैं।

लुङ् के वृद्धिपक्ष में- अगादीत्, अगादिष्टाम्, अगादिषुः। अगादीः, अगादिष्टम्, अगादिष्ट। अगादिषम्, अगादिष्व, अगादिष्म।

लुङ्- वृद्धि के अभाव के पक्ष में- अगदीत्, अगदिष्टाम्, अगदिषुः। अगदीः, अगदिष्टम्, अगदिष्ट। अगदिषम्, अगदिष्व, अगदिष्म।

लृङ् लकार में- अगदिष्यत्, अगदिष्यताम्, अगदिष्यन्। अगदिष्यः, अगदिष्यतम्, अगदिष्यत। अगदिष्यम्, अगदिष्याव, अगदिष्याम।

णद अव्यक्ते शब्दे। णद् धातु **अस्पष्ट शब्द करना** अर्थ में है। दकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है। णकार के स्थान पर **णो नः** से नकारादेश होकर **नद्** बन जाता है।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४५८. णो नः ६।१।६५॥

धात्वादेर्णस्य नः। **णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः।**

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४५९. उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः।

प्रणदति। प्रणिनदति। नदति। ननाद।

...

४५८- **णो नः**। णः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धात्वादेः षः सः** से **धात्वादेः** की अनुवृत्ति आती है।

धातु के आदि में विद्यमान णकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

इस तरह सब णकारादि धातु नकारादि बन जाते हैं। धातु के आदि में स्थित णकार को ही नकार आदेश होता है, बीच में या अन्त में विद्यमान णकार को नहीं। अतः भण्, क्वण्, अण् आदि धातुओं के णकार को नत्व नहीं होगा।

णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः। नर्दश्च नाटिश्च नाथ् च नाध् च नन्द च नक्क च नॄश्च नृत् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो नर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः, न नर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः, अनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः। द्वन्द्वसमास करके नञ् समास किया गया। अतः इतने धातुओं का निषेध है अर्थात् **नर्द्, नाटि, नाथ्, नाध्, नन्द, नक्क्, नॄ और नृत् इन धातुओं को छोड़कर शेष नकारादि दीखने वाली धातुएँ णोपदेश हैं** अर्थात् पहले णकारादि हैं और बाद में नकारादि बन जाती हैं।

यद्यपि धातुपाठ में णोपदेश और नोपदेश धातुओं का ज्ञान अच्छी तरह से हो सकता है तथापि यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रयोगदशा में तो दोनों धातु के एक जैसे रूप होते हैं, क्योंकि णकारादि धातु भी **णो नः** से नकारादि बन जाते हैं। अतः यह कैसे पता चले कि कौन सा धातु उपदेश अवस्था में णोपदेश अर्थात् णकारादि था और कौन सा धातु नोपदेश अर्थात् नकारादि था? इस शंका के समाधान के लिए मूल में यह लिखा गया कि नद् आदि आठ धातुओं को छोड़कर शेष सभी नकारादि रूप बनने वाले धातु णोपदेश हैं। **णद अव्यक्ते शब्दे** यह धातु उक्त आठ धातुओं में नहीं आता, अतः यह णोपदेश है। णोपदेश होने का फल आगे स्पष्ट होगा।

उक्त आठ धातुएँ हैं- **नर्द शब्दे**, भ्वादिः, **नट अवस्यन्दने**, चुरादिः, **नाथृ नाधृ याच्ञादौ** भ्वादिः, **टुनदि समृद्धौ**, भ्वादिः, **नक्क नाशने**, चुरादिः, **नॄ नये**, क्र्यादिः, **नृती गात्रविक्षेपे** दिवादिः।

४५९- **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य**। न समासः असमासः, तस्मिन् असमासे, नञ्तत्पुरुषः। णः उपदेशे यस्य स णोपदेशः, तस्य णोपदेशस्य, षष्ठीतत्पुरुषः। उपसर्गात् पञ्चम्यन्तम्, असमासे सप्तम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, णोपदेशस्य षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **रषाभ्यां नो णः, अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** और **उपसर्गात्** की अनुवृत्ति ऊपर से आ रही है।

उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकार आदेश होता है।

एत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४६०. अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं, तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्त्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि। नेदतुः। नेदुः।

....

प्रणदति। प्र-पूर्वक **णद्** धातु से **प्रणदति** बनता है। इसके पहले **नदति** बनाना जरूरी है।

नदति। णद धातु में अकार की इत्संज्ञा और **णो नः** से णकार के स्थान पर नकारादेश करने के बाद **नद्** बन जाता है। उससे लट्, तिप्, शप्, वर्णसम्मेलन करके **नदति** सिद्ध हो जाता है। **नदति, नदतः, नदन्ति। नदसि, नदथः, नदथ। नदामि, नदावः, नदामः। प्र उपसर्ग पूर्वक णद् धातु** से भी यही प्रक्रिया करने पर **प्र+नदति** बना। णत्व के लिए निमित्त **प्र** में रेफ है, अतः **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से नदति के नकार को णकार होकर **प्रणदति** सिद्ध हुआ।

प्रणिनदति। प्र और **नि** इन दो उपसर्गों के लगने से **प्रनि+नदति** बना। **नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च** से द्वितीय उपसर्गस्थ नि के नकार को णत्व होकर **प्रणिनदति** सिद्ध हुआ। यहाँ धातु के नकार को **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से इस कारण णत्व नहीं हुआ क्योंकि उपसर्ग में स्थित निमित्त **प्र** के रेफ से धातु नकार के बीच में नि इस उपसर्ग के नकार का व्यवधान है। णत्व के लिए निमित्त और निमित्ती के बीच में यदि व्यवधान हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् का ही व्यवधान हो सकता है, अन्य वर्णों का नहीं।

ननाद। लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, **अचो ञ्णिति** से उपधा की वृद्धि करके **ननाद** की सिद्धि होती है।

४६०- **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि।** एकः शब्दोऽसहायवाची। एकौ असंयुक्तौ हलौ, तयोर्मध्यः एकहल्मध्यस्तत्र। आदेशः आदिर्यस्य स आदेशादिः, न आदेशादिरनादेशादिस्तस्य। अतः षष्ठ्यन्तम्, एकहल्मध्ये सप्तम्यन्तम्, अनादेशादेः षष्ठ्यन्तं, लिटि सप्तम्यन्तम्। **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **किति** और **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से **एत्** तथा **अभ्यासलोपश्च** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

यहाँ **लिटि** की आवृत्ति होती है। एक में निमित्त सप्तमी है जो **अनादेशादेः** के एकादेश **आदेशादेः** के साथ अन्वित होता है जिससे अर्थ बनता है- **लिट् को निमित्त मान कर आदेश न हुआ हो।** दूसरा **लिटि** यह पद **किति** का विशेष्य है। **अङ्गस्य** में अवयव षष्ठी है।

लिट् लकार को निमित्त मानकर आदेश आदि न हुआ हो ऐसे अङ्ग के असंयुक्त हलों के मध्य में स्थित अत् अर्थात् ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश और अभ्यास का लोप होता है, कित् लिट् के परे होने पर।

उसी धातु में यह सूत्र लगेगा जहाँ लिट् को निमित्त मानकर कोई आदेश न हुआ हो और जो धातु का अवयव अकार हो, जो असंयुक्त अर्थात् संयोगसंज्ञा से रहित हलों के बीच में बैठा हो। इस सूत्र के कार्य को **एत्वाभ्यासलोप** से जाना जाता है। इस सूत्र की प्रवृत्ति में कारण हैं- १. लिट् को निमित्त मानकर धातु के स्थान पर कोई आदेश न हुआ हो, २.

एत्वाभ्यासविधायकं द्वितीयं सूत्रम्

४६१. थलि च सेटि ६।४।१२१॥

प्रागुक्तं स्यात्।

नेदिथ। नेदथुः। नेद। ननाद, ननद। नेदिव। नेदिम।नदिता। नदिष्यति। नदतु। अनदत्। नदेत्। नद्यात्। अनादीत्, अनदीत्। अनदिष्यत्।

टुनदि समृद्धौ।८॥

....

धातु का अवयव ह्रस्व अकार ऐसा हो जो दोनों ओर से एक एक अर्थात् असंयुक्त हल् से घिरा हो, ३. धातु का अवयव ह्रस्व अकार हो और ४. कित् लिट् परे हो। णकारादि धातुओं को नकार आदेश लिट् को निमित्त मानकर नहीं होता अपितु लकार के आने के पहले ही होता है, अतः कोई बाधा नहीं है। तिप्, सिप् और मिप् में पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः पित् है। पित् होने के कारण **असंयोगाल्लिट् कित्** से वह कित् नहीं बनता है। अतः सूत्र तिप्, सिप्, मिप् में नहीं लगता है, शेष में लगेगा।

नेदतुः। नेदुः। णद से नद् बनने के बाद लिट्, तस्, अतुस्, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष होकर **न नद् अतुस्** बना है। लिट्-लकार के स्थान पर हुए अतुस् को **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव हुआ। अब सूत्र लगा **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि।** यहाँ पर लिट् लकार को आश्रय मानकर भिन्नरूप का कोई आदेश नहीं हुआ है। कित् लिट् अतुस् के परे रहते धातु में संयोग नहीं है। अतः अभ्याससंज्ञक **न** का लोप और द्वितीय **नद** के नकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **नेद्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वसिसर्ग हुआ **नेदतुः**। इसी प्रकार झि प्रत्यय लाकर उसके स्थान पर उस् आदेश करके एत्व और अभ्यासलोप करने पर **नेदुः** भी बन जायेगा।

५६१- थलि च सेटि। इटा सहितः सेट्, तस्मिन्। थलि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, सेटि सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** यह सम्पूर्ण सूत्र अनुवृत्त होकर आता है।

लिट् लकार को निमित्त मानकर आदेश आदि न हुआ हो ऐसे अङ्ग के असंयुक्त हलों के मध्य में स्थित अत् अर्थात् ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश और अभ्यास का लोप होता है, इट् से युक्त थल् के परे होने पर।

इसका अर्थ भी पूर्व सूत्र के समान है किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह कित् लिट् के परे रहने पर कार्य करता है और यह इट् से युक्त **थल्** के परे होने पर ही लगता है। इस सूत्र की आवश्यकता इस लिए पड़ी कि पूर्वसूत्र से थल् के परे रहने पर प्राप्त नहीं था, क्योंकि अपित् लिट् को कित् किया जाता है और कित् के परे होने पर ही वह लगता है। स्थानिवद्भाव से थल् भी पित् होता है। अतः किद्वद्भाव नहीं हो सकता।

नेदिथ। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप्, उसके स्थान पर थल्, अनुबन्धलोप, द्वित्व आदि कार्य करके **न नद् थ** में **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम करके **न नद् इथ** बना लिया गया। अब **थलि च सेटि** से एत्व और अभ्यास का लोप हुआ **नेद् इथ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **नेदिथ।**

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४६२. आदिर्ञिटुडवः १।३।५।

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

४६३. इदितो नुम् धातोः ७।१।५८।।

नन्दति। ननन्द। नन्दिता। नन्दिष्यति। नन्दतु। अनन्दत्। नन्देत्। नन्द्यात्। अनन्दीत्। अनन्दिष्यत्। **अर्च पूजायाम्।।९।।** अर्चति।

थस्, थ, वस्, मस् में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्व और अभ्यासलोप, वस् मस् में इट् आगम आदि कार्य होंगे। मिप् में **णलुत्तमो वा** लगाकर **ननाद-ननद** ये रूप बन जायेंगे। इस प्रकार से नद (णद) धातु के लिट् लकार में निम्नानुसार रूप बनेंगे। **ननाद, नेदतुः, नेदुः। नेदिथ, नेदथुः, नेद। ननाद-ननद, नेदिव, नेदिम।**

अब आप लुट् से लृङ् लकार तक के सारे रूपों की सिद्धि स्वयं करें। स्मरण रहे कि लुङ्-लकार में **अतो हलादेर्लघोः** से वृद्धि विकल्प से होकर **अनादीत्** और **अनदीत्** दो रूप बनेंगे। अन्यत्र गद्-धातु के समान ही रूप होंगे। हम यहाँ रूपों की तालिका दे रहे हैं, इनकी सिद्धि करना आपका काम है। यदि अभी तक आपने ठीक से प्रक्रिया को लगाया है तो कोई परेशानी नहीं आयेगी।

लुट् नदिता, नदितारौ, नदितारः। नदितासि, नदितास्थः, नदितास्थ, नदितास्मि, नदितास्वः, नदितास्मः। **लृट्**- नदिष्यति, नदिष्यतः, नदिष्यन्ति। नदिष्यसि, नदिष्यथः, नदिष्यथ। नदिष्यामि, नदिष्यावः, नदिष्यामः। **लोट्**- नदतु-नदतात्, नदताम्, नदन्तु। नद-नदतात्, नदतम्, नदत। नदानि, नदाव, नदाम। **लङ्**- अनदत्, अनदताम्, अनदन्। अनदः, अनदतम्, अनदत। अनदम्, अनदाव, अनदाम। **विधिलिङ्**- नदेत्, नदेताम्, नदेयुः। नदेः, नदेतम्, नदेत, नदेयम्, नदेव, नदेम। **आशीर्लिङ्**- नद्यात्, नद्यास्ताम्, नद्यासुः। नद्याः, नद्यास्तम्, नद्यास्त। नद्यासम्, नद्यास्व, नद्यास्म। **लुङ्- वृद्धिपक्ष**- अनादीत्, अनादिष्टाम्, अनादिषुः। अनादीः, अनादिष्टम्, अनादिष्ट। अनादिषम्, अनादिष्व, अनादिष्म। **लुङ्- वृद्धि के अभाव पक्ष में**- अनदीत्, अनदिष्टाम्, अनदिषुः। अनदीः, अनदिष्टम्, अनदिष्ट। अनदिषम्, अनदिष्व, अनदिष्म। **लृङ्**- अनदिष्यत्, अनदिष्यताम्, अनदिष्यन्। अनदिष्यः, अनदिष्यतम्, अनदिष्यत। अनदिष्यम्, अनदिष्याव, अनदिष्याम।

टुनदि समृद्धौ। टुनदि यह धातु **समृद्धि होना** अर्थ में है।

४६२- आदिर्ञिटुडवः। ञिश्च टुश्च डुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ञिटुडवः। आदिः प्रथमान्तं, ञिटुडवः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **उपदेशे** और **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में धातु के आदि में विद्यमान ञि, टु और डु इत्संज्ञक होते है।

उपदेश में **ञि, टु, डु** धातुओं में ही मिलते हैं। अतः अर्थ में **धातोः** कहा गया। यहाँ पर उपदेश अवस्था में पठित **टु** है, अतः उसकी इस सूत्र से इत्संज्ञा हुई तो उसका **तस्य**

लोपः से लोप होकर **नदि** बचा। दकारोत्तरवर्ती इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप हुआ तो **नद्** बचा। इसके बाद आगे की प्रक्रिया होती है।

४६३- इदितो नुम् धातोः। इत् इत् यस्य स इदित्, तस्य इदितः, बहुव्रीहिः। इदितः षष्ठ्यन्तं, नुम् प्रथमान्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

इदित् धातु को नुम् का आगम होता है।

इत् अर्थात् ह्रस्व इकार, उसकी इत्संज्ञा जिस धातु में हुई है वह धातु इदित् हुआ। ऐसे धातु से नुम् का आगम करता है यह सूत्र। जैसे **टुनदि समृद्धौ** इस धातु में पहले टु की **अदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा हुई और इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई, केवल **नद्** बचा। इकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह धातु **इदित्** हुआ। अतः इस सूत्र से **नुम्** का आगम हुआ। **नुम्** में **मकार** और **इकार** इत्संज्ञक हैं, केवल **न्** ही बचा है। मकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह **मित्** है। अतः **मिदचोऽन्त्यात् परः १.१.४७** के नियम से मित् आगम अन्त्य अच् के बाद होता है तो अन्त्य अच् है नकारोत्तरवर्ती अकार, उसके बाद नुम् वाला नकार बैठा, **नन्द्** बना। अब **नन्द्** को ही धातु मानकर कार्य करेंगे।

नन्दति। **टुनदि** में **टु** की इत्संज्ञा और इकार की इत्संज्ञा तथा दोनों का लोप करके **नद्** बचा। **इदितो नुम्धातोः** से नुम् का आगम होकर **नन्द्** बना है। अब इससे लट्, तिप्, शप् आदि करके **नन्द्, अ ति** बन जायेगा। वर्णसम्मेलन होकर **नन्दति** बन जाता है।

लिट् में नन्द् बनके बाद- नन्द् लिट्, नन्द् तिप्, नन्द् णल्, नन्द् अ, नन्द् नन्द् अ, न नन्द् अ, वर्णसम्मेल करके **ननन्द** बनेगा। **नन्द्** संयुक्त है अर्थात् ननृद् में संयोगसंज्ञा होने के कारण एत्वाभ्यासलोप नहीं हुआ।

संयोग के परे होने के कारण ह्रस्व न के अकार की गुरुसंज्ञा हुई है। लघुसंज्ञक न होने से **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि भी नहीं होगी। इस प्रकार से **नन्द** (टुनदि) धातु के रूप निम्नानुसार बनते हैं-

लट्- नन्दति, नन्दतः, नन्दन्ति। नन्दसि, नन्दथः, नन्दथ। नन्दामि, नन्दावः नन्दामः।
लिट्- ननन्द, ननन्दतुः, ननन्दुः। ननन्दिथ, ननन्दथुः, ननन्द। ननन्द, ननन्दिव, ननन्दिम।
लुट्- नन्दिता, नन्दितारौ, नन्दितारः। नन्दितासि, नन्दितास्थः, नन्दितास्थ, नन्दितास्मि, नन्दितास्वः, नन्दितास्मः। **लृट्**- नन्दिष्यति, नन्दिष्यतः, नन्दिष्यन्ति। नन्दिष्यसि, नन्दिष्यथः, नन्दिष्यथ। नन्दिष्यामि, नन्दिष्यावः, नन्दिष्यामः। **लोट्**- नन्दतु-नन्दतात्, नन्दताम्, नन्दन्तु। नन्द-नन्दतात्, नन्दतम्, नन्दत। नन्दानि, नन्दाव, नन्दाम। **लङ्**- अनन्दत्, अनन्दताम्, अनन्दन्। अनन्दः, अनन्दतम्, अनन्दत। अनन्दम्, अनन्दाव, अनन्दाम। **विधिलिङ्**- नन्देत्, नन्देताम्, नन्देयुः। नन्देः, नन्देतम्, नन्देत। नन्देयम्, नन्देव, नन्देम। **आशीर्लिङ्**- नन्द्यात्, नन्द्यास्ताम्, नन्द्यासुः। नन्द्याः, नन्द्यास्तम्, नन्द्यास्त। नन्द्यासम् नन्द्यास्व, नन्द्यास्म। **लुङ्**- अनन्दीत्, अनन्दिष्टाम्, अनन्दिषुः। अनन्दीः, अनन्दिष्टम्, अनन्दिष्ट। अनन्दिषम्, अनन्दिष्व, अनन्दिष्म। **लृङ्**- अनन्दिष्यत्, अनन्दिष्यताम्, अनन्दिष्यन्। अनन्दिष्यः, अनन्दिष्यतम्, अनन्दिष्यत। अनन्दिष्यम्, अनन्दिष्याव, अनन्दिष्याम।

अर्च पूजायाम्। अर्च धातु **पूजा करना** अर्थ में है। चकारोत्तरवर्ती **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। **अर्च्** बचता है।

अर्चति। अर्च् से लट्, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप करके **अर्च्+अ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अर्चति** सिद्ध हुआ। **अर्च् धातु के लट् के रूप**- अर्चति, अर्चतः, अर्चन्ति। अर्चसि, अर्चथः, अर्चथ। अर्चामि, अर्चावः, अर्चामः।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४६४. तस्मान्नुड् द्विहलः ७।४।७१॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात्परस्य नुट् स्यात्। आनर्च। आनर्चतुः। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत्। अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्।
व्रज गतौ॥१०॥ व्रजति। वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्।

....

४६४- **तस्मान्नुड् द्विहलः**। द्वौ हलौ यस्य स द्विहल्, तस्य द्विहलः। तस्मात् पञ्चम्यन्तं, नुट् प्रथमान्तं, द्विहलः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

दो हल् वाले धातु के दीर्घीभूत अभ्यास के आकार से परे अङ्ग को नुट् का आगम होता है।

अतः आदेः के बाद इस सूत्र को पढ़ा गया है। अतः इस सूत्र के **तस्मात्** इस सर्वनामपद से पूर्व के प्रसंग को लिया जाता है। पूर्व सूत्र से अकार को दीर्घ होकर के आकार बन जाता है तो तस्मात् का अर्थ भी दीर्घीभूत आकार लिया जायेगा। नुट् में उकार और टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है और केवल **न्** मात्र शेष बचता है।

आनर्च। अर्च् से लिट्, तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होकर **अर्च्+अ** बना। अर्च् को द्वित्व करके हलादिशेष करने पर **अअर्च्+अ** बना। अभ्यास के अकार को **अत आदेः** से दीर्घ हो गया **आअर्च्+अ** बना। उस दीर्घीभूत आकार से परे **अर्च्** को **तस्मान्नुड् द्विहलः** से नुट् का आगम हुआ। नुट् में उकार और टकार की इत्संज्ञा हुई। टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से आकार से परे अर्च् के आदि में बैठा- **आ+न्+अर्च्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **आनर्च** सिद्ध हुआ। इस तरह पूरे लिट् लकार में नुट् होकर रूप सिद्ध होते हैं। **आनर्चतुः** आदि में एत्व और अभ्यासलोप इस लिए नहीं हुआ कि अर्च् का अकार हल् के बीच में भी नहीं है और धातु में संयोग भी है।

लिट्- आनर्च, आनर्चतुः, आनर्चुः। आनर्चिथ, आनर्चथुः, आनर्च। आनर्च, आनर्चिव, आनर्चिम। **लुट्**- अर्चिता, अर्चितारौ, अर्चितारः। अर्चितासि, अर्चितास्थः, अर्चितास्थ। अर्चितास्मि, अर्चितास्वः, अर्चितास्मः। **लृट्**- अर्चिष्यति, अर्चिष्यतः, अर्चिष्यन्ति। अर्चिष्यसि, अर्चिष्यथः, अर्चिष्यथ। अर्चिष्यामि, अर्चिष्यावः, अर्चिष्यामः। **लोट्**- अर्चतु-अर्चतात्, अर्चताम्, अर्चन्तु। अर्च-अर्चतात्, अर्चतम्, अर्चत। अर्चानि, अर्चाव, अर्चाम।

अजादि होने के कारण लङ्, लुङ्, लृङ् में अट् की जगह आट् का आगम होता है और **आटश्च** से वृद्धि होती है जिससे **आर्चत्, आर्चीत्, आर्चिष्यत्** आदि बनते हैं।
लङ्- आर्चत्, आर्चताम्, आर्चन्। आर्चः, आर्चतम्, आर्चत। आर्चम्, आर्चाव, आर्चाम।
विधिलिङ्- अर्चेत्, अर्चेताम्, अर्चेरन्। अर्चेः, अर्चेतम्, अर्चेत। अर्चेयम्, अर्चेव, अर्चेम।
आशीर्लिङ्- अर्च्यात्, अर्च्यास्ताम्, अर्च्यासुः। अर्च्याः, अर्च्यास्तम्, अर्च्यास्त। अर्च्यासम्, अर्च्याव, अर्च्याम। **लुङ्**- आर्चीत्, आर्चिष्टाम्, आर्चिषुः। आर्चीः, आर्चिष्टम्, आर्चिष्ट। आर्चिषम्, आर्चिष्व, आर्चिष्म। **लृङ्**- आर्चिष्यत्, आर्चिष्यताम्, आर्चिष्यन्। आर्चिष्यः, आर्चिष्यतम्, आर्चिष्यत। आर्चिष्यम्, आर्चिष्याव, आर्चिष्याम।

व्रज गतौ। व्रज धातु **गति** अर्थ में है। जकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४६५. वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३॥

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत्।

कटे वर्षावरणयोः॥११॥ कटति। चकाट। चकटतुः। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्। कट्यात्।

....

और **व्रज्** शेष रहता है। इससे भी **व्रजति** आदि रूप बनते हैं। लिट् में **व्रज्** को द्वित्व। **व्रजति**= जाता है। **लट्**- व्रजति, व्रजतः, व्रजन्ति। व्रजसि, व्रजथः, व्रजथ। व्रजामि, व्रजावः, व्रजामः। **लिट्**- वव्राज, वव्रजतुः, वव्रजुः। वव्रजिथ, वव्रजथुः, वव्रज। वव्राज-वव्रज, वव्रजिव, वव्रजिम। **लुट्**- व्रजिता, व्रजितारौ, व्रजितारः। व्रजितासि, व्रजितास्थः, व्रजितास्थ। व्रजितास्मि, व्रजितास्वः, व्रजितास्मः। **लृट्**- व्रजिष्यति, व्रजिष्यतः, व्रजिष्यन्ति। व्रजिष्यसि, व्रजिष्यथः, व्रजिष्यथ। व्रजिष्यामि, व्रजिष्यावः, व्रजिष्यामः। **लोट्**- व्रजतु-व्रजतात्, व्रजताम्, व्रजन्तु। व्रज-व्रजतात्, व्रजतम्, व्रजत। व्रजानि, व्रजाव, व्रजाम। **लङ्**- अव्रजत्, अव्रजताम्, अव्रजन्। अव्रजः, अव्रजतम्, अव्रजत। अव्रजम्, अव्रजाव, अव्रजाम। **विधिलिङ्**- व्रजेत्, व्रजेताम्, व्रजेयुः। व्रजेः, व्रजेतम्, व्रजेत। व्रजेयम्, व्रजेव, व्रजेम। **आशीर्लिङ्**- व्रज्यात्, व्रज्यास्ताम्, व्रज्यासुः। व्रज्याः, व्रज्यास्तम्, व्रज्यास्त। व्रज्यासम्, व्रज्यास्व, व्रज्यास्म।

४६५- वदव्रजहलन्तस्याचः। वदश्च व्रजश्च हलन्तश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो वदव्रजहलन्तम्, तस्य वदव्रजहलन्तस्य। वदव्रजहलन्तस्य षष्ठ्यन्तम्, अचः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिचि वृद्धिः परस्मैदेषु** यह पूरा सूत्र आता है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

वद्, व्रज् और हलन्त धातुओं के अङ्ग के अवयव अच् की वृद्धि होती है, सिच् आदि में हो ऐसे परस्मैपद के परे होने पर।

इस सूत्र में प्रश्न यह आता है कि वद् और व्रज् धातु भी हलन्त ही हैं तो **हलन्तस्याचः** से काम चल जाता, वद् और व्रज् धातुओं का पृथक् ग्रहण क्यों किया गया? उत्तर यह है कि केवल हलन्त मात्र से इनका ग्रहण करने से इसे बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि होती। उसे रोकने के लिए इन धातुओं का पृथक् ग्रहण किया गया है। विशेष रूप से विधानसामर्थ्यात् वैकल्पिक वृद्धि को बाधकर नित्य से वृद्धि होती है।

अव्राजीत्। व्रज् से लुङ्, अट् का आगम, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर च्लि, सिच् आदेश, अनुबन्धलोप, वलादिलक्षण इट् आगम, **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से दीर्घ ईट् का आगम करने पर **अव्रज्+इस्+ईत्** बना है। ऐसी स्थिति में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से व्रज् में अच् अकार है, उसकी वृद्धि हो गई- **अव्राज्+इस्+ईत्** बना। **इट ईटि** से सकार का लोप, **सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः** इस वार्तिक की सहायता से **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ करके बन गया- **अव्राजीत्**।

वदव्रजहलन्तस्याचः से वृद्धि लुङ् के सभी रूपों में होगी किन्तु ईट् का आगम तिप्, सिप् में ही होता है, क्योंकि विद्यमान सिच् से परे अपृक्त हल् **तिप्** और **सिप्** में ही मिलेगा। अन्यत्र केवल इट् आगम होगा और सकार के स्थान पर षत्व होकर यदि आगे तवर्ग है तो ष्टुत्व होगा और अच् वर्ण है तो वणसम्मेलन होगा। इस प्रकार से रूप बनेंगे- अव्राजीत्, अव्राजिष्टाम्, अव्राजिषुः। अव्राजीः, अव्राजिष्टम्, अव्राजिष्ट, अव्राजिषम्, अव्राजिष्व, अव्राजिष्म।

वृद्धिनिषेधकं विधिसूत्रम्

४६६. ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५॥

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि। अकटीत्। अकटिष्यत्। **गुपू** रक्षणे॥१२॥

....

लृङ् में- अव्रजिष्यत्, अव्रजिष्यताम्, अव्रजिष्यन्। अव्रजिष्यः, अव्रजिष्यतम्, अव्रजिष्यत। अव्रजिष्यम्, अव्रजिष्याव, अव्रजिष्याम।

अब तक आप समझ गए होंगे कि यदि भू धातु में प्रयोग किए गए सभी सूत्र एवं भूधातु की सारी प्रक्रिया तैयार हो जाए तो आगे अन्य धातुओं की प्रक्रिया में सरलता होती है अर्थात् प्रक्रिया समझ में आती है, अन्यथा आगे के धातुओं में कठिनाई आयेगी।

कटे वर्षावरणयोः। कटे धातु **बरसना** और **ढकना** अर्थों में है। एकार की इत्संज्ञा होती है, अतः यह **एदित्** कहलाता है।

कटति। कटे में अनुबन्धलोप करके **कट्** बनने के बाद लट्, तिप्, शप् करके **कटति, कटतः कटन्ति** आदि रूप बनते हैं। लिट् में तिप्, णल्, अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिशेष करके **ककट्+अ**, अभ्यास के ककार को **कुहोश्चुः** से चकार और उपधावृद्धि करके **चकाट** बनता है। आगे **चकटतुः, चकटुः, चकटिथ** आदि बनते हैं। लुट् में **कटिता, कटितारौ, कटितारः** आदि, लृट् में- **कटिष्यति, कटिष्यतः, कटिष्यन्ति** आदि, लोट् में **कटतु-कटतात्, कटताम्, कटन्तु** आदि, लुङ् में **अकटत्, अकटताम्, अकटन्** आदि, विधिलिङ् में- **कटेत्, कटेताम्, कटेयुः** आदि, आशीर्लिङ् में- **कट्यात्, कट्यास्ताम्, कट्यासुः** आदि रूप बनते हैं।

४६६- **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्**। ह् च, म् च य् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ह्म्यः, ह्म्यः अन्ते येषां ते ह्म्यान्ताः, एत् इत् यस्य स एदित्। ह्म्यान्ताश्च, क्षणश्च, श्वसश्च, जागृ च, णिश्च, श्विश्च, एदित् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदितः, तेषाम् ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्। ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् षष्ठ्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** पूरे सूत्र की तथा **नेटि** से **न** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

इडादि सिच् के परे होने पर हकारान्त, मकारान्त और यकारान्त धातु तथा क्षण्, श्वस्, जागृ, णिच्प्रत्ययान्त धातु, श्वि एवं एदित् धातु रूप अङ्गों की वृद्धि नहीं होती है

यह सूत्र **वदव्रलहलन्तस्याचः** से नित्य से प्राप्त और **अतो हलादेर्लघोः** से विकल्प से प्राप्त वृद्धि का निषेध करता है। यहाँ प्रसंग में एदित् धातु कट् है। अन्य धातुओं का उदाहरण तत्तत्प्रकरणों में देखेंगे।

अकटीत्। कट् से लुङ् लकार, अट् का आगम, तिप्, इकार का लोप, शप् प्राप्त, उसे बाधकर च्लि और उसके स्थान पर सिच् आदेश अनुबन्धलोप, इट् का आगम, ईट् का आगम करके **अकट्+इ+स्+ई+त्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से नित्य से प्राप्त वृद्धि को बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से विकल्प से प्राप्त थी, उसका **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** से निषेध होने पर **इट ईटि** से सकार का लोप और

स्वार्थे आय्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

४६७. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ३।१।२८॥

एभ्य आयः प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे।

धातुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४६८. सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२॥

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः। धातुत्वाल्लडादयः। गोपायति।

....

सवर्णदीर्घ करके **अकट्+ईत्**, वर्णसम्मेलन होकर **अकटीत्** सिद्ध होता है। आगे **अकटिष्टाम्, अकटिषुः, अकटीः, अकटिष्टम्, अकटिष्ट, अकटिषम्, अकटिष्व, अकटिष्म।** लृङ्- **अकटिष्यत्, अकटिष्यताम्, अकटिष्यन्** आदि।

गुपू रक्षणे। गुपू धातु **रक्षा करना** अर्थ में है। ऊकार की इत्संज्ञा होती है, **गुप्** बचता है। **ऊदित्** का फल वैकल्पिक इट् आदि करना है, जो आगे जाकर स्पष्ट होता है। **गुप्** से स्वार्थ में **आय** प्रत्यय होता है।

४६७- **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः।** गुपूश्च धूपश्च विच्छिश्च पणिश्च पनिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गुपूधूपविच्छिपणिपनयः, तेभ्यो गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः। गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, आयः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से वचनविपरिणाम करके **धातुभ्यः** की अनुवृत्ति आती है।

गुपू, धूप, विच्छि, पणि और पनि इन धातुओं से स्वार्थ में आय-प्रत्यय होता है।

आय हलन्त नहीं, अदन्त है। **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।** किसी अर्थ विशेष को लिए विना अर्थात् अर्थनिर्देश के विना किये जाने वाले प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं अर्थात् जिससे प्रत्यय हो रहा है, उसका जो अर्थ है, उसी अर्थ को बताते हैं, किसी विशेष अर्थ को नहीं। प्रकृत सूत्र से भी आय-प्रत्यय स्वार्थ में ही हुआ है। अतः धातुओं से किये गये आय का कोई विशेष अर्थ नहीं है।

गुप् से आय प्रत्यय होने के बाद गुप्+आय बना। धातु से विहित होने के कारण **आर्धधातुकं शेषः** से आय की आर्धधातुकसंज्ञा होती है और **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत उकार को गुण होकर ओकार होता है जिससे **गोप्+आय=गोपाय** बनता है। इसकी पुनः अग्रिम सूत्र से धातुसंज्ञा होती है।

४६८- **सनाद्यन्ता धातवः।** सन् आदौ येषां ते सनादयः, सनादयः अन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः। सनाद्यन्ताः प्रथमान्तं, धातवः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

'कमेर्णिङ्' से 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' तक जो बारह प्रत्यय कहे गये हैं, उन सन् आदि प्रत्यय जिनके अन्त में लगे हों, वे धातुसंज्ञक होते हैं।

अष्टाध्यायी के क्रम में सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ में होने वाला क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ् ये सनादि हैं।

कहा भी गया है-

सन्-क्यच्-काम्यच्-क्यङ्-क्यषोऽथाचारक्विब्-णिज्-यङस्तथा।

वैकल्पिकायाद्यादेशविधायकं सूत्रम्

४६९. आयादय आर्धधातुके वा ३।१।३१॥

आर्धधातुकविवक्षायाम् आयादयो वा स्युः।

वार्तिकम्-**कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि।**

आस्कासोराम्विधानान्मस्य नेत्त्वम्।

....

यगाय ईयङ् णिङ् चेति द्वादशामी सनादयः॥

उपर्युक्त प्रत्ययों के लगने के बाद प्रत्ययान्त समुदाय की **सनाद्यन्ता धातवः** से पुनः धातुसंज्ञा हो जाती है।

संख्या	प्रत्यय	प्रत्ययविधायक सूत्र	प्रत्ययान्त रूप
१.	सन्	**गुप्तिज्किद्भ्यः सन्** आदि	जुगुप्सते।
२.	क्यच्	**सुप आत्मनः क्यच्** आदि	पुत्रीयति।
३.	काम्यच्	**काम्यच्च** आदि	पुत्रकाम्यति।
४.	क्यङ्	**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** आदि	श्येनायते।
५.	क्यष्	**लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्**	लोहितायते।
६.	आचारार्थ क्विप्-	**सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः**	कृष्णति।
७.	णिच्	**सत्यापपाशरूपवीणा.....णिच्**	चोरयति।
८.	यङ्	**धातोरेकाचो हलादेःक्रियासमभिहारे०**	बोभूयते।
९.	यक्	**कण्ड्वादिभ्यो यक्**	कण्डूयति।
१०.	आय	**गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः**	गोपायति।
११.	ईयङ्	**ऋतेरीयङ्**	ऋतीयते।
१२.	णिङ्	**कमेर्णिङ्**	कामयते।

इन बारह प्रत्ययों में क्यष् और ईयङ् का वर्णन **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में नहीं है, शेष दस प्रत्ययों का वर्णन है। यहाँ पर आय-प्रत्यय का प्रसंग है।

गोपायति। गुप् धातु से स्वार्थ में **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः** से **आय** प्रत्यय हुआ, **गुप्+आय** बना। **आय** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और उसके परे होने पर **गुप्** में गकारोत्तरवर्ती उकार की **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण हुआ, **गोप्+आय** बना। वर्णसम्मेलन होकर **गोपाय** बना। **गोपाय** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। धातुसंज्ञा होने से वर्तमान काल में लट् लकार, उसके स्थान पर तिप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, उसमें भी अनुबन्धलोप होकर **गोपाय+अ+ति** बना। **गोपाय+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **गोपाय, गोपाय+ति=गोपायति** सिद्ध हुआ। गोपायति, गोपायतः, गोपायन्ति। गोपायसि, गोपायथः, गोपायथ। गोपायामि, गोपायावः, गोपायामः।

४६९- आयादय आर्धधातुके वा। आय आदौ येषां ते आयादयः। आयादयः प्रथमान्तम्, आर्धधातुके सप्तम्यन्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

आर्धधातुक प्रत्यय की विवक्षा में आय आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

आय आदि में तीन प्रत्यय होते हैं- **आय, ईयङ्** और **णिङ्।** आर्धधातुक की विवक्षा में ये विकल्प से होते हैं। **लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्** और **लृङ्** इन

अल्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४७०. अतो लोपः ६।४।४८॥

आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके।

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

४७१. आमः २।४।८१॥

आमः परस्य लुक्।

....

लकारों में आर्धधातुक मिलता है, क्योंकि क्रमशः लिट्, तासि, स्य, लिङ्, च्लि, स्य की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। उनकी कर्तव्यता हो तो यह सूत्र पहले ही **आय** आदि विकल्प से होने का विधान करता है। इससे प्रत्येक में दो-दो रूप होंगे- एक आय आदि के पक्ष में और एक आय आदि के अभाव में।

कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि। यह वार्तिक है। **कास् और अनेकाच् धातु से आम् प्रत्यय होता है लिट् के परे होने पर।**

यहाँ मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है क्योंकि इस वार्तिक से **आस्** और **कास्** धातुओं से भी आम् का विधान किया गया है। **कास्** धातु से आम् हो और उसके मकार की इत्संज्ञा भी हो तो मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् के बाद ही आम् वाला आकार बैठेगा। **का+आ+स्** बनेगा। सवर्णदीर्घ होकर **कास्** ही बनेगा। अतः आम् का विधान व्यर्थ प्रतीत हुआ। इसी तरह **दयायासश्च** इस सूत्र के द्वारा **आस्** धातु से **आम्** का विधान होता है। यदि वहाँ पर मकार का लोप हो तो **आ+आ+स्**,में सवर्णदीर्घ करके **आस्** ही बनेगा। अतः **आस्** से भी आम् का विधान व्यर्थ हो जायेगा। ये व्यर्थ होकर यह ज्ञापित करते हैं कि इस प्रकरण में आम् प्रत्यय होने के बाद मकार की इत्संज्ञा नहीं होगी। जब मकार की इत्संज्ञा नहीं होगी तो मित् के अभाव में **मिदचोऽन्त्यात्परः** भी नहीं लगेगा और **परश्च** के नियम से आस्, कास्, गोपाय आदि से परे ही आम् होगा।

गोपाय से लिट्, उसके स्थान पर तिप्, उसके स्थान पर णल् आदेश, उसका अनुबन्धलोप करके **गोपाय+अ** बना था। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** से **आम्** करके **गोपाय+आम्+अ** बना। आम् की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है।

४७०- अतो लोपः। अतः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिकोलोपो झलि क्ङिति** से एकदेश **उपदेश** की सप्तमी में परिवर्तित करके अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** का अधिकार है। उसकी दो बार आवृत्ति होती है। **अङ्गस्य** भी का अधिकार है।

आर्धधातुक प्रत्यय के उपदेश के समय जो अदन्त अङ्ग, उसके अन्त्य अत् (ह्रस्व अकार) का लोप हो जाता है आर्धधातुक के ही परे होने पर।

आर्धधातुक के उपदेश के समय अदन्त है **गोपाय** और आर्धधातुक परे है आम्। अतः **गोपाय** के **अकार** का लोप हो जाता है जिससे **गोपाय्+आम्=गोपायाम्+अ** बना।

४७१- आमः। आमः पञ्चम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

कृभ्वस्तीनामनुप्रयोजकं विधिसूत्रम्

४७२. कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३।१।४०॥

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयोज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४७३. उरत् ७।४।६६॥

अभ्यासऋवर्णस्य अत् प्रत्यये। रपरः। हलादिशेषः। वृद्धिः। गोपायाञ्चकार। द्वित्वात् परत्वाद्यणि प्राप्ते-

....

आम् से परे (प्रत्यय) का लुक् होता है।

इस तरह आम् के परे जो लिट् आदि हैं, उनका लुक् हो जाता है। **गोपायाम्+अ** में लिट् लकार सम्बन्धी **अ** के इससे लुक् हो जाने से **गोपायाम्** मात्र शेष रहा है।

४७२- **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि**। कृञ् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनुप्रयुज्यते तिङन्तपदं, लिटि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से विभक्ति बदलकर **आमः** की अनुवृत्ति आती है।

आमन्त धातु से परे लिट् लकार सहित कृ, भू और अस् इन धातुओं का अनुप्रयोग होता है।

कृञ् यह प्रत्याहार है। इसके अन्दर **कृ, भू** और **अस्** ये तीन धातुएँ आती हैं। जिस धातु से आम् का विधान किया गया, उस आमन्त धातु से परे लिट् लकार को साथ में लेकर **कृ, भू** और **अस्** ये तीन धातु बारी-बारी से अनुप्रयुक्त होते हैं अर्थात् इनका प्रयोग किया जाता है। स्मरण रहे कि आमन्त से परे लिट् सम्बन्धी अ का **आमः** से लुक् हो चुका है। अब **कृ, भू** और **अस्** का अनुप्रयोग होगा तो नये लिट् को लेकर ही होगा। **कृ, भू, अस्** के अनुप्रयोग होने पर भी धातु के अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता।

४७३- **उरत्**। उः षष्ठ्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के परे होने पर अभ्यास के ऋवर्ण के स्थान पर अत् आदेश होता है।

अत् इस रूप में आदेश न होकर **ह्रस्व अवर्ण** आदेश है। **अत्** यह तपर-ग्रहण किया गया है। ऋवर्ण के स्थान पर प्राप्त होने के कारण **उरण् रपरः** से रपर होकर **ऋ** के स्थान पर **अर्** आदेश होगा।

अब गोपायाञ्चकार की प्रक्रिया को ध्यान से समझें क्योंकि इस प्रक्रिया की आवश्यकता बहुत्र होती है।

गोपायाञ्चकार। गुप् धातु से लिट् लकार के लाने की इच्छा में **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आय्** से नित्य से प्राप्त आय प्रत्यय को बाधकर **आयादय आर्धधातुके वा** से विकल्प से **आय** हुआ। यहाँ पहले आय होने के पक्ष के ही रूप बनाये जा रहे हैं। जैसा कि पहले भी आप ने आय करने के बाद आर्धधातुकसंज्ञा, उपधागुण आदि प्रक्रिया की, वही प्रक्रिया यहाँ भी अपनाने से **गोपाय** बना। इसकी धातुसंज्ञा करके लिट् लकार आया। उसके स्थान पर तिप्, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर णल् आदेश, उसका भी

अजादेशनिषेधकं विधिसूत्रम्

४७४. द्विर्वचनेऽचि १।१।५९।।

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये।

गोपायाञ्चक्रतुः। गोपायाञ्चक्रुः।

....

अनुबन्धलोप करने पर **गोपाय+अ** बना। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** इस वार्तिक से आम् प्रत्यय, उसकी भी आर्धधातुकसंज्ञा करके **गोपाय** में अकार का **अतो लोपः** से लोप हुआ- **गोपाय्+आम्+अ** बना। **गोपाय्+आम्** में वर्णसम्मेलन होकर **गोपायाम्** बना। गोपायाम् से परे **अ** का **आमः** सूत्र से लुक् हुआ, **गोपायाम्** रह गया। **मान्त कृदन्त** होने प्रातिपदिकसंज्ञा करके आई हुई सु आदि विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ, क्योंकि यह मान्त कृदन्त होने से **कृन्मेजन्तः** से **अव्ययसंज्ञक** है। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर पहले कृ धातु का अनुप्रयोग हुआ, **गोपायाम् कृ लिट्** बना। लिट् के स्थान पर तिप् आदेश, उसके स्थान णल् आदेश होकर **गोपायाम्+कृअ** बना। कृ का **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **गोपायाम् कृ कृ अ** बना। प्रथम कृ की **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा हुई और **उरत्** से ऋकार के स्थान अत् आदेश हुआ और **उरण् रपरः** की सहायता से रपर होकर अर् आदेश हुआ, **गोपायाम् कर् कृ अ** बना। **हलादि शेषः** से कर् में ककार का शेष और रकार का लोप हुआ। **गोपायाम् ककृ अ** बना। **कुहोश्चुः** से अभ्याससंज्ञक ककार के स्थान पर चवर्ग में च आदेश होकर **गोपायाम् चकृ अ** बना। **गोपायाम्** के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **वा पदान्तस्य** से वैकल्पिक परसवर्ण होकर **ञकार** आदेश हुआ तो **गोपायाञ्चकृ अ** बना। णल् वाला अकार णित् है, अतः **अचो ञ्णिति** से **गोपायाञ्चकृ** के ऋकार की वृद्धि हुई। **उरण् रपरः** की सहायता से **ऋकार** की वृद्धि **आर्** होती है। इस तरह से **गोपायाञ्चकार्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **गोपायाञ्चकार** सिद्ध हुआ। परसवर्णाभाव पक्ष में **गोपायांचकार** भी सिद्ध होता है।

इस प्रक्रिया का बार-बार अभ्यास करें।

४७४- **द्विर्वचनेऽचि**। द्विरुच्यतेऽस्मिन् इति द्विर्वचनम्, अधिकरण अर्थ में ल्युट् प्रत्ययः। द्विर्वचने सप्तम्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से **अचः** की, **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **आदेशः** और **न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वार-दीर्घजश्चर्विधिषु** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

द्वित्वनिमित्तक अच् को मानकर अच् के स्थान पर आदेश नहीं होता है, द्वित्व की कर्तव्यता में।

द्विवचन में **गोपायाञ्चकृ+अतुस्** है। यहाँ पर **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व और **इको यणचि** से यण् एक साथ प्राप्त होते हैं। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के अनुसार परकार्य के विधान होने से **इको यणचि** से यण् प्राप्त हो रहा है। यदि **कृ** को यण् पहले हो तो **क्र्+अतुस्** बनेगा और इस स्थिति में **अच्** के न होने से **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व नहीं हो पायेगा, क्योंकि यह सूत्र एकाच् को द्वित्व करता है। अतः यण् को रोकने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता है।

इण्निषेधात्मकं विधिसूत्रम्

४७५. एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०॥

उपदेशे यो धातुरेकाज् अनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येड् न।

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

....

इस सूत्र से निषेध तब तक के लिए है जब तक कि द्वित्व नहीं होता। द्वित्व होने के बाद निषेध नहीं होता अर्थात् अजादेश करने वाले सूत्र लग सकते हैं।

गोपायाञ्चक्रतुः। द्विवचन में **गोपायाम्+कृ+अतुस्** में कृ को द्वित्व प्राप्त और ऋकार को यण् प्राप्त, **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से पहले यण् की प्राप्ति हो रही थी तो **द्विर्वचनेऽचि** से यह बताया कि जब द्वित्व की विवक्षा हो तो अन्य कोई भी आदेश पहले नहीं होंगे। अतः कृ को द्वित्व, **उरत्** से अत्व, **उरण् रपरः** से रपर करके **कर्** बना। हलादिशेष होने पर **क** बना, **कुहोश्चुः** से ककार के स्थान पर चुत्व होकर चकार बन गया। इस तरह **गोपायाञ्चकृ+अतुस्** बना। अब द्वित्व करने के बाद **चकृ** के ऋकार के स्थान पर **इको यणचि** से यण् होकर **चक्र्** हुआ। **गोपायाम्+चक्र्+अतुस्** में मकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके वर्णसम्मेलन और **अतुस्** के सकार को रुत्वविसर्ग करके **गोपायाञ्चक्रतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह बहुवचन में झि और उसके स्थान पर उस् आदेश करके **गोपायाञ्चक्रुः** सिद्ध होता है।

४७५- **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्**। एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्य एकाचः। एकाचः पञ्चम्यन्तम्, उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अनुदात्तात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ऋत इद्धातोः** से **धातोः**, **नेड्वशि कृति** से **न** एवं **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में जो धातु एक अच् वाला हो और साथ ही अनुदात्त भी हो तो उस धातु से परे आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है।

यह सूत्र **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** का निषेधक है। सूत्र में पठित **उपदेशे** इस पद का **एकाचः** के साथ भी अन्वय है और **अनुदात्तात्** के साथ भी। यहाँ पर **देहलीदीपकन्याय** चरितार्थ होती है। जैसे- दहलीज पर रखा दीपक अन्दर और बाहर दोनों तरफ प्रकाश देता है, उसी तहर बीच में पढ़ा गया **उपदेशे** यह शब्द **एकाचः** के साथ अन्वित होता है और **अनुदात्तात्** के साथ भी। एक ही धातु उपदेश अवस्था में अनुदात्त हो और उपदेश अवस्था में ही एकाच् भी हो यह सूत्र लगेगा।

यहाँ पर अनुबन्ध से रहित धातु को ही एकाच् या अनेकाच् माना गया है। उस एकांच् धातु में अनुदात्तत्व भी विद्यमान रहना चाहिए। यहाँ यह समझना जरूरी है कि अनुदात्तेत् धातुओं और अनुदात्त धातुओं में अन्तर है। जैसे **एध वृद्धौ** धातु धकारोत्तरवर्ती अकार अनुदात्त है और उसकी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। अतः यह धातु अनुदात्तेत् कहलाती है। इसलिए **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** सूत्र के द्वारा इस **एध्** धातु से आत्मनेपद होता है परन्तु इस **एध्** धातु को अनुदात्त धातु नहीं माना जाता। इसलिए इससे परे वलादि आर्धधातुक को इट् आगम का निषेध इस सूत्र से नहीं होता परन्तु **गुपू** धातु अनुदात्तेत् नहीं अपितु उदात्तेत् है। अतः उससे परस्मैपद होता है किन्तु अनुदात्त धातु मानी जाती है। इसलिए इस सूत्र से इट् आगम का निषेध प्राप्त होता है।

कान्तेषु शक्लेकः।

चान्तेषु पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट्।

छान्तेषु प्रच्छेकः।

जान्तेषु त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज्-सृजः पञ्चदश।

....

अब निम्नलिखित कारिका से अजन्त एकाच् धातुओं में अनुदात्त धातुओं की व्यवस्था करते हैं।

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।

वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

दीर्घ ऊकारान्त धातु, दीर्घ ॠकारान्त धातु, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रि, वृङ् और वृञ् इन धातुओं को छोड़कर अन्य धातुएँ जो अजन्त धातुओं में एकाच् वे सभी धातुएँ निहत अर्थात् अनुदात्त हैं, ऐसा समझना चाहिए।

इस पद्य में उल्लिखित धातु उदात्त हैं, अनुदात्त नहीं है और इनसे भिन्न धातु अनुदात्त हैं। अजन्तों में उदात्त धातु कम और अनुदात्त धातु ज्यादा हैं, इस लिए उदात्त धातु को गिनाकर शेष धातुओं को अनुदात्त कह दिया गया है।

अजन्तों में अनुदात्त अधिक हैं और उदात्त कम। इसलिए उदात्तों को गिनकर बता दिया है। इनसे भिन्न अनुदात्त हैं।

कारिकास्थ अजन्त एकाच् उदात्त धातुओं का विवरण-

यु मिश्रणामिश्रणयोः(अदादिः)	**रु शब्दे**(अदादिः)
क्ष्णु तेजने(अदादिः)	**शीङ् स्वप्ने**(अदादिः)
स्नु प्रस्रवणे(अदादिः)	**णु (नु)स्तुतौ**(अदादिः)
टुक्षु शब्दे(अदादिः)	**टुओश्वि गतिवृद्ध्योः**(भ्वादिः)
डीङ् विहायसा गतौ(दिवादिः)	**श्रिञ् सेवायाम्**(भ्वादिः)
वृङ् सम्भक्तौ(क्र्यादिः)	**वृञ् वरणे**(स्वादिश्चुरादिश्च)

निहताः=अनुदात्ताः। हलन्तों में उदात्त धातु बहुत और अनुदात्त धातु कम हैं, अतः सीधे अनुदात्त धातुओं का परिगणन करते हैं-

ककारान्त धातुओं में- **शक्** (शक्लृ शक्तौ, स्वादिः) एक ही धातु अनुदात्त है। लृकार जोड़कर इसलिए कहा गया कि अन्य शकि, शक आदि धातुएँ न लिए जायें।

चकारान्त धातुओं में- **पच्** (डुपचष् पाके भ्वादिः), **मुच्** (मुच्लृ मोक्षणे, तुदादिः), **रिच्** (रिचिर् विरेचने, रुधादिः) तथा (रिच वियोजनसम्पर्चनयोः, चुरादिः), **वच्** (वच परिभाषणे, अदादिः), **विच्** (विचिर् पृथग्भावे, रुधादिः) और **सिच्** (षिच क्षरणे, तुदादिः) ये छः धातुएँ अनुदात्त हैं।

छकारान्त धातुओं में- **प्रच्छ्** (प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, तुदादिः) एक ही धातु अनुदात्त है।

जकारान्त धातुओं में त्यज् (त्यज हानौ, भ्वादिः), **निजिर्** (णिजिर् शौचपोषणयोः, जुहोत्यादिः), **भज्** (भज सेवायाम्, भ्वादिः), **भञ्ज्** (भञ्जो आमर्दने, रुधादिः), **भुज्** (भुज पालनाऽभ्यवहारयोः, रुधादिः), तथा (भुजो कौटिल्ये, तुदादिः), **भ्रस्ज्** (भ्रस्ज पाके, तुदादिः),

दान्तेषु अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्-विद्यति-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द्-हदः षोडश।

धान्तेषु क्रुध्-क्षुध्-बुध्य-बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-साध्-शुध्-सिध्या एकादश।

नान्तेषु मन्यहनी द्वौ।

पान्तेषु आप्-क्षिप्-छुप्-तप्-तिप्-तृप्य-दृप्य-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदशः।

....

मस्ज् (टुमस्जो शुद्धौ, तुदादिः), **यज्** (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, भ्वादिः), **युज्,** (युजिर् योगे, रुधादिः), **युज्** (युज समाधौ, दिवादिः), तथा (युज संयमने, चुरादिः), **रुज्** (रुजो भङ्गे, तुदादिः), **रञ्ज्** (रञ्ज रागे, भ्वादिः), **विजिर्** (विजिर् पृथग्भावे, जुहोत्यादिः), **स्वञ्ज्** (ष्वञ्ज परिष्वङ्गे, भ्वादिः), **सञ्ज्** (षञ्ज सङ्गे, भ्वादिः) और **सृज्** (सृज विसर्गे, दिवादिः) ये पन्द्रह धातुएँ अनुदात्त हैं।

दकारान्त धातुओं में- **अद्** (अद भक्षणे, अदादिः), **क्षुद्** (क्षुदिर् सम्पेषणे, रुधादिः), **खिद्** (खिद दैन्ये, रुधादिः), तथा (खिद परिघाते, तुदादिः), **छिद्** (छिदिर् द्वैधिकरणे, रुधादिः), **तुद्** (तुद व्यथने, तुदादिः), **नुद्** (णुद प्रेरणे, तुदादिः), **पद्य** (पद गतौ, दिवादिः), **भिद्** (भिदिर् विदारणे, रुधादिः), विद्य (विद सत्तायाम्, दिवादिः), **विनद्** (विद विचारणे, रुधादिः), **विन्द्** (विद्लृ लाभे, तुदादिः) **शद्** (शद्लृ शातने, भ्वादिः), **सद्** (षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (भ्वादिः), **स्विद्य** (ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे, दिवादिः), **स्कन्द्** (स्कन्दिर् गतिशोषणयोः, भ्वादिः) और **हद्** (हद पुरीषोत्सर्गे, भ्वादिः) ये सोलह धातुएँ अनुदात्त हैं। **पद्य, विद्य** और **स्विद्य** में यकार दिवादिगण के निर्देश के लिए है। **विनद्** यह रुधादिगण के लिए एवं **विन्द्** यह तुदादिगण के निर्देश के लिए है। इसी तरह एक ही धातु अनेक गणों में हो तो अन्य गणीय धातु के निवारण के लिए **श्यन्** आदि के द्वारा निर्देश किया गया है।

धकारान्त धातुओं में **क्रुध्** (क्रुध क्रोधे, दिवादिः), **क्षुध्** (क्षुध बुभुक्षायाम्, दिवादिः), **बुध्य** (बुध अवगमने, दिवादिः), **बन्ध्** (बन्ध बन्धने, क्र्यादिः), **युध्** (युध सम्प्रहारे, दिवादिः), **रुध्** (रुधिर् आवरणे, रुधादिः) तथा (रुध कामे, दिवादिः), **राध्** (राध संसिद्धौ, स्वादिः), तथा (राध वृद्धौ, दिवादिः), **व्यध्** (व्यध ताडने, दिवादिः), **शुध्** (शुध शौचे, दिवादिः), **साध्** (साध संसिद्धौ, स्वादिः) और **सिध्य** (षिधु संराद्धौ, दिवादिः) ये ग्यारह धातुएँ अनुदात्त हैं। यहाँ पर दिवादिगणीय ग्रहण करने के लिए बुध् और सिध् धातुओं में श्यन् प्रत्ययान्त निर्देश किया गया है।

नकारान्त धातुओं में- **मन्य** (मन ज्ञाने, दिवादिः) और **हन्** (हन हिंसागत्योः, अदादिः)ये दो धातु अनुदात्त हैं। **मन्य** में श्यन् निर्देश है अर्थात् दिवादिगणीय ही मान्य हैं।

पकारान्त धातुओं में- **आप्** (आप्लृ व्याप्तौ, स्वादिः), तथा (आप्लृ लम्भने, चुरादिः), **क्षिप्** (क्षिप प्रेरणे, तुदादिः), **छुप्** (छुप स्पर्शे, तुदादिः), **तप्** (तप सन्तापे, भ्वादिः), तथा (तप ऐश्वर्ये, दिवादिः) तथा (तप दाहे, चुरादिः), **तिप्** (तिपृ क्षरणे, भ्वादिः), **तृप्य** (तृप प्रीणने, दिवादिः), **दृप्य** (दृप हर्षमोहनयोः, दिवादिः), **लिप्** (लिप उपदेहे, तुदादिः), **लुप्** (लुप्लृ छेदने, तुदादिः), **वप्** (डुवप बीजसन्ताने, भ्वादिः), **शप्**

भान्तेषु यभ्-रभ्-लभस्त्रयः।

मान्तेषु गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः।

शान्तेषु क्रुश्-दश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश।

षान्तेषु कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्या एकादश।

सान्तेषु घस्-वसती द्वौ।

हान्तेषु दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह-वहोऽष्टौ।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम्।

गोपायाञ्चकर्थ। गोपायाञ्चक्रथुः। गोपायाञ्चक्र।

गोपायाञ्चकार-गोपायाञ्चकर। गोपायाञ्चकृव। गोपायाञ्चकृम।

गोपायाम्बभूव। गोपायामास। जुगोप। जुगुपतुः। जुगुपुः।

....

(शप आक्रोशे, दिवादिः), **स्वप्** (ञिष्वप् शये, अदादिः) और **सृप्** (सृप्लृ गतौ, भ्वादिः) ये तेरह धातुएँ अनुदात्त हैं।

भकारान्त धातुओं में- **यभ्** (यभ मैथुने, भ्वादिः), **रभ्** (रभ राभस्ये, भ्वादिः) और **लभ्** (डुलभष् प्राप्तौ, भ्वादिः) ये तीन ही धातुएँ अनुदात्त हैं।

मकारान्त धातुओं में- **गम्** (गम्लृ गतौ, भ्वादिः), **नम्** (णम प्रह्वत्वे शब्दे च, भ्वादिः) **यम्** (यमु उपरमे, भ्वादिः) और **रम्** (रमु क्रीडायाम्, भ्वादिः) ये चार धातुएँ अनुदात्त हैं।

शकारान्त धातुओं में- **क्रुश्** (क्रुश आह्वाने रोदने च, भ्वादिः), **दश्** (दंश दशने, भ्वादिः), **दिश्** (दिश अतिसर्जने, तुदादिः), **दृश्** (दृशिर प्रेक्षणे, भ्वादिः), **मृश्** (मृश आमर्शने, तुदादिः), **रिश्, रुश्** (रुश रिश हिंसायाम्, तुदादिः) **लिश्** (लिश अल्पीभावे, दिवादिः)तथा (लिश गतौ, तुदादिः), **विश्** (विश प्रवेशने, तुदादिः) और **स्पृश्** (स्पृश संस्पर्शे, तुदादिः) ये दस धातुएँ अनुदात्त हैं।

षकारान्त धातुओं में- **कृष्** (कृष विलेखने, भ्वादिः), **त्विष्** (त्विष दीप्तौ, भ्वादिः), **तुष्** (तुष प्रीतौ, दिवादिः), **द्विष्** (द्विष अप्रीतौ, अदादिः), **दुष्** (दुष वैकृत्ये, दिवादिः), **पुष्य** (पुष पुष्टौ, दिवादिः), **पिष्** (पिष्लृ सञ्चूर्णने, रुधादिः), **विष्** (विष्लृ व्याप्तौ) तथा (विषु सेचने, भ्वादिः) तथा (विष विप्रयोगे, क्र्यादिः), **शिष्** (शिष हिंसायाम्, भ्वादिः) तथा (शिष्लृ विशेषणे, रुधादिः) एवं (शिष असर्वोपयोगे, चुरादिः), **शुष्** (शुष शोषणे, दिवादिः) और **श्लिष्य** (श्लिष आलिङ्गने, दिवादिः) ये ग्यारह धातुएँ अनुदात्त हैं।

सकारान्त धातुओं में- **घस्** (घस्लृ अदने, भ्वादिः) और **वस्** (वस निवासे, भ्वादिः) ये दो धातुएँ अनुदात्त हैं।

हकारान्त धातुओं में- **दह्** (दह भस्मीकरणे, भ्वादिः), **दिह्** (दिह उपचये, अदादिः), **दुह्** (दुह प्रपूरणे, अदादिः), **नह्** (णह बन्धने, दिवादिः), **मिह्** (मिह सेचने, भ्वादिः), **रुह्** (रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, भ्वादिः), **लिह्** (लिह आस्वादने, अदादिः) और **वह्** (वह प्रापणे, भ्वादि) ये आठ धातुएँ अनुदात्त हैं।

इस तरह हलन्त धातुओं में एक सौ तीन (१०३) धातुएँ अनुदात्त हैं।

वैकल्पिकेड्विधायकं विधिसूत्रम्

४७६. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७।२।४४॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्।

जुगोपिथ, जुगोप्थ। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात्, गुप्यात्। अगोपायीत्।

....

गोपायाञ्चकर्थ। **गुपू** धातु से अनुप्रयुज्यमान **कृ** धातु उपदेश अवस्था में एकाच् है और **ऊद्दृदन्तैः०** कारिका में न आने के कारण अनुदात्त है। अतः आर्धधातुक के परे **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध हुआ। अतः **गोपायाम्+चकृ+थ** में इट् का आगम नहीं हुआ अपितु **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऋकार को गुण होकर अर् हुआ, **गोपायाम्+चकर्+थ** बना। मकार को अनुस्वार एवं परसवर्ण तथा रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **गोपायाञ्चकर्थ** सिद्ध हुआ। इसी तरह उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में भी इट् का निषेध होता है। अन्यत्र इट् की प्राप्ति ही नहीं है क्यों कि वलादि नहीं है। अतः इट् निषेध का भी प्रश्न नहीं है। इस तरह गुप् धातु के लिट् लकार में कृ का अनुप्रयोग होने पर रूप बने- गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चक्रतुः, गोपायाञ्चक्रुः, गोपायाञ्चकर्थ, गोपायाञ्चक्रथुः, गोपायाञ्चक्र, गोपायाञ्चकार-गोपायाञ्चकर, गोपायाञ्चकृव, गोपायाञ्चकृम।

गोपायाम् से **भू** का अनुप्रयोग होने पर **गोपायाम् भू लिट्** बना। अब जिस तरह से भू धातु से **बभूव** बनाया गया था, उसी तरह यहाँ भी वही प्रक्रिया होती है। इस तरह **गोपायाम्+बभूव** बन गया है। मकार को अनुस्वार और उसका परसवर्ण करने पर ब का सवर्णी मकार हो जाता है, जिससे **गोपायाम्बभूव** सिद्ध हो जाता है।

गोपायाम्बभूव, गोपायाम्बभूवतुः, गोपायाम्बभूवुः, गोपायाम्बभूविथ, गोपायाम्बभूवथुः, गोपायाम्बभूव, गोपायाम्बभूव, गोपायाम्बभूविव, गोपायाम्बभूविम। भू धातु के दीर्घ ऊकारान्त होने के कारण अनुदात्त नहीं है, अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध नहीं हुआ।

गोपायाम् से **अस्** का अनुप्रयोग होने पर अस्+लिट्, अस्+तिप्, अस्+णल्, अस्+अ, अस्अस्+अ, अअस्+अ, **अत आदेः** से दीर्घ होकर **आअस्+अ,** आ+अस् में सवर्णदीर्घ होकर **आस्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **आस** बना। **गोपायाम्+आस** में वर्णसम्मेलन होकर **गोपायामास** सिद्ध हुआ। गोपायामास, गोपायामासतुः, गोपायामासुः, गोपायामासिथ, गोपायामासथुः, गोपायामास, गोपायामास, गोपायामासिव, गोपायामासिम।

आयादय आर्धधातुके वा से आर्धधातुक की विवक्षा में **आय** विकल्प से हो रहा था। अभी तक **आय** आदेश के पक्ष के रूप बनाये गये। अब आय न होने के पक्ष में- **जुगोप** बनता है।

जुगोप। गुप् से आय न होने के पक्ष में लिट् लकार, तिप्, णल् आदेश, अनुबन्धलोप करके **गुप्+अ** बना है। गुप् को द्वित्व, गुप्गुप्+अ, हलादिशेष- गुगुप् अ, **कुहोश्चुः** से चुत्व करके **जुगुप्+अ** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधा को गुण होकर **जुगोप्+अ,** वर्णसम्मेलन होकर **जुगोप** सिद्ध हुआ। अपित् अर्थात् तिप्, सिप् और मिप् को छोड़कर अन्यत्र **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **क्ङिति च** से गुण का निषेध होता है। **जुगोप, जुगुपतुः, जुगुपुः** ये रूप बने। थल् में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

४७६- **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा।** ऊत् इत् यस्य स ऊदित्। स्वरतिश्च सूतिश्च सूयतिश्च धूञ् च ऊदित् च तेषां समाहारद्वन्द्वः स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदित्, तस्य स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितः। स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

स्वरति रूप वाले स्वृ आदि और ऊदित् धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है।

सूत्रोक्त धातुएँ हैं- **स्वृ शब्दोपतापयोः, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, षूङ् प्राणिप्रसवे, धूञ् कम्पने। गुपू** धातु में **दीर्घ ऊकार** की इत्संज्ञा हुई है, अतः यह **ऊदित्** है।

जुगोपिथ, जुगोप्थ। थल् में **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से विकल्प से इट् का आगम होकर **जुगोपिथ** बना और इट् न होने के पक्ष में **जुगोप्थ** सिद्ध हुआ। इस तरह आय न होने के पक्ष में रूप बने- जुगोप, जुगुपतुः, जुगुपुः, जुगोपिथ-जुगोप्थ, जुगुपथुः, जुगुप, जुगोप, जुगुपिव-जुगुप्व, जुगुपिम-जुगुप्म।

लिट् के अतिरिक्त **लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्** और **लृङ्** ये लकार आर्धधातुक हैं। अतः इनमें **आय** प्रत्यय विकल्प से होगा। **आय** और **इट्** दोनों होने के पक्ष के रूप और आय न होने और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से इट् होने के पक्ष के रूप तथा और इट् न होने के पक्ष के भी रूप होंगे। इस तरह तीन-तीन रूप सिद्ध होते हैं।

लुट् में- आय प्रत्यय और इट् होने के पक्ष में- गोपायिता, गोपायितारौ, गोपायितारः, गोपायितासि, गोपायितास्थः, गोपायितास्थ, गोपायितास्मि, गोपायितास्वः, गोपायितास्मः। **आय न होने व इट् होने के पक्ष में-** गोपिता, गोपितारौ, गोपितारः, गोपितासि, गोपितास्थः, गोपितास्थ, गोपितास्मि, गोपितास्वः, गोपितास्मः **एवं इट् न होने के पक्ष में-** गोप्ता, गोप्तारौ, गोप्तारः, गोप्तासि, गोप्तास्थः, गोप्तास्थ, गोप्तास्मि, गोप्तास्वः, गोप्तास्मः।

लृट् में- आय और इट् होने के पक्ष में- गोपायिष्यति, गोपायिष्यतः, गोपायिष्यन्ति, गोपायिष्यसि, गोपायिष्यथः, गोपायिष्यथ, गोपायिष्यामि, गोपायिष्यावः, गोपायिष्यामः। **आय न होने व इट् होने के पक्ष में-** गोपिष्यति, गोपिष्यतः, गोपिष्यन्ति, गोपिष्यसि, गोपिष्यथः, गोपिष्यथ, गोपिष्यामि, गोपिष्यावः, गोपिष्यामः। **इट् न होने के पक्ष में-** गोप्स्यति, गोप्स्यतः, गोप्स्यन्ति, गोप्स्यसि, गोप्स्यथः, गोप्स्यथ, गोप्स्यामि, गोप्स्यावः, गोप्स्यामः।

लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कोई आर्धधातुक प्रत्यय नहीं है, अतः लट् की तरह आय नित्य से ही होता है।

लोट्- गोपायतु-गोपायतात्, गोपायताम्, गोपायन्तु, गोपाय-गोपायतात्, गोपायतम्, गोपायत, गोपायानि, गोपायाव, गोपायाम। **लङ्-** अगोपायत्, अगोपायताम्, अगोपायन्, अगोपायः, अगोपायतम्, अगोपायत, अगोपायम्, अगोपायाव, अगोपायाम। **विधिलिङ्-** गोपायेत्, गोपायेताम्, गोपायेयुः, गोपायेः, गोपायेतम्, गोपायेत, गोपायेयम्, गोपायेव, गोपायेम।

आशीर्लिङ् में वलादि आर्धधातुक के न मिलने के कारण इट् प्राप्त नहीं होता। **आय पक्ष के रूप-** गोपाय्यात्, गोपाय्यास्ताम्, गोपाय्यासुः, गोपाय्याः, गोपाय्यास्तम्, गोपाय्यास्त, गोपाय्यासम्, गोपाय्यास्व, गोपाय्यास्म। **आयाभावे-** गुप्यात्, गुप्यास्ताम्, गुप्यासुः, गुप्याः, गुप्यास्तम्, गुप्यास्त, गुप्यासम्, गुप्यास्व, गुप्यास्म।

अगोपायीत्। गोपाय से लुङ्, अट् आगम, तिप्, शप् प्राप्त होने पर उसे बाधकर

वृद्धिनिषेधकं सूत्रम्

४७७. नेटि ७।२।४॥

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न। अगोपीत्, अगौप्सीत्।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४७८. झलो झलि ८।२।२६॥

झलः परस्य सस्य लोपो झलि। अगौप्ताम्। अगौप्सुः। अगौप्सीः। अगौप्तम्। अगौप्त। अगौप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्।

क्षि क्षये॥१३॥ क्षयति। चिक्षाय। चिक्षियतुः। चिक्षियुः।

एकाच इति निषेधे प्राप्ते-

....

च्लि, सिच्, इट् आगम, **ति** के इकार का लोप करके **अगोपाय+इस्+ईत्** बना। **अतो लोपः** से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, **इट ईटि** से सिच् का लुक्, दोनों इकारों में दीर्घ करके **अगोपाय्+ईत्**, वर्णसम्मेलन करके **अगोपायीत्** सिद्ध हुआ। यहाँ आर्धधातुक प्रत्यय की अपेक्षा थी, अतः **आयादय आर्धधातुके वा** से **आय प्रत्यय** विकल्प से हुआ है। आय न होने के पक्ष में और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से इट् के पक्ष में **अगुप्+इस्+ईत्** है। हलन्त होने के कारण **वदव्रजहलन्तस्याचः** से गुप् के उकार को वृद्धि प्राप्त होती है। इस पर अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होकर वृद्धि का निषेध करता है।

४७७- **नेटि**। न अव्ययपदम्, इटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वदव्रलहन्तस्याचः** से **हलन्तस्य** की और **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

इट् आदि में हो ऐसे सिच् के परे होने पर हलन्त धातु को वृद्धि नहीं होती है।

वदव्रजहलन्तस्याचः के द्वारा वद्, व्रज् और हलन्त धातुओं को सिच् परे होने पर वृद्धि कही गई है, उसका यहाँ इडादि सिच् के परे होने पर निषेध किया गया है परन्तु **वद्** और **व्रज्** धातुओं का विशेष विधान है, अतः उनमें निषेध प्रवृत्त नहीं होगा, निषेध केवल हलन्तों में ही होगा।

अगोपीत्। अगुप्+इस्+ईत् होने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से प्राप्त वृद्धि का यह निषेध करता है। वृद्धि न होने पर **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण हुआ- उकार को गुण **ओ** होता है। अतः **अगोप्+इस्+ईत्** बना। सकार का लोप, सवर्णदीर्घ, वर्णसम्मेलन होकर **अगोपीत्** सिद्ध हुआ। इट् भी न होने के पक्ष में **अगुप्+स्+ईत्** है। यहाँ वलादि को मान कर होने वाला इट् नहीं हुआ है और अपृक्त को मानकर **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से किया जाने वाला ईट् आगम हुआ है। यहाँ पर वृद्धि का **नेटि** से निषेध नहीं होगा, क्योंकि इट् न होने के कारण इडादि सिच् नहीं मिलता। अतः **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि हो गई, जिससे **अगौप्+स्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन करके **अगौप्सीत्** बना। यहाँ **इट ईटि** से सकार का लोप भी नहीं होगा क्योंकि इट् से परे सकार नहीं है।

लुङ् के द्विवचन में आय होने के पक्ष में कुछ विशेष नहीं है, अतः **अगोपायिष्टाम्**

बनता है। इसी तरह आय न होने तथा इट् होने के पक्ष में **अगोपिष्टाम्** बनता है। इट् न होने के पक्ष में सकार का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता. है-

४७८- **झलो झलि।** झल: षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रात्सस्य** से **सस्य** और **संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

झल् से परे सकार का लोप होता है झल् के परे होने पर।

अगौप्ताम्। अगुप्+स्+ताम् में वृद्धि होकर **अगौप्+स्+ताम्** बना। **झलो झलि** से सकार का लोप होने पर **अगौप्+ताम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अगौप्ताम्** यह रूप सिद्ध हुआ। बहुवचन में **अगौप्+स्+उस्** में झल् परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ। अत: **अगौप्सुः** बना। इस तरह **गुप्** धातु के **आय पक्ष** और **आय** न होने के पक्ष में तथा **इट्** होने के पक्ष और इट् न होने के पक्ष में निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं।

गुप् के लुङ् में आय और इट् आगम पक्ष के रूप

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अगोपायीत्	अगोपायिष्टाम्	अगोपायिषुः
मध्यमपुरुष	अगोपायीः	अगोपायिष्टम्	अगोपायिष्ट
उत्तमपुरुष	अगोपायिषम्	अगोपायिष्व	अगोपायिष्म

गुप् के आय न होने व इट् आगम पक्ष के रूप

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अगोपीत्	अगोपिष्टाम्	अगोपिषुः
मध्यमपुरुष	अगोपीः	अगोपिष्टम्	अगोपिष्ट
उत्तमपुरुष	अगोपिषम्	अगोपिष्व	अगोपिष्म

गुप् के आय न होने व इट् भी न होने के पक्ष में रूप

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अगौप्सीत्	अगौप्ताम्	अगौप्सुः
मध्यमपुरुष	अगौप्सीः	अगौप्तम्	अगौप्त
उत्तमपुरुष	अगौप्सम्	अगौप्स्व	अगौप्स्म

लृङ् लकार में तो कोई कठिनाई नहीं है। **स्य** यह आर्धधातुक प्रत्यय है, अत: **आय** विकल्प से होगा। आय होने के पक्ष में **अगोपाय+इस्य+त्** में **अतो लोपः** से **गोपाय** के **अकार** का लोप, स्य के सकार को षत्व, वर्णसम्मेलन होकर अगोपायिष्यत्, अगोपायिष्यताम्, अगोपायिष्यन्, अगोपायिष्यः, अगोपायिष्यतम्, अगोपायिष्यत, अगोपायिष्यम्, अगोपायिष्याव, अगोपायिष्याम बनते हैं। आय न होने और वैकल्पिक इट् होने के पक्ष में अगोपिष्यत्, अगोपिष्यताम्, अगोपिष्यन्, अगोपिष्यः, अगोपिष्यतम्, अगोपिष्यत, अगोपिष्यम्, अगोपिष्याव, अगोपिष्याम और इट् न होने के पक्ष में अगोप्स्यत्, अगोप्स्यताम्, अगोप्स्यन्, अगोप्स्यः, अगोप्स्यतम्, अगोप्स्यत, अगोप्स्यम्, अगोप्स्याव, अगोप्स्याम।

क्षि क्षये। क्षि धातु **नाश होना, क्षीण होना** अर्थ में हैं। ध्यान रहे कि नाश करना अर्थ नहीं है। अत: अकर्मक है। यदि नाश करना अर्थ होता तो सकर्मक हो जाता। **क्षि** में इकार की इत्संज्ञा नहीं होती है।

क्षयति। **क्षि** धातु से लट्, तिप्, शप् करके **क्षि+अ+ति** है। **क्षि** के इकार को

इड्विधायकं नियमसूत्रम्

४७९. कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि ७।२।१३॥

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्याद् अन्यस्मादनिटोऽपि स्यात्।

....

सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण होकर क्षे बनता है और उसके स्थान पर **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर **क्ष्+अय्+अ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर रूप बने- क्षयति, क्षयतः, क्षयन्ति, क्षयसि, क्षयथः, क्षयथ, क्षयामि, क्षयावः, क्षयामः।

चिक्षाय। क्षि से लिट्, तिप्, णल्, **क्षि+अ** बना। द्वित्व होकर **क्षिक्षि+अ** बना। हलादिशेष होने पर क्षि में विद्यमान क् और ष् में से ष् का लोप तथा **क्** शेष बचा, **किक्षि+अ** बना। **कुहोश्चुः** से ककार के स्थान पर चुत्व आदेश हुआ, **चिक्षि+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से क्षि में इकार को वृद्धि होकर **चिक्षै+अ** बना। आय् आदेश होकर **चिक्षाय** सिद्ध हुआ। द्विवचन में णित् न होने के कारण वृद्धि नहीं होती और **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **क्ङिति च** से गुण निषेध होता है। अत: **चिक्षि+अतुस्** में इकार के स्थान पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होकर **चिक्ष्+इय्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **चिक्षियतुः** सिद्ध होता है। इसी तरह बहुवचन में **चिक्षियुः** बनता है। **क्षि** में संयोग होने से कैसे **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होगा? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि **क्षि** में **क्** और **ष्** का संयोग आदि में है। उससे परे परे अतुस् आदि प्रत्यय नहीं हैं अर्थात् **संयोग** और **प्रत्यय** की बीच में अव्यवधान हो तो यह निषेध लगता है अर्थात् जिस धातु में संयोग अन्त में होता है, ऐसी धातुओं से परे लिट् को ही कित् नहीं होता, जैसे कि **ननन्द्+अतुस्** आदि में

४७९- **कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि**। कृश्च सृश्च भृश्च वृश्च स्तुश्च द्रुश्च स्रुश्च श्रुश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुः, सौत्रं पुंस्त्वम्। तस्मात् कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवः। कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवः पञ्चम्यन्तं, लिटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नेड् वशि कृति** से **न** और **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु धातुओं से परे ही लिट् को इट् न हो, अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् का आगम हो जाय।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कृ, सृ, भृ ये तीन धातुएँ एकाच् और अनुदात्त हैं, अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से ही इनमें इट् का निषेध हो रहा था और अनुदात्त न होने से **वृ** में **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध न होने पर भी **श्र्युकः किति** से निषेध हो रहा था तो पुनः निषेध करने के लिए इस सूत्र में **कृ, सृ, भृ, वृ** का ग्रहण क्यों किया गया? इसका उत्तर यह है कि **सिद्धे सति आरम्भ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति**। सिद्ध होते हुए पुनः वही विधि कही जाती है तो वहाँ कुछ न कुछ नियम बनता है। यहाँ पर नियम यह बना कि- **कृ आदि धातुओं से ही परे लिट् को इट् का आगम न हो, उनके अतिरिक्त अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् का आगम हो जाय**। इस नियम के अनुसार कृ आदि धातुओं के अतिरिक्त धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् का निषेध कहा गया हो तो भी इट् हो जायेगा।

इस सूत्र के उक्त चार धातुओं के अतिरिक्त अन्य जो स्तु, द्रु, स्रु और श्रु धातुएँ हैं, वे निमयमार्थ नहीं अपितु किसी अन्य प्रयोजन के लिए पढ़ी गई हैं। वह प्रयोजन यह है

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

४८०. अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१।।

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण् न।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

४८१. उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२।।

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न स्यात्।

....

कि इन धातुओं से परे थल् को **ऋतो भारद्वाजस्य** से वैकल्पिक इट् प्राप्त था, तथा वस्, मस् को **क्रादि नियम** से इट् प्राप्त था, उसे रोकने के लिए **स्तु, द्रु, स्रु, श्रु** का ग्रहण किया गया है। तात्पर्य यह है कि लिट् में उक्त चारों धातुओं को कहीं भी इट् न हो। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि इन आठों धातुओं से परे लिट् सम्बन्धी सभी वलादि आर्धधातुक को इडागम नहीं होता।

क्रादिनियम व्याकरणशास्त्र में प्रसिद्ध है। वह यह कि **कृ आदि धातुओं से ही लिट् को इट् का आगम नहीं होता, उनके अतिरिक्त अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् का आगम हो जाता है।** इस नियम के अनुसार कृ आदि धातुओं के अतिरिक्त धातुओं से लिट् को जहाँ इट् का निषेध कहा गया है वहाँ भी इट् हो जायेगा।

४८०- अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्। तासि इव तास्वत्, सप्तम्यन्ताद्वतिः। अविद्यमान इट् यस्मिन् स अनिट्, बहुव्रीहिः। अचः पञ्चम्यन्तं, तास्वत् अव्ययपदम्, थलि सप्तम्यन्तम्, अनिटः पञ्चम्यन्तं, नित्यं क्रियाविशेषणम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **उपदेशेऽत्वतः** से **उपदेशे** का अपकर्षण होता है। **तासि च क्लृपः** से **तासि, गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **इट्** तथा **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में अजन्त धातु, जो तासि प्रत्यय के परे होने पर अनिट् हो, उससे परे थल् को इट् नहीं होता है।

जैसे **क्षि** धातु उपदेश अवस्था में अजन्त है और तासि प्रत्यय के परे होने पर नित्य से अनिट् रहता है जिससे **क्षेता** रूप बनता है, इस धातु से **क्रादिनियम** (कृ आदि धातुओं से ही लिट् को इट् न हो, अन्य से हो) से इट् की प्राप्ति थी, इस सूत्र के द्वारा प्राप्त इट् का थल् में निषेध हो जाता है। स्मरण रहे कि यह सूत्र थल् में इट् का निषेध करता है, अन्यत्र नहीं।

इस प्रसंग का अग्रिम सूत्र है-

४८१- उपदेशेऽत्वतः। अत् अस्य अस्तीति अत्वान्, मतुप्, तस्य अत्वतः। उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अत्वतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से **तास्वत्, थलि, अनिट्** और **नित्यम्, तासि च क्लृपः** से **तासि, गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **इट्** तथा **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में ह्रस्व अकार वाली धातु, जो तासि के परे नित्य से अनिट् हो, उससे परे थल् को इट् नहीं होता है।

पूर्वसूत्र से अजन्त धातुओं में निषेध किया गया तो इस सूत्र से जिसमें ह्रस्व अकार हो ऐसी धातुओं से परे **थल्** को इट् निषेध किया गया। अकारान्त धातु भी अकारवान् होता

थल्विषयक-भारद्वाजनियमसूत्रम्

४८२. ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेट्, भारद्वाजस्य मते। तेन अन्यस्य (धातोः) स्यादेव। अयमत्र सङ्ग्रहः-

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥

चिक्षयिथ, चिक्षेथ। चिक्षियथुः। चिक्षिय। चिक्षाय, चिक्षय। चिक्षियिव। चिक्षियिम। क्षेता। क्षेष्यति। क्षयतु। अक्षयत्। क्षयेत्।

....

है फिर भी उसको अजन्त मानकर पूर्वसूत्र से ही इट् का निषेध किया जा सकता है। अतः यहाँ अकारवान् से हलन्त अकारवान् धातु को ही लेना चाहिए। अतः ऐसी धातुएँ **तासि** के परे अनिट् होती हैं। जैसे- पक्ता, शक्ता आदि। तात्पर्य यह है कि यदि ये धातुएँ तासि में अनिट् हैं तो थल् में भी अनिट् ही रहेंगी।

इन दोनों सूत्रों से **तासि** के परे अनिट् होने वाले अजन्त और अकारवान् धातुओं से थल् में इट् का निषेध किया गया। अब अग्रिम सूत्र से इस विषय में भारद्वाज ऋषि का मत बतलाया जाता है।

४८२- ऋतो भारद्वाजस्य। ऋतः पञ्चम्यन्तं, भारद्वाजस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से **तास्वत्, थलि, अनिट्, नित्यम्** की तथा **तासि च क्लृपः** से **तासि, गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **इट्** तथा **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

भारद्वाज ऋषि के मत में- तासि प्रत्यय के परे होने पर नित्य से अनिट् होने वाले केवल ह्रस्व ऋकारान्त धातुओं से ही थल् को इट् न हो (अन्य धातुओं से थल् को इट् हो जाय)।

अब प्रश्न उठता है कि ऋदन्त धातु भी अजन्त ही हैं तो **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से इट् का निषेध प्राप्त था ही, पुनः इस सूत्र से निषेध करने का क्या प्रयोजन? इस पर उत्तर यह है कि **सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति**। सिद्ध होते हुए उसी कार्य के लिए पुनः विधान करना नियम के लिए होता है। यहाँ पर नियमार्थ माना गया है। नियम यह है कि **तासि के परे नित्य अनिट् केवल ऋदन्त धातु से परे ही थल् को इट् न हो, अन्य धातुओं से परे थल् को इट् हो जाय।** यह **भारद्वाज ऋषि** का मत है। पाणिनि जी ने भारद्वाज का नाम लेकर ही यह सिद्ध कर दिया कि यह मत उनका है, मेरा नहीं। दो मत होने पर, वह भी किसी प्रतिष्ठित ऋषि का मत हो तो पाणिनि जी उनका सम्मान भी करते हैं। उनका संकेत है कि यहाँ पर दोनों मतों को माना जाय।

इस तरह यहाँ पर विकल्प सिद्ध हुआ- भारद्वाज के मत में और पाणिनि आदि अन्य आचार्यों के मत में। **भारद्वाज के मत में ऋदन्तभिन्न धातुओं से परे थल् को इट् का आगम होता है और पाणिनि आदि अन्य ऋषियों के मत में इट् नहीं होता है।** जैसे- **या** धातु है, वह तासि के परे अनिट् है, ऋदन्त से भिन्न भी है तो भारद्वाज के मत में थल् में इट् होगा जिससे **ययिथ** बनेगा और पाणिनि के मत में इट् नहीं होगा, अतः **ययाथ** बनेगा।

पूर्वोक्त चारों सूत्रों का निचोड़ एक ही कारिका में संग्रह करके बताया गया है- **अजन्तोऽकारवान् वा** आदि से। इसका प्रथम भाग है- **अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।** अन्वय- **यः तासि नित्यानिट्(तादृशः) अजन्तः अकारवान् वा अयम् थलि वेट्,** (वा=विकल्पेन इट् अस्ति यस्य स धातुः वेट्) अर्थात् जो धातु तासि प्रत्यय के परे नित्य से अनिट् होते हुए अजन्त या अकार वाली धातु हैं, वे थल् में विकल्प से इट् वाली होती हैं। जैसे **पपिथ-पपाथ।** यह **ऋतो भारद्वाजस्य** का उदाहरण है। इस उदाहरण में **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** और **उपदेशेऽत्वतः** ये दो सूत्र थल् के इट् का निषेध कर रहे थे किन्तु ऋदन्तभिन्न होने के कारण **भारद्वाजनियम** से इट् हो जाता है और अन्यों के मत में इट् नहीं होता।

कारिका का दूसरा भाग है- **ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट्।** ईदृङ्=इसी तरह तासि के परे रहते नित्यानिट् ह्रस्व ऋकारान्त धातु थल् के परे रहने पर भी नित्य से अनिट् ही रहता है। कारण यह है कि ऐसे धातु को तो **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** और **उपदेशेऽत्वतः** ये दो सूत्र भी निषेध कर रहे हैं और स्वयं भारद्वाज जी भी। अतः ऋदन्त धातु थल् में नित्यानिट् होते हैं।

कारिका का तीसरा भाग है- **क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्।** अर्थात् **कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु** और **श्रु** इन आठ धातुओं को छोड़कर शेष सभी अनुदात्त धातु लिट् में सेट् हो जाते हैं। अर्थात् लिट् में इट् हो जाता है। छिद्, भिद् आदि धातु कृ आदि आठ धातुओं से भिन्न हैं, अतः अनुदात्त होने पर भी इन से परे लिट् को इट् हो जाता है। **बिभेदिथ, बिभेदिव, बिभेदिम, चिच्छेदिथ, चिच्छेदिव, चिच्छेदिम** आदि। कारिका तीसरा भाग **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि** के लिए है। **क्षि** आदि धातु कृ आदि से भिन्न है, अतः इससे लिट् में इट् होता है। अन्तर यह है कि लिट् के केवल थल् में पूर्वोक्त भारद्वाज नियम के अनुसार विकल्प से इट् होता है- **चिक्षयिथ, चिक्षेथ।**

चिक्षयिथ, चिक्षेथ। क्षि धातु से लिट्, सिप् उसके स्थान पर थल् आदेश करके, धातु को द्वित्व, हलादिशेष, चुत्व होने पर **चिक्षि थ** बना। **थ** को **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** इट् प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध प्राप्त हुआ। **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि** के नियम से लिट् में इट् होने का नियम प्राप्त हुआ। पुनः **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से थल् होने के कारण इट् का निषेध प्राप्त हुआ तो **ऋतो भारद्वाजस्य** से भारद्वाज के मत में इट् और अन्यों के मत में इट् का निषेध हुआ। इस तरह विकल्प से इट् का आगम हुआ। **चिक्षि+इथ** बना। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **चिक्षे इथ, अय्** आदेश, **चिक्षयिथ** सिद्ध हुआ। इट् न होने के पक्ष **चिक्षेथ** बना। इस तरह दो रूप सिद्ध हुए।

द्विवचन अथुस्, में अजादि होने के कारण वलादि नहीं है, अतः इट् का प्रसंग नहीं है। **व** और **म** में थल् नहीं है, अतः थल्-विषयक तीनों सूत्र नहीं लगते। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध प्राप्त था, **क्रादिनियम** से इट् होता है। जिससे **चिक्षयिव, चिक्षयिम** ये रूप बनते हैं।

लिट् के रूप- चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः, चिक्षयिथ-चिक्षेथ, चिक्षियथुः, चिक्षिय, चिक्षाय-चिक्षय, चिक्षयिव, चिक्षयिम।

लुट्- क्षेता, क्षेतारौ, क्षेतारः, क्षेतासि, क्षेतास्थः, क्षेतास्थ, क्षेतास्मि, क्षेतास्वः, क्षेतास्मः।

लुट् लकार में इट् होता ही नहीं है, क्योंकि **ऊदृदन्तैर्यौति०** इस कारिका के

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४८३. अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः। क्षीयात्।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४८४. सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि। अक्षैषीत्। अक्षेष्यत्। **तप सन्तापे॥१४॥** तपति। ततापा। तेपतुः। तेपुः। तेपिथ-ततप्थ। तेपिव। तेपिम। तप्ता। तप्स्यति। तपतु। अतपत्। तपेत्। तप्यात्। अताप्सीत्। अताप्ताम्। अतप्स्यत्। **क्रमु पादविक्षेपे॥१५॥**

....

नियम से यह धातु उपदेश अवस्था मे एकाच् और अनुदात्त है। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध हो जाता है। इसी तरह लृट्, लुङ्, लृङ् लकार में भी इट् का निषेध हो जाता है।

लृट्- क्षेष्यति, क्षेष्यतः, क्षेष्यन्ति, क्षेष्यसि, क्षेष्यथः, क्षेष्यथ, क्षेष्यामि, क्षेष्यावः, क्षेष्यामः। **लोट्-** क्षयतु-क्षयतात्, क्षयताम्, क्षयन्तु, क्षय-क्षयतात्, क्षयतम्, क्षयत, क्षयाणि, क्षयाव, क्षयाम। **लङ्-** अक्षयत्, अक्षयताम्, अक्षयन्, अक्षयः, अक्षयतम्, अक्षयत, अक्षयम्, अक्षयाव, अक्षयाम। **विधिलिङ्-** क्षयेत्, क्षयेताम्, क्षयेयुः, क्षयेः, क्षयेतम्, क्षयेत, क्षयेयम्, क्षयेव, क्षयेम।

४८३- **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः**। कृत् च सार्वधातुकञ्च कृत्सार्वधातुके, न कृत्सार्वधातुके अकृत्सार्वधातुके, तयोः अकृत्सार्वधातुकयोः। अकृत्सार्वधातुकयोः सप्तम्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अचश्च** इस परिभाषा सूत्र से **अचः** की उपस्थिति होती है। **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** की अनुवृत्ति आती है।

यकार जिस के आदि में हो ऐसे प्रत्यय के परे होने पर अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है किन्तु कृत्-संज्ञक प्रत्ययों और सार्वधातुक प्रत्ययों के परे होने पर नहीं।

क्षीयात्। क्षि से आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट्, अनुबन्धलोप, संयोगादिलोप करके **क्षि+यात्** बना है। **अकृत्सार्वधातुयोदीर्घः** से दीर्घ होकर **क्षीयात्** सिद्ध हुआ।

आशीर्लिङ्- क्षीयात्, क्षीयास्ताम्, क्षीयासुः, क्षीयाः, क्षीयास्तम्, क्षीयास्त, क्षीयासम्, क्षीयास्व, क्षीयास्म।

४८४- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु**। सिचि सप्तम्यन्तं, वृद्धिः प्रथमान्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **इको गुणवृद्धी** से **इकः** की उपस्थिति होती है। **अलोऽन्त्यस्य** की भी उपस्थिति है।

परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय जिससे परे हो ऐसे सिच् के परे रहते इगन्त अङ्ग को वृद्धि होती है।

क्षि से लुङ् लकार, तिप्, अट् का आगम, **इतश्च** से इकार का लोप, च्लि, उसके स्थान पर सिच् आदेश, अनिट् होने के कारण इट् नहीं किन्तु अपृक्त को मानकर होने वाला **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् का आगम करके **अक्षि+स्+ईत्** बना। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से सिच् के परे रहते क्षि के इकार को वृद्धि करके **अक्षै+स्+ईत्** बना। सकार

वैकल्पिकश्यन्विधायकं विधिसूत्रम्

४८५. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ३।१।७०॥

एभ्यः श्यन् वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे। पक्षे शप्।

....

को षत्व करके वर्णसम्मेलन करके **अक्षैषीत्** सिद्ध हुआ। **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से होने वाला ईट् केवल तिप् और सिप् में ही हो पाता है, क्योंकि एक अल् अपृक्त यहीं पर ही मिलता है। अतः द्विवचन में **अक्षि+स्+ताम्** में वृद्धि, षत्व, षकार के परे तकार को ष्टुत्व करके **अक्षैष्टाम्** बनता है।

लुङ् के रूप- अक्षैषीत्, अक्षैष्टाम्, अक्षैषुः, अक्षैषीः, अक्षैष्टम्, अक्षैष्ट, अक्षैषम्, अक्षैष्व, अक्षैष्म। **लृङ् के रूप**- अक्षेष्यत्, अक्षेष्यताम्, अक्षेष्यन्, अक्षेष्यः, अक्षेष्यतम्, अक्षेष्यत, अक्षेष्यम्, अक्षेष्याव, अक्षेष्याम।

तप सन्तापे। तप धातु का **सन्ताप** अर्थ है। सन्ताप के भी अनेक अर्थ होते हैं- जैसे- तपना, चमकना, दुःखी होना, तपस्या करना, गरम करना आदि। प्रसंग के अनुसार अर्थ किया जाता है। अकार की इत्संज्ञा होकर **तप्** बचता है। अनिट् है, अतः भारद्वाजनियम में थल् में विकल्प से इट् होगा। इस धातु में कोई अलग से विशेष सूत्र नहीं लगता। अतः इसके रूप बनाने में कोई परेशानी नहीं है। लिट् में एत्वाभ्यास लोप, लिट् के थल् में वैकल्पिक इट्, लुङ् में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि, लुङ् के द्विवचन आदि में **झलो झलि** से सकार का लोप करें।

लट्- तपति, तपतः, तपन्ति, तपसि, तपथः, तपथ, तपामि, तपावः, तपामः।
लिट्- तताप, तेपतुः, तेपुः, तेपिथ-ततप्थ, तेपथुः, तेप, तताप-ततप, तेपिव, तेपिम।
लुट्- तप्ता, तप्तारौ, तप्तारः, तप्तासि, तप्तास्थः, तप्तास्थ, तप्तास्मि, तप्तास्वः, तप्तास्मः।
लृट्- तप्स्यति, तप्स्यतः, तप्स्यन्ति, तप्स्यसि, तप्स्यथः, तप्स्यथ, तप्स्यामि, तप्स्यावः, तप्स्यामः।
लृट्- तपतु-तपतात्, तपताम्, तपन्तु, तप-तपतात्, तपतम्, तपत, तपानि, तपाव, तपाम।
लङ्- अतपत्, अतपताम्, अतपन्, अतपः, अतपतम्, अतपत, अतपम्, अतपाव, अतपाम।
विधिलिङ्- तपेत्, तपेताम्, तपेयुः, तपेः, तपेतम्, तपेत, तपेयम्, तपेव, तपेम।
आशीर्लिङ्- तप्यात्, तप्यास्ताम्, तप्यासुः, तप्याः, तप्यास्तम्, तप्यास्त, तप्याम्, तप्यास्व, तप्यास्म।
लुङ्- अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः, अताप्सीः, अताप्तम्, अताप्त, अताप्सम्, अताप्स्व, अताप्स्म।
लृङ्- अतप्स्यत्, अतप्स्यताम्, अतप्स्यन्, अतप्स्यः, अतप्स्यतम्, अतप्स्यत, अतप्स्यम्, अतप्स्याव, अतप्स्याम।

क्रमु पादविक्षेपे। क्रमु धातु पादविक्षेप अर्थात् कदम बढ़ाना, चलना अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है, **क्रम्** शेष रहता है। उदित् होने से **उदितो वा** की प्रवृत्ति कृत्प्रकरण में होती है। यह धातु सेट् है अर्थात् थल्, तासि आदि में इट् होता है।

४८५- वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। भ्राशश्च भ्लाशश्च भ्रमुश्च क्रमुश्च, क्लमुश्च, त्रसिश्च त्रुटिश्च लष् च तेषां समाहारद्वन्द्वः भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलष्, तस्माद् भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। वा अव्ययपदं, भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दिवादिभ्यः श्यन्** से **श्यन्**, **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके**, और **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४८६. क्रमः परस्मैपदेषु ७।३।७६।।

क्रमो दीर्घः परस्मैपदे शिति। क्राम्यति, क्रामति। चक्राम। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु। अक्राम्यत्, अक्रामत्। क्राम्येत्, क्रामेत्। क्रम्यात्, अक्रमीत्। अक्रमिष्यत्। **पा पाने।।१६।।**

....

कर्ता अर्थ वाले सार्वधातुक के परे होने पर भ्राश्, भ्लाश्, भ्रम्, क्रम्, क्लम्, त्रस्, त्रुटि और लष् धातुओं से विकल्प से श्यन् होता है।

यह शप् को बाधकर के होता है। वैकल्पिक है, अतः न होने के पक्ष में शप् भी हो जाता है। श्यन् में शकार और नकार की इत्संज्ञा होती है। शित् के अनेक प्रयोजन हैं। सामान्यतया श्यन् दिवादिगणीय धातुओं से होता है किन्तु यहाँ पर उक्त धातुओं से विशेष विधान किया गया है। यहाँ प्रसंग में **क्रम्** धातु है।

४८६- **क्रमः परस्मैपदेषु**। क्रमः पञ्चम्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** और **शमामष्टानां दीर्घः श्यनि** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

परस्मैपदपरक शित् के परे होने पर क्रम को दीर्घ होता है।

अचश्च से **अचः** की उपस्थिति होने से **क्रम्** में अच्-अकार के स्थान पर दीर्घ हो जायेगा। परस्मैपद में ही दीर्घ होता है। यदि अर्थभेद या उपसर्ग आदि से यह धातु आत्मनेपदी हो जाय तो दीर्घ नहीं होता है। जैसे- प्रक्रमते, आक्रमते।

क्राम्यति। क्रम् से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर के **वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः** से वैकल्पिक श्यन्, अनुबन्धलोप करके **क्रम्+यति** बना। **क्रमः परस्मैपदेषु** से दीर्घ होकर **क्राम्+यति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **क्राम्यति** सिद्ध हुआ। श्यन् न होने के पक्ष में शप् ही होता है। अतः **क्रामति** यह रूप बनेगा। दीर्घ दोनों में होता है, क्योंकि शप् और श्यन् दोनों ही शित् प्रत्यय हैं।

लट्-लकार **श्यन् पक्ष में**- क्राम्यति, क्राम्यतः, क्राम्यन्ति, क्राम्यसि, क्राम्यथः, क्राम्यथ, क्राम्यामि, क्राम्यावः, क्राम्यामः। **शप् पक्ष में**- क्रामति, क्रामतः, क्रामन्ति, क्रामसि, क्रामथः, क्रामथ, क्रामामि, क्रामावः, क्रामामः। **लिट्**- चक्राम, चक्रमतुः, चक्रमुः, चक्रमिथ, चक्रमथुः, चक्रम, चक्राम-चक्रम, चक्रमिव, चक्रमिम। **लुट्**-क्रमिता, क्रमितारौ, क्रमितारः, क्रमितासि। **लृट्**- क्रमिष्यति, क्रमिष्यतः, क्रमिष्यन्ति, क्रमिष्यसि। **लोट्- श्यन्-पक्षे**- क्राम्यतु-क्राम्यतात्, क्राम्यताम्, क्राम्यन्तु। **शप्पक्षे**- क्रामतु-क्रामतात्, क्रामताम्, क्रामन्तु। **लङ्- श्यन्पक्षे**- अक्राम्यत्, अक्राम्यताम्, अक्राम्यन्। **शप्पक्षे**- अक्रामत्, अक्रामताम्, अक्रामन्। **विधिलिङ्**- क्राम्येत्, क्राम्येताम्, क्राम्येयुः। क्रामेत्, क्रामेताम्, क्रामेयुः। **आशीर्लिङ्**- क्रम्यात्, क्रम्यास्ताम्, क्रम्यासुः आदि।

लुङ् में- अक्रम्+इस्+ईत् बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि प्राप्त, उसका **नेटि** से निषेध प्राप्त, उसे भी बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक इट् प्राप्त, मकारान्त होने के कारण उसे भी बाधकर के **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्वेदिताम्** से निषेध हुआ। सकार का **इटः इटि** से लोप करके सवर्णदीर्घ करने पर **अक्रमीत्** यह रूप बनता है। अक्रमीत्,

पिबाद्यादेशविधायकं सूत्रम्

४८७. पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्यर्ति-सर्ति-शद-सदां पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्यर्च्छ-धौ-शीय-सीदाः ७।३।७८॥

पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः। पिबति।

....

अक्रमिष्टाम्, अक्रमिषुः, अक्रमीः, अक्रमिष्टम्, अक्रमिष्ट, अक्रमिषम्, अक्रमिष्व, अक्रमिष्म। **लृङ् में-** अक्रमिष्यत्, अक्रमिष्यताम्, अक्रमिष्यन् आदि।

पा धातु पीने के अर्थ में है। अनिट् है। **पिबति**= पीता है।

४८७- पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीय-सीदाः। पाश्च घ्राश्च ध्माश्च स्थाश्च म्नाश्च दाण्च दृशिश्च अर्तिश्च सर्तिश्च शद् च, सद् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदः, तेषां पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्ति-सर्तिशदसदां। पिबश्च जिघ्रश्च धमश्च तिष्ठ, मनश्च यच्छश्च पश्यश्च ऋच्छश्च धौश्च शीयश्च सीदश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः। पाघ्राध्मास्थाम्ना-दाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां षष्ठ्यन्तं, पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

इत्संज्ञक शकरादि प्रत्यय के परे रहते पा, घ्रा आदि धातुओं के स्थान पर पिब, जिघ्र आदि आदेश होते हैं।

इत्संज्ञक शकार जैसे तिङन्त प्रकरण में **शप्, श्यन्, श** आदि और **कृदन्त प्रकरण** के **शतृ, शानच्, खश्** आदि प्रत्ययों के परे होने पर यह सूत्र **पा, घ्रा** आदि धातुओं के स्थान पर **पिब, जिघ्र** आदि आदेश करता है। **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से क्रमशः होता है और सभी आदेश अनेकाल् हैं, अतः **अनेकाल्शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश भी होता है। लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में यह आदेश नहीं होगा, क्योंकि यहाँ शकार-इत्संज्ञक प्रत्यय नहीं मिलता है। **ये पिब** आदि आदेश अदन्त हैं। यदि हलन्त आदेश होते तो **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **पेबति** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

इस प्रकार से **पा** के स्थान पर **पिब, घ्रा** के स्थान पर **जिघ्र, ध्मा** के स्थान पर **धम, स्था** के स्थान पर **तिष्ठ, म्ना** के स्थान पर **मन, दाण्** के स्थान पर **यच्छ, दृश्** के स्थान पर **पश्य, ऋ** के स्थान पर **ऋच्छ, सृ** के स्थान पर **धौ, शद्** के स्थान पर **शीय** और **सद्** के स्थान पर **सीद** आदेश होंगे।

पिबति। पा धातु से लट्, तिप्, शप् अनुबन्धलोप करके **पा+अ+ति** बना। **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से शकार इत्संज्ञक शप् वाले अकार के परे होने पर पा के स्थान पर पिब आदेश हुआ, **पिब अ ति** बना। **पिब+अ** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ- **पिबति।**

लट्- पिबति, पिबतः, पिबन्ति। पिबसि, पिबथः, पिबथ। पिबामि, पिबावः, पिबामः।

औकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४८८. आत औ णलः ७।१।३४॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्। पपौ।

आकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४८९. आतो लोप इटि च ६।४।६४॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः।

पपतुः। पपुः। पपिथ, पपाथ। पपथुः। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्।

....

४८८- **आत औ णलः**। आतः पञ्चम्यन्तम्, औ लुप्तप्रथमाकं, णलः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

आकारान्त धातु से परे लिट् लकार के णल् के स्थान पर औकार आदेश होता है।

पपौ। पा धातु से लिट् लकार, तिप् आदेश, उसके स्थान पर णल् आदेश करके **पा अ** बना। शकार-इत्संज्ञक प्रत्यय के अभाव में पिब आदेश नहीं हुआ। **आत औ णलः** से णल् के अकार के स्थान पर औकार आदेश हुआ- **पा औ** बना। पा का द्वित्व, **पा पा औ**, एक ही हल् है, अतः हलादि शेष की कोई आवश्यकता नहीं। **ह्रस्वः** से प्रथम पा के आकार को ह्रस्व हुआ **पपा+औ** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **पपौ** बना।

४८९- **आतो लोप इटि च**। आतः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, इटि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है और **दीङो युडचि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि आर्धधातुक कित्, ङित् प्रत्यय और आर्धधातुक इट् आगम के परे रहते आकार का लोप होता है।

पपतुः। **पा** धातु से लिट्, तस्, अतुस् आदेश, **लिट् च** से आर्धधातुकसंज्ञा **पा अतुस्** में द्वित्व, ह्रस्व, **पपा अतुस्** हुआ। अजादि आर्धधातुक परे है अतुस्, अतः **आतो लोप इटि च** से पपा के आकार का लोप हुआ **पप् अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **पपतुः**। इसी प्रकार से **पपुः** भी बनाइये।

पपिथ-पपाथ। पा धातु से लिट्, सिप्, थल्, द्वित्व, ह्रस्व करके **पपा थ** बना है। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध प्राप्त हुआ तो उसे भी बाधकर **ऋतो भारद्वाजस्य** से वैकल्पिक इट् हुआ। इट् होने के पक्ष में **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होकर **पप्+इथ** हुआ और वर्णसम्मेलन करके **पपिथ** सिद्ध हो गया। इट् के न होने के पक्ष में **पपाथ** ही रह जायेगा।

पपथुः। **पप**। इन दोनो में लिट्, थस् और थ, उनके स्थान पर अथुस् और अ आदेश करके द्वित्व, ह्रस्व, **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करें।

पपौ। जैसे प्रथमपुरुष के णल् में बनाया था, उसी प्रकार से उत्तमपुरुष के णल् में भी बनाइये।

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४९०. एर्लिङि ६।४।६७॥

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि।

पेयात्। **गातिस्थेति सिचो लुक्।** अपात्। अपाताम्।

जुसादेशविषयकं नियमसूत्रम्

४९१. आतः ३।४।११०॥

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस्।

....

पपिव। पपिम। इन दोनों प्रयोग में **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् और **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करना न भूलें।

इस प्रकार से पा धातु के लिट् लकार में **पपौ, पपतुः, पपुः, पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप, पपौ, पपिव, पपिम** ये रूप सिद्ध हुए।

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से इट् निषेध होने के कारण यह धातु अनिट् है। अतः तासि, स्य, सिच् के परे रहने पर भी इट् का आगम नहीं होगा।

पाता। पा धातु से लुट्, तिप्, तासि, इट् प्राप्त, इट् का निषेध, डा आदेश, टि का लोप करके पाता बन जाता है। पाता, पातारौ, पातारः, पातासि, पातास्थः, पातास्थ, पातास्मि, पातास्वः, पातास्मः।

लृट्- पास्यति, पास्यतः, पास्यन्ति, पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ, पास्यामि, पास्यावः, पास्यामः।

लोट्- पिबतु-पिबतात्, पिबताम्, पिबन्तु। पिब-पिबतात्, पिबतम्, पिबत, पिबानि, पिबाव, पिबाम।

लङ्- अपिबत्, अपिबताम्, अपिबन्, अपिबः, अपिबतम्, अपिबत, अपिबम्, अपिबाव, अपिबाम।

विधिलिङ्- पिबेत्, पिबेताम्, पिबेयुः, पिबेः, पिबेतम्, पिबेत, पिबेयम्, पिबेव, पिबेम।

४९०- एर्लिङि। एः प्रथमान्तं, लिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से **घुमास्थागापाजहातिसाम्** तथा **दीङो युडचि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

आर्धधातुकसंज्ञक कित्-लिङ् परे हो तो घुसंज्ञक धातु तथा मा, स्था, गा, पा, हा और षो धातु को एकार आदेश होता है।

यह आदेश अङ्ग को होता है, फलतः अङ्ग के अन्त में विद्यमान आकार के स्थान पर ही होगा।

पेयात्। पा धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार, तिप्, यासुट् का आगम, **किदाशिषि** से यासुट् को कित्व, **एर्लिङि** से पा में आकार के स्थान पर एकार आदेश हुआ- **पेयात्।** इस प्रकार से पा धातु के आशिर्लिङ् में रूप बनते हैं- **पेयात्, पेयास्ताम्, पेयासुः, पेयाः, पेयास्तम्, पेयास्त, पेयासम्, पेयास्व, पेयास्म।**

अपात्। अपाताम्। पा धातु से लुङ् लकार, तिप्, अट् का आगम, च्लि, सिच्, ति में इकार का लोप, **अपा स् त्** बना। अनिट् धातु होने के कारण इट् आगम नहीं हुआ। सिच् के सकार का **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से लोप होने के कारण विद्यमान सिच् नहीं रहा। अतः **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से दीर्घ ईट् आगम भी नहीं हुआ- **अपात्।** इसी प्रकार से द्विवचन में **अपाताम्** भी बनाइये।

परररूपविधायकं विधिसूत्रम्

४९२. उस्यपदान्तात् ६।१।९६

अपदान्तादकारादुसि परे पररूपमेकादेशः।

अपुः। अपास्यत्। **ग्लै हर्षक्षये।।१७।।** ग्लायति।

आत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४९३. आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५।।

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्वं न तु शिति।

जग्लौ। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्।

....

४९१- **आतः**। आतः पञ्चम्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से **सिचः** और **झेर्जुस्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

सिच् के लुक् होने पर आदन्त धातु से परे ही झि को जुस् आदेश होता है, अन्य धातुओं से परे को नहीं।

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु से सिच् का लुक् हो चुका होता है, अतः सिच् का अर्थ सिच् का लुक् होने पर ऐसा अर्थ किया गया। यह सूत्र नियमार्थ है, क्योंकि **झि** के स्थान पर जुस् आदेश **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से भी सिद्ध है। **सिद्धे सत्यारम्भमाणो विधिर्नियमाय भवति।** यहाँ यह नियम बनता है कि **सिच् का लुक् होने पर यदि झि को जुस् आदेश करना हो तो वह केवल आकारान्त धातुओं से परे ही हो, अन्य धातुओं से नहीं।**

४९२- **उस्यपदान्तात्।** न पदान्तम् अपदान्तम्, तस्मात् अपदान्तात्। उसि सप्तम्यन्तम्, अपदान्तात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आद्गुणः** से **आत्** और **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति तथा **एकः पूर्वपरयोः** का पूरा अधिकार आ रहा है।

अपदान्त अकार से उस् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

अपुः। पा धातु से लुङ्, झि, अट् का आगम, च्लि, सिच्, सिच् के लुक् हो जाने पर **अ पा झि** बना हुआ है। झि के स्थान पर **आतः** से जुस् आदेश, अनुबन्धलोप, **अपा+उस्** बना। **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **उस्यपदान्तात्** से पा में आकार और उस् के उकार के स्थान पर पररूप होकर उकार ही आदेश हुआ। **अप्+उस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **अपुः**।

इस प्रकार से लुङ् लकार में निम्नलिखित रूप बन जाते हैं- अपात्, अपाताम्, अपुः, अपाः अपातम्, अपात, अपाम्, अपाव, अपाम।

लृङ् लकार में- अपास्यत्, अपास्यताम्, अपास्यन्, अपास्यः, अपास्यतम्, अपास्यत, अपास्यम्, अपास्याव, अपास्याम।

ग्लै हर्षक्षये। ग्लै धातु हर्षक्षय अर्थात् दुःखी होना, मुरझाना, थकना आदि अर्थ में है। अन्त में ऐ होने के कारण यह एजन्त धातु है। किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती है।

वैकल्पिकात्वविधायकं विधिसूत्रम्

४९४. वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वाऽऽर्धधातुके किति लिङि। ग्लेयात्, ग्लायात्।

....

ग्लायति। ग्लै से लट्, तिप्, शप् करके **ग्लै+अति** बना। ऐकार के स्थान पर आय् आदेश होकर **ग्ल्+आय्+अति=ग्लायति** सिद्ध हुआ। **ग्लायतः, ग्लायन्ति** आदि।

४९३- आदेच उपदेशेऽशिति। श् इत् यस्य स शित्, न शित् अशित्, तस्मिन्(विषये) अशिति, नञ्तत्पुरुष। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में एजन्त धातु के अन्त्य अल् के स्थान पर आकार आदेश होता है परन्तु शित्प्रत्यय का विषय हो तो नहीं।

लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ् इन लकारों में शप्, श्यन् आदि नहीं होता, अतः ये अशित् है। इन लकारों में यह सूत्र लगता है और लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन लकारों में शित् होने के कारण नहीं लगता। **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से एच् अर्थात् ए, ओ, ऐ, औ के स्थान पर आकार आदेश होता है।

जग्लौ। ग्लै से लिट्, तिप्, णल्, **ग्लै+अ** बना। **आदेच उपदेशेऽशिति** से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ, **ग्ला+अ** बना। **आत औ णलः** से णल् वाले अकार के स्थान पर औकार आदेश होकर **ग्ला+औ** बना। **ग्ला** को द्वित्व, हलादि शेष करके **गाग्ला+औ** बना। **ह्रस्वः** से **गा** को ह्रस्व होकर **गग्ला** बना। **कुहोश्चुः** से **चुत्व** होकर **जग्ला+औ** बना। वृद्धि होकर **जग्लौ** सिद्ध हुआ। **ग्लै** को आत्व करने के बाद यह **पा** धातु के जैसा आकारान्त बन जाता है। अतः पपतुः, पपुः आदि की तरह **जग्लतुः, जग्लुः, जग्लिथ-जग्लाथ, जग्लथुः, जग्ल, जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम** बन जाते हैं। स्मरण रहे कि अशित् प्रत्ययों के परे आत्व होता है।

लुट्- ग्लाता, ग्लातारौ, ग्लातारः, ग्लातासि, ग्लातास्थः, ग्लातास्थ, ग्लातास्मि, ग्लातास्वः, ग्लातास्मः।**लृट्**- ग्लास्यति, ग्लास्यतः, ग्लास्यन्ति, ग्लास्यसि, ग्लास्यथः, ग्लास्यथ, ग्लास्यामि, ग्लास्यावः, ग्लास्यामः। **लोट्**- ग्लायतु-ग्लायतात्, ग्लायताम्, ग्लायन्तु, ग्लाय-ग्लायतात्, ग्लायतम्, ग्लायत, ग्लायानि, ग्लायाव, ग्लायाम। **लङ्**- अग्लायत्, अग्लायताम्, अग्लायन्, अग्लायः, अग्लायतम्, अग्लायत, अग्लायम्, अग्लायाव, अग्लायाम। **विधिलिङ्**- ग्लायेत्, ग्लायेताम्, ग्लायेयुः, ग्लायेः, ग्लायेतम्, ग्लायेत, ग्लायेयम्, ग्लायेव, ग्लायेम।

४९४- वान्यस्य संयोगादेः। संयोगः आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य संयोगादेः। वा अव्ययपदम्, अन्यस्य षष्ठ्यन्तं, संयोगादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **एर्लिङि** से **लिङि, आतो लोप इटि च** से **आतः** और **दीङो युडचि क्ङिति** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

घु, मा, स्था आदि धातुओं से अतिरिक्त संयोगादि धातु के आकार के स्थान पर एकार आदेश विकल्प होता है आर्धधातुक कित् लिङ् परे हो तो।

अष्टाध्यायी के क्रम में इससे दो सूत्र पहले **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** यह

इट्-सगागमविधायकं विधिसूत्रम्

४९५. यमरमनमातां सक् च ७।२।७३॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु।
अग्लासीत्। अग्लास्यत्। **ह्वृ (ह्वृ) कौटिल्ये॥१८॥** ह्वरति।

....

सूत्र पढ़ा गया है। उसमें पठित धातुओं से भिन्न धातुओं को **अन्यस्य** से कहा गया है। पूर्व प्रसंग में आये धातुओं से अन्य धातुएँ यदि संयोगादि हों और अन्त में आकार हो तो ऐसे धातुओं के आकार के स्थान पर एकार आदेश कित् लिङ् अर्थात् आशीर्लिङ् के यासुट् के परे होने पर होता है।

ग्लेयात्, ग्लायात्। ग्लै से आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट् आगम, कित्व करके **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होकर **ग्ला+यास्+त्** बना। **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एकार आदेश करने पर **ग्लेयास् त्** बना। संयोगादि सकार का लोप करके **ग्लेयात्** बना। एकार आदेश न होने के पक्ष में आकार ही रह जाता है, **ग्लायात्।** इस तरह दो रूप बनते हैं। **आशीर्लिङ्** में **एत्वपक्ष** में- ग्लेयात्, ग्लेयास्ताम्, ग्लेयासुः, ग्लेयाः, ग्लेयास्तम्, ग्लेयास्त, ग्लेयासम्, ग्लेयास्व, ग्लेयास्म। **एत्व न होने पर** ग्लायात्, ग्लायास्ताम्, ग्लायासुः, ग्लायाः, ग्लायास्तम्, ग्लायास्त, ग्लायासम्, ग्लायास्व, ग्लायास्म।

४९५- **यमरमनमातां सक् च।** यमश्च रमश्च नमश्च आत् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः यमरमनमातः, तेषां यमरमनमातां षष्ठ्यन्तं, सक् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अञ्जेः सिचि** से **सिचि** तथा **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से **परस्मैपदेषु** एवं **इडत्यर्तिव्ययतीनाम्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद मे सिच् परे होने पर यम्, रम्, नम् तथा आकारान्त धातुओं सक् का आगम और साथ ही सिच् को इट् का आगम भी होता है।

यह सूत्र दो कार्य करता है- सक् का आगम और सिच् को इट् का आगम। सक् में ककार की इत्संज्ञा होती है और सकारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थक है। अतः केवल स् मात्र शेष बचता है।

अग्लासीत्। ग्लै से लुङ्, तिप्, सिच्, आत्व, **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से **ईट्** आगम करके **अग्ला+स्+ईत्** बना। **ग्ला** यह आकारान्त अङ्ग है। अतः **यमरमनमातां सक् च** से सक् और इट् होकर **अग्ला+स्+इ+स्+ईत्** बना। **इट ईटि** से सकार का लोप करके **इ+ई** में सवर्णदीर्घ होकर **अग्ला+स्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अग्लासीत्** सिद्ध हुआ। द्विवचन में ईट् आगम नहीं होगा किन्तु सक् और इट् आगम होंगे, अतः सिच् के सकार का लोप भी नहीं होगा। **अग्लास्+इ+स्+ताम्** है। इकार से परे सकार को षकार और उससे परे तकार को ष्टुत्व होकर वर्णसम्मेलन करने पर **अग्लासिष्टाम्** सिद्ध हुआ।

लुङ्- अग्लासीत्, अग्लासिष्टाम्, अग्लासिषुः, अग्लासीः, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट, अग्लासिषम्, अग्लासिष्व, अग्लासिष्म। **लृङ्-** अग्लास्यत्, अग्लास्यताम्, अग्लास्यन्, अग्लास्यः, अग्लास्यतम्, अग्लास्यत, अग्लास्यम्, अग्लास्याव, अग्लास्याम।

ह्वृ कौटिल्ये। ह्+वृ=ह्वृ यह धातु **कुटिल व्यवहार करना** अर्थ में है। अनिट् है। इस धातु का प्रयोग कम ही होता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

४९६. ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि। उपधाया वृद्धिः। जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थः। जह्वरथुः। जह्वर। जह्वार, जह्वर। जह्वरिव, जह्वरिम। ह्वर्ता।

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४९७. ऋद्धनोः स्ये ७।२।७०॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट्। ह्वरिष्यति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्।

....

ह्वरति। ह्वृ से लट्, तिप्, शप्, गुण करके **ह्व्+अर्+अ+ति**, वर्णसम्मेलन करके **ह्वरति** सिद्ध होता है।

४९६- **ऋतश्च संयोगादेः**। संयोगः आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य संयोगादेः। ऋतः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, संयोगादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **दयेतेर्दिगि लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

संयोग आदि में हो ऐसे ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है लिट् के परे होने पर।

यद्यपि **तिप्** में इस सूत्र की आवश्यकता नहीं है। **ह्वृ** से लिट्, तिप्, णल्, अ, ह्वृ को द्वित्व होकर **उरत्** से अर् करके हलादिशेष, **हह्व+अ**, **कुहोश्चुः** से चुत्व करके जकार और **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करने पर **जह्वार** बन जाता है किन्तु तस् आदि में वृद्धि नहीं होती है। अतः इस सूत्र की आवश्यकता होती है। जब सूत्र पढ़ा ही गया है और अन्य सूत्रों का अपवाद भी बन रहा है तो तिप् में भी यह सूत्र प्रवृत्त होगा।

जह्वार। ह्वृ से लिट्, तिप्, णल् करके **द्विर्वचनेऽचि** के अनुसार सर्वप्रथम द्वित्व, **उरत्** से अर्, हलादिशेष, चुत्व करके **झ** आदेश, **अभ्यासे चर्च** से झकार के स्थान पर जकार आदेश करके **जह्वृ+अ** बना। अब **अचो ञ्णिति** से वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर के **ऋतश्च संयोगादेः** से गुण होकर **जह्वर्+अ** बना। अब **अत उपधायाः** से उपधा की वृद्धि करके **जह्वार+अ**, वर्णसम्मेलन करके **जह्वार** सिद्ध हुआ। तस् आदि में भी यही प्रक्रिया होती है। वहाँ पर वृद्धि प्राप्त नहीं होती है किन्तु **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हो रहा था। अतः **ऋतश्च संयोगादेः** से पुनः गुण होता है। **थल्** में ऋदन्त धातु होने के कारण अन्यमत और भारद्वाजमत दोनों के नियम से इट् नहीं होता है। इस तरह लिट् में रूप बने- जह्वार, जह्वरतुः, जह्वरुः, जह्वर्थ, जह्वरथुः, जह्वर, जह्वार-जह्वर, जह्वरिव, जह्वरिम।

अनिट् होने के कारण **लुट् में**- ह्वर्ता, ह्वर्तारौ, ह्वर्तारः, ह्वर्तासि, ह्वर्तास्थः, ह्वर्तास्थ, ह्वर्तास्मि, ह्वर्तास्वः, ह्वर्तास्मः।

४९७- **ऋद्धनोः स्ये**। ऋत् च हन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः ऋद्धनौ, तयोः ऋद्धनोः। ऋद्धनोः षष्ठ्यन्तं, पञ्चम्यर्थे षष्ठी। स्ये सप्तम्यन्तं, षष्ठ्यर्थे सप्तमी। द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुस्येड्वलादेः** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ऋदन्त धातु तथा हन् धातु से परे स्य को इट् का आगम होता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

४९८. गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९॥

अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्याद्यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्। **श्रु श्रवणे॥१९॥**

....

हन् और **ऋकारान्त** धातुओं के अनुदात्त और एकाच् होने के कारण अनिट् होने से **तासि** प्रत्यय के परे भी अनिट् हैं और **स्य** के परे भी अनिट् ही थे परन्तु आचार्य **स्य** को इट् आगम करना चाहते हैं। अतः उन्होंने इस सूत्र का आरम्भ किया। हन् धातु का उदाहरण अदादि में मिलता है। यहाँ पर केवल ऋदन्त का उदाहरण है।

ह्वरिष्यति। ह्वृ से लृट्, तिप्, स्य, आर्धधातुकसंज्ञा, अनुदात्त धातु होने के कारण **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध प्राप्त था, स्य के परे **ऋद्धनोः स्ये** से इट् का विधान किया गया। **ह्वृ+स्य+ति** में इट् आगम करके ह्वृ के ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुयोः** से गुण करके **ह्वर्+इ+स्य+ति** बना। इकार से परे सकार को षत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **ह्वरिष्यति** सिद्ध हुआ।

लृट् में- ह्वरिष्यति, ह्वरिष्यतः, ह्वरिष्यन्ति, ह्वरिष्यसि, ह्वरिष्यथः, ह्वरिष्यथ, ह्वरिष्यामि, ह्वरिष्यावः, ह्वरिष्यामः।

लोट्- ह्वरतु-ह्वरतात्, ह्वरताम्, ह्वरन्तु, ह्वर-ह्वरतात्, ह्वरतम्, ह्वरत, ह्वराणि, ह्वराव, ह्वराम।

लङ्- अह्वरत्, अह्वरताम्, अह्वरन्, अह्वरः, अह्वरतम्, अह्वरत, अह्वरम्, अह्वराव, अह्वराम।

विधिलिङ्- ह्वरेत्, ह्वरेताम्, ह्वरेयुः, ह्वरेः, ह्वरेतम्, ह्वरेत, ह्वरेयम्, ह्वरेव, ह्वरेम।

४९८- **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः**। अर्तिश्च संयोगादिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, अर्तिसंयोगादी, तयोः अर्तिसंयोगाद्योः। **रीङ् ऋतः** से **ऋतः** तथा **अकृत्सार्वधातुकयोः** से **असार्वधातुके** एवं **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से **यग्लिङोः** और **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार आ रहा है।

ऋ-धातु तथा संयोगादि ऋदन्त धातु के अङ्ग को गुण होता है यक् अथवा यकारादि धातु के परे होने पर।

अर्ति से ऋ धातु को लिया गया है। **ऋतः** की अनुवृत्ति लाकर संयोगादि को उसका विशेषण बनाया गया है। संयोगादि जो ऋदन्त धातु। यहाँ ह्वृ संयोगादि ऋदन्त धातु है। यासुट् आगम होने पर यकारादि आर्धधातुक मिलता है। **क्ङिति च** से प्राप्त निषेध में यह गुण करता है।

ह्वर्यात्। ह्वृ से आशीर्लिङ्, तिप्, **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा, यासुट् का आगम करके उसको **किदाशिषि** से कित्व किये जाने के कारण **ह्वृ+यास्+त्** में प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध प्राप्त था। **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** से गुण हुआ। **ह्वर्+यास्+त्** बना। सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **ह्वर्यात्।**

आशीर्लिङ्- ह्वर्यात्, ह्वर्यास्ताम्, ह्वर्यासुः, ह्वर्याः, ह्वर्यास्तम्, ह्वर्यास्त, ह्वर्यासम्, ह्वर्यास्व, ह्वर्यास्म।

अह्वार्षीत्। लुङ्, तिप्, इकार का लोप, च्लि, सिच्, ईट् का आगम, अट् का आगम आदि होकर **अह्वृ+स्+ईत्** बना है। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से ऋकार की वृद्धि होकर **अह्वार्+स्+ईत्** बना। रेफ इण् में आता है। अतः **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अह्वार्षीत्।**

श‍ृ इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४९९. श्रुवः श‍ृ च ३।१।७४॥

श्रुवः श‍ृ इत्यादेशः स्यात्, श्नुप्रत्ययश्च। श‍ृणोति।

ङिद्वद्भावविधायकम् अतिदेशसूत्रम्

५००. सार्वधातुकमपित् १।२।४॥

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्। श‍ृणुतः।

....

लुङ्- अह्वार्षीत्, अह्वार्ष्टाम्, अह्वार्षुः, अह्वार्षीः, अह्वार्ष्टम्, अह्वार्ष्ट, अह्वार्षम्, अह्वार्ष्व, अह्वार्ष्म। लृङ् में **ऋद्धनोः स्ये** से इट् आगम होता है। **रूप**- अह्वरिष्यत्, अह्वरिष्यताम्, अह्वरिष्यन्, अह्वरिष्यः, अह्वरिष्यतम्, अह्वरिष्यत, अह्वरिष्यम्, अह्वरिष्याव, अह्वरिष्याम।

ह्व की तरह **स्मृ चिन्तायाम्** के भी रूप बनते हैं। **स्मरति। सस्मार। स्मर्ता। स्मरिष्यति। स्मरतु। अस्मरत्। स्मरेत्। स्मर्यात्। अस्मार्षीत्। अस्मरिष्यत्।**

श्रु श्रवणे। श्रु धातु सुनने के अर्थ में है।

४९९- **श्रुवः श‍ृ च**। श्रुवः पञ्चम्यन्तं, श‍ृ लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **स्वादिभ्यः श्नुः** से **श्नुः**, **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ को कहने वाले सार्वधातुक के परे होने पर श्रु के स्थान पर श‍ृ आदेश और उससे परे श्नु प्रत्यय भी होता है।

यह सूत्र दो कार्य एक साथ करता है- एक तो **श्रु** के स्थान पर **श‍ृ** आदेश और **कर्तरि शप्** से प्राप्त शप् को बाधकर **श्नु** प्रत्यय। श्नु में शकार की इत्संज्ञा होती है, नु मात्र बचता है। शित् होने के कारण सार्वधातुकसंज्ञा होती है। अपित् सार्वधातुक बन जाने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होने के कारण नु परे रहते श‍ृ को गुण निषेध हो जाता है।

श‍ृणोति। श्रु से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **श्रुवः श‍ृ च** से **श्रु** के स्थान पर श‍ृ आदेश और श्नु प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **श‍ृ नु ति** बना। नु की सार्वधातुकसंज्ञा करके अग्रिम सूत्र **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव करने के बाद **श‍ृ** के ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध हो गया किन्तु ति को सार्वधातुक मानकर नु के उकार को उक्त सूत्र से गुण हुआ। **श‍ृ+नोति** बना। **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** इस वार्तिक से नकार को णत्व करके **श‍ृणोति** सिद्ध हुआ।

५००- **सार्वधातुकमपित्**। सार्वधातुकं प्रथमान्तम्, अपित् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से **ङित्** की अनुवृत्ति आती है।

अपित् (पित्-भिन्न) सार्वधातुक ङित् की तरह होता है।

यह अतिदेश-सूत्र है। जो सार्वधातुक पित् न हो, उसे यह ङित् जैसे होने का अतिदेश करता है, अर्थात् ङित् को मानकर होने वाले समस्त कार्य हो जाते हैं। ङित् को मानकर **क्ङिति च** से गुणवृद्धिनिषेध आदि कार्य होते हैं। परस्मैपद में तिप्, सिप् और मिप् ये तीन प्रत्यय पित् हैं, अतः इनको ङिद्वत् नहीं होता और शेष छः प्रत्ययों को ङिद्वत् हो जाता है किन्तु आत्मनेपद में तो कोई भी प्रत्यय पित् नहीं है, अर्थात् सभी अपित् हैं, अतः सभी

यण्विधायकं विधिसूत्रम्

५०१. हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७॥

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके।

शृण्वन्ति।शृणोषि।शृणुथः।शृणुथ।शृणोमि।

वैकल्पिकोकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५०२. लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः।

शृण्वः,शृणुवः।शृण्मः,शृणुमः। शुश्राव। शुश्रुवतुः। शुश्रुवुः। शुश्रोथ। शुश्रुवथुः। शुश्रुव। शुश्राव। शुश्रुव। शुश्रुम। श्रोता। श्रोष्यति।शृणोतु, शृणुतात्।शृणुताम्।शृण्वन्तु।

....

प्रत्ययों में ङिद्वद्भाव हो जाता है। शप् में पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः पित् होने के कारण ङित् नहीं हो सका। फलतः **भवति** इत्यादि प्रयोगों में **क्ङिति च** से गुण का निषेध नहीं हुआ।

शृणुतः। श्रु से लट्, तस्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **शृ** आदेश और **श्नु** प्रत्यय करके **शृ+नु+तस्** बना। श्नु और तस् दोनों अपित् और सार्वधातुक हैं। अतः **सार्वधातुकमपित्** से दोनों को ङिद्वद्भाव करके दोनों जगह **क्ङिति च** से गुण का निषेध होने पर **शृणुतः** बना।

५०१- हुश्नुवोः सार्वधातुके। हुश्च श्नुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो हुश्नुवौ, तयोर्हुश्नुवोः। हुश्नुवोः षष्ठ्यन्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि**, **इणो यण्** से **यण्**, **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से **अनेकाचः** और **असंयोगपूर्वस्य** तथा **ओः सुपि** से **ओः** की अनुवृत्ति आती है।

हु धातु और श्नु-प्रत्ययान्त जो अनेकाच् अङ्ग, उसके असंयोगपूर्व उकार के स्थान पर यण् आदेश होता है अजादि सार्वधातुक परे हो तो।

हु और **श्नु** के **उकार** को गुण होता है यदि **श्नु** के उकार के पहले संयोग न हो, और नु को लेकर अनेकाच् बनता हो तो। किसी भी धातु में नु के लगने के बाद तो अनेकाच् बनेगा ही। अनेकाच् अङ्ग और उकार से पूर्व संयोग न हो, ऐसा कहने से **आप्+नु+अन्ति** में उकार से पहले पकार और नकार का संयोग है। अतः वहाँ यण् न होकर उवङ् होता है।

शृण्वन्ति। श्रु से झि, अन्त् आदेश, **शृ** आदेश और **श्नु** प्रत्यय करके **शृनु+अन्ति** बना। **शृनु** अनेकाच् अङ्ग है और **नु** का उकार असंयोगपूर्व भी है अर्थात् उकार के पहले संयोग भी नहीं है। अतः **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से उकार के स्थान पर यण् होकर व् आदेश हुआ। **शृन्व्+अन्ति** में **णत्व** और वर्णसम्मेलन करके **शृण्वन्ति** सिद्ध हुआ।

शृणोषि। **शृणोति** की तरह इसे भी बनाइये। **शृणोमि** भी इसी तरह बनता है। **शृणुतः** की तरह **शृणुथः** और **शृणुथ** भी बनता है।

५०२- लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः। म् च व् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो म्वौ, तयोर्म्वोः। लोपः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, म्वोः सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् से **उतः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अस्य** पद से पूर्व सूत्र का परामर्श होता है।

असंयोगपूर्व प्रत्यय के उकार का विकल्प से लोप होता है म् और व् के परे होने पर।

जो प्रत्यय का उकार है, वह असंयोगपूर्व हो अर्थात् उस उकार से पूर्व में संयोग न हो। **श्रु** की अवस्था में उकार के पहले **श्+र्** का संयोग है और **शृणु** की अवस्था में उकार के अव्यवहित पहले केवल **ण्** मात्र है, अर्थात् संयोग नहीं है।

शृण्वः, शृणुवः। उत्तमपुरुष के द्विवचन में **शृणु+वस्** बनाने के बाद **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** से उकार का लोप करने पर **शृण्वः**, लोप न होने पर **शृणुवः**। इसी तरह बहुवचन में **शृण्मः, शृणुमः** दो-दो रूप बनते हैं।

शुश्राव। लिट् में शप् की प्राप्ति नहीं है, अतः **शृ** आदेश भी नहीं और **श्नु** प्रत्यय भी नहीं है। **श्रु** से लिट्, तिप्, णल् करके **श्रु+अ** बना। **श्रु** को द्वित्व करके **श्रुश्रु**, हलादिशेष करके **शुश्रु+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करने पर **शुश्रौ+अ** बना। **आव्** आदेश करके वर्णसम्मेलन करने पर **शुश्राव** यह रूप सिद्ध हुआ।

शुश्रुवतुः। द्विवचन में अतुस् होता है। **श्रु+अतुस्** में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व हो गया है। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का कित् होने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हुआ। फिर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् प्राप्त था किन्तु **द्विर्वचनेऽचि** के नियम से निषेध हुआ तो पहले द्वित्व हुआ। हलादिशेष करके **शुश्रु+अतुस्** बना। अब उवङ् आदेश और अनुबन्धलोप करके **शुश्र्+उव्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग करके **शुश्रुवतुः** बना। इसी तरह **शुश्रुवुः, शुश्रुवथुः, शुश्रुव** भी बनते हैं। मध्यमपुरुष के एकवचन में **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण **शुश्रु+थ** बना है। सिप् पित् होने के कारण कित् न हो सका। अतः गुण होने में कोई बाधा नहीं है। गुण होकर **शुश्रोथ** सिद्ध हुआ। उत्तमपुरुष के एकवचन में णल् होने के कारण प्रथमपुरुष के एकवचन की तरह **शुश्राव** बन जाता है किन्तु **णलुत्तमो वा** से वैकल्पिक णिद्वद्भाव हो जाने के कारण णित्त्व के पक्ष में तो वृद्धि होती है किन्तु णित् न होने के पक्ष में गुण होगा। इस तरह **शुश्राव, शुश्रव** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। वस् और मस् में इट्, उवङ्, गुण, वृद्धि कुछ भी नहीं प्राप्त है। अतः **शुश्रुव, शुश्रुम** ये रूप बनते हैं।

लिट्- शुश्राव, शुश्रुवतुः, शुश्रुवुः, शुश्रोथ, शुश्रुवथुः, शुश्रुव, शुश्राव-शुश्रव, शुश्रुव, शुश्रुम।

एकाच् अनुदात्त धातु होने के कारण लुट्, लृट् में इट् का आगम नहीं होता।
लुट्- श्रोता, श्रोतारौ, श्रोतारः, श्रोतासि, श्रोतास्थः, श्रोतास्थ, श्रोतास्मि, श्रोतास्वः, श्रोतास्मः। **लृट्**- श्रोष्यति, श्रोष्यतः, श्रोष्यन्ति, श्रोष्यसि, श्रोष्यथः, श्रोष्यथ, श्रोष्यामि, श्रोष्यावः, श्रोष्यामः।

शृणोतु। लोट, तिप्, **शृ** आदेश, श्नु प्रत्यय, गुण, णत्व, **एरुः** से उत्व करके **शृणोतु** बन जाता है। **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से एकपक्ष में **तातङ्** होकर **शृणुतात्** भी बनता है। द्विवचन में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदेश करके **शृणुताम्** और बहुवचन में **शृण्वन्ति** बनाने के बाद **एरुः** से उत्व करके **शृण्वन्तु** बन जाता है।

हेर्लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

५०३. उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६।४।१०६॥

असंयोगपूर्वात् प्रत्ययोतो हेर्लुक्।

शृणु,शृणुतात्।शृणुतम्।शृणुत। गुणावादेशौ।शृणवानि।शृणवाव।शृणवाम। अशृणोत्। अशृणुताम्। अशृण्वन्। अशृणोः। अशृणुतम्। अशृणुत। अशृणवम्। अशृण्व, अशृणुव। अशृण्म, अशृणुम। शृणुयात्। शृणुयाताम्। शृणुयुः।शृणुयाः।शृणुयातम्।शृणुयात।शृणुयाम्।शृणुयाव।शृणुयाम। श्रूयात्। अश्रौषीत्। अश्रोष्यत्। **गम्लृ गतौ॥२०॥**

....

५०३- उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्। नास्ति संयोगः पूर्वो यस्मात्, स असंयोगपूर्वः, तस्मात् असंयोगपूर्वात्। उतः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, प्रत्ययात् पञ्चम्यन्तम्, असंयोगपूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अतो हेः** से **हेः** और **चिणो लुक्** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके पूर्व में संयोग नहीं है, ऐसा प्रत्यय का अवयव जो उकार, उससे परे हि का लुक् हो जाता है।

शृणु, शृणुतात्। मध्यमपुरुष के एकवचन में **शृणु+हि** बनने के बाद एकपक्ष में **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से **तातङ्** होता है और तातङ् न होने के पक्ष में **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से हि का लुक हो जाता है। इस तरह **शृणु** और **शृणुतात्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। द्विवचन और बहुवचन में **शृणुतम्, शृणुत** बनते हैं।

शृणवानि। **श्रु** से मिप्, **शृ** आदेश, **श्नु** प्रत्यय, **मेर्निः** से **नि** आदेश, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम करके **शृणु+आनि** बना। णु को गुण और अव् आदेश करके **शृणवानि** सिद्ध हुआ। वस् और मस् में **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् आगम और उसे पित् किये जाने के कारण **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्त्व नहीं हुआ। अतः गुणनिषेध भी नहीं हुआ। इस तरह **शृणवाव, शृणवाम** सिद्ध हुए।

लङ्- अशृणोत्, अशृणुताम्, अशृण्वन्, अशृणोः, अशृणुतम्, अशृणुत। अशृणवम्, अशृण्व-अशृणुव, अशृण्म-अशृणुम। **वस्, मस्** में **लोपश्चास्यान्यतरस्याम् म्वोः** से विकल्प से उ-लोप होकर दो-दो रूप सिद्ध होते हैं।

विधिलिङ् में **यास्** के स्थान पर **इय्** आदेश नहीं होता क्योंकि वह अदन्त अङ्ग से परे नहीं है अपितु **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से पकार का लोप होकर बनते हैं- शृणुयात्, शृणुयाताम्, शृणुयुः, शृणुयाः, शृणुयातम्, शृणुयात, शृणुयाम्, शृणुयाव, शृणुयाम।

आशीर्लिङ् में सर्वत्र **यास्** के परे रहते **श्रु** को उकार को **अकृत्सार्वधातुकयोः** से दीर्घ होता है। श्रूयात्, श्रूयास्ताम्, श्रूयासुः, श्रूयाः, श्रूयास्तम्, श्रूयास्त, श्रूयासम्, श्रूयास्व, श्रूयास्म।

लुङ् के तिप् और सिप् में अनिट् होने से **सिच्** को इडागम नहीं होता परन्तु अपृक्त हल् त् औ स् को दीर्घ वाला ईट् आगम होता ह। अन्यत्र अपृक्त न होने से **ईट्** न होकर **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि और सिच् से सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके रूप बनते हैं- अश्रौषीत्, अश्रौष्टाम्, अश्रौषुः, अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट, अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौष्म।

छत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५०४. इषुगमियमां छः ७।३।७७॥

एषां छः स्यात् शिति। गच्छति। जगाम।

उपधालोपविधायकं विधिसूत्रम्

५०५. गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८॥

एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति न त्वङि।

जग्मतुः। जग्मुः। जगमिथ-जगन्थ। जग्मथुः। जग्म। जगाम-जगम। जग्मिव। जग्मिम। गन्ता।

....

लृट्- अश्रोष्यत्, अश्रोष्यताम्, अश्रोष्यन्, अश्रोष्यः, अश्रोष्यतम्, अश्रोष्यत, अश्रोष्यम्, अश्रोष्याव, अश्रोष्याम।

गम्लृ गतौ। इस धातु का **जाना** अर्थ है। लृ की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है, केवल **गम्** ही शेष रहता है। **गच्छति**=जाता है।

५०४- इषुगमियमां छः। इषुश्च गमिश्च यम् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- इषुगमियमः, तेषाम् इषुगमियमाम्। इषुगमियमां षष्ठ्यन्तं, छः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

शित् के परे होने पर इष्, गम् और यम् धातु के स्थान पर छकार होता है।

अलोऽन्त्यस्य के नियम से अन्त्य मकार के स्थान पर छकार आदेश होता है।

गच्छति। गम्लृ से गम् बन जाने के बाद लट्, तिप्, शप्, करके **गम्+अ+ति** में **इषुगमियमां छः** से मकार के स्थान पर छकार आदेश हुआ- **गछ् अ ति** बना। **छे च** से छकार को तुक् का आगम हुआ। अनुबन्धलोप हुआ, त् बचा, **गत्छ् अति** बना। छकार के योग में **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व होकर चकार बन गया, **गच्छ्+अति** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **गच्छति।**

लट्- गच्छति, गच्छतः, गच्छन्ति, गच्छसि, गच्छथः, गच्छथ, गच्छामि, गच्छावः, गच्छामः।

जगाम। गम् धातु से लिट्, तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होने के बाद **गम् अ** बना। गम् को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, अभ्यासलोप होकर **गगम् अ** बना। **कुहोश्चुः** से गकार के स्थान पर चुत्व होकर जकार आदेश हुआ- **जगम् अ** बना। शित् प्रत्यय के अभाव में **इषुगमियमां छः** ये छकार आदेश नहीं हुआ। **जगम्+अ** में **अत उपधायाः** से उपधा की वृद्धि हुई- **जगाम् अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **जगाम** सिद्ध हुआ।

५०५- गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि। गमश्च हनश्च जनश्च खनश्च घस् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गमहनजनखनघसः, तेषां गमहनजनखनघसाम्। क् च ङ् च क्ङौ, क्ङौ इतौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। न अङ् अनङ्, तस्मिन् अनङि। गमहनजनखनघसां षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तम्, अनङि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। सूत्र में **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** और **उदुपधाया गोहः** से **उपधायाः** की अनुवृत्ति आ रही है।

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५०६. गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८॥

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु।
गमिष्यति। गच्छतु। अगच्छत्। गच्छेत्। गम्यात्।

....

अजादि कित् ङित् के परे होने पर गम्, हन्, जन्, खन् और घस् धातु के उपधा का लोप होता है किन्तु ङित् भी यदि अङ् वाला हो तो लोप नहीं होगा।

जग्मतुः। गम् धातु से लिट्, तस्, उसके स्थान पर अतुस् आदेश, द्वित्व, हलादिशेष कर के **कुहोश्चुः** से चुत्व करने के बाद **जगम् अतुस्** बना। **जगम्** में गकारोत्तरवर्ती अकार उपधा है, अतः उसका **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से लोप हुआ, जग्म् अतुस् बना। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **जग्मतुः**। इसी प्रकार **जग्मुः** भी बनेगा।

जगमिथ-जगन्थ। गम् धातु से लिट् लकार का सिप्, उसके स्थान पर थल् आदेश, अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिशेष करके **कुहोश्चुः** से चुत्व करके **जगम्+थ** बना। गम् धातु भी **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण अनिट् है। इसलिए इट् प्राप्त नहीं था, फिर भी **ऋतो भारद्वाजस्य** के नियम से विकल्प से इट् हुआ। इट् के पक्ष में **जगम्+इथ** में वर्णसम्मेलन होकर **जगमिथ** बना। **उपदेशेऽत्वतः** से इट् न होने के पक्ष में **जगम्+थ** है। **नश्चापदान्तस्य झलि** से मकार के स्थान पर अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर अनुस्वार के स्थान पर नकार आदेश हुआ तो **जगन्थ** सिद्ध हुआ।

जग्मथुः। **जग्म**। इन रूपों को **जग्मतुः** की तरह साधिए।

जगाम-जगम। उत्तमपुरुष के एकवचन में प्रथमपुरुष की तरह **जगाम** बनता है किन्तु **णलुत्तमो वा** से णित्व विकल्प से होने के कारण णित्व के पक्ष में **अत उपधाया** से वृद्धि होगी, **जगाम** बनेगा और णित्वाभाव में वृद्धि नहीं होगी, अतः **जगम** बनेगा।

जग्मिव। **जग्मिम**। में क्रादिनियम से इट् होता है और **जगम्** के उपधाभूत अकार का **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से लोप होता है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है। इस प्रकार से गम् धातु के रूप बने- जगाम, जग्मतुः, जग्मुः, जगमिथ-जगन्थ, जग्मथुः, जग्म, जगाम-जगम, जग्मिव, जग्मिम।

लुट् लकार में भी **एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध होने से इट् नहीं होगा। गम् के मकार का अनुस्वार और परसवर्ण होकर नकार आदेश होने पर **गन्ता** बनेगा। **गन्ता, गन्तारौ, गन्तारः, गन्तासि, गन्तास्थः, गन्तास्थ, गन्तास्मि, गन्तास्वः, गन्तास्मः।**

५०६- गमेरिट् परस्मैपदेषु। गमेः षष्ठ्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से **से** तथा **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **आर्धधातुकस्य** की अनुवृत्ति आ रही है।

गम् धातु से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् आगम होता है परस्मैपद में।

गम् धातु अनिट् है, अतः लुट् और लृट् लकार के स्य को इट् करने के लिए विशेष विधान किया।

अङ्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५०७. पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५॥

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु। अगमत्। अगमिष्यत्।

इति परस्मैपदिनः।

....

गमिष्यति। गम् धातु से लृट्-लकार, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य प्रत्यय, उसकी **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा और **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् प्राप्त, उसे **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** निषेध प्राप्त, उसे भी बाधकर **गमेरिट् परस्मैपदेषु** से इट् का आगम, टित् होने के कारण स्य के आदि में स्थिति, इकार से परे स्य के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **गम्+इष्य+ति** में वर्णसम्मेलन, **गमिष्यति** सिद्ध हुआ। इस प्रकार से लृट् में रूप बनते हैं- गमिष्यति, गमिष्यतः, गमिष्यन्ति, गमिष्यसि, गमिष्यथः, गमिष्यथ, गमिष्यामि, गमिष्यावः, गमिष्यामः।

गच्छतु। गम् धातु से लट् लकार ले आकर **गच्छति** बनाइये और **एरुः** से उत्व करके तो **गच्छतु** बन जायेगा। इसको समझने के लिए आप भू धातु की प्रक्रिया को स्मरण करें और इस धातु में छकारादेश और तुक् का आगम तथा चुत्व भी करें।

लोट्- गच्छतु-गच्छतात्, गच्छताम्, गच्छन्तु, गच्छ-गच्छतात्, गच्छतम्, गच्छत, गच्छानि, गच्छाव, गच्छाम। **लङ्**- अगच्छत्, अगच्छताम्, अगच्छन्, अगच्छः, अगच्छतम्, अगच्छत, अगच्छम्, अगच्छाव, अगच्छाम। **विधिलिङ्**- गच्छेत्, गच्छेताम्, गच्छेयुः, गच्छेः, गच्छेतम्, गच्छेत, गच्छेयम्, गच्छेव, गच्छेम। **आशीर्लिङ्**- गम्यात्, गम्यास्ताम्, गम्यासुः, गम्याः, गम्यास्तम्, गम्यास्त, गम्यासम्, गम्यास्व, गम्यास्म।

५०७- **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु।** पुष् आदिर्येषां ते पुषादयः, द्युत् आदिर्येषां ते द्युतादयः, लृत् इत् येषां ते लृदितः। पुषादयश्च द्युतादयश्च लृदितश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पुषादिद्युताद्यॢदित्, तस्मात्। पुषादिद्युताद्यॢदितः पञ्चम्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से च्लेः तथा **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** की अनुवृत्ति आती है।

पुष आदि धातु, द्युत आदि धातु तथा लृ इत्संज्ञक हों, ऐसे धातुओं से पर च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है, परस्मैपद में।

पुषादि और **द्युतादि** गण हैं और लृ की इत्संज्ञा जिस धातु में होती है, उस धातु को लृदित् कहते हैं। इस सूत्र का कार्य च्लि के स्थान पर अङ् आदेश करना है। जैसे- च्लि के स्थान पर अभी तक आप सिच् आदेश कर रहे थे, अब गम् आदि धातु में अङ् आदेश करेंगे। गम्लृ में लृ की इत्संज्ञा हुई है, अतः यह धातु लृदित् है।

अगमत्। गम् धातु से लुङ् लकार, अट् का आगम, लकार के स्थान पर तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **च्लि लुङि** से च्लि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर **च्लेः सिच्** से सिच् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् आदेश हुआ। **अगम् अत्** बना। अनिट् धातु होने से इट् होना ही नहीं है। वर्णसम्मेलन करके **अगमत्** बनता है।

लुङ् में- अगमत्, अगमताम्, अगमन्, अगमः, अगमतम्, अगमत, अगमम्, अगमाव, अगमाम।

लृङ् लकार में- स्य को **गमेरिट् परस्मैपदेषु** से इट् आगम होता है। अगमिष्यत्, अगमिष्यताम्, अगमिष्यन्, अगमिष्यः, अगमिष्यतम्, अगमिष्यत, अगमिष्यम्, अगमिष्याव, अगमिष्याम।

इस प्रकार से आपने भ्वादिगण में पठित परस्मैपदी धातुओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब इसके बाद आत्मनेपद में प्रवेश करेंगे। उसके पहले आप अपनी परीक्षा भी कर लें कि अभी तक आपने जो अध्ययन किया है, उसमें आप कितने सफल हैं? यदि पूरी तैयारी नहीं हो पायी है तो पुनः एक बार पढ़ लें, प्रतिदिन आवृत्ति कर लें। पढ़ने के बाद प्रतिदिन आवृत्ति तो होनी ही चाहिए, अन्यथा सारा विस्मृत हो जायेगा। इस लिए आप जितना पढ़ रहे हैं, उससे ज्यादा अपने साथियों के साथ विमर्श भी करें, आप स्वयं प्रश्न पूछें या आप उत्तर दें। पूछने और बताने में कोई संकोच न करें। मुझे पूरा विश्वास है कि आप **पाणिनीयाष्टाध्यायी** की आवृत्ति बराबर कर रहे होंगे। आपका स्नान और भोजन भले छूट जाये किन्तु अष्टाध्यायी का पारायण नहीं छूटना चाहिए। जब तक अष्टाध्यायी के सारे सूत्र कण्ठस्थ नहीं होगे, तब तक व्याकरणशास्त्र के विषय में समझ पाना कठिन होगा। अतः आपका अष्टाध्यायी पारायण का नियम निरन्तर चलना चाहिए। प्रतिमाह एक अध्याय के हिसाब से पारायण करेंगे तो प्रतिभाशाली छात्र को एक माह में एक अध्याय कण्ठस्थ हो जायेगा। इस हिसाब से तो आठ ही माह में पूरी अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो जाएगी। यदि आठ माह में नहीं भी कर सके तो सोलह माह में अवश्य कण्ठस्थ हो जायेगी।

परीक्षा का जो नियम बना हुआ है, उसका पालन कर पुस्तक का पूजन करें।

परीक्षा

सूचना- पहला प्रश्न ५० अंक का और शेष प्रश्न १०-१० अंक के हैं।

१- अभी तक भ्वादिगण में जितने धातु आपने पढ़े, उनके लिट् एवं लुङ् लकार के रूपों को विना पुस्तक के सहारे अपनी स्मरणशक्ति के बल पर पुस्तिका में उतारें।

२- भू के लुङ्, अत् के लिट्, सिध् के आशीर्लिङ्, गद् के लोट् और गम् के लुङ् लकार के प्रथमपुरुष-एकवचन की रूप की सिद्धि कीजिए।

३- **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से किस-किस लकार में इट् आगम हो पाता है?

४- **पाघ्राध्मा**- इस सूत्र को पूरा लिखकर इसकी वृत्ति, अर्थ और किस धातु के स्थान पर क्या आदेश होता है, इसका पूरा विवरण दीजिए।

५- **अतो हलादेर्लघोः** और **वदव्रजहलन्तस्याचः** की तुलना करिये।

६- उपसर्ग के विषय में आप कितना जानते हैं? बताइये।

इस तरह श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या में
भ्वादि का परस्मैपदप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथात्मनेपदिनः

एध वृद्धौ॥१॥

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५०८. टित आत्मनेपदानां टेरेः ३।४।७९॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते।

....

अभी तक आपने परस्मैपदी धातुओं का ज्ञान किया। अब हम आत्मनेपदी धातुओं को जानने के लिए आत्मनेपद में प्रवेश कर रहे हैं। कैसे धातुओं से आत्मनेपद का प्रयोग होता है, इस विषय में संक्षिप्त जानकारी भ्वादि के आदि में आपको मिल गई थी फिर भी याद दिला रहे हैं कि **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** इस सूत्र के अनुसार जो धातु अनुदात्तेत् अर्थात् अनुदात्त की इत्संज्ञा वाला हो और जो धातु ङित् हो, ऐसे धातुओं से आत्मनेपद का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी अनेक सूत्र आत्मनेपद का विधान करते हैं किन्तु सर्वसामान्य यही सूत्र है।

लकार के स्थान पर आदेश होने वाले आत्मनेपदी प्रत्ययों को तालिका के माध्यम से पुनः स्मरण कर लें।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम-पुरुष	त	आताम्	झ
मध्यम-पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम-पुरुष	इट्	वहिङ्	महिङ्

एध वृद्धौ। एध् धातु **बढ़ना** अर्थ में है। इस में धकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। अकार अनुदात्त स्वर वाला है, अतः यह धातु अनुदात्तेत् हुआ। इसलिए **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** सूत्र के नियम से इस धातु से आत्मनेपद का विधान हुआ। जिस धातु से आत्मनेपद का विधान होता है, वह धातु आत्मनेपदी होता है। अतः **एध्** धातु आत्मनेपदी है।

५०८- टित आत्मनेपदानां टेरे। टितः षष्ठ्यन्तम्, आत्मनेपदानां षष्ठ्यन्तं, टेः षष्ठ्यन्तम्, ए लुप्तप्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लस्य** इस सूत्र का अधिकार है। इसलिए अर्थ में भी **लकार के स्थान पर** यह अर्थ आयेगा।

टित् लकार के आत्मनेपद प्रत्ययों के टि के स्थान पर एकार आदेश होता है।

टि संज्ञा है। **अचोऽन्त्यादि टि** से अन्त्य अच् की टिसंज्ञा होती है। केवल **टि** के स्थान पर ही यह **ए** आदेश होगा।

एधते। एध धातु का बढ़ना अर्थ है। धकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। एध् बचा। एध् से लट् लकार और उसके

इयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५०९. आतो ङितः ७।२।८१॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्। एधेते। एधन्ते।

से-इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१०. थासः से ३।४।८०॥

टितो लस्य थासः से स्यात्।

एधसे। एधेथे। एधध्वे। **अतो गुणे।** एधे। एधावहे। एधामहे।

....

स्थान पर आत्मनेपद में प्रथमपुरुष का एकवचन त आया। **एध् त** बना। त की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई और **कर्तरि शप्** से शप् हुआ। अनुबन्धलोप, **एध् अ त** बना। वर्णसम्मेलन हुआ, एधत में तकारोत्तरवर्ती अन्त्य अच् अकार की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और **टित आत्मनेपदानां टेरे** से उसके स्थान पर एकार आदेश हुआ- **एधते** सिद्ध हुआ।

५०९- आतो ङितः। आतः षष्ठ्यन्तं, ङितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अतो येयः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अदन्त अङ्ग से परे ङित्-प्रत्ययों के आकार के स्थान पर इय् आदेश होता है।

यह सूत्र आताम् और आथाम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश करता है। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हो जाता है।

एधेते। एध् धातु से प्रथमपुरुष का द्विवचन आताम् आया। **एध्+आताम्,** सार्वधातुक संज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ आताम्** में आताम् की **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव करके **आतो ङितः** से आताम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **एध् अ इय् ताम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ। **एध् अ इ ताम्** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण हुआ, ए बना। **एध् ए ताम्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधेताम्** बना। **एधेताम्** में अन्त्य अच् ताम् में आ है। अतः **मकार** सहित **आ** अर्थात् **आम्** की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व हुआ- **एधेते** बना।

एधन्ते। एध् धातु से प्रथमपुरुष का बहुवचन झ आया। झ् के स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश हुआ **अन्त्**+**अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ तो **अन्त** बना। अन्त की सार्वधातुकसंज्ञा करके शप् हुआ, अनुबन्धलोप, **एध् अ अन्त** बना। **अ+अन्त** में **अतो गुणे** से पररूप होकर अन्त ही हुआ। **एध्+अन्त** में वर्णसम्मेलन और अन्त्य अच् तकारोत्तरवर्ती अकार की टिसंज्ञा और उसके स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** एत्व हुआ- **एधन्ते** सिद्ध हुआ।

५१०- थासः से। थासः षष्ठ्यन्तं, से लुप्तप्रथमाकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **टित आत्मनेपदानां टेरे** से **टितः** की अनुवृत्ति आती है और **लस्य** सूत्र का अधिकार चल रहा है।

टित् लकार वाले थास् के स्थान पर से आदेश होता है।

आम्-विधायकं विधिसूत्रम्

५११. इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि।

....

एधसे। एध् से मध्यमपुरुष एकवचन थास्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ थास्** बना। **थासः से** से थास् के स्थान पर से आदेश हुआ, वर्णसम्मेलन करके **एधसे** सिद्ध हुआ।

एधेथे। जैसे आताम् आने पर एधेते बनता है तो उसी प्रकार से आथाम् अर्थात् मध्यमपुरुष के द्विवचन आथाम् के आने पर **एधेथे** बनता है।

एधध्वे। एध् से मध्यमपुरुष का बहुवचन ध्वम् आया, शप्, ध्वम् में अम् की टिसंज्ञा और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके **एध् अ ध्वे** बना, वर्णसम्मेलन करके **एधध्वे** सिद्ध हुआ।

एधे। उत्तमपुरुष का एकवचन इट्, शप्, **एध् अ इ** में टिसंज्ञक इ के स्थान पर एत्व करके एध् अ ए बना। अ+ए में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर ए ही बना। वर्णसम्मेलन करके **एधे** सिद्ध होता है।

एधावहे। एध् से वहि, शप् करने के बाद टिसंज्ञक जो हि का इकार उसके स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करने के बाद **वहे** बनेगा। वकार यञ् प्रत्याहार में आता है। अतः **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **एधावहे** सिद्ध हो जाता है।

एधामहे। बहुवचन में **महिङ्** आयेगा। ङकार की इत्संज्ञा की जाती है। यह ङकार ङित्करण के लिए नहीं है, अपितु ति से ङ् तक गिनकर तिङ् प्रत्याहार बनाने के लिए है। शप् करने के बाद टिसंज्ञक जो हि का इकार उसके स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करने के बाद **महे** बनेगा। मकार यञ् प्रत्याहार में आता है। अतः **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **एधामहे** सिद्ध हो जाता है।

लट्- एधते, एधेते, एधन्ते, एधसे, एधेथे, एधध्वे, एधे, एधावहे, एधामहे।

५११- इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः। इच् आदिर्यस्य स इजादिस्तस्माद् इजादेः। गुरुरस्त्यस्मिन् इति गुरुमान्, तस्माद् गुरुमतः। न ऋच्छ् अनृच्छ्, तस्मात् अनृच्छः। इजादेः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, गुरुमतः पञ्चम्यन्तम्, अनृच्छः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** और **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ऋच्छ धातु से भिन्न इजादि जो गुरु-वर्ण से युक्त धातु, उससे परे आम् प्रत्यय होता है लिट् के परे होने पर।

इच् एक प्रत्याहार है, वह आदि में है जिस धातु के, वह धातु इजादि हुआ। दीर्घवर्ण और संयोगपरक ह्रस्व-वर्ण की गुरुसंज्ञा होती है। अतः जिस धातु में दीर्घवर्ण या संयोग हो वह धातु गुरुमान् अर्थात् गुरुसंज्ञक वर्ण वाला होता है। ऋच्छ् धातु में च्छ् का संयोग है, अतः यह भी गुरुमान् हुआ। ऋच्छ्-धातु से आम् प्रत्यय अभीष्ट नहीं था, इसलिए निषेध करने के लिए सूत्र में **अनृच्छः** पढ़ा गया। आम् के मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः पूरा आम् धातु से परे होता है। लिट् परे रहते विहित होने से धातु और लिट् के बीच में बैठ जाता है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

५१२. आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३॥

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः।
आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम्।

....

५१२- **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य।** आम् प्रत्ययो यस्मात् स आम्प्रत्ययः, आम्प्रत्ययेन तुल्यम् आम्प्रत्ययवत्। आम्प्रत्ययवत् अव्ययपदं, कृञः षष्ठ्यन्तम्, अनुप्रयोगस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

आम्-प्रकृति वाली धातु अर्थात् आम्-प्रत्यय जिस धातु से होता है, ऐसी धातु के समान अनुप्रयोग की जाने वाली कृ-धातु से भी आत्मनेपद ही होता है।

आम्-प्रत्ययो यस्मात्......इत्यादि सूत्र में आये हुए आम्प्रत्यवत् शब्दका अर्थ बताने के लिए विग्रह दिखाया गया है। यहाँ पर **वत्** प्रत्यय का इव(समान, तुल्य) अर्थ है और आम्प्रत्यय में अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि समास है।

बहुव्रीहि समास दो प्रकार का होता है- **तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** और **अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि**। सामान्यतः बहुव्रीहि समास अन्य पदार्थ को कहता है पर जब केवल अन्यपदार्थ का ही ग्रहण किया जाता है अर्थात् समस्यमान पदों के अर्थ को छोड़ दिया जाता है तब **अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** होता है और जब समस्यमान पद के अर्थ का भी अन्यपदार्थ के साथ में ग्रहण होता है तो **तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** होता है। जैसे- **दृष्टसागरं (पुरुषम्) आनय** में **दृष्टः सागरो येन स तम्**= देख लिया है सागर जिसने ऐसे पुरुष को लाइये, इसमें केवल अन्यपदार्थ पुरुष को ही लाया जाता है न कि समस्यमान सागर पदार्थ को भी। अतः क्रिया में समस्यमान पदार्थ का सम्बन्ध न होने से यह **अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** हुआ। इसी तरह **आम् प्रत्ययो यस्मात् सः** (आम् प्रत्यय हुआ जिससे वह) में भी आम् प्रत्यय जिससे होता है, ऐसा अन्य पदार्थ प्रकृति(मूल धातु) मात्र को लिया जाता है न कि आम् प्रत्यय को भी। अतः यहाँ भी **अतद्गुणसंविज्ञान नामक बहुव्रीहि** हुआ है। **तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** में जैसे- **लम्बकर्णम् आनय**(बड़े-बड़े, लम्बे कान वाले वाले को लाइये) में लम्बे कान वाले अन्यपदार्थ पुरुष के साथ-साथ समस्यमान पदार्थ **लम्बे कानों** को भी लाया जाता है। अतः **आनय** क्रिया में अन्यपदार्थ के साथ-साथ समस्यमान पदार्थ का भी अन्वय हुआ। इसलिए इसमें **तद्गुणसंविज्ञान नामक बहुव्रीहि समास** माना जाता है।

जिससे आम्-प्रत्यय का विधान होता है, ऐसे धातु को **आम्प्रकृतिक** कहते हैं। कृ-धातु के **ञित्** होने से **परस्मैपदी** और **आत्मनेपदी** अर्थात् **उभयपदी** है। अतः यहाँ पर अनुप्रयुज्यमान कृ धातु में सन्देह हुआ कि आम्प्रकृतिक **एध्** धातु के बाद में प्रयोग होने पर भी **कृ** से दोनों पद हों या उनमें से कोई एक पद हो? इसी को बताने के लिए इस सूत्र को पढ़ा गया और इसने निर्णय दिया कि ऐसे अनुप्रयुज्यमान कृ-धातु से केवल आत्मनेपद ही हो। यह सन्देह केवल कृ-धातु के विषय में उपस्थित होता है, क्योंकि यह उभयपदी है। **भू** और **अस्** धातु केवल परस्मैपदी हैं, इसलिए उनमें कोई सन्देह नहीं है।

एशिरेजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१३. लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४।८१॥

लिडादेशयोस्तझयोरेश्-इरेजेतौ स्तः।

एधाञ्चक्रे। एधाञ्चक्राते। एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे।

....

५१३- लिटस्तझयोरेशिरेच्। तश्च झश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तझौ, तयोस्तझयोः। एश् च इरेच् च तयोः समाहारद्वन्द्वः एशिरेच्। लिटः षष्ठ्यन्तं, तझयोः षष्ठ्यन्तम्, एशिरेच् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लिट् लकार के स्थान पर आदेश हुए त और झ के स्थान पर क्रमशः एश् और इरेच् आदेश होते हैं।

एधाञ्चक्रे। एध् धातु से लिट् लकार, त आदेश, **एध् त** बना। सूत्र लगा- **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः।** एध् धातु इजादि है (आदि वर्ण एकार इच् है और गुरुमान् भी)। लिट् परे भी है। अतः धातु से आम् प्रत्यय हुआ, **एधाम् त** बना। **आमः** से आम् से परे लिट् लकार सम्बन्धी त का लोप हुआ, **एधाम्** रह गया। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर कृ धातु का अनुप्रयोग हुआ, **एधाम् कृ लिट्** बना। लिट् के स्थान पर **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** से आत्मनेपद का त आदेश हुआ। **एधाम् कृ त** बना। **त** के स्थान पर **लिटस्तझयोरेशिरेच्** से एश् आदेश हुआ, शकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **एधाम्+कृ+ए** बना। इस स्थिति में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसका **द्विर्वचनेऽचि** से निषेध हुआ। फिर **कृ** का **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **एधाम् कृ कृ ए** बना। प्रथम **कृ** की **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा हुई और **उरत्** से ऋकार के स्थान अत् आदेश हुआ और **उरण् रपरः** की सहायता रपर होकर अर् आदेश हुआ, **एधाम् कर् कृ ए** बना। **हलादि शेषः** से कर् में ककार का शेष और रकार का लोप हुआ। **एधाम् ककृ ए** बना। **कुहोश्चुः** से अभ्याससंज्ञक ककार के स्थान पर चवर्ग में च आदेश होकर **एधाम् चकृ ए** बना। आमन्त **एधाम्** आदि मान्त और लिट् लकार की धातु से विहित होने के कारण कृत्संज्ञक भी है। अतः **एधाम्** को कृदन्त मानकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादि प्रत्यय आते हैं। **एधाम्** का **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञा होने से उन सु आदि प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लोप हो जाता है। सु आदि के लोप होने पर भी **एकदेशविकृतमनन्यवत्** न्याय से पूर्व में की हुई पदसंज्ञा रहती है। अतः पदान्त में होने के कारण **एधाम्** के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर ञकार आदेश हुआ तो **एधाञ्चकृ ए** बना। लिट्-लकार-सम्बन्धी ए तो **लिट् च** सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञक है ही, अतः **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऋकार के स्थान पर गुण प्राप्त था किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से लिट् लकार कित् बन गया है, इसलिए **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ। **एध ाञ्चकृ+ए** में **इको यणचि** से यण् होकर ऋकार के स्थान पर रकार आदेश हुआ- **एधाञ्चक् र् ए** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **एधाञ्चक्रे।**

एधाञ्चक्राते। लिट् लकार के प्रथमपुरुष के द्विवचन में भी इसी प्रकार से प्रक्रिया करनी है। जैसे एध् धातु से लिट् लकार, आताम् आदेश, **एध् आताम्** बना। सूत्र

लगा **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः**। एध् धातु इजादि और गुरुमान् है। लिट् परे भी है। अतः धातु से आम् प्रत्यय हुआ, **एधाम् आताम्** बना। **आमः** से आम् से पर लिट् लकार सम्बन्धी आताम् का लोप हुआ, **एधाम्** रह गया। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर कृ धातु का अनुप्रयोग हुआ, **एधाम् कृ लिट्** बना। लिट् के स्थान पर **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** से आत्मनेपद का विधान हुआ, द्विवचन में आताम् आदेश हुआ। **एधाम् कृ आताम्** बना। **द्विर्वचनेऽचि** से द्वित्व की कर्तव्यता में यण् के निषेध होकर **कृ** का **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **एधाम् कृ कृ आताम्** बना। प्रथम कृ की **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा हुई और **उरत्** से ऋकार के स्थान पर अत् आदेश हुआ और **उरण् रपरः** की सहायता रपर होकर अर् आदेश हुआ, **एधाम् कर् कृ आताम्** बना। **हलादि शेषः** से कर् में ककार का शेष और रकार का लोप हुआ। **एधाम् ककृ आताम्** बना। **कुहोश्चुः** से अभ्याससंज्ञक ककार के स्थान पर चवर्ग में च आदेश होकर **एधाम् चकृ आताम्** बना। एधाम् के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर ञकार आदेश हुआ तो **एधाञ्चकृ आताम्** बना। लिट्-लकार-सम्बन्धी ए तो **लिट् च** सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञक है ही, अतः **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऋकार के स्थान पर गुण प्राप्त था किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से लिट्-लकार कित् बन गया है, इसलिए **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ। **एधाञ्चकृ+आताम्** में **इको यणचि** से यण् होकर ऋकार के स्थान पर रकार आदेश हुआ- **एधाञ्चक् र् आताम्** बना। आताम् में टिसंज्ञक आम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व हुआ, **एधाञ्चक्र् आते** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधाञ्चक्राते**। इसी प्रकार से पूरे लिट् लकार में **एधाञ्चकृ** तक बन जाने के बाद आगे के प्रत्यय के साथ प्रक्रिया करनी चाहिए अर्थात् धातु से लिट्, **आम्,** उसका लुक्, पुनः लिट् को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, अनुप्रयुक्त **कृ** धातु को द्वित्व, **उरत्** से अत्, रपर, हलादिशेष, अभ्यास को चर्त्व, अनुस्वार, परसवर्ण आदि प्रक्रियाएँ होती हैं।

एधाञ्चक्रिरे। लिट् लकार के प्रथमपुरुष के बहुवचन में झ के स्थान पर **लिटस्तझयोरेशिरेच्** से इरेच् आदेश और अनुबन्धलोप करके अन्य प्रक्रिया एधाञ्चकृ बनाने तक पूर्ववत् करें, **एधाञ्चकृ इरे** बन जायेगा। **एधाञ्चकृ+इरे** में **इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चक्र् इरे** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधाञ्चक्रिरे**।

एधाञ्चकृषे। मध्यमपुरुष के एकवचन में एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु थास् के स्थान **थासः से से से** आदेश होकर **एधाञ्चकृ+से** बना है और **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **एधाञ्चकृषे** रूप बनता है। यहाँ पर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम नहीं होगा क्योंकि अब यहाँ पर कृ धातु बन गया है और यह अनिट् धातु है। केवल एध् धातु से तो **एधिता** आदि में इट् होता ही है।

एधाञ्चक्राथे। मध्यमपुरुष के द्विवचन में एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु आथाम् में टिसंज्ञक आम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **एधाञ्चकृ आथे** बना है। **इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चकृ आथे** बन गया। **एधाञ्चकृ+आथे** में **इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चक्र् आथे** बना, वर्णसम्मेलन होकर **एधाञ्चक्राथे** ऐसा रूप सिद्ध हुआ।

ढत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५१४. इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८॥

इणन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्।

एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। एधाम्बभूव। एधामास। एधिता। एधितारौ। एधितारः। एधितासे। एधितासाथे।

५१४- **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्।** षीध्वं च लुङ् च लिट् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः षीध्वंलुङ्लिटः, तेषां षीध्वंलुङ्लिटाम्। इणः पञ्चम्यन्तं, षीध्वंलुङ्लिटां षष्ठ्यन्तं, धः प्रथमान्तम्, अङ्गात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है।

इणन्त अङ्ग से परे षीध्वम्, लुङ् और लिट् लकार से सम्बन्धित धकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश अर्थात् ढकार आदेश होता है।

धकार के स्थान पर प्राप्त मूर्धन्य आदेश **स्थानेऽन्तरतम** की सहायता से गुण(प्रयत्न) की तुल्यता मिलाकर संवार, नाद, घोष महाप्राण प्रयत्न वाला **ढकार** होता है। अतः सूत्रार्थ में **ढकारादेश** कहा गया है। इस तरह से यह सूत्र इणन्त अङ्ग से परे षीध्वं, लुङ् और लिट् के धकार के स्थान पर ढकार आदेश करता है।

एधाञ्चकृढ्वे। मध्यमपुरुष के बहुवचन में एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु ध्वम् के धकार के स्थान पर **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** से ढकार आदेश करके **एधाञ्चकृ ढ्वम्** बन जाता है। ढ्वम् में टिसंज्ञक अम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **एधाञ्चकृढ्वे** बन गया।

एधाञ्चक्रे। उत्तमपुरुष के एकवचन में इट् प्रत्यय और अनुबन्धलोप करके एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु टिसंज्ञक इ के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर ए बना है। **एधाञ्चकृ ए में इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चक् र् ए** बना, वर्णसम्मेलन होकर **एधाञ्चक्रे** बना।

एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः वहि और महिङ् प्रत्यय होगें और अनुबन्धलोप करके एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु टिसंज्ञक इकार के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर वहे और महे बन जाता है। इस तरह **एधाञ्चकृवहे** और **एधाञ्चकृमहे** की सिद्धि हो जाती है।

इस तरह एध् धातु के लिट् लकार में कृ-धातु के अनुप्रयोग होने पर **एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते, एधाञ्चक्रिरे, एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे, एधाञ्चकृढ्वे, एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे** ये रूप सिद्ध हुए। एधाम् से भू धातु का अनुप्रयोग करके **एधाम् भू** बना लेने के बाद जैसे भू-धातु के लिट् लकार में आपने रूप बनाया है, उसी तरह यहाँ भी बनाइये और एधाम् बभूव में मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर मकार आदेश हो जाता है- **एधाम्बभूव।** भू-धातु स्वभावतः परस्मैपदी है, अतः यहाँ पर परस्मैपद में ही रूप बनते हैं। इसी प्रकार अस् धातु भी परस्मैपदी है।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५१५. धि च ८।२।२५॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः। एधिताध्वे।

हकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१६. ह एति ७।४।५२॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे।

एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे।

....

एध्-धातु के लिट्-लकार में भू-धातु का अनुप्रयोग होने पर- एधाम्बभूव, एधाम्बभूवतुः, एधाम्बभूवुः, एधाम्बभूविथ, एधाम्बभूवथुः, एधाम्बभूव, एधाम्बभूव, एधाम्बभूविव, एधाम्बभूविम ये रूप सिद्ध होते हैं।

एध्-धातु के लिट्-लकार में अस् धातु का अनुप्रयोग होने पर अस् धातु से लिट् के स्थान पर तिप्, णल् आदेश, अस् का द्वित्व, **हलादि शेषः** से सकार का लोप करके **अ अस्** बना। **अ+अस्** में **अत आदेः** से दीर्घ होकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **आस् अ** बना। **एधाम् आस् अ** में मकार आस् के आकार से मिला- **एधामास् अ** बना। वर्णसम्मेलन करके **एधामास** बन गया। एधामास् बनने तक की प्रक्रिया एक ही होगी और आगे **अतुस्** आदि प्रत्ययों को जोड़कर और जहाँ इट् प्राप्त है, वहाँ इट् का आगम करके निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जायेंगे- एधामास। एधामासतुः। एधामासुः। एधामासिथ। एध ामासथुः। एधामास। एधामास। एधामासिव। एधामासिम।

एधिता। एध्-धातु से लुट् लकार में- एध् लुट्, एध् त, एध् तास् त, एध् इतास् त, एधितास् त, एधितास् डा, एधितास् आ, एधित् आ, एधिता। यह प्रक्रिया आप समझ गये होंगे। इसी प्रकार से **एधितारौ, एधितारः, एधितासे, एधितासाथे** तक बनाइये।

५१५- धि च। धि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **रात्सस्य** से **सस्य** और **संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

धकारादि प्रत्यय के परे होने पर सकार का लोप होता है।

एधिताध्वे। एध्-धातु से लुट् लकार, एध् लुट्, लुट् के स्थान पर ध्वम् आदेश, एध् ध्वम्, एध् तास् ध्वम्, एध् इतास् ध्वम्, एधितास् ध्वम्, **धि च** से सकार का लोप हुआ- एधिता ध्वम् बना। ध्वम् में टिसंज्ञक अम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके ध्वे बना, **एधिताध्वे** सिद्ध हुआ।

५१६- ह एति। हः प्रथमान्तम्, एति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तासस्त्योर्लोपः**से **तासस्त्योः** और **सः स्यार्धधातुके** से **सः** की अनुवृत्ति आती है।

एकार के परे रहने पर तास् और अस् धातु के सकार के स्थान पर हकार आदेश होता है।

एधिताहे। एध्-धातु से लुट् लकार, एध् लुट्, उत्तमपुरुष का एकवचन इट्, एध् इट्, एध् इ, एध् तास् इ, एध् इतास् इ, एधितास् इ, टिसंज्ञक इ के स्थान पर **टित**

आमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१७. आमेतः ३।४।९०॥

लोट एकारस्याम् स्यात्। एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम्।

वामादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१८. सवाभ्यां वामौ ३।४।९१॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वामौ स्तः।

एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्।

....

आत्मनेपदानां टेरे से एत्व करके एधितास् ए बना, एकार के परे होने पर **ह एति** से सकार के स्थान पर हकार आदेश हुआ- **एधिताह् ए** बना, वर्णसम्मेलन करके **एधिताहे** सिद्ध हुआ।

एधितास्वहे। एधितास्महे। उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में तासि, इट् का आगम, वहि और महि में **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके उक्त रूप बन जाते हैं।

इस प्रकार से एध् धातु के लुट् लकार के रूप निम्नानुसार हुए- एधिता, एधितारौ, एधितारः। एधितासे, एधितासाथे, एधिताध्वे, एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे।

लृट्-लकार में स्य और इट् का आगम, इकार से परे स्य के सकार को षत्व करके बनाइये- एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते, एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे, एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।

५१७- **आमेतः**। आम् प्रथमान्तम्, एतः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के एकार के स्थान पर आम् आदेश होता है।

एधताम्। एध् धातु से लोट् लकार, त आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ त** बना, त के टि को एत्व और वर्णसम्मेलन करके **एधते** बना। ते के एकार के स्थान पर इस सूत्र से आम् आदेश हुआ- **एधताम्**।

एधेताम्। एध् धातु से लोट् लकार, आताम् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ आताम्** बना, **आतो ङितः** से आताम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **एध् अ इय् ताम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ। एध् **अ इ ताम्** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण हुआ, ए बना। **एध् ए ताम्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधेताम्** बना। **एधेताम्** में अन्त्य अच् ताम् में आम् है। अतः मकार सहित आ अर्थात् आम् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व हुआ- **एधेते** बना। **ते** के एकार के स्थान पर इस सूत्र से आम् आदेश हुआ- **एधेताम्**।

एधन्ताम्। एध् धातु से लोट् लकार, झ आदेश, झ के स्थान पर **झोऽन्तः** से झ् के स्थान पर अन्त् आदेश, **एध् अन्त** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ अन्त** बना। **अ+अन्त** में **अतो गुणे** से पररूप करके **अन्त** बना, **एध्+अन्त** हुआ। अन्त में के टिसंज्ञक अकार के स्थान पर एत्व और वर्णसम्मेलन करके **एधन्ते** बना। ते के एकार के स्थान पर इस सूत्र से आम् आदेश हुआ- **एधन्ताम्**।

ऐकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१९. एत ऐ ३।४।९३॥

लोडुत्तमस्य एतः ऐः स्यात्।

एधै। एधावहै। एधामहै। **आटश्च।** ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि।

....

५१८- **सवाभ्यां वामौ।** सश्च वश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सवौ, ताभ्यां सवाभ्याम्। वश्च अम् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः वामौ। सवाभ्यां पञ्चम्यन्तं, वामौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** और **आमेतः** से **एतः** की अनुवृत्ति आती है।

स और व से परे लोट् लकार के एकार के स्थान पर स्थान पर क्रम से व और अम् आदेश होता है।

यहाँ पर निमित्त भी दो है स् और व् तथा आदेश भी दो हैं- व और अम्। अतः **यथासंख्यामनुदेशः समानाम्** के नियमानुसार क्रम से होगा अर्थात् सकार से पर एकार के स्थान पर व आदेश और वकार से पर एकार के स्थान पर अम् आदेश।

एधस्व। एध् धातु से लोट् लकार, थास् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्ध लोप, **एध् अ थास्** बना है। **थासः से** से थास् के स्थान पर से आदेश होने पर से के सकार से परे एकार के स्थान पर **सवाभ्यां वामौ** से व आदेश हुआ- **एध् अ स् व** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधस्व** सिद्ध हुआ।

एधेथाम्। एध् धातु से लोट् लकार, आथाम् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ** आथाम् बना है। **आतो ङितः** से आथाम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **एध् अ इय् आथाम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ। **एध् अ इ थाम्** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण हुआ, **ए** बना। **एध् ए थाम्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधेथाम्** बना। **एधेथाम्** में अन्त्य अच् थाम् में आम् है। अतः मकार सहित आ अर्थात् आम् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे:** से एत्व हुआ- **एधेथे** बना। थे के एकार के स्थान पर **आमेतः** से आम् आदेश हुआ- **एधेथाम्।**

एधध्वम्। एध् धातु से लोट् लकार, ध्वम् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ ध्वम्** बना। ध्वम् में अम् की टिसंज्ञा और उसके स्थान **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके **एध् अ ध्वे** बना। **ध्वे** में वकार से परे एकार के स्थान पर **सवाभ्यां वामौ** से **अम्** आदेश हुआ- **एध् अ ध्वम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधध्वम्** सिद्ध हुआ।

५१९- **एत ऐ।** एतः षष्ठ्यन्तम्, ऐ लुप्तप्रथमाकं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** और **आडुत्तमस्य पिच्च** से **उत्तमस्य** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के उत्तमपुरुष के एकार के स्थान पर ऐकार आदेश होता है।

एधै। एध् धातु से लोट्, इ आदेश, शप्, **एध्+अ+इ** बना है। इ के स्थान पर एत्व होकर **एध् अ ए** बना और **एत ऐ** से एकार के स्थान पर ऐकार आदेश हुआ- **एध् अ ऐ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधै।**

एधावहै। एधामहै। शप् करके के बाद **एध् अ वहि** और **एध् अ महि** बना है।

सीयुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५२०. लिङः सीयुट् ३।४।१०२॥

सलोपः। एधेत। एधेयाताम्।

....

अतो दीर्घो यञि से शप् के अकार को दीर्घ और टि को एत्व करने के बाद **एध् आ वहे** और **एध् आ महे** बना, एकार के स्थान **एत ऐ** से ऐकारादेश करके वर्णसम्मेलन करने पर **एधावहै** और **एधामहै** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार से **एध्** धातु के **लोट्** लकार में रूप बने- एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम्, एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम्, एधै, एधावहै, एधामहै।

ऐधत। एध् धातु से लङ् लकार, त आदेश, **एध् त** बना। अजादि धातु होने के कारण धातु के पहले **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** को बाधकर **आडजादीनाम्** से आट् का आगम हुआ। **आ+एध्+त** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप करके **आ+एध्+अ+त** बना। **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई, ऐध् बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **ऐधत** यह रूप सिद्ध हुआ। लङ् लकार और उसके बाद के लकार टित् नहीं हैं, ङित् हैं। अतः **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व नहीं होगा। थास् के स्थान पर **से** आदेश भी नहीं होगा। **आताम्** और **आथाम्** में **आतो ङितः** से इय् आदेश और यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, झ में झकार के स्थान पर अन्त् आदेश और **अतो गुणे** से पररूप, इट् के परे होने पर शप् के अकार और इ में गुण, वहि और महि में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ आदि करके लुङ् लकार के रूप बनाइये- ऐधत, ऐधेताम्, ऐधन्त, ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम्, ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि।

५२०- **लिङः सीयुट्**। लिङः षष्ठ्यन्तं, सीयुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लिङ् लकार को सीयुट् आगम होता है।

सीयुट् में टकार की **हलन्त्यम्** से तथा उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा एवं दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल सीय् शेष रहता है। टित् होने के कारण लकार के आदि में बैठता है। परस्मैपद में सीयुट् को बाधकर **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम होता है।

एधेत। एध् धातु से विधि आदि अर्थ में लिङ् लकार, त आदेश, शप्, अनुबन्ध लोप, **एध् अ त** बना। **लिङः सीयुट्** से सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+अ+सीय्+त** बना। सीय् में सकार का **लिङः सलोपोऽन्त्यस्य** से लोप होकर **एध्+अ+ईय्+त** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप होता है। वर्णसम्मेलन होने पर **एध+ई त** बना। **एध+ई** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **एधेत** सिद्ध हुआ।

एधेयाताम्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ में लिङ् लकार, आताम् आदेश, शप्, अनुबन्धलोप, **एध्+अ+आताम्** बना। **लिङः सीयुट्** से सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+अ+सीय्+आताम्** बना। सीय् में सकार का **लिङः सलोपोऽन्त्यस्य** से लोप होकर **एध्+अ+ईय्+आताम्** बना। वल् परे न होने के कारण यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप नहीं होता है। वर्णसम्मेलन होने पर **एध+ईय् आताम्** बना। **एध+ई** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **एधेय्+आताम्**, यकार आकार के साथ मिला- **एधेयाताम्** सिद्ध हुआ।

रनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२१. झस्य रन् ३।४।१०५॥

लिङो झस्य रन् स्यात्। एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२२. इटोऽत् ३।४।१०६॥

लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात्। एधेय। एधेवहि। एधेमहि।

....

५२१- **झस्य रन्**। झस्य षष्ठ्यन्तं, रन् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के झ के स्थान पर रन् आदेश होता है।

झोऽन्तः सूत्र को बाधकर के इससे **रन्** आदेश होता है। **रन्** अनेकाल् है, अतः सम्पूर्ण झ के स्थान पर होता है। रन् के नकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा प्राप्त थी, उसका **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध हो जाता है।

एधेरन्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, झ आदेश, झ के स्थान पर **झस्य रन्** से रन् आदेश, शप्, एध्+अ+रन् बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+रन्** बना। **अ+इय्** में गुण, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, **एधेरन्।**

एधेथाः। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, थास् आदेश, शप्, **एध्+अ+थास्** बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, **सीय्** के सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+थास्** बना। **अ+इय्** में गुण, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप और थास् के सकार को रुत्वविसर्ग होकर **एधेथाः** सिद्ध हुआ।

एधेयाथाम्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, आथाम् आदेश, शप्, **एध्+अ+आथाम्** बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+आथाम्** बना। **अ+इय्** में गुण, **एध्+एय्+आथाम्** में वर्णसम्मेलन कर लेने पर **एधेयाथाम्** रूप सिद्ध हुआ।

एधेध्वम्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, ध्वम् आदेश, शप्, **एध्+अ+ध्वम्** बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+ध्वम्** बना। **अ+इय्** में गुण, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, **एधेध्वम्।**

५२२- **इटोऽत्**। इटः षष्ठ्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् के स्थान पर आदेश हुए इट् के स्थान पर अत् अर्थात् ह्रस्व अकार आदेश होता है।

एधेय। उत्तमपुरुष का एकवचन इट्, अनुबन्धलोप, शप् आदि करके **एध्+अ+इ** बना है। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप करके **एध्+अ+इय्+इ** बना है। इ के स्थान पर **इटोऽत्** से अकार आदेश हुआ, **एध्+अ+इय्+अ** बना। **अ+इय्** में गुण और वर्णसम्मेलन करके **एधेय** बना।

एधेवहि। **एधेमहि**। इन दोनों प्रयोगों की भी शप्, सीयुट्, सकार का लोप, गुण, यकार का लोप, वर्णसम्मेलन करने पर सिद्धि होती है।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५२३. सुट् तिथोः ३।४।१०७॥

लिङस्तथोः सुट्। यलोपः। आर्धधातुकत्वात् सलोपो न।

एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि। ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्।

....

इस तरह एध् धातु के विधिलिङ् में रूप बने- एधेत, एधेयाताम्, एधेरन्, एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम्, एधेय, एधेवहि, एधेमहि।

५२३- सुट् तिथोः। सुट् प्रथमान्तं तिथोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के त और थ को सुट् का आगम होता है।

सुट् में टकार और इकार की इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का फल लोप है। केवल स् शेष रहता है। टित् होने के कारण यह तकार और थकार के आदि में बैठता है। इस तरह त के पहले लगने से **स्त**, आताम् में तकार के पहले होने पर **आस्ताम्**, थास् में थकार के पहले लगने से **स्थास्** और आथाम् में भी थकार के पहले लगने से **आस्थाम्** बन जाते हैं।

विधिलिङ् में भी सुट् आगम होता है किन्तु उसका **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप हो जाने के कारण सुट् आगम का कोई फल नहीं रह जाता है। आशीर्लिङ् में सकार का लोप प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह लकार **लिङाशिषि** से आर्धधातुक बना है और उसको होने वाला सीयुट् आगम भी आर्धधातुक ही माना जाता है। लोपविधायक सूत्र सार्वधातुक सकार का ही लोप करता है।

एधिषीष्ट। एध् धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार, उसके स्थान पर त आदेश, उसकी **लिङाशिषि** से आर्धधातुक-संज्ञा, **लिङः सीयुट्** से सीयुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+सीय्+त** बना। सीय् की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा और उसको **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् आगम, **एध्+इ+सीय्+त** बना, तकार को **सुट् तिथोः** से सुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+इ+सीय्+स्त** बना, यकार का लोप, इकार से परे सीय् के सकार का और ईकार से परे स्त के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व, षकार से परे तकार का **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व, **एध्+इ+षी+ष्ट** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **एधिषीष्ट**।

इस प्रकार से एधिषी (वल् परे होने पर यकार का लोप, अन्यत्र नहीं) बना लेने के बाद यदि सुट् आगम हुआ है तो सुट् के सकार का भी षत्व और तकार-थकार का टुत्व (थकार का टुत्व ठकार) आदि करके (इट् में अकार आदेश) **एध् के आशीर्लिङ्** में रूप बनते हैं- एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन्, एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम्(यहाँ पर **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** से ढ नहीं होता, क्योंकि **धि** का इकार इण् में तो आता है पर वह सीयुट् को विहित होने के कारण उसके परे रहते एध् मात्र की अङ्गसंज्ञा होती है और एध् इणन्त नहीं है तथा एधि इणन्त होने पर भी अङ्ग नहीं है।

एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि। इनकी प्रक्रिया सरल ही है।

ऐधिष्ट। एध् धातु से लुङ् लकार में त प्रत्यय, **आडजादीनाम्** से आट् आगम करके **आ+एध्+त** बना। च्लि और उसके स्थान पर सिच्, अनुबन्धलोप, सकार शेष, उसकी

अत्-इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२४. आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात्।
ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। ऐधिढ्वम्। ऐधिषि। ऐधिष्वहि।
ऐधिष्महि। ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्।
ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि।

कमु कान्तौ॥२॥

....

आर्धधातुक संज्ञा और उसको वलादिलक्षण इट् आगम करने पर **आ+एध्+इस्+त** बना। **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐध्** बना, इस् में सकार को षत्व और षकार से परे टकार का टुत्व करके **ऐध्+ इष्+ट** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **ऐधिष्ट।**

ऐधिषाताम्। एध् धातु से लुङ् लकार में आताम् प्रत्यय, **आडजादीनाम्** से आट् आगम करके **आ+एध्+आताम्** बना। च्लि और उसके स्थान सिच्, अनुबन्धलोप, सकार शेष, उसकी आर्धधातुक संज्ञा और उसको वलादिलक्षण इट् आगम करने पर **आ+एध्+इस्+आताम्** बना। **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐध्** बना, इस् में सकार को षत्व करके **ऐध्+ इष्+आताम्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **ऐधिषाताम्।**

५२४- **आत्मनेपदेष्वनतः।** न अत् अनत्, तस्मात् अनतः। आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तम्, अनतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झोऽन्तः** से **झः** तथा **अदभ्यस्तात्** से **अत्** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व अकार से भिन्न वर्ण से परे आत्मनेपद के झकार के स्थान पर अत् आदेश होता है।

अत् में तकार का **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध होने के कारण इत्संज्ञा नहीं होती है। यह अत् आदेश केवल झ् के स्थान पर हुआ है, झ (झ्+अ) सम्पूर्ण के स्थान पर नहीं।

ऐधिषत। एध् धातु से लुङ्, झ, उसके स्थान पर **आत्मनेपदेष्वनतः** से अत् आदेश, **एध्+अत** बना। आट् आगम, च्लि, सिच्, इट् करके **आ+एध्+इस्+अत** बना है। **आ+एध्** में वृद्धि हुई और इस् के सकार को षत्व, वर्णसम्मेलन करके **ऐधिषत** की सिद्धि होती है।

शेष प्रयोगों में भी आट् आगम, च्लि, सिच् आदेश, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् आगम, वृद्धि, षत्व आदि होंगे। इस तरह से एध् धातु के लुङ् लकार में निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिषत। ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम्। ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि। **ऐधिढ्वम्** में **ऐध्+इस्+ध्वम्** बन जाने के बाद **धि च** से सकार का लोप हो जाता है **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** से ढत्व होता है, क्योंकि **ध्वम्** प्रत्यय के परे रहते तदादि होने से **ऐधिस्** की अङ्गसंज्ञा होती है और अब सलोप होने के बाद बचा हुआ **ऐधि** भी एकदेशविकृतन्याय से अङ्ग ही है और स्वतः इणन्त भी। अतः इणन्त अङ्ग होने से **ऐधि** इससे परे लुङ् के धकार को **ढकार** होता है।

ऐधिष्यत। एध् धातु से लृङ् लकार में त, **आडजादीनाम्** से आट् आगम,

स्यतासी लृलुटोः से स्य, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् आगम, **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि और इकार से परे स्य के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व कर वर्णसम्मेलन करने पर **ऐधिष्यत** सिद्ध हो जाता है।

एध् धातु के लृङ्-लकार के रूप- ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि।

इस प्रकार से आपने भ्वादिप्रकरण में आत्मनेपदी **एध्** धातु के रूप जान लिया। धातुपाठ के अनुसार भ्वादिगण में लगभग एक हजार धातुएँ हैं, जिसमें एकतिहाई से भी ज्यादा धातुएँ आत्मनेपदी हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी पढ़ने के बाद छात्रों को **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करना है।। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है, जब आपने अष्टाध्यायी के सारे सूत्र रट लिये हों। सूत्र और वार्तिक मिलाकर चार हजार से ऊपर इनका रटन करना मामूली बात नहीं है। अतः हम आपको बार-बार यही निर्देश दे रहे हैं कि प्रतिमाह एक अध्याय के नियम से अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ का पारायण करें। पारायण अर्थात् आवृत्ति करने से शीघ्र कण्ठस्थ हो जाते हैं। आशा है कि आप मेरे निर्देशनों को मानने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अब एध धातु के सभी रूपों को तालिका में देखते हैं।

लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	एधते	एधेते	एधन्ते
मध्यमपुरुष	एधसे	एधेथे	एधध्वे
उत्तमपुरुष	एधे	एधावहे	एधामहे

लिट् लकार, कृ का अनुप्रयोग

प्रथमपुरुष	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चक्राते	एधाञ्चक्रिरे
मध्यमपुरुष	एधाञ्चकृषे	एधाञ्चक्राथे	एधाञ्चकृढ्वे
उत्तमपुरुष	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चकृवहे	एधाञ्चकृमहे

लिट् लकार, भू का अनुप्रयोग

प्रथमपुरुष	एधाम्बभूव	एधाम्बभूवतुः	एधाम्बभूवुः
मध्यमपुरुष	एधाम्बभूविथ	एधाम्बभूवथुः	एधाम्बभूव
उत्तमपुरुष	एधाम्बभूव	एधाम्बभूविव	एधाम्बभूविम

लिट् लकार, अस् का अनुप्रयोग

प्रथमपुरुष	एधामास	एधामासतुः	एधामासुः
मध्यमपुरुष	एधामासिथ	एधामासथुः	एधामास
उत्तमपुरुष	एधामास	एधामासिव	एधामासिम

लुट् लकार

प्रथमपुरुष	एधिता	एधितारौ	एधितारः
मध्यमपुरुष	एधितासे	एधितासाथे	एधिताध्वे
उत्तमपुरुष	एधिताहे	एधितास्वहे	एधितास्महे

णिङ्विधायकं विधिसूत्रम्

५२५. कमेर्णिङ् ३।१।३०॥

स्वार्थे। ङित्त्वात्तङ्। कामयते।

....

लृट् लकार

प्रथमपुरुष	एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	एधिष्ये	एधिष्यावहे	एधिष्यामहे

लोट् लकार

प्रथमपुरुष	एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्
मध्यमपुरुष	एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्
उत्तमपुरुष	एधै	एधावहै	एधामहै

लङ् लकार

प्रथमपुरुष	ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
मध्यमपुरुष	ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथमपुरुष	एधेत	एधेयातम्	एधेरन्
मध्यमपुरुष	एधेथाः	एधेयाथाम्	एधेध्वम्
उत्तमपुरुष	एधेय	एधेवहि	एधेमहि

आशीर्लिङ् लकार

प्रथमपुरुष	एधिषीष्ट	एधिषीयास्ताम्	एधिषीरन्
मध्यमपुरुष	एधिषीष्ठाः	एधिषीयास्थाम्	एधिषीध्वम्
उत्तमपुरुष	एधिषीय	एधिषीवहि	एधिषीमहि

लुङ् लकार

प्रथमपुरुष	ऐधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत
मध्यमपुरुष	ऐधिष्ठाः	ऐधियाथाम्	ऐधिढ्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि

लृङ् लकार

प्रथमपुरुष	ऐधिष्यत	ऐधिष्येताम्	ऐधिष्यन्त
मध्यमपुरुष	ऐधिष्यथाः	ऐधिष्येथाम्	ऐधिष्यध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधिष्ये	ऐधिष्यावहि	ऐधिष्यामहि।

कमु कान्तौ। कमु धातु कान्ति अर्थात् इच्छा अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा होती है और इससे **गुपू** धातु से जिस तरह आय प्रत्यय हुआ था उसी तरह स्वार्थ में **णिङ्** प्रत्यय होता है। उसके बाद **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लकार आते हैं।

५२५- **कमेर्णिङ्।** कमेः पञ्चम्यन्तं, णिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२६. अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६।४।५५॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात्। कामयाञ्चक्रे। आयादय इति णिङ् वा। चकमे। चकमाते। चकमिरे। चकमिषे। चकमाथे। चकमिध्वे। चकमे। चकमिवहे। चकमिमहे। कामयिता।। कामयितासे। कमिता। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट।।

कम् धातु से स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय होता है।

अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति। सूत्र में कोई अर्थ निर्देश नहीं है, अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक है अर्थात् धातु के अर्थ को ही पुष्ट करता है, विशेष अर्थ नहीं लाता। **णिङ्** में **णकार** और **ङकार** की इत्संज्ञा होती है। **इ** बचता है। इसके ङित् होने से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपद होता है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि कार्य होते हैं।

कामयते। कमु धातु है, उकार की इत्संज्ञा होने के बाद कम् से **कमेर्णिङ्** से णिङ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने के बाद **कम्+इ** बना। **अत उपधायाः** से ककारोत्तरवर्ती अकार को वृद्धि होने पर **काम्+इ**, वर्णसम्मेलन होने पर **कामि** बना। **कामि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लट् लकार, त, शप् करके **कामि+अ+त** बना। शप् वाले अकार के परे होने पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **कामि** के इकार को गुण करके **कामे+अत** बना। अय् आदेश होकर **काम्+अय्+अत** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कामयत** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरे:** से एत्व होकर **कामयते** सिद्ध हुआ। कामयते, कामयेते, कामयन्ते, कामयसे, कामयेथे, कामयध्वे, कामये, कामयावहे, कामयामहे।

५२६- अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु। आम् च अन्तश्च आलुश्च आय्यश्च इत्नुश्च इष्णुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णवः, तेषु आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु। अय् प्रथमान्तम्, आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **णेररिटि** से **णेः** की अनुवृत्ति आती है।

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु के परे होने पर णि के स्थान पर अय् आदेश होता है।

यह सूत्र **णेरनिटि** से प्राप्त **णि** के लोप का बाधक है।

कामयाञ्चक्रे। कम् से लिट् लकार की विवक्षा है। लिट् आर्धधातुक है। अतः **आयादय आर्धधातुके वा** की सहायता से **कमेर्णिङ्** से **णिङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, उपधा की वृद्धि करके **कामि**, धातुसंज्ञा, लिट्, त आदेश, **कास्यनेकाच आम्वक्तव्यो लिटि** से आम्, **आमः** से लिट् का लुक्, **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, **कृ** धातु उभयपदी होने के कारण यह द्विविधा थी कि **कृ** से परस्मैपद हो या आत्मनेपद अथवा उभयपद तो **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** से आत्मनेपद ही होने का विधान। इस तरह **कामि+आम्+कृ+त** बना। **कामि** के इकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **णेरनिटि** से लोप प्राप्त हुआ। उसे भी बाधकर के **आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु** से अय् आदेश हुआ, **कामयाम्+कृत** बना। अब **एधाञ्चक्रे** की

वैकल्पिकढत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५२७. विभाषेट: ८।३।७९।।

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः।
कामयिषीढ्वम्। कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्।

....

तरह कृ को द्वित्व, अर्, हलादिशेष, चुत्व, **त** के स्थान पर **एश्** आदेश और **यण्** करके **कामयाञ्चक्रे** सिद्ध हो जाता है।

लिट् में कृ के अनुप्रयोग में- कामयाञ्चक्रे, कामयाञ्चक्राते, कामयाञ्चक्रिरे, कामयाञ्चकृषे, कामयाञ्चक्राथे, कामयाञ्चकृढ्वे, कामयाञ्चक्रे, कामयाञ्चकृवहे, कामयाञ्चकृमहे।

लिट् में भू के अनुप्रयोग में- कामयाम्बभूव, कामयाम्बभूवतुः, कामयाम्बभूवुः, कामयाम्बभूविथ, कामयाम्बभूवथुः, कामयाम्बभूव, कामयाम्बभूव, कामयाम्बभूविव, कामयाम्बभूविम।

लिट् में अस् के अनुप्रयोग में- कामयामास, कामयामासतुः, कामयामासुः, कामयामासिथ, कामयामासथुः, कामयामास, कामायामास, कामयामासिव, कामयामासिम।

णिङ् न होने के पक्ष में- चकमे, चकमाते, चकमिरे, चकमिषे, चकमाथे, चकमिध्वे, चकमे, चकमिवहे, चकमिमहे।

लुट्- णिङ् होने के पक्ष में- कामयिता, कामयितारौ, कामयितारः, कामयितासे, कामयितासाथे, कामयिताध्वे, कामयिताहे, कामयितास्वहे, कामयितास्महे।

लुट्- णिङ् न होने के पक्ष में- कमिता, कमितारौ, कमितारः, कमितासे, कमितासाथे, कमिताध्वे, कमिताहे, कमितास्वहे, कमितास्महे।

लृट्- णिङ् होने के पक्ष में- कामयिष्यते, कामयिष्येते, कामयिष्यन्ते, कामयिष्यसे, कामयिष्येथे, कामयिष्यध्वे, कामयिष्ये, कामयिष्यावहे, कामयिष्यामहे।

लृट्- णिङ् न होने के पक्ष में- कमिष्यते, कमिष्येते, कमिष्यन्ते, कमिष्यसे, कमिष्येथे, कमिष्यध्वे, कमिष्ये, कमिष्यावहे, कमिष्यामहे।

लोट्- इस लकार में नित्य से णिङ् होता है। कामयताम्, कामयेताम्, कामयन्ताम्, कामयस्व, कामयेथाम्, कामयध्वम्, कामयै, कामयावहै, कामयामहै।

लङ्- नित्य से णिङ्। अकामयत, अकामयेताम्, अकामयन्त, अकामयथाः, अकामयेथाम्, अकामयध्वम्, अकामये, अकामयावहि, अकामयामहि।

विधिलिङ्- कामयेत, कामयेताम्, कामयेरन्, कामयेथाः, कामयेथाम्, कामयेध्वम्, कामयेय, कामयेवहि, कामयेमहि।

कामयिषीष्ट। कामि+इ+सीय्+ट में यकार का लोप, आर्धधार्तुकगुण, एकार को अय् आदेश, सुट् का आगम, **कामय्+इ+सी+स्+त** बना। दोनों सकारो षत्व करके षकार के योग में तकार को ष्टुत्व करके **कामयिषीष्ट** बन जाता है।

५२७- **विभाषेटः**। विभाषा प्रथमान्तम्, इटः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** यह पूरा सूत्र तथा **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आ रही है।

इण् प्रत्याहार से परे जो इट्, उससे परे षीध्वम्, लुङ् और लिट् के धकार के स्थान पर विकल्प से मूर्धन्य(ढकार) आदेश होता है।

चङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२८. णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३।१।४८॥

ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे।

अकामि अ त इति स्थिते।

णिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५२९. णेरनिटि ६।४।५१॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात्।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

५३०. णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्।

....

षीध्वम् का धकार है। अतः इससे वैकल्पिक ढत्व होकर **कामयिषीढ्वम्** और **कामयिषीध्वम्** ये दो रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ्- णिङ्पक्ष- कामयिषीष्ट, कामयिषीयास्ताम्, कामयिषीरन्, कामयिषीष्ठाः, कामयिषीयास्थाम्, कामयिषीढ्वम्-कामयिषीध्वम्, कामयिषीय, कामयिषीवहि, कामयिषीमहि।

णिङभावे- कमिषीष्ट, कमिषीयास्ताम्, कमिषीरन्, कमिषीष्ठाः, कमिषीयास्थाम्, कमिषीध्वम्, कमिषीय, कमिषीवहि, कमिषीमहि।

५२८- णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्। णिश्च श्रिश्च द्रुश्च स्रुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः णिश्रिद्रुस्रवः, तेभ्यः णिश्रिद्रुस्रुभ्यः। णिश्रिद्रुस्रुभ्यः पञ्चम्यन्तं, कर्तरि सप्तम्यन्तं, चङ् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **च्लि लुङि** से **लुङि** और **च्लेः सिच्** से **च्लेः** की अनुवृत्ति आती है।

णि अन्त में हो ऐसे धातु और श्रि, द्रु, स्रु धातुओं से परे च्लि के स्थान पर चङ् आदेश होता है कर्त्रर्थक लुङ् के परे होने पर।

प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् यह एक परिभाषा है। जहाँ-जहाँ प्रत्ययों का ग्रहण होता है, वहाँ-वहाँ प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है अर्थात् जैसे इस सूत्र में णि का ग्रहण किया गया है तो इससे णि अन्त में ऐसे धातु को लिया गया। चकार और ङकार की इत्संज्ञा होती है, केवल अकार बचता है।

५२९- णेरनिटि। णेः षष्ठ्यन्तम्, अनिटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है। **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

इट् आदि में न हो ऐसे आर्धधातुक के परे होने पर णि का लोप होता है।

इस सूत्र में सामान्य णि का ग्रहण है अर्थात् अनुबन्ध नहीं लगा है। अतः णिङ् और णिच् दोनों के णि के इकार का लोप हो जायेगा।

५३०- णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः। णौ सप्तम्यन्तं, चङि सप्तम्यन्तम्, उपधाया षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

चङ् के परे होने परे जो णि, उसके परे रहने पर जो अङ्ग, उसकी उपधा को ह्रस्व होता है।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

५३१. चङि ६।१।११॥

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य।

सन्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५३२. सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्यात्, णावग्लोपेऽसति।

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५३३. सन्यतः ७।४।७९॥

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि।

....

ध्यान रखना कि केवल णि के परे नहीं अपितु णि से भी चङ् परे हो, तभी यह सूत्र प्रवृत्त होता है।

५३१- चङि। चङि सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **धातोः** और **अनभ्यासस्य** की अनुवृत्ति और **एकाचो द्वे प्रथमस्य, अजादेर्द्वितीयस्य** का अधिकार है।

चङ् के परे होने पर अभ्यासभिन्न धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है किन्तु यदि धातु अजादि और अनेकाच् हो तो द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

५३२- सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे। सनि इव सन्वत्। चङ्परो यस्मात् स चङ्परः, तस्मिन् चङ्परे। अको लोपः अग्लोपः, न अग्लोपः अनग्लोपः, तस्मिन् अग्लोपे, बहुव्रीहिगर्भतत्पुरुषः। सन्वत् अव्ययपदं, लघुनि सप्तम्यन्तम्, अनग्लोपे सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

चङ्-परक णि के परे होने पर जो अङ्ग, उसका जो अभ्यास, उससे यदि लघु वर्ण परे हो तो उस अभ्यास को सन्वद्भाव होता है किन्तु यदि णि को मानकर अक् का लोप न हुआ हो तो।

इस सूत्र का कार्य जो सन् नहीं है उसे सन् की तरह बनाना अर्थात् सन् को मानकर जो कार्य होता है वह सन् के न होने पर भी हो जाय। यह अतिदेश सूत्र है। सन् प्रत्यय सन्नन्त प्रकरण में होता है, भ्वादि में सन् कहाँ से होगा? किन्तु इस सूत्र के बल पर असन् भी सन् की तरह होता है। सन्वद्भाव का फल **सन्यतः** इस सूत्र की प्रवृत्ति है।

इस सूत्र की प्रवृत्ति में सबसे पहले चङ् को देखना है, उसके बाद उससे पूर्व णि को ढूँढना है, इसके बाद अङ्ग को और फिर उस अङ्ग का अवयव अभ्यास जो लघुपरक हो, इस के साथ ही यह भी देखना है कि उस णि को मानकर अक् अर्थात् **अ, इ, उ, ऋ, लृ** का लोप न हुआ हो।

५३३- सन्यतः। सनि सप्तम्यन्तम्, अतः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **भृञामित्** से **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

सन् के परे होने पर अभ्यास के अत् के स्थान पर इत् होता है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

५३४. दीर्घो लघोः ७।४।९४॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये। अचीकमत। णिङभावपक्षे-
वार्तिकम्- **कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः।** अचकमत। अकामयिष्यत। अकमिष्यत।

अय गतौ।।३।। अयते।

....

५३४- दीर्घो लघोः। दीर्घः प्रथमान्तं, लघोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

सन्वद्भाव के विषय में अभ्यास के लघु को दीर्घ होता है।

अचीकमत। कामि से लुङ्, त, अट् का आगम करके **अकामि+त** बना। **च्लि लुङि** से **च्लि,** उसके स्थान पर **च्लेः सिच्** से सिच् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर के **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **चङ्** आदेश हुआ। **अकामि+अत** बना। **णेरनिटि** से णि वाले इकार का लोप हुआ। **अकाम्+अत** बना। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से ककारोत्तरवर्ती अकार को ह्रस्व होकर **अकम्+अत** बना। **कम्** को **चङि** से द्वित्व हुआ- **कम्-कम्,** हलादिशेष, **ककम्** बना, **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर **चकम्,** इस तरह **अचकम्+अत** बना। **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के अनुसार णि का लोप होने पर भी आवश्यकता के अनुसार उसको मानकर होने वाला अङ्ग कार्य होता है तो यहाँ पर चङ् के अकार रूप प्रत्यय के परे **ककम्** अङ्ग है। अतः **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव हुआ अर्थात् **चकम्** इस अभ्यास में लघुपर है ककारोत्तरवर्ती अकार और उससे पूर्व च को सन् परे होने पर होने वाले कार्य हो जाय, इस प्रकार का अतिदेश इस सूत्र से हुआ। अब **सन्यतः** से **अचकम्+अत** में चकारोत्तरवर्ती अकार को इत्व हुआ- **अचिकम्+अत** बना। इसके बाद **दीर्घो लघोः** से **चि** के इकार को दीर्घ हुआ- **अचीकम्+अत** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अचीकमत** सिद्ध हुआ। इस रूप को सिद्ध करने में छात्रगण प्रायः गलती करते हैं। अतः इसका अभ्यास बार-बार होना चाहिए। णिजन्त आदि प्रकरणों में इस प्रकार की प्रक्रिया ज्यादा होती है।
लुङ् में णिङ्पक्ष के रूप- अचीकमत, अचीकमेताम्, अचीकमन्त, अचीकमथाः, अचीकमेथाम्, अचीकमध्वम्, अचीकमे, अचीकमावहि, अचकमामहि।

णिङ् न होने के पक्ष **चङ्** भी प्राप्त नही होगा। अतः अगला वार्तिक लगता है-

कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः। कम धातु से परे च्लि को चङ् हो, ऐसा कहना चाहिए। णिङ् न होने पर सन्वद्भाव भी नहीं होगा, अतः इत्व भी नहीं होगा। वार्तिक से चङ् होने के कारण द्वित्व आदि कार्य होंगे। इसी तरह **अकामि+अत, अकाम्+अत, अकम्+अत, कम्-कम्, ककम्, चकम्, अचकम्+अत** होते हुए **अचकमत** यह रूप सिद्ध होता है।
णिङ् न होने के पक्ष के रूप- अचकमत, अचकमेताम्, अचकमन्त, अचकमथाः, अचकमेथाम्, अचकमध्वम्, अचकमे, अचकमावहि, अचकमामहि।
लृङ्- णिङ्पक्षे- अकामयिष्यत, अकामयिष्येताम्, अकामयिष्यन्त, अकामयिष्यथाः, अकामयिष्येथाम्, अकामयिष्यध्वम्, अकामयिष्ये, अकामयिष्यावहि, अकामयिष्यामहि। **णिङ्** के अभाव पक्ष में अकमिष्यत, अकमिष्येताम् आदि रूप बनते हैं।

लत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५३५. उपसर्गस्यायतौ ८।२।१९॥

अयतिपरस्य उपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात्। प्लायते। पलायते।

आम्विधायकं विधिसूत्रम्

५३६. दयायासश्च ३।१।३७॥

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि।

अयाञ्चक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट। विभाषेटः। अयिषीढ्वम्, अयिषीध्वम्। आयिष्ट। आयिढ्वम्, आयिध्वम्। आयिष्यत। **द्युत दीप्तौ॥४॥** द्योतते।

अय गतौ। अय धातु गति(जाना) अर्थ में है। **गति** के चार अर्थ होते हैं- **गमन, ज्ञान, प्राप्ति** और **मोक्ष**। प्रसंग के अनुसार अर्थ किया जाता है। यकारोत्तरवर्ती अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, अय् शेष बचता है और अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी होता है।

अयते। अय् से लट्, त, शप् और एत्व करके **अय्+अ+ते** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अयते** सिद्ध होता है। **अयते, अयेते, अयन्ते, अयसे, अयेथे, अयध्वे, अये, अयावहे, अयामहे**।

५३५- उपसर्गस्यायतौ। उपसर्गस्य षष्ठ्यन्तम्, अयतौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कृपो रो लः** से **रः** और **लः** की अनुवृत्ति आती है।

अय् धातु के परे होने पर उपसर्ग के रेफ को लकार आदेश होता है।

प्लायते। प्र पूर्वक अयते में **उपसर्गस्यायतौ** से प्र के रेफ के स्थान पर लत्व करके **प्ल+अयते** बना। सवर्णदीर्घ होकर **प्लायते** सिद्ध हुआ। इसी तरह **परा+अयते** में लत्व होकर **पला+अयते=पलायते** बनता है।

५३६- दयायासश्च। दय् च आय् च आस् च तेषां समहारद्वन्द्वो दयायास्, तस्मात् दयायासः। दयायासः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् के परे होने पर दय्, अय् और आस् इन धातुओं से आम् प्रत्यय होता है।

अयाञ्चक्रे। अय् से लिट्, **दयायासश्च** से आम, आम से परे लिट् का लुक्, कृ का अनुप्रयोग करके **अयाम्+कृ+त** बना। द्वित्व, **उरत्** से अत्व, हलादिशेष, चुत्व, एश् आदेश आदि करके **एधाञ्चक्रे** की तरह **अयाञ्चक्रे** बन जाता है।

लिट्- कृ का अनुप्रयोग- अयाञ्चक्रे, अयाञ्चक्राते, अयाञ्चक्रिरे, अयाञ्चकृषे, अयाञ्चक्राथे, अयाञ्चकृढ्वे, अयाञ्चक्रे, अयाञ्चकृवहे, अयाञ्चकृमहे। **भू** का अनुप्रयोग- अयाम्बभूव, अयाम्बभूवतुः, अयाम्बभूवुः, अयाम्बभूविथ, अयाम्बभूवथुः, अयाम्बभूव, अयाम्बभूव, अयाम्बभूविव, अयाम्बभूविम। **अस्** का अनुप्रयोग- अयामास, अयामासतुः, अयामासुः, अयामासिथ, अयामासथुः, अयामास, अयामास, अयामासिव, अयामासिम। **लुट्-** अयिता, अयितारौ, अयितारः, अयितासे, अयितासाथे, अयिताध्वे, अयिताहे, अयितास्वहे, अयितास्महे। **लृट्-** अयिष्यते, अयिष्येते, अयिष्यन्ते, अयिष्यसे, अयिष्येथे, अयिष्यध्वे, अयिष्ये, अयिष्यावहे,

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

५३७. द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७।४।६७।।

अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात्। दिद्युते।

....

अयिष्यामहे। **लोट्**- अयताम्, अयेताम्, अयन्ताम्, अयस्व, अयेथाम्, अयध्वम्, अयै, अयावहै, अयामहै। **लङ्**- आयत, आयेताम्, आयन्त, आयथाः, आयेथाम्, आयध्वम्, आये, आयावहि, आयामहि। **विधिलिङ्**- अयेत, अयेताम्, अयेरन्, अयेथाः, अयेथाम्, अयेध्वम्, अयेय, अयेवहि, अयेमहि। **आशीर्लिङ्**- अयिषीष्ट, अयिषीयास्ताम्, अयिषीरन्, अयिषीष्ठाः, अयिषीयास्थाम्, अयिषीढ्वम्-अयिषीध्वम्, अयिषीय, अयिषीवहि, अयिषीमहि। **लुङ्**- आयिष्ट, आयिषाताम्, आयिषत, आयिष्ठाः, आयिषाथाम्, आयिढ्वम्-आयिध्वम्, आयिषि, आयिष्वहि, आयिष्महि। **लृङ्**- आयिष्यत, आयिष्येताम्, आयिष्यन्त, आयिष्यथाः, आयिष्येथाम्, आयिष्यध्वम्, आयिष्ये, आयिष्यावहि, आयिष्यामहि।

द्युत दीप्तौ। द्युत धातु **चमकना, प्रकाशित होना, प्रकट होना** अर्थ में है। तकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। **द्युत्** शेष रहता है।

द्योतते। द्युत् से लट्, त, शप्, उपधागुण, एत्व करके **द्योतते** सिद्ध होता है। **लट्**- द्योतते, द्योतेते, द्योतन्ते, द्योतसे, द्योतेथे, द्योतध्वे, द्योते, द्योतावहे, द्योतामहे।

५३७- द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्। द्युतिश्च स्वापिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो द्युतिस्वापी, तयोर्द्युतिस्वाप्योः। द्युतिस्वाप्योः सप्तम्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

द्युत् धातु तथा ण्यन्त स्वप् धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

स्मरण रहे कि **इग्यणः सम्प्रसारणम्** के नियम से यण् के स्थान पर होने वाले इक् को सम्प्रसारण कहते हैं अर्थात् सम्प्रसारण का तात्पर्य **यण्** के स्थान पर **इक्** होना है। यहाँ द्युत् धातु को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् पूर्व द्युत् में विद्यमान यकार के स्थान पर इकार होता है।

दिद्युते। द्युत् से लिट्, उसके स्थान त आदेश, उसके स्थान पर एश् आदेश करके द्वित्व करने पर **द्युत्+द्युत्+ए** बना है। अभ्याससंज्ञक प्रथम द्युत् में विद्यमान यकार के स्थान पर **द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्** से सम्प्रसारण आदेश करने पर इकार हुआ, **द्+इ+उत्** बना। **इ+उ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इकार** ही हुआ, **दित्+द्युत्+ए** बना। हलादिशेष होकर **दिद्युत्+ए** बना। वर्णसम्मेलन करके **दिद्युते** यह रूप सिद्ध हुआ।

लिट्- दिद्युते, दिद्युताते, दिद्युतिरे, दिद्युतिषे, दिद्युताथे, दिद्युतिध्वे, दिद्यते, दिद्युतिवहे, दिद्युतिमहे। **लुट्**- द्योतिता, द्योतितारौ, द्योतितारः, द्योतितासे, द्योतितासाथे, द्योतिताध्वे, द्योतिताहे, द्योतिताास्वहे, द्योतितास्महे। **लृट्**- द्योतिष्यते, द्योतिष्येते, द्योतिष्यन्ते, द्योतिष्यसे, द्योतिष्येथे, द्योतिष्यध्वे, द्योतिष्ये, द्योतिष्यावहे, द्योतिष्यामहे। **लोट्**- द्योतताम्, द्योतेताम्, द्योतन्ताम्, द्योतस्व, द्योतेथाम्, द्योतध्वम्, द्योतै, द्योतावहै, द्योतामहै। **लङ्**- अद्योतत, अद्योतेताम्, अद्योतन्त, अद्योतथाः, अद्योतेथाम्, अद्योतध्वम्, अद्योते, अद्योतावहि, अद्योतामहि। **विधिलिङ्**- द्योतेत, द्योतेयाताम्, द्योतेरन्, द्योतेथाः, द्योतेयाथाम्, द्योतेध्वम्, द्योतेय, द्योतेवहि, द्योतेमहि। **आशीर्लिङ्**- द्योतिषीष्ट, द्योतिषीयास्ताम्, द्योतिषीरन्, द्योतिषीष्ठाः, द्योतिषीयास्थाम्, द्योतिषीध्वम्, द्योतिषीय, द्योतिषीवहि, द्योतिषीमहि।

वैकल्पिकपरस्मैपदविधायकं विधिसूत्रम्

५३८. द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात्। पुषादीत्यङ्। अद्युतत्, अद्योतिष्ट। अद्योतिष्यत। एवं **श्विता** वर्णे॥५॥ **ञिमिदा** स्नेहने॥६॥ **ञिष्विदा** स्नेहनमोचनयोः॥७॥ मोहनयोरित्येके। **ञिक्ष्विदा** चेत्येके। **रुच** दीप्तावभिप्रीतौ च॥८॥ **घुट** परिवर्तने॥९॥ **शुभ** दीप्तौ॥१०॥ **क्षुभ** संचलने॥११॥ **णभ तुभ** हिंसायाम्॥१२, १३॥ **स्रंसु भ्रंसु, ध्वंसु** अवस्रंसने॥१४, १५,१६॥ **ध्वंसु** गतौ च। **स्रम्भु** विश्वासे॥१७॥ **वृतु** वर्तने॥१८॥ वर्तते। ववृते। वर्तिता।

....

५३८- **द्युद्भ्यो लुङि**। द्युद्भ्यः पञ्चम्यन्तं, लुङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वा क्यषः** से **वा** तथा **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** से **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है। **द्युत् आदि धातुओं से परे लुङ् के स्थान पर विकल्प से परस्मैपद होता है।**

धातुपाठ में द्युतादिगण में बाईस धातु पढ़े गये हैं, उनका यहाँ पर ग्रहण होता है। विकल्प से होने के कारण लुङ् के स्थान पर एकपक्ष में परस्मैपद और एकपक्ष में आत्मनेपद होते हैं। ऐसा केवल लुङ् लकार में है, अन्य लकारों में तो आत्मनेपद ही होता है।

अद्युतत्। द्युत् से लुङ् लकार आने पर **द्युद्भ्यो लुङि** से वैकल्पिक परस्मैपद का विधान हुआ। अट् का आगम, ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **अद्युत्+त्** बना। च्लि करके उसके स्थान पर **पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु** से अङ् आदेश होकर **अद्युत+अत्** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **अद्योत्+अत्**, वर्णसम्मेलन होकर **अद्योतत्** बना। सिच् न होने के कारण **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् और वलादि न होने के कारण **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम दोनों नहीं हुए। परस्मैपद न होने के पक्ष में आत्मनेपद होगा जिसमें अङ् न होने के कारण सिच् होता है और वलादिलक्षण इट् का आगम करके गुण, षत्व, ष्टुत्व करने पर **अद्योतिष्ट** यह रूप सिद्ध होता है।

लुङ् के परस्मैपद में- अद्युतत्, अद्युतताम्, अद्युतन्, अद्युतः, अद्युततम्, अद्युतत, अद्युतम्, अद्युताव, अद्युताम। **आत्मनेपद में**- अद्योतिष्ट, अद्योतिषाताम्, अद्योतिषत, अद्योतिष्ठाः, अद्योतिषाथाम्, अद्योतिढ्वम्, अद्योतिषि, अद्योतिष्वहि, अद्योतिष्महि। **लृङ्**- अद्योतिष्यत, अद्योतिष्येताम्, अद्योतिष्यन्त, अद्योतिष्यथाः, अद्योतिष्येथाम्, अद्योतिष्यध्वम्, अद्योतिष्ये, अद्योतिष्यावहि, अद्योतिष्यामहि।

एवं **श्विता वर्णे**। इसी तरह **श्विता** आदि धातुओं के रूप बनते हैं। **श्विता** धातु **सफेद होना** अर्थ में है। आकार की इत्संज्ञा होती है, **श्वित्** बचता है। इसके रूप **द्युत्** की तरह ही होते हैं- **श्वेतते, श्वेतेते, श्वेतन्ते** इत्यादि। **द्युत्** में उकार को गुण होकर ओकार होता है तो **श्वित्** में इकार को गुण होकर एकार होता है, यही अन्तर है। **लिट्**- शिश्विते, शिश्विताते, शिश्वितिरे। **लुट्**- श्वेतिता, श्वेतितारौ, श्वेतितारः। **लृट्**- श्त्रेतिष्यते, श्वेतिष्येते, श्वेतिष्यन्ते। **लोट्**- श्वेतताम्, श्वेतेताम्, श्वेतन्ताम्। **लङ्**- अश्वेतत, अश्वेतेताम्, अश्वेतन्त। **विधिलिङ्**- श्वेतेत, श्वेतेयाताम्, श्वेतेरन्। **आशीर्लिङ्**- श्वेतिषीष्ट, श्वेतिषीयास्ताम् श्वेतिषीरन्।

लुङ् के परस्मैपद में- अश्वेतत्, अश्वेतताम्, अश्वेतन्। **लुङ् के आत्मनेपद में**- अश्वेतिष्ट, अश्वेतिषाताम्, अश्वेतिषत। **लृङ्**- अश्वेतिष्यत, अश्वेतिष्येताम्, अश्वेतिष्यन्त।

ञिमिदा स्नेहने। ञिमिदा धातु **चिकना होना, गीला होना** अर्थ में है। **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से और दकारोत्तरवर्ती आकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। **मिद्** बचता है। इसके रूप भी द्युत् की तरह ही होते हैं। हम यहाँ पर प्रत्येक लकार में मात्र एक रूप ही दिखा रहे हैं किन्तु आप तीनों पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बनाने का प्रयत्न करना। **रूप**- मेदते। मिमिदे। मेदिता। मेदिष्यते। मेदताम्। अमेदत। मेदेत। मेदिपीष्ट। अमिदत्-अमेदिष्ट। अमेदिष्यत।

ञिष्विदा स्नेहन-मोचनयोः। मोहनयोरित्येके। ञिक्ष्विदा चेत्येके। ञिष्विदा धातु **स्नेहन** अर्थात् **स्निग्ध होना, पसीना होना** और **पसीना छोड़ना** अर्थ में है। कुछ आचार्य **स्नेहन** और **मोहन** अर्थात् **मोहित होना** ऐसा अर्थ मानते हैं तो कुछ आचार्य धातु को ही **ञिष्विदा** की जगह **ञिक्ष्विदा** मानते हैं। **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से तथा आकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है। इस तरह **स्विद्** बचता है। **ञिक्ष्विदा** धातु मानने के पक्ष में **क्ष्विद्** बचता है। इसके रूप भी **द्युत्** धातु की तरह ही होते हैं। स्वेदते। सिस्विदे। स्वेदिता। स्वेदिष्यते। स्वेदताम्। अस्वेदत। स्वेदेत। स्वेदिषीष्ट। अस्विदत-अस्वेदिष्ट। अस्वेदिष्यत। अथवा क्ष्वेदते। चिक्ष्विदे। क्ष्वेदिता। क्ष्वेदिष्यते। क्ष्वेदताम्। अक्ष्वेदत। क्ष्वेदेत। क्ष्वेदिषीष्ट। अक्ष्विदत्-अक्ष्वेदिष्ट। अक्ष्वेदिष्यत।

रुच दीप्तावभिप्रीतौ च। रुच धातु **चमकना** और **प्रीति का विषय होना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है। **रुच्** बचता है। इसके रूप द्युत् की तरह ही बनते हैं। रोचते। रुरुचे। रोचिता। रोचिष्यते। रोचताम्। अरोचत। रोचेत। रोचिषीष्ट। अरुचत्-अरोचिष्ट। अरोचिष्यत।

घुट परिवर्तने। घुट धातु **परिवर्तन होना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **घुट्** शेष रहता है। घोटते। जुघुटे। घोटिता। घोटिष्यते। घोटताम्। अघोटत। घोटेत। घोटिषीष्ट। अघुटत्-अघोटिष्ट। अघोटिष्यत।

शुभ दीप्तौ। शुभ धातु **चमकना, शोभा पाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **शुभ्** बचता है। शोभते। शुशुभे। शोभिता। शोभिष्यते। शोभताम्। अशोभत। शोभेत। शोभिषीष्टं अशुभत्-अशोभिष्ट। अशोभिष्यत।

क्षुभ सञ्चलने। क्षुभ धातु **व्याकुल होना** या **विचलित होना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होन के बाद **क्षुभ्** के रूप भी **द्युत्** की तरह ही चलते हैं। क्षोभते। चुक्षुभे। क्षोभिता। क्षोभिष्यते। क्षोभताम्। अक्षोभत। क्षोभेत। क्षोभिषीष्ट। अक्षुभत्-अक्षोभिष्ट। अक्षोभिष्यत।

णभ हिंसायाम्। णभ धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **णो नः** से आदि में स्थित णकार के स्थान पर नकार आदेश और भकार के अकार की इत्संज्ञा होकर **नभ्** शेष रहता है। **नभते।** एत्वाभ्यासलोप होकर- नेभे, नेभाते, नेभिरे। नभिता। नभिष्यते। नभताम्। अनभत। नभेत। नभिषीष्ट। अनभत्-अनभिष्ट। अनभिष्यत।

तुभ हिंसायाम्। तुभ धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर रूप बनते हैं- तोभते। तुतुभे। तोभिता। तोभिष्यते। तोभताम्। अतोभत। तोभेत। तोभिषीष्ट। अतुभत्-अतोभिष्ट। अतोभिष्यत।

वैकल्पिकपरस्मैपदविधायकं विधिसूत्रम्

५३९. वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२॥

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात् स्ये सनि च।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

५४०. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९॥

वृतुवृधुशृधुस्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण् न स्यात् तङानयोरभावे। वर्त्स्यति, वर्तिष्यते। वर्तताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवर्तिष्ट। अवर्त्स्यत्, अवर्तिष्यत। **दद दाने॥१९॥** ददते।

स्रंसु, भ्रंसु, ध्वंसु अवस्रंसने। ध्वंसु गतौ च। ये तीनों धातु **नीचे गिरना** अर्थ में हैं और **ध्वंसु** धातु **गति** अर्थ में भी है। सबमें उकार की इत्संज्ञा होती है और **स्रंस्, भ्रंस्, ध्वस्** शेष रहते हैं। अन्य लकारों में सामान्य रूप होते हैं किन्तु **लुङ्** लकार में **अङ्** होने के पक्ष में **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से नकार से उत्पन्न अनुस्वार का लोप होकर **अस्रसत्, अभ्रसत्, अध्वसत्** ये रूप बनते है। **स्रंस्** के रूप- स्रंसते, सस्रंसे, स्रंसिता, स्रंसिष्यते, स्रंसताम्, अस्रंसत, स्रंसेत, स्रंसिषीष्ट, अस्रसत्-अस्रंसिष्ट, असंसिष्यत। इसी तरह **भ्रंस्** के भी रूप बनाइये- भ्रंसते, बभ्रंसे, भ्रंसिता, भंसिष्यते, भ्रंसताम्, अभ्रंसत, भ्रंसेत, भ्रंसिषीष्ट, अभ्रसत्-अभ्रंसिष्ट, अभ्रंसिष्यत। एवं प्रकारेण **ध्वंस्** के रूप- ध्वंसते, दध्वंसे, ध्वंसिता, ध्वंसिष्यते, ध्वंसताम्, अध्वंसत, ध्वंसेत, ध्वंसिषीष्ट, अध्वसत्-अध्वंसिष्ट, अध्वंसिष्यत।

स्रम्भु विश्वासे। स्रम्भु धातु **विश्वास करना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा होती है, **स्रम्भ्** शेष रहता है। **स्रन्+भ्** में नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **स्रम्भ्** बना है। अन्य लकारों में सामान्य रूप होते हैं किन्तु **लुङ्** लकार में **अङ्** होने के पक्ष में **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से नकार से उत्पन्न मकार का लोप होकर **अस्रभत्** बनता है। स्रम्भते, सस्रम्भे, स्रम्भिता, स्रम्भिष्यते, स्रम्भताम्, अस्रम्भत, स्रम्भेत, स्रम्भिषीष्ट, अस्रभत्-अस्रम्भिष्ट, अस्रम्भिष्यत।

वृतु वर्तने। वृतु धातु **वर्तन** अर्थात् **होना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा होकर **वृत्** शेष रहता है।

वर्तते। ववृते। वर्तिता। वृत् से लट्, त, शप्, अनुबन्धलोप होकर **वृत्+अत** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से वृ के ऋकार के स्थान पर गुण होकर अर् हुआ, **व्+अर्=वर्, वर्+त्=वर्त्, वर्त्+अत** बना। एत्व और वर्णसम्मेलन होकर **वर्तते** सिद्ध हुआ। **लिट्** में **वृत्+त, वृत+ए, वृत्+वृत्+ए, वृ+वृत्+ए, (उरत्) वर्+वृत्+ए, व+वृत्+ए=ववृते** सिद्ध होता है और **लुट्** में **वृत्+इ+तास्+ति, वृत्+इ+तास्+डा, वृत्+इ+ता, वर्त्+इ+ता=वर्तिता** बनता है।

५३९- वृद्भ्यः स्यसनोः। स्यश्च सन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्यसनौ, तयोः स्यसनोः। वृद्भ्यः पञ्चम्यन्तं, स्यसनोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वा क्यषः** से **वा** तथा **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

स्य और सन् के परे होने पर वृत् आदि पाँच धातुओं से विकल्प से परस्मैपद होता है।

वृतु वर्तने(होना), **वृधु वृद्धौ**(बढ़ना), **श्रृधु शब्दकुत्सायाम्**(कुत्सित शब्द करना, अपान वायु का शब्द होना), **स्यन्दू प्रस्रवणे**(बहाना) और **कृपू सामर्थ्ये**(समर्थ होना) ये पाँच धातुएँ **वृतादि** हैं।

५४०- **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः**। न अव्ययपदं, वृद्भ्यः पञ्चम्यन्तं, चतुर्भ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सेऽसिचि........**से **से**, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **आर्धधातुकस्य** और **गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद अर्थात् तङ् और आन का विषय न हो तो वृत् आदि चार धातुओं से सकारादि आर्धधातुक के परे इट् का आगम नहीं होता।

वृद्भ्यः यह बहुवचन गण को सूचित करता है। वृत् गण में चार धातु वृतु, वृधु, शृधु और स्यन्दू हैं। सकारादि आर्धधातुक **लृट्** और **लृङ्** में मिलता है।

वर्त्स्यति, वर्तिष्यते। वृत् से लुट्, **वृद्भ्यः स्यसनोः** से वैकल्पिक परस्मैपद का विधान हुआ, स्य प्रत्यय करके **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् आगम की प्राप्ति थी किन्तु परस्मैपद के पक्ष में **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से निषेध हुआ, गुण होकर **वर्त्+स्यति=वर्त्स्यति** सिद्ध हुआ। परस्मैपद न होने के पक्ष में आत्मनेपद और आत्मनेपद होने पर इट् का निषेध नहीं हुआ। अतः **वर्तिष्यते** यह रूप बना। इस तरह लृट् और लृङ् में दो-दो रूप बनते हैं।

लट्- वर्तते, वर्तेते, वर्तन्ते, वर्तसे, वर्तेथे, वर्तध्वे, वर्ते, वर्तावहे, वर्तामहे।
लिट्- ववृते, ववृताते, ववृतिरे, ववृतिषे, ववृताथे, ववृतिध्वे, ववृते, ववृतिवहे, ववृतिमहे।
लुट्- वर्तिता, वर्तितारौ, वर्तितारः, वर्तितासे, वर्तितासाथे, वर्तिताध्वे, वर्तिताहे, वर्तितास्वहे, वर्तितास्महे। **लृट्- (परस्मैपद)** वर्त्स्यति, वर्त्स्यतः, वर्त्स्यन्ति, वर्त्स्यसि, वर्त्स्यथः, वर्त्स्यथ, वर्त्स्यामि, वर्त्स्यावः, वर्त्स्यामः। **(आत्मनेपद)** वर्तिष्यते, वर्तिष्येते, वर्तिष्यन्ते, वर्तिष्यसे, वर्तिष्येथे, वर्तिष्यध्वे, वर्तिष्ये, वर्तिष्यावहे, वर्तिष्यामहे। **लोट्**- वर्तताम्, वर्तेताम्, वर्तन्ताम्, वर्तस्व, वर्तेथाम्, वर्तध्वम्, वर्तै, वर्तावहै, वर्तामहै। **लङ्**- अवर्तत, अवर्तेताम्, अवर्तन्त, अवर्तथाः, अवर्तेथाम्, अवर्तध्वम्, अवर्ते, अवर्तावहि, अवर्तामहि। **विधिलिङ्**- वर्तेत, वर्तेयाताम्, वर्तेरन्, वर्तेथाः, वर्तेयाथाम्, वर्तेध्वम्, वर्तेय, वर्तेवहि, वर्तेमहि। **आशीर्लिङ्**- वर्तिषीष्ट, वर्तिषीयास्ताम्, वर्तिषीरन्, वर्तिषीष्ठाः, वर्तिषीयास्थाम्, वर्तिषीध्वम्, वर्तिषीय, वर्तिषीवहि, वर्तिषीमहि। **लुङ् में- द्युद्भ्यो लुङि** से एकपक्ष में परस्मैपद हो जाता है और **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् होता है। अवृतत्, अवृतताम्, अवृतन्, अवृतः, अवृततम्, अवृतत, अवृतम्, अवृताव, अवृताम। **आत्मनेपद** में इट् होता है। अवर्तिष्ट, अवर्तिषाताम्, अवर्तिषत, अवर्तिष्ठाः, अवर्तिषाथाम्, अवर्तिढ्वम्, अवर्तिषि, अवर्तिष्वहि, अवर्तिष्महि। **लृङ्** में **वृद्भ्यः स्यसनोः** से परस्मैपद होने के पक्ष में इट् का निषेध और आत्मनेपद में इट् होता है- अवर्त्स्यत्, अवर्त्स्यताम्, अवर्त्स्यन्, अवर्त्स्यः, अवर्त्स्यतम्, अवर्त्स्यत, अवर्त्स्यम्, अवर्त्स्याव, अवर्त्स्याम और आत्मनेपद में- अवर्तिष्यत, अवर्तिष्येताम्, अवर्तिष्यन्त, अवर्तिष्यथाः, अवर्तिष्येथाम्, अवर्तिष्यध्वम्, अवर्तिष्ये, अवर्तिष्यावहि, अवर्तिष्यामहि।

दद दाने। दद धातु **देना** इस अर्थ में है। अकार अनुदात्त है, उसकी इत्संज्ञा होती है। अतः आत्मनेपदी है। इससे लट्, त, शप्, एत्व करके **ददते** रूप बनता है।

एत्वाभ्यासनिषेधसूत्रम्

५४१. न शस-दद-वादि-गुणानाम् ६।४।१२६॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारः, तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न। ददे, ददाते, ददिरे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत। ददेत। ददिषीष्ट। अददिष्ट। अददिष्यत। **त्रपूष् लज्जायाम्। २०॥** त्रपते।

एत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५४२. तृफलभजत्रपश्च ६।४।१२२॥

एषामत एत्त्वामभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च। त्रेपे। त्रपिता, त्रप्ता। त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट, अत्रप्त। अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत।

इत्यात्मनेपदिनः।

५४१- न शसददवादिगुणानाम्। शसश्च ददश्च वादिश्च गुणश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शसददवादिगुणाः, तेषां शसददवादिगुणानाम्। न अव्ययपदं, शसददवादिगुणानाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **अतः**, **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से **एत्** और **अभ्यासलोपः**, **च** की अनुवृत्ति आती है।

शस्, दद् तथा वकारादि धातुओं के ह्रस्व अकार तथा गुण के विधान से उत्पन्न अकार को एत्व और अभ्यासलोप नहीं होते हैं।

ददे। दद् धातु से लिट्, त, एश् आदेश करके दद् को द्वित्व और अभ्यास लोप करने पर **द+दद्+ए** बना। यहाँ **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्व और अभ्यासलोप प्राप्त था, उसका **न शसददवादिगुणानाम्** से निषेध हुआ। **ददद्+ए** में वर्णसम्मेलन होकर **ददे** सिद्ध हुआ। **लट्**- ददते, ददेते, ददन्ते, ददसे, ददेथे, ददध्वे, ददे, ददावहे, ददामहे। **लिट्**- ददे, ददाते, ददिरे, ददिषे, ददाथे, ददिध्वे, ददे, ददिवहे, ददिमहे। **लुट्**- ददिता, ददितारौ, ददितारः, ददितासे, ददितासाथे, ददिताध्वे, ददिताहे, ददितास्वहे, ददितास्महे। **लृट्**- ददिष्यते, ददिष्येते, ददिष्यन्ते, ददिष्यसे, ददिष्येथे, ददिष्यध्वे, ददिष्ये, ददिष्यावहे, ददिष्यामहे। **लोट्**- ददताम्, ददेताम्, ददन्ताम्, ददस्व, ददेथाम्, ददध्वम्, ददै, ददावहै, ददामहै। **लङ्**- अददत, अददेताम्, अददन्त, अददथाः, अददेथाम्, अददध्वम्, अददे, अददावहि, अददामहि। **विधिलिङ्**- ददेत, ददेयाताम्, ददेरन्, ददेथाः, ददेयाथाम्, ददेध्वम्, ददेय, ददेवहि, ददेमहि। **आशीर्लिङ्**- ददिषीष्ट, ददिषीयास्ताम्, ददिषीरन्, ददिषीष्ठाः, ददिषीयास्थाम्, ददिषीध्वम्, ददिषीय, ददिषीवहि, ददिषीमहि। **लुङ्**- अददिष्ट, अददिषाताम्, अददिषत, अददिष्ठाः, अददिषाथम्, अददिढ्वम्, अददिषि, अददिष्वहि, अददिष्महि। **लृङ्**- अददिष्यत, अददिष्येताम्, अददिष्यन्त, अददिष्यथाः, अददिष्येथाम्, अददिष्यध्वम्, अददिष्ये, अददिष्यावहि, अददिष्यामहि।

त्रपूष् लज्जायाम्। त्रपूष् धातु **लज्जा** अर्थात् **शरमाना** अर्थ में है। ऊकार और षकार की इत्संज्ञा होती है। **त्रप्** शेष रहता है। ऊदित् होने से **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से इट् विकल्प से होता है। षित् होने का फल कृदन्त में **षिद्भिदादिभ्योऽङ्** से अङ् आदि प्रत्यय करना है।

त्रपते। त्रप् से लट्, त, शप्, एत्व करके **त्रपते** सिद्ध होता है।

५४२- **तृफलभजत्रपश्च**। तृश्च फलश्च भजश्च त्रप् च तेषां समाहारद्वन्द्वः तृफलभजत्रप्, तस्य तृफलभजत्रपः। तृफलभजत्रपः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **अतः**, **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से **एत्**, **अभ्यासलोपः**, **च** की और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **किति** एवं **थलि च सेटि** की अनुवृत्ति आती है।

तृ, फल्, भज् और त्रप् धातुओं के अत् को एकार आदेश तथा अभ्यास का लोप होता है कित् लिट् और सेट् थल् के परे होने पर।

त्रेपे। त्रप् से लिट्, त, एश् आदेश, द्वित्व, हलादिशेष करके **तत्रप्+ए** बना। त्रप् में संयोग होने के कारण अप्राप्त एत्व और अभ्यास का लोप **तृफलभजत्रपश्च** से विधान हुआ अर्थात् **त** के लोप और त्रप् में अकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **त्रेप्+ए** बना। वर्णसम्मेलन होकर **त्रेपे** सिद्ध हुआ।

लट्- त्रपते, त्रपेते, त्रपन्ते, त्रपसे, त्रपेथे, त्रपध्वे, त्रपे, त्रपावहे, त्रपामहे। **लिट्**- त्रेपे, त्रेपाते, त्रेपिरे, त्रेपिषे, त्रेपाथे, त्रेपिध्वे-त्रेब्ध्वे, त्रेपे-त्रेप्से, त्रेपिवहे-त्रेप्वहे, त्रेपिमहे-त्रेप्महे। **लुट्**- **(इट् पक्षे)** त्रपिता, त्रपितारौ, त्रपितारः, त्रपितासे, त्रपितासाथे, त्रपिताध्वे, त्रपिताहे, त्रपितास्वहे, त्रपितास्महे। **(इडभावपक्षे)** त्रप्ता, त्रप्तारौ, त्रप्तारः, त्रप्तासे, त्रप्तासाथे, त्रप्ताध्वे, त्रप्ताहे, त्रप्तास्वहे, त्रप्तास्महे। **लृट्**- **(इट्पक्षे)** त्रपिष्यते, त्रपिष्येते, त्रपिष्यन्ते, त्रपिष्यसे, त्रपिष्येथे, त्रपिष्यध्वे, त्रपिष्ये, त्रपिष्यावहे, त्रपिष्यामहे। **इडभावपक्षे**- त्रप्स्यते, त्रप्स्येते, त्रप्स्यन्ते, त्रप्स्यसे, त्रप्स्येथे, त्रप्स्यध्वे, त्रप्स्ये, त्रप्स्यावहे, त्रप्स्यामहे। **लोट्**- त्रपताम्, त्रपेताम्, त्रपन्ताम्, त्रपस्व, त्रपेथाम्, त्रपध्वम्, त्रपै, त्रपावहै, त्रपामहै। **लङ्**- अत्रपत, अत्रपेताम्, अत्रपन्त, अत्रपथाः, अत्रपेथाम्, अत्रपध्वम्, अत्रपे, अत्रपावहि, अत्रपामहि। **विधिलिङ्**- त्रपेत, त्रपेयाताम्, त्रपेरन्, त्रपेथाः, त्रपेयाथाम्, त्रपेध्वम्, त्रपेय, त्रपेवहि, त्रपेमहि। **आशीर्लिङ्**- **(इट्पक्षे)** त्रपिषीष्ट, त्रपिषीयास्ताम्, त्रपिषीरन्, त्रपिषीष्ठाः, त्रपिषीयास्थाम्, त्रपिषीध्वम्, त्रपिषीय, त्रपिषीवहि, त्रपिषीमहि। **इडभावपक्षे**- त्रप्सीष्ट, त्रप्सीयास्ताम्, त्रप्सीरन्, त्रप्सीष्ठाः, त्रप्सीयास्थाम्, त्रप्सीध्वम्, त्रप्सीय, त्रप्सीवहि, त्रप्सीमहि। **लुङ्**- (इट्पक्षे) अत्रपिष्ट, अत्रपिषाताम्, अत्रपिषत, अत्रपिष्ठाः, अत्रपिषाथाम्, अत्रपिढ्वम्, अत्रपिषि, अत्रपिष्वहि, अत्रपिष्महि। **(इडभावपक्षे)** अत्रप्त, अत्रप्साताम्, अत्रप्सत, अत्रप्थाः, अत्रप्साथाम्, अत्रब्ध्वम्, अत्रप्सि, अत्रप्स्वहि, अत्रप्स्महि। **लृङ्**- **(इट्पक्षे)** अत्रपिष्यत, अत्रपिष्येताम्, अत्रपिष्यन्त, अत्रपिष्यथाः, अत्रपिष्येथाम्, अत्रपिष्यध्वम्, अत्रपिष्ये, अत्रपिष्यावहि, अत्रपिष्यामहि। **(इडभावपक्षे)** अत्रप्स्यत, अत्रप्स्येताम्, अत्रप्स्यन्त, अत्रप्स्यथाः, अत्रप्स्येथाम्, अत्रप्स्यध्वम्, अत्रप्स्ये, अत्रप्स्यावहि, अत्रप्स्यामहि।

अभ्यासः

आपने परस्मैपद और आत्मनेपद में क्या-क्या अन्तर पाया? आप इस विषय पर कम से कम दस पृष्ठ का एक व्याख्यात्मक लेख लिखिए। इस लेख में परस्मैपद और आत्मनेपद की तुलना होनी चाहिए और दोनों पदों का अन्तर स्पष्ट हो जाना चाहिए। **आत्मनेपद** और **परस्मैपद** होने में क्या कारण है, यह भी स्पष्ट होना चाहिए। इससे आपकी व्याख्या करने की शैली अभी से बन जायेगी और सूत्रों की तुलना और अन्तर करने की प्रवृत्ति भी बढ़ जायेगी और लट्-लकार से लृङ्-लकार के बीच में क्या भिन्नता है? यह भी स्पष्ट कीजिए।

अथोभयपदिनः

श्रिञ् सेवायाम्॥१॥ श्रयति, श्रयते। शिश्राय, शिश्रिये। श्रयितासि, श्रयितासे। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। श्रयतु, श्रयताम्। अश्रयत्, अश्रयत। श्रयेत्, श्रयेत। श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। चङ्। अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत। **भृञ् भरणे॥२॥** भरति, भरते। बभार। बभ्रतुः। बभ्रुः। बभर्थ। बभृव। बभृम। बभ्रे। बभृषे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत्, भरेत।

....

अब **भ्वादिगण** में **उभयपदी** धातुओं का विवेचन आरम्भ करते हैं। **श्रिञ्** धातु में ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। ञित् होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपद का विधान होता है। यद्यपि यह सूत्र केवल आत्मनेपद का विधान करता है, तथापि कर्तृगामि क्रियाफल न होने पर आत्मनेपद नहीं हो पाता, अतः आत्मनेपद के निमित्त से रहित होने पर **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** से स्वतः परस्मैपद हो जाता है। जैसे- पच् धातु भी उभयपदी है, **देवदत्तः पचति**= देवदत्त पकाता है, इस वाक्य में पाचनक्रिया यदि अपने लिए हो रही है तो आत्मनेपद का विधान होगा। जैसे- **देवदत्तः पचते**। दूसरे के लिए हो रही है तो परस्मैपद का विधान होगा। जैसे- **देवदत्तः पचति**। इसी तरह से पच् धातु से दोनों पद अर्थात् **आत्मनेपद** और **परस्मैपद** हो जायेंगे।

श्रिञ् सेवायाम्। श्रिञ् धातु **सेवा करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा हुई है, अतः **उभयपदी** हुआ। **श्रिञ्** धातु के एकाच् एवं अजन्त होते हुए भी **ऊद्ददन्तैः०** कारिका के मध्य आता है। अतः यह सेट् है।

श्रयति, श्रयते। श्रि से लट्-लकार, परस्मैपद में तिप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् कर के **श्रि+अ+ति** बना। श्रि में इकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण करके **श्रे+अ+ति** बना, अय् आदेश होकर **श्र्+अय्+अति** बना। वर्णसम्मेलन करके **श्रयति** बना। आत्मनेपद में **त** आता है और उसका **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होता है और शेष प्रक्रिया **श्रयति** के समान ही है। इसी तरह आत्मनेपद में त, शप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अयादेश, एत्व एवं वर्णसम्मेलन करके **श्रयते** बनता है।

परस्मैपद लट्-लकार के रूप- श्रयति, श्रयतः, श्रयन्ति। श्रयसि, श्रयथः, श्रयथ। श्रयामि, श्रयावः, श्रयामः। **आत्मनेपद में**- श्रयते, श्रयेते, श्रयन्ते। श्रयसे, श्रयेथे, श्रयध्वे। श्रये, श्रयावहे, श्रयामहे।

शिश्राय। श्रि धातु से लिट् लकार, परस्मैपद में तिप्, उसके स्थान पर णल्, अनुबन्धलोप, **श्रि+अ** बना। द्वित्व, हलादिशेष करके **शिश्रि+अ** बना। अब **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इकार के स्थान पर इयङ् प्राप्त था किन्तु णित् के परे होने पर उसे बाधकर **अचो ञ्णिति** से वृद्धि हुई, **शिश्रै+अ** बना, **एचोऽयवायावः** से आय् आदेश होकर **शिश्र्+आय्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **शिश्राय** सिद्ध हुआ। इसी तरह उत्तमपुरुष के एकवचन में **मिप्** के स्थान पर णल् आदेश होने के बाद **शिश्राय** ही बनेगा और णित्

न होने के पक्ष में गुण होकर **शिश्रय** बनेगा। शेष में इकार के स्थान पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होकर **शिश्र्+इय्=शिश्रिय्** बनेगा और आगे अजादि में मिलेगा। इस तरह रूप सिद्ध होंगे- शिश्राय, शिश्रियतुः, शिश्रियुः। शिश्रयिथ, शिश्रियथुः, शिश्रिय। शिश्राय-शिश्रय, शिश्रियिव, शिश्रियिम। **आत्मनेपद** में सभी जगह इयङ् ही होगा। इस तरह रूप बनते हैं- शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे। शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिढ्वे-शिश्रियिध्वे। शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे।

लुट् लकार में दोनों पदों में तासि, इट् का आगम, **श्रि** को गुण और अय् आदेश आदि होकर रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- श्रयिता, श्रयितारौ, श्रयितारः। श्रयितासि, श्रयितास्थः श्रयितास्थ। श्रयितास्मि, श्रयितास्वः, श्रयितास्मः। **आत्मनेपद में**- श्रयिता, श्रयितारौ, श्रयितारः। श्रयितासे, श्रयितासाथे, श्रयिताध्वे। श्रयिताहे, श्रयितास्वहे, श्रयितास्महे।

लृट् लकार में स्य, इट् का आगम, गुण, अय् आदेश, स्य के सकार को षत्व आदि हो जाते हैं और रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- श्रयिष्यति, श्रयिष्यतः, श्रयिष्यन्ति। श्रयिष्यसि, श्रयिष्यथः, श्रयिष्यथ। श्रयिष्यामि, श्रयिष्यावः, श्रयिष्यामः। **आत्मनेपद** में- श्रयिष्यते, श्रयिष्येते, श्रयिष्यन्ते। श्रयिष्यसे, श्रयिष्येथे, श्रयिष्यध्वे। श्रयिष्ये, श्रयिष्यावहे, श्रयिष्यामहे।

लोट् लकार में दोनों पदों में शप्, गुण और अय् आदेश होकर रूप बनते हैं- परस्मैपद में- श्रयतु-श्रयतात्, श्रयताम्, श्रयन्तु। श्रय-श्रयतात्, श्रयतम्, श्रयत। श्रयाणि, श्रयाव, श्रयाम। **आत्मनेपद** में- श्रयताम्, श्रयेताम्, श्रयन्ताम्। श्रयस्व, श्रयेथाम्, श्रयध्वम्। श्रयै, श्रयावहै, श्रयामहै।

लङ् लकार में दोनों पदों में अट् का आगम, शप्, गुण और अय् आदेश आदि होकर रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- अश्रयत्, अश्रयताम्, अश्रयन्। अश्रयः, अश्रयतम्, अश्रयत। अश्रयम्, अश्रयाव, अश्रयाम। **आत्मनेपद** में अश्रयत, अश्रयेताम्, अश्रयन्त। अश्रयथाः, अश्रयेथाम्, अश्रयध्वम्। अश्रये, अश्रयावहि, अश्रयामहि।

विधिलिङ् लकार के परस्मैपद में- शप्, यासुट् आगम, गुण, अयादेश आदि होकर रूप बनते हैं- श्रयेत्, श्रयेताम्, श्रयेयुः। श्रयेः, श्रयेतम्, श्रयेत। श्रयेयम्, श्रयेव, श्रयेम। **आत्मनेपद** में यासुट् न होकर सीयुट् होता है। इस तरह रूप बनते हैं- श्रयेत, श्रयेयाताम्, श्रयेरन्। श्रयेथाः श्रयेयाथाम्, श्रयेध्वम्। श्रयेय, श्रयेवहि, श्रयेमहि।

श्रीयात्। श्रि धातु के **आशीर्लिङ्** के **परस्मैपद** में यासुट् करने पर यकारादि प्रत्यय मिल जाता है, अतः **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होकर रूप बनते हैं- श्रीयात्, श्रीयास्ताम्, श्रीयासुः। श्रीयाः, श्रीयास्तम्, श्रीयास्त। श्रीयासम्, श्रीयास्व, श्रीयास्म। **आत्मनेपद** में सीयुट्, इट् आगम, त और थ को सुट् का आगम, षत्व, गुण, अयादेश आदि होकर रूप बनते हैं- श्रयिषीष्ट, श्रयिषीयास्ताम्, श्रयिषीरन्। श्रयिषीष्ठाः, श्रयिषीयास्थाम्, श्रयिषीढ्वम्-श्रयिषीध्वम्, श्रयिषीय, श्रयिषीवहि, श्रयिषीमहि।

आप उपर्युक्त रूपों की सिद्धि तभी कर सकेंगे जब भू धातु और एध धातु के रूप पूर्णतया कण्ठस्थ हों और उनकी प्रक्रिया भी उसी तरह याद हो। अन्यथा ये रूप आप कभी नहीं बना सकेंगे।

अशिश्रियत्। श्रि धातु से लुङ्-लकार, तिप्, अट् का आगम, **अ श्रि ति**, इकारलोप, **अश्रि त्**, च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त, उसे बाधकर के **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः**

रिङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५४३. रिङ् शयग्लिङ्क्षु ७।४।२८॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात्। रीङि च प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न। भ्रियात्।

....

कर्तरि चङ् से चङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **अश्रि+अत्** बना। **चङि** से श्रि को द्वित्व, **अश्रिश्रि+अत्**, अभ्याससंज्ञा और हलादिशेष होने पर श्रि में शि बचा, **अशिश्रि+अत्** बना। श्रि के इकार के स्थान पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होकर **अशिश्र्+इय्+अत्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ तो **अशिश्रियत्** सिद्ध हुआ। अब इसी तरह से **परस्मैपद** में रूप बनाइये- अशिश्रियत्, अशिश्रियताम्, अशिश्रियन्। अशिश्रियः, अशिश्रियतम्, अशिश्रियत। अशिश्रियम्, अशिश्रियाव, अशिश्रियाम। **आत्मनेपद** में भी लगभग यही प्रक्रिया करके रूप बनते हैं- अशिश्रियत, अशिश्रियेताम्, अशिश्रियन्त। अशिश्रियथाः, अशिश्रियेथाम्, अशिश्रियध्वम्। अशिश्रिये, अशिश्रियावहि, अशिश्रियामहि।

श्रि धातु के लृङ्-लकार में अट् आगम कर के रूप बनते हैं- परस्मैपद में- अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यताम्, अश्रयिष्यन्, अश्रयिष्यः, अश्रयिष्यतम्, अश्रयिष्यत, अश्रयिष्यम्, अश्रयिष्याव, अश्रयिष्याम। आत्मनेपद में- अश्रयिष्यत, अश्रयिष्येताम्, अश्रयिष्यन्त, अश्रयिष्यथाः, अश्रयिष्येथाम्, अश्रयिष्यध्वम्, अश्रयिष्ये, अश्रयिष्यावहि, अश्रयिष्यामहि।

श्रि धातु में **आ** उपसर्ग के लगने से **आश्रयति, आश्रयते** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके दोनों पदों के दसों लकारों में प्र, आ, सम्, आदि उपसर्ग लगाकर रूप बनाने चाहिए। एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि जब लङ् आदि लकारों में अट् आगम होता है तो उपसर्ग के बाद और धातु के पहले होगा। जैसे विना उपसर्ग के **अश्रयत्** बनता है, **प्र** उपसर्ग के लगाने के बाद **प्र+अश्रयत्=प्राश्रयत्** बनेगा, **अप्रश्रयत्** नहीं। यही बात सर्वत्र समझना चाहिए।

भृञ् भरणे। भृञ् धातु **भरण करना** अर्थात् **पालन करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **भृ** शेष रहता है। ञकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह उभयपदी है।

भरति, भरते। भृ से लट्, तिप्, शप्, ऋकार के स्थान पर अर्-गुण करके **भरति** सिद्ध होता है। आत्मनेपद में लट्, त, शप्, एत्व, गुण करके **भरते** बन जाता है।

बभार। लिट् में तिप्, णल्, द्वित्व, हलादिशेष करके **बभृ+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करके **बभार** बनता है। अतुस् आदि में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व करके गुण निषेध होने पर यण् होकर **बभ्रतुः, बभ्रुः** बनते हैं। थल् में **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि** से इट्-निषेध होता है।

लट्- परस्मैपद- भरति, भरतः, भरन्ति, भरसि, भरथः, भरथ, भरामि, भरावः, भरामः।

लट्- आत्मनेपद- भरते, भरेते, भरन्ते, भरसे, भरेथे, भरध्वे, भरे, भरावहे, भरामहे।

लिट्- उभयपद- बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः। बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे।

लुट्- उभयपद- भर्ता, भर्तारौ, भर्तारः, भर्तासि, भर्तास्थः। भर्तासे, भर्तासाथे, भर्ताध्वे।

लृट्- **(ऋद्धनोः स्ये)** भरिष्यति, भरिष्यते। **लोट्**- भरतु, भरताम्। **लङ्**- अभरत्, अभरत।

विधिलिङ्- भरेत्, भरेत।

किद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५४४. उश्च १।२।१२॥

ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि।

भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। अभार्षीत्।

....

५४३- **रिङ् शयग्लिङ्क्षु।** शश्च यक् च लिङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शयग्लिङः, तेषु शयग्लिङ्क्षु। रिङ् प्रथमान्तं, शयग्लिङ्क्षु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अयङ् यि क्ङिति** से **यि, अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **असार्वधातुके, रीङ् ऋतः** से **ऋतः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

श, यक् अथवा यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे हो तो ह्रस्व ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश होता है।

इस सूत्र में **रीङ् ऋतः** सूत्र से **रीङ्** की अनुवृत्ति आ सकती थी, पुनः इस सूत्र में **रिङ्** ग्रहण करने की क्या आवश्यकता थी? इसके उत्तर में कहा जाता है कि **रिङ्** की अनुवृत्ति न लाकर पुनः **रिङ्** ग्रहण सामर्थ्य से यकारादि प्रत्यय के परे रहते भी **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ नहीं होता अर्थात् यकारादि प्रत्यय के परे रहते भी ह्रस्व इकार को ही रखने के लिए **रीङ्** का विधान किया गया है।

भ्रियात्। भृ धातु से परस्मैपद के आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, तिप्, इकार का लोप, यासुट् करके **भृ+यास्+त्** बना। **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से भृ के ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश हुआ, **भ्+रि+यास्+त्** बना। **भ्+रि** में वर्णसम्मेलन होकर **भ्रि** बना। सकार का लोप करके **भ्रियात्** सिद्ध हुआ। **रिङ्** के विधान होने से यह तात्पर्य निकलता है कि रि के इकार को **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ नहीं होता है। अतः ह्रस्व इकार ही रह गया। रूप- भ्रियात्, भ्रियास्ताम्, भ्रियासुः, भ्रियाः, भ्रियास्तम्, भ्रियास्त, भ्रियासम्, भ्रियास्व, भ्रियास्म। आत्मनेपद के लिए अगला सूत्र लगता है।

५४४- **उश्च।** उः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको झल्** से वचनविपरिणाम करके **झलौ** की तथा **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से **आत्मनेपदेषु** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से वचनविपरिणाम करके **कितौ** की अनुवृत्ति आती है।

ऋवर्ण से परे आत्मनेपद सम्बन्धी झलादि लिङ् और सिच् कित् की तरह होते हैं।

यह अतिदेश सूत्र है। अकित् लिङ् और सिच् को कित् करता है। कित्व का फल गुण का निषेध है। स्मरण रहे कि यह सूत्र आत्मनेपद में ही लगता है।

भृषीष्ट। भृ धातु से आत्मनेपद के आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, त, सीयुट् आगम और सुट् का आगम करके **भृ+सीय्+स्+त** बना। **उश्च** से सकारादि लिङ् त कित् हो गया। कित् होने से **क्ङिति च** से **भृ** के ऋकार को गुण का निषेध हुआ। अब यकार का लोप, षत्व और ष्टुत्व करके **भृषीष्ट** सिद्ध होता है। भृषीष्ट, भृषीयास्ताम्, भृषीरन्, भृषीष्ठाः, भृषीयास्थाम्, भृषीढ्वम्, भृषीय, भृषीवहि, भृषीमहि।

अभार्षीत्। भृ से परस्मैपद लुङ्, ति, अट् का आगम, इकार का लोप, च्लि, सिच् आदेश करके **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् का आगम करने पर **अभृ+स्+ईत्** बना। **सिचि**

सिज्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

५४५. **ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७॥**

सिचो लोपो झलि। अभृत। अभृषाताम्। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। **हृञ् हरणे॥३॥** हरति, हरते। जहार। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जह्रे। जह्रिषे। हर्तासि, हर्तासे। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट। हृषीयास्ताम्। अहार्षीत्, अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत। **धृञ् धारणे॥४॥** धरति, धरते। **णीञ् प्रापणे॥५॥** नयति, नयते। **डुपचष् पाके॥६॥** पचति, पचते। पपाच। पेचिथ, पपक्थ। पेचे। पक्तासि, पक्तासे। **भज सेवायाम्॥७॥** भजति, भजते। बभाज, भेजे। भक्तासि, भक्तासे। भक्ष्यति, भक्ष्यते। अभाक्षीत्। अभक्त। अभक्षाताम्। **यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु॥८॥** यजति, यजते॥

....

वृद्धिः परस्मैपदेषु से भृ के ऋकार को वृद्धि होकर **अभार्+स्+ईत्** बना। सकार को षत्व और रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभार्षीत्।** आगे- अभार्ष्टाम्, अभार्षुः, अभार्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट, अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म।

५४५- **ह्रस्वादङ्गात्।** ह्रस्वात् पञ्चम्यन्तम्, अङ्गात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **रात्सस्य** से **सस्य, संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** और **झलो झलि** से **झलि** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सिच् का लोप होता है झल् परे होने पर।

अभृत। भृ से आत्मनेपद में लुङ्, त, अट् का आगम, च्लि, सिच् होकर **अभृ+स्+त** बना। **उश्च** से किद्वद्भाव होने के कारण गुण का निषेध हुआ। सकार का **ह्रस्वादङ्गात्** से लोप हुआ- **अभृत** बन गया। जहाँ झल् परे नहीं मिलता, वहाँ सकार का लोप नहीं होता है। **रूप**- अभृषाताम्, अभृषत, अभृथाः, अभृषाथाम्, अभृढ्वम्, अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि।

लृङ् परस्मैपद- अभरिष्यत्, अभरिष्यताम्, अभरिष्यन्, अभरिष्यः, अभरिष्यतम्, अभरिष्यत, अभरिष्यम्, अभरिष्याव, अभरिष्याम। **आत्मनेपद**- अभरिष्यत, अभरिष्येताम्, अभरिष्यन्त, अभरिष्यथाः, अभरिष्येथाम्, अभरिष्यध्वम्, अभरिष्ये, अभरिष्यावहि, अभरिष्यामहि।

हृञ् हरणे। हृञ् धातु **हरण करना** अर्थ में है। हरण के चार अर्थ हैं- **प्रापण**=ले जाना, **स्वीकार**=स्वीकार करना, **स्तेय**=चुराना और **नाशन**= नाश करना। **ञकार** की इत्संज्ञा होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी बन गया। लिट् लकार को छोड़कर अन्य लकारों में **भृ** धातु की तरह ही रूप बनते हैं। **भृ** में द्वित्व हलादिशेष होकर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होता है तो **हृ** में द्वित्व, हलादिशेष होकर **कुहोश्चु** से चुत्व।

लट्- हरति, हरते। **लिट्**- (**परस्मैपद**) जहार, जह्रतुः, जह्रुः, जहर्थ, जह्रथुः, जह्र, जहार-जहर, जह्रिव, जह्रिम। (**आत्मनेपद**) जह्रे, जह्राते, जह्रिरे, जह्रिषे, जह्राथे, जह्रिढ्वे-जह्रिध्वे, जह्रे, जह्रिवहे, जह्रिमहे। **लुट्**- हर्ता, हर्तासि, हर्तासे। **लृट्**- हरिष्यति, हरिष्यते। **लोट्**- हरतु, हरताम्। **लङ्**- अहरत्, अहरत। **विधिलिङ्**- हरेत्, हरेत। **आशीर्लिङ्**- ह्रियात्, ह्रियास्ताम्, ह्रियासुः। हृषीष्ट, हृषीयास्ताम्, हृषीयासुः इत्यादि। **लुङ्**- (**परस्मैपद**) अहार्षीत्, अहार्ष्टाम्,

अहार्षुः, अहार्षीः, अहार्ष्टम्, अहार्ष्ट, अहार्षम्, अहार्ष्व, अहार्ष्म। **(आत्मनेपद)** अहृत, अहृषाताम्, अहृषत, अहृथाः, अहृषाथाम्, अहृढ्वम्, अहृषि, अहृष्वहि, अहृष्महि। **लृङ्-** अहरिष्यत्, अहरिष्यत।

उपसर्ग को लेकर इसी धातु पर एक पद्य प्रसिद्ध है-

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।

प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।। अर्थात् उपसर्ग से धातु का अर्थ अन्य रूप में हो जाता है। जैसे- हृ धातु में पृथक्-पृथक् उपसर्ग से **प्र+हारः=प्रहार, आ+हारः=आहार** आदि बनते हैं। इसी तरह **प्रहरति, आहरति, संहरति, विहरति, परिहरति** आदि।

धृञ् धारणे। धृञ् धातु **धारण करना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी बन गया। सभी लकारों में **हृ** धातु की तरह ही रूप बनते हैं।

लट्- धरति, धरते। **लिट्-परस्मैपद-** दधार, दध्रतुः, दध्रुः, दधर्थ, दध्रथुः, दध्र, दधार-दधर, दध्रिव, दध्रिम। **(आत्मनेपद)** दध्रे, दध्राते, दध्रिरे, दध्रिषे, दध्राथे, दध्रिढ्वे-दध्रिध्वे, दध्रे, द्रधिवहे, दध्रिमहे। **लुट्-** धर्ता, धर्तासि, धर्तासे। **लृट्-** धरिष्यति, धरिष्यते। **लोट्-** धरतु, धरताम्। **लङ्-** अधरत्, अधरत। **विधिलिङ्-** धरेत्, धरेत। **आशीर्लिङ्-** ध्रियात्, ध्रियास्ताम्, ध्रियासुः। धृषीष्ट, धृषीयास्ताम्, धृषीरन् इत्यादि। **लुङ्-** (परस्मैपद) अधार्षीत्, अधार्ष्टाम्, अधार्षुः, अधार्षीः, अधार्ष्टम्, अधार्ष्ट, अधार्षम्, अधार्ष्व, अधार्ष्म। (आत्मनेपद) अधृत, अधृषाताम्, अधृषत, अधृथाः, अधृषाथाम्, अधृढ्वम्, अधृषि, अधृष्वहि, अधृष्महि। **लृङ्-** अधरिष्यत्, अधरिष्यत।

णीञ् प्रापणे। णीञ् धातु **ले जाना** अर्थ में है। **णो नः** से णकार के स्थान पर नकार आदेश होता है और ञकार इत्संज्ञक है। **नी** बचता है। यह भी अनिट् और उभयपदी है।

नयति। नी से लट्, तिप्, शप्, नी के ईकार को गुण और अय् आदेश करके **नयति** सिद्ध होता है। लिट् में **निनि+अ,** वृद्धि, आय् आदेश करके **निनाय।** अतुस् आदि अजादि विभक्ति के परे होने पर **नी+अतुस्** में **द्विर्वचनेऽचि** के नियम से पहले द्वित्व होकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से प्राप्त इयङ् आदेश को बाधकर **एरचेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होकर **निन्यतुः, निन्युः** आदि बनते हैं। यही प्रक्रिया आत्मनेपद में भी होती है।

लट्- नयति, नयते। **लिट्- (परस्मैपद)** निनाय, (यण् होकर) निन्यतुः, निन्युः, निनयिथ-निनेथ, निन्यथुः, निन्य, निनाय-निनय, निन्यिव, निन्यिम। **(आत्मनेपद)** यण् होकर निन्ये, निन्याते, निन्यिरे, निन्यिषे, निन्याथे, निन्यिढ्वे-निन्यिध्वे, निन्ये, निन्यिवहे, निन्यिमहे। **लुट्-** नेता, नेतासि, नेतासे। **लृट्-** नेष्यति, नेष्यते। **लोट्-** नयतु, नयताम्। **लङ्-** अनयत्, अनयत। **विधि लिङ्-** नयेत्, नयेताम्, नयेयुः। नयेत, नयेयाताम्, नयेरन्। **आशीर्लिङ्-** नीयात्, नीयास्ताम्, नीयासुः। नेषीष्ट, नेषीयास्ताम्, नेषीरन्। **लुङ्- (परस्मैपद)** अनैषीत्, अनैष्टाम्, अनैषुः, अनैषीः, अनैष्टम्, अनैष्ट, अनैषम्, अनैष्व, अनैष्म। **(आत्मनेपद)** अनेष्ट, अनेषाताम्, अनेषत। **लृङ्-** अनेष्यत्, अनेष्यत।

डुपचष् पाके। डुपचष् धातु **पकाना** अर्थ में है। **आदिर्ञिटुडवः** से **डु** की इत्संज्ञा होती है। षकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और स्वरित अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से। केवल **पच्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। **लिट्** में एत्वाभ्यासलोप,

अनिट् होने के कारण थल् में वैकल्पिक इट्, लुट् में तासि के तकार के परे रहते पच् के चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार आदेश होता है जिससे **पक्ता** रूप बनता है। **लृट्** में स्य के परे होने पर चकार को कुत्व और ककार से परे सकार को षत्व होने पर **क्** और **ष्** का संयोग होने पर **क्ष्** बनता है जिससे **पक्ष्यति** बनता है।

लट्- पचति, पचते। **लिट्- (परस्मैपद)** पपाच, पेचतुः, पेचुः, पेचिथ-पपक्थ, पेचथुः, पेच, पपाच-पपच, पेचिव, पेचिम। **(आत्मनेपद)** पेचे, पेचाते, पेचिरे, पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे, पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे। **लुट्**- पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः, पक्तासि, **आत्मनेपद** में पक्तासे, पक्तासाथे, पक्ताध्वे आदि। **लृट्**- पक्ष्यति, पक्ष्यतः, पक्ष्यन्ति एवं पक्ष्यते, पक्ष्येते, पक्ष्यन्ते आदि। **लोट्**- पचतु, पचताम्। **लङ्**- अपचत्, अपचत। **विधिलिङ्**- पचेत्, पचेताम्, पचेयुः। पचेत, पचेयाताम् पचेरन्। **आशीर्लिङ्**- पच्यात्, पच्यास्ताम्, पच्यासुः। पक्षीष्ट, पक्षीयास्ताम्, पक्षीरन्। धातु के अनिट् होने के कारण **लुङ्**- में भी इट् नहीं होता है। अतः जहाँ-जहाँ झल् परे मिलता है, वहाँ-वहाँ **झलो झलि** से सकार का लोप होता है। **(परस्मैपद)** अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः, अपाक्षीः, अपाक्तम्, अपाक्त, अपाक्षम्, अपाक्ष्व, अपाक्ष्म। **(आत्मनेपद)** अपक्त, अपक्षाताम्, अपक्षत, अपक्थाः, अपक्षाथाम्, अपग्ध्वम्, अपक्षि, अपक्ष्वहि, अपक्ष्महि। **लृङ्**- अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत।

भज सेवायाम्। भज धातु **सेवा करना, भजन करना, आश्रय लेना** अर्थ में है। स्वरित अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। केवल **भज्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। **लिट्** में **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व आदेश होने के कारण **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** प्राप्त नहीं था किन्तु **तॄफलभजत्रपश्च** से एत्वाभ्यासलोप हो जाता है। अनिट् होने के कारण थल् में वैकल्पिक इट्, **लुट्** में तासि के तकार के परे रहते भज् के जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार आदेश और गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार होता है जिससे **भक्ता** रूप बनता है। **लृट्** में **स्य** के परे होने पर जकार को कुत्व, उसे चर्त्व होकर ककार होता है और ककार से परे सकार को षत्व होने पर **क्** और **ष्** का संयोग होने पर **क्ष्** बनता है जिससे **भक्ष्यति** बनता है।

लट्- भजति, भजते। **लिट्- (परस्मैपद)** बभाज, भेभतुः, भेजुः, भेजिथ-बभक्थ, भेजथुः,भेज, बभाज-बभज, भेजिव, भेजिम। **(आत्मनेपद)** एत्वाभ्यास लोप होकर- भेजे, भेजाते, भेजिरे, भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे, भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे। **लुट्**- भक्ता, भक्तारौ, भक्तारः, भक्तासि, **आत्मनेपद** में भक्तासे, भक्तासाथे, भक्ताध्वे आदि। **लृट्**- भक्ष्यति, भक्ष्यतः, भक्ष्यन्ति एवं भक्ष्यते, भक्ष्येते, भक्ष्यन्ते आदि। **लोट्**- भजतु, भजताम्। **लङ्**- अभजत्, अभजत। **विधि लिङ्**- भजेत्, भजेताम्, भजेयुः। भजेत, भजेयाताम् भजेरन्। **आशीर्लिङ्**- भज्यात्, भज्यास्ताम्, भज्यासुः। भक्षीष्ट, भक्षीयास्ताम्, भक्षीरन्। **लुङ्**- (परस्मैपद) अभाक्षीत्, अभाक्ताम्, अभाक्षुः, अभाक्षीः, अभाक्तम्, अभाक्त, अभाक्षम्, अभाक्ष्व, अभाक्ष्म। (आत्मनेपद) अभक्त, अभक्षाताम्, अभक्षत, अभक्थाः, अभक्षाथाम्, अभग्ध्वम्, अभक्षि, अभक्ष्वहि, अभक्ष्महि। **लृङ्**- अभक्ष्यत्, अभक्ष्यत।

यज देवपूजा-सङ्गतिकरण-दानेषु। यज धातु **देवताओं की पूजा करना, संगति करना तथा दान देना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होती है, यज् बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। यह अनिट् है।

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

५४६. लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७।।

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि। इयाज।

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

५४७. वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५।।

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति।

ईजतुः। ईजुः। इयजिथ, इयष्ठ। ईजे। यष्टा।।

....

यजति। यज् से लट्, तिप्, शप्, वर्णसम्मेलन, **यजति**। आत्मनेपद में एत्व करके **यजते**।

५४६- **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्**। लिटि सप्तम्यन्तम्, अभ्यासस्य षष्ठ्यन्तम्, उभयेषां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **ष्यङः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है। अष्टाध्यायी के क्रम में पूर्वसूत्र **वचिस्वपियजादीनां किति** में वर्णित वच्यादि और **ग्रहिज्यावयिव्यधि-वष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** में वर्णित ग्रह्यादि, दो धातु-समूहों का ग्रहण यहाँ पर **उभयेषाम्** इस पद के द्वारा किया गया है।

लिट् के परे रहने पर वच् आदि धातुओं और ग्रह् आदि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

वच्यादिगण में वच्, स्वप्, यज्, वप्, वह्, वस्, वेञ्, व्येञ्, ह्वेञ्, वद् और श्वि ये ग्यारह धातुएँ हैं तो ग्रह्यादिगण में ग्रह्, ज्या, वय्, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् और भ्रस्ज् ये नौ धातुएँ हैं। स्मरण होगा ही कि सम्प्रसारण का तात्पर्य यण् के स्थान पर इक् का होना है। यज् धातु में यकार है, उसका सम्प्रसारण इकार होता है।

इयाज। यज् से लिट्, तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होकर, द्वित्व, हलादिशेष करके **ययज्+अ** बना है। **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास **य्+अ** में यकार को सम्प्रसारण होने पर **इ+अ** बना। **इ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इ** मात्र बना। आगे **यज्+अ** है। **यज्** में अकार को **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **इ+याज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इयाज** सिद्ध हुआ।

५४७- **वचिस्वपियजादीनां किति**। यज् आदिर्येषां ते यजादयः। वचिश्च स्वपिश्च यजादयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो वचिस्वपियजादयः, तेषां वचिस्वपियजादीनाम्। वचिस्वपियजादीनां षष्ठ्यन्तं, किति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ष्यङः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है।

कित् के परे होने पर वच्, स्वप् तथा यजादि धातुओं को सम्प्रसारण होता है।

असंयोगाल्लिट् कित् से तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्यों को कित् होता है। अतः वहीं पर ही यह सम्प्रसारण करेगा।

एक नियम है- **सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च कार्यं बलवत्** अर्थात् सम्प्रसारण और सम्प्रसारण के आश्रित कार्य पूर्वरूप आदि बलवान् होते हैं। इसके अनुसार सबसे पहले

कादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५४८. षढोः कः सि ८।२।४१॥

यक्ष्यति, यक्ष्यते। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट।

वह प्रापणे॥९॥ वहति, वहते। उवाह। ऊहतुः। ऊहुः। उवहिथ।

....

सम्प्रसारण होता है, तब द्वित्व आदि कार्य होते हैं। **इयाज** में पहले द्वित्व इसलिए हुआ कि **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** यह सूत्र अभ्यास को ही द्वित्व करता है और द्वित्व करने के बाद ही अभ्यास बनता है।

सम्प्रसारण करने वाले इन दो सूत्रों में तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्यत्र कित् के परे **वचिस्वपियजादीनां किति** यह सूत्र द्वित्व होने के पहले ही सम्प्रसारण करता है और लिट् के तिप्, सिप्, मिप् में **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** यह सूत्र द्वित्व होने के बाद अभ्यास को सम्प्रसारण करता है। इस अन्तर को समझना आवश्यक है।

ईजतुः। यज् से लिट्, तस्, उसके स्थान पर अतुस् आदेश करके **वचिस्वपियजादीनां किति** से **यज्** में यकार को सम्प्रसारणसंज्ञक इकार आदेश और उसके बाद वाले अकार के बीच पूर्वरूप होकर केवल इकार ही बना। इस तरह **यज्** धातु **इज्** में बदल गया। अब **इज्+अतुस्** में **इज्** को द्वित्व होकर हलादिशेष होने पर **इ+इज्+अतुस्** बना। **इ+इ** में सवर्णदीर्घ होकर **ईज्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ईजतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **ईजुः** भी बन जाता है।

इयजिथ, इयष्ठ। यज् जकारान्त अनुदात्तों की गणना में आता है। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से अनिट् है किन्तु थल् में **ऋतो भारद्वाजस्य** से भारद्वाज के मत में ऋदन्तभिन्न होने के कारण इट् हो जाता है, अन्यों के मत में नहीं होता। अतः विकल्प से इट् हो जायेगा। यहाँ पर सिप् सम्बन्धी थल् होने के कारण स्थानिवद्भावेन यह भी पित् है, अतः **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित् नहीं हुआ। इस लिए **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। इट् के परे रहने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है और इट् न होने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है, जिससे **इयजिथ** और **इयष्ठ** ये दो रूप सिद्ध हो गये।

आत्मनेपद में पित् न होने के कारण नवों प्रत्ययों में कित्त्व होता है। अतः **वचिस्वपियजादीनां किति** से सम्प्रसारण होकर **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप करके सवर्णदीर्घ करके **ईजे, ईजाते, ईजिरे** आदि रूप बनते हैं।

लुट् के दोनों पदों में यज्+ता में जकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां षः** से **षकार** आदेश होता है और षकार से परे तकार को ष्टुत्व करने पर **यष्टा** आदि रूप बनते हैं।

५४८- षढोः कः सि। षश्च ढ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः षढौ, तयोः षढोः। षढोः षष्ठ्यन्तं, कः प्रथमान्तं, सि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

सकार के परे होने पर षकार और ढकार के स्थान पर ककार आदेश होता है।

यक्ष्यति। लृट् के दोनों पदों में **यज्+स्य** में **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से **षकार** आदेश होकर **यष्+स्य** बनता है और **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर

धादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५४९. झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः।

ढकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५५०. ढो ढे लोपः ८।३।१३॥

....

ककार आदेश करके **यक्+स्य** बनता है। ककार से परे सकार को षत्व होकर **यक्+ष्य** बनता है। **क्+ष्** के संयोग से **क्ष्** होने के कारण **यक्ष्य** बन जाता है। आगे दोनों पदों के प्रत्यय तो हैं ही। इस तरह **यक्ष्यति** और **यक्ष्यते** आदि रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में यासुट् के कित् होने के कारण **वचिस्वपियजादीनां किति** से सम्प्रसारण होकर **इज्यात्** बनता है किन्तु आत्मनेपद में सीयुट् के कित् न होने के कारण सम्प्रसारण नहीं होता। अतः षत्व, कत्व, क्षत्व होकर **यक्षीष्ट** बनता है।

लुङ् के परस्मैपद में च्लि को सिच् होकर **अयज्+स्+ईत्** में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि करके जकार को षत्व, षकार को कत्व, सिच् के सकार को षत्व करके **अयाक्षीत्** सिद्ध होता है। आत्मनेपद में अपृक्त के अभाव में ईट् नहीं होता और वृद्धि भी नहीं होती किन्तु **अयज्+स्+त** में सिच् के सकार का **झलो झलि** से लोप होता है। जकार के स्थान पर षत्व और षकार के योग में तकार को ष्टुत्व होकर **अयष्ट** बनता है।

लट्- यजति, यजते। **लिट्-(परस्मैपद)** इयाज, ईजतुः, ईजुः, इयजिथ-इयष्ठ, ईजथुः, ईज, इयाज-इयज, ईजिव, ईजिम। **(आत्मनेपद)** ईजे, ईजाते, ईजिरे, ईजिषे, ईजाथे, ईजिध्वे, ईजे, ईजिवहे, ईजिमहे। **लुट्**- यष्टा, यष्टारौ, यष्टारः यष्टासि। यष्टासे। **लृट्**- यक्ष्यति, यक्ष्यते। **लोट्**- यजतु, यजताम्। **लङ्**- अयजत्, अयजत। **विधिलिङ्**- यजेत्, यजेत। **आशीर्लिङ्**- इज्यात्। यक्षीष्ट, यक्षीयास्ताम्, यक्षीरन्, यक्षीष्ठाः, यक्षीयास्थाम्, यक्षीध्वम्, यक्षीय, यक्षीवहि, यक्षीमहि। **लुङ् (परस्मैपद)** अयाक्षीत्, अयाष्टाम्, अयाक्षुः, अयाक्षीः, अयाष्टम्, अयाष्ट, अयाक्षम्, अयाक्ष्व, अयाक्ष्म। **(आत्मनेपद)** अयष्ट, अयक्षाताम्, अयक्षत, अयष्ठाः, अयक्षाथाम्, अयड्ढ्वम्, अयक्षि, अयक्ष्वहि, अयक्ष्महि। **लृङ्**- अयक्ष्यत्, अयक्ष्यत।

वह प्रापणे। वह धातु **प्रापण** अर्थात् **ले जाना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होती है। वह् शेष रहता है। लट्, तिप्, शप् करके **वहति, वहते** आदि रूप बनते हैं। यह यजादिसमूह में आता है अतः सम्प्रसारण के योग्य है।

उवाह। वह् से लिट्, तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष, अभ्यास को सम्प्रसारण करके उपधावृद्धि करने पर **इयाज** की तरह **उवाह** सिद्ध होता है। अतुस् आदि में भी **ईजतुः** आदि की तरह **ऊहतुः** आदि सिद्ध होते हैं। दोनों धातुओं में अन्तर यह है कि यज् में यकार को सम्प्रसारण होकर इकार होता है तो वह् में वकार को सम्प्रसारण होकर उकार होता है।

५४९- **झषस्तथोर्धोऽधः**। तश्च थ् च तथौ, तयोस्तथोः। न धाः अधाः, तस्मात् अधः। झषः पञ्चम्यन्तं, तथोः षष्ठ्यन्तं, धः प्रथमान्तम्, अधः पञ्चम्यन्तम्।

झष् प्रत्याहार वाले वर्णों से परे तकार और थकार के स्थान पर धकार आदेश होता है किन्तु धा धातु से परे न हो।

५५०- **ढो ढे लोपः**। ढः प्रथमान्तं, ढे सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

ओदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५५१. सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२॥

अनयोरवर्णस्य ओत्स्याड्ढलोपे। उवोढ। ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षाताम्। अवक्षत। अवोढाः। अवक्षाताम्। अवोढ्वम्। अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि।

इति भ्वादयः॥१२॥

....

ढकार के परे रहने पर पूर्व ढकार का लोप होता है।

५५१- सहिवहोरोदवर्णस्य। सहिश्च वह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सहिवहौ, तयोः सहिवहोः। सहिवहोः षष्ठ्यन्तम्, ओत् प्रथमान्तम्, अवर्णस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से उपयोगी अंश **ढलोपे** की अनुवृत्ति आती है।

ढकार का लोप हुआ हो तो सह् और वह् धातु के अकार के स्थान पर ओकार आदेश होता है।

उवहिथ, उवोढ। वह् धातु हकारान्त अनुदात्तों की गणना में आता है। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से अनिट् है किन्तु थल् में **ऋतो भारद्वाजस्य** से भारद्वाज के मत में ऋदन्तभिन्न होने के कारण इट् हो जाता है, अन्यों के मत में नहीं होता। अतः विकल्प से इट् हो जायेगा। यहाँ पर सिप् सम्बन्धी थल् होने के कारण स्थानिवद्भावेन यह भी पित् है, अतः **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित् नहीं हुआ। इसलिए **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। इट् के परे रहने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है और इट् न होने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है, जिससे **उवहिथ** और **उवोढ** ये दो रूप सिद्ध हो गये। इट् न होने के पक्ष में **उवह्+थ** है। **उवह्** के हकार के स्थान पर **हो ढः** से ढकार आदेश होकर उससे परे थकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश हुआ और **उवढ्+ध** बना। ढकार से धकार के स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व होकर **ढकार** हुआ, **उवढ्+ढ** बना। **ढो ढे लोपः** से ढकार के परे होने पर पूर्व ढकार का लोप हुआ, **उव+ढ** बना। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **उव** के अकार को दीर्घ प्राप्त था, उसे बाधकर के **सहिवहोरोदवर्णस्य** से अकार के स्थान पर ओकार आदेश होकर **उवोढ** सिद्ध हुआ। इट् होने के पक्ष में **उवहिथ** बनता है।

आत्मनेपद में अपित् होने के कारण किद्वद्भाव होकर सम्प्रसारण करने पर **ईजे** की तरह **ऊहे, ऊहाते, ऊहिरे** बनते हैं।

लुट् के दोनों पदों में हकार के स्थान पर **हो ढः** से ढकार आदेश होता है। **झषस्तथोर्धोऽधः** से तास् के तकार के स्थान पर धकार आदेश होकर **वढ्+धा** बनता है। ढकार से परे धकार के स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व होकर **ढकार** होकर **वढ्+ढा** बनता है। **ढो ढे लोपः** से ढकार के परे होने पर पूर्व ढकार का लोप, **व+ढा** में **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **उव** के अकार को दीर्घ प्राप्त, उसे बाधकर **सहिवहोरोदवर्णस्य** से अकार के स्थान पर ओकार आदेश होकर **वोढा, वोढारौ, वोढारः, वोढासि, वोढासे** आदि रूप बनते हैं।

वक्ष्यति। लृट् के दोनों पदों में **वह्+स्य** में **हो ढः** से **ढकार** आदेश होकर **वढ्+स्य** बनता है और **षढोः कः सि** से ढकार के स्थान पर ककार आदेश करके **वक्+स्य** बनता है। ककार से परे सकार को षत्व होकर **वक्+ष्य** बनता है। **क्+ष्** के संयोग में **क्ष्** होने के कारण **वक्ष्य** बन जाता है। आगे दोनों पदों के प्रत्यय तो हैं ही। इस तरह **वक्ष्यति** और **वक्ष्यते** ये रूप बनते हैं। विधिलिङ् में कोई विशेष नहीं है। रूप- **वहेत्, वहेत** आदि बनते हैं।

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में यासुट् के कित् होने के कारण **वचिस्वपियजादीनां किति** से सम्प्रसारण होकर **उह्यात्** बनता है किन्तु आत्मनेपद में सीयुट् के कित् न होने के कारण सम्प्रसारण नहीं होता। अतः षत्व, कत्व, क्षत्व होकर **वक्षीष्ट** बनता है।

लुङ् के परस्मैपद में च्लि को सिच् होकर **अयज्+स्+ईत्** में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि करके जकार को षत्व, षकार को कत्व, सिच् के सकार को षत्व करके **अवाक्षीत्** सिद्ध होता है। तस्, थस्, थ के परे रहने पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश, **हो ढः** से ढकार आदेश, एक ढकार का लोप, **सहिवहोरोदवर्णस्य** से ओकार आदेश होकर क्रमशः **अवोढाम्, अवोढम्, अवोढ** बनते हैं। शेष में **हो ढः** से ढकार होने के बाद **षढोः कः सि** से ककार आदेश होकर षत्व, क्षत्व आदि होते हैं। आत्मनेपद में अपृक्त के अभाव में ईट् नहीं होता और वृद्धि भी नही होती किन्तु **अवढ्+स्+त** में सिच् के सकार का **झलो झलि** से लोप होता है। तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धत्व और धकार को ष्टुत्व होकर ढकार हो जाने के बाद पूर्व ढकार का लोप करके **सहिवहोरोदवर्णस्य** से ओकार आदेश करने पर **अवोढ** बनता है। तकार और थकार के स्थान पर धकार आदेश होने के कारण **अवोढाः, अवोढ्वम्,** बनते हैं।

लट्- वहति, वहते। **लिट्-(परस्मैपद)** उवाह, ऊहतुः, ऊहुः, उवहिथ-उवोढ, ऊहथुः, ऊह, उवाह-उवह, ऊहिव, ऊहिम। **(आत्मनेपद)** ऊहे, ऊहाते, ऊहिरे, ऊहिषे, ऊहाथे, ऊहिढ्वे-ऊहिध्वे, ऊहे, ऊहिवहे, ऊहिमहे। **लुट्**- वोढा, वोढासि, वोढासे। **लृट्**- वक्ष्यति, वक्ष्यते। **लोट्**- वहतु, वहताम्। **लङ्**- अवहत्, अवहत। **विधिलिङ्**- वहेत्, वहेत। **आशीर्लिङ्**- उह्यात्, उह्यास्ताम्, उह्यासुः। वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन्, वक्षीष्ठाः, वक्षीयास्थाम्, वक्षीध्वम्, वक्षीय, वक्षीवहि, वक्षीमहि। **लुङ्** (परस्मैपद) अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः, अवाक्षीः, अवोढम्, अवोढ, अवाक्षम्, अवाक्ष्व, अवाक्ष्म। (आत्मनेपद) अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत, अवोढाः, अवक्षाथाम्, अवोढ्वम्, अवक्षि, अवक्ष्वहि, अवक्ष्महि। **लृङ्**- अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

अभ्यास

अब आप भ्वादिप्रकरण का आद्योपान्त अध्ययन करें और अच्छी तरह समझने के बाद ही अगले प्रकरण में प्रवेश करें। इस प्रकरण में जितने धातु बताये गये हैं, उनके रूप विना पुस्तक देखे अपनी पुस्तिका में उतारें और उसके बाद अपने गुरु जी को दिखायें या इस पुस्तक से मिलायें। आप यदि सारे रूप जान चुके हैं और लिख सकते हैं एवं प्रयोग भी कर सकते हैं तो तभी अदादिप्रकरण में प्रवेश करें। अन्यथा आगे बढ़ना व्यर्थ है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
तिङन्त-भ्वादि प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ-अदादयः

अद भक्षणे॥१॥

शपो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

५५२. अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२॥

लुक् स्यात्।

अत्ति। अत्तः। अदन्ति। अत्सि। अत्थः। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तिङन्तप्रकरण का दूसरा **अदादिप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण में अद् धातु पहला है, इसलिए इसे **अदादिप्रकरण** कहते हैं। अदादिगण की विशेषता यह है कि जैसे भ्वादिगण में धातु और तिप् आदि के बीच में शप् होता है, वैसे इस प्रकरण में शप् प्रत्यय होने के बाद उसका लुक्(लोप) होता है। भ्वादिगणीय धातुओं को शप्-विकरण धातु कहते हैं तो इस प्रकरण के धातुओं को शब्लुग्विकरण धातु कहते हैं।

अद भक्षणे। अद धातु **भक्षण** अर्थात् **खाना** अर्थ में है। **अत्ति**= खाता है। अद में अन्त अकार उदात्त स्वर वाला है और उसकी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर अद् बचता है। आत्मनेपद के लिए कोई निमित्त न होने के कारण परस्मैपदी है।

५५२- अदिप्रभृतिभ्यः शपः। अदिः प्रभृतिः(आदिः) येषां ते अदिप्रभृतयः, तेभ्यः अदिप्रभृतिभ्यः। अदिप्रभृतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, शपः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

अदादिगण में पठित धातुओं से किये गये शप् का लुक् होता है।

लुक् भी लोप ही है। अन्तर इतना है कि लोप होने पर स्थानिवद्भाव या **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** आदि से शप् आदि मानकर अनेक कार्य हो सकते हैं किन्तु लुक् करने पर **न लुमताङ्गस्य** से निषेध होने से प्रत्ययलक्षण नहीं होता।

अत्ति। अद धातु में अकार के लोप होने के बाद **अद्** बचा, उससे लट्-लकार तिप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ति की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा, **कर्तरि शप्** से शप्, शप् का **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** से लुक्, **अद्+ति** में दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार आदेश हुआ, **अत्+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अत्ति** बना। इसी प्रकार तस् में सकार को रुत्वविसर्ग करके **अत्तः** भी बनेगा। बहुवचन में झ् के स्थान पर अन्त् आदेश करके

घस्लृ-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

५५३. लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४०॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि। जघास। उपधालोपः।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५५४. शासिवसिघसीनां च ८।३।६०॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात्। घस्य चर्त्वम्।

जक्षतुः। जक्षुः। जघसिथ। जक्षथुः। जक्ष। जघास, जघस। जक्षिव। जक्षिम। आद। आदतुः। आदुः।

....

अद्+**अन्त्**+**इ**=**अदन्ति** बन जाता है। सिप्, थस्, थ में अद् के दकारं को **खरि च** से चर्त्व होगा। मिप्, वस्, मस् में खर् परे न मिलने के कारण चर्त्व नहीं होगा। इस प्रकार से अद् धातु के लट्-लकार में रूप बनते हैं- अत्ति, अत्तः, अदन्ति। अत्सि, अत्थः अत्थ। अद्मि, अद्वः, अद्मः।

५५३- लिट्यन्यतरस्याम्। लिटि सप्तम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति** से **अदः** की तथा **लुङ्सनोर्घस्लृ** से **घस्लृ** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् लकार के परे होने पर अद् धातु के स्थान पर विकल्प से घस्लृ आदेश होता है।

घस्लृ में लृकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होने पर घस् बचता है।

जघास। अद् धातु से लिट्-लकार, तिप् आदेश, उसके स्थान पर णल् आदेश, अनुबन्धलोप, **अद्**+**अ** बना। **लिट्यन्यतरस्याम्** से घस्लृ आदेश हुआ, **घस्**+**अ** बना। घस् को **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **घस्घस्**+**अ** बना, हलादिशेष हुआ, **घघस्**+**अ** बना। **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर अभ्यास के घकार के स्थान पर झकार और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जकार हो गया, **जघस्**+**अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधासंज्ञक घकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि, **जघास्**+**अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **जघास।**

५५४- शासिवसिघसीनां च। शासिश्च वसिश्च घसिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शासिवसिघसयः, तेषां शासिवसिघसीनाम्। शासिवसिघसीनां षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इण्कोः** का अधिकार है और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है।

इण् और कवर्ग से परे शास्, वस् और घस् धातु के सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है।

आदेश या प्रत्यय का अवयव सकार न होने के कारण **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व प्राप्त नहीं हो रहा था तो इस सूत्र को बनाया गया।

जक्षतुः। अद् धातु से लिट्, तस्, अतुस्, घस्लृ आदेश, उसको द्वित्व, हलादिशेष, चुत्व और चर्त्व होकर **जघस्**+**अतुस्** बना। **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधाभूत घकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, **जघ्स्**+**अतुस्** बना, सकार के स्थान पर **शासिवसिघसीनां च** से षत्व हुआ, **जघ्ष्**+**अतुस्** बना। षकार के परे होने पर घकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर ककार आदेश हुआ, **जक्ष्**+**अतुस्** बना। क् और ष् का संयोग होने पर क्ष् बनता है, अतः

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५५५. इडत्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६॥

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्।

आदिथ। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु। अत्तात्। अत्ताम्। अदन्तु।

हेर्धिर्विधायकं विधिसूत्रम्

५५६. हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्।

अद्धि-अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव। अदाम।

....

क्+ष्=क्ष् हो गया, **जक्ष्+अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **जक्षतुस्** बना, सकार को रुत्वविसर्ग हुआ तो **जक्षतुः** सिद्ध हुआ। **असंयोगाल्लिट् कित्** से तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर शेष प्रत्ययों को किद्वद्भाव हुआ। अतः तिप्, सिप्, मिप् के अतिरिक्त अन्य प्रत्ययों के परे होने पर **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधा के लोप होने पर **जक्ष्** बनाकर आगे वर्णसम्मेलन करें। इस तरह अद् धातु के घस्लृ आदेश होने के पक्ष में निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं- जघास, जक्षतुः, जक्षुः। जघसिथ, जक्षथुः, जक्ष। जघास-जघस, जक्षिव, जक्षिम।

लिट् में **घस्लृ** आदेश वैकल्पिक है। आदेश न होने के पक्ष में अद् को द्वित्व, हलादिशेष होने पर **अअद्** बना। **अत आदेः** से दीर्घ और **आ+अद्** में सवर्णदीर्घ करके **आद्** बन जाता है और आगे वर्णसम्मेलन होने पर निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं- **आद, आदतुः, आदुः।**

५५५- इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्। अत्तिश्च अर्तिश्च व्ययतिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अत्त्यर्तिव्ययतयः, तेषाम् अत्त्यर्तिव्ययतीनाम्। इट् प्रथमान्तम्, अत्त्यर्तिव्ययतीनां षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से विभक्ति का विपरिणाम करके **थलः** का तथा **नित्यम्** का अनुवर्तन होता है।

अद्, ऋ और व्येञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य से इट् आगम होता है।

अद् धातु के थल् में **भारद्वाजनियम** से प्राप्त वैकल्पिक इट् आगम को बाधकर इस सूत्र से नित्य से विधान होता है जिससे **आदिथ** यह एक मात्र रूप बनता है।

आदिथ, आदथुः, आद। आद, आदिव, आदिम।

यह धातु थल् में तो सेट् होता है किन्तु तासि आदि प्रत्यय के परे होने पर इट् का अभाव अर्थात् नेट् होता है। अतः लुट्-लकार में अद् से तिप्, तासि, डा आदेश करके **अद्+ता** बना। दकार को चर्त्व होकर **अत्+ता** बना, वर्णसम्मेलन होकर **अत्ता** बन जाता है। इस तरह लुट्-लकार में रूप बने- अत्ता, अत्तारौ, अत्तारः। अत्तासि, अत्तास्थः, अत्तास्थ। अत्तास्मि, अत्तास्वः, अत्तास्मः।

लृट्-लकार में **अद्+स्य+ति**, इट् का अभाव, दकार को चर्त्व करके बनाइये- अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति। अत्स्यसि, अत्स्यथः, अत्स्यथ। अत्स्यामि, अत्स्यावः, अत्स्यामः।

लोट्-लकार में अत्ति के बाद **एरुः** से उत्त्व और एक पक्ष में

अडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५५७. अदः सर्वेषाम् ७।३।१००॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात् सर्वमतेन।

आदत्। आत्ताम्, आदन्। आदः। आत्तम्। आत्त। आदम्। आद्व। आद्म।

अद्यात्। अद्याताम्, अद्युः। अद्यात्। अद्यास्ताम्। अद्यासुः।

....

तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् से तातङ् आदेश करने पर भ्वादि की तरह दो रूप बनते हैं- **अत्तु-अत्तात्।** तस् में **अत्ताम्** और झि में **अदन्तु** बनते हैं।

५५६- हुझल्भ्यो हेर्धिः। हुश्च झलश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो हुझलः, तेभ्यो हुझल्भ्यः। हुझल्भ्यः पञ्चम्यन्तं, हेः षष्ठ्यन्तं, धिः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

हु और झलन्त धातुओं से परे हि के स्थान पर धि आदेश होता है।

अद् धातु झलन्त है।

अद्धि। अद् से लोट्, सिप्, शप्, उसका लुक्, **सेर्ह्यपिच्च** से सि के स्थान पर हि आदेश, **अद्+हि** बना। हि के स्थान पर **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से धि आदेश करके **अद्धि** सिद्ध हुआ। थस् और थ में **अत्तम्, अत्त** बनते हैं। मिप्, वस्, मस् में **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम होकर **अद्+आमि**, वर्णसम्मेलन-**अदामि।** वस् और मस् में आडागम, सकार का लोप करके **अद्+आव, अद्+आम,** वर्णसम्मेलन करके **अदाव, अदाम।** सिद्ध होते हैं।

अद् धातु के लोट् लकार के रूप- अत्तु-अत्तात्, अत्ताम्, अदन्तु, अद्धि-अत्तात्, अत्तम्, अत्त, अदानि, अदाव, अदाम।

५५७- अदः सर्वेषाम्। अदः षष्ठ्यन्तं, सर्वेषाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से **अपृक्ते** की षष्ठी विभक्ति में बदलकर, **तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** को षष्ठी में बदलकर **सार्वधातुकस्य** और **अड् गार्ग्यगालवयोः** से **अट्** की अनुवृत्ति आती है।

अद् धातु से परे अपृक्तसंज्ञक सार्वधातुक प्रत्यय को अट् आगम होता है, सभी आचार्यों के मत में।

अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र से पहले **गालव** और **गार्ग्य** ऋषि के मतों का प्रसंग चल रहा था, जिसके कारण विकल्प से हो रहा था। उस विकल्प को रोकने के लिए सूत्रकार ने यहाँ **सर्वेषाम्** यह पद देकर सभी आचार्यों के मत में अट् होता है, किसी एक आचार्य के मत में नहीं। अतः विकल्प से नहीं होगा, यह बताया है। केवल ङित् लकार सम्बन्धी **तिप्** और **सिप्** में ही इकार का **इतश्च** से लोप होने के कारण अपृक्त मिलता है। अतः यह सूत्र ङित् लकार में तिप् और सिप् का मात्र विषय है। अट् आगम टित् होने के कारण तिप् के त् और सिप् के स् के पहले रहेगा।

आदत्। अद् से लङ् लकार, तिप्, अनुबन्धलोप, **आडजादीनाम्** से धातु को आट् आगम, शप्, उसका लुक्, ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **आ+अद्+त् बना।** त् की अपृक्तसंज्ञा करके **अदः सर्वेषाम्** से उसको अट् आगम किया तो **आ+अद्+अत्** बना। **आ+अद्** में **आटश्च** से वृद्धि करके वर्णसम्मेलन करने पर **आदत्** सिद्ध हुआ। सिप् में **आदः** बनता है। अन्यत्र अट् आगम नहीं होता है।

घस्लृ-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

५५८. लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च। लृदित्वादङ्। अघसत्। आत्स्यत्।

हन हिंसागत्योः॥२॥ हन्ति।

....

इस प्रकार से अद् धातु के लङ् लकार में निम्नानुसार रूप बनते हैं- आदत्, आत्ताम्, आदन्। आदः, आत्तम्, आत्त। आदम्, आद्व, आद्म।

अद्यात् अद्याताम्। अद् धातु से विधिलिङ्, तिप्, इकार का लोप, शप्, उसका लुक्, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम, अनुबन्धलोप, **अद्+यास्+त्** बना। सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ- **अद्यात्।** इसी प्रकार **अद्याताम्** भी बनेगा। **अद्+तस्,** शप्, लुक्, यासुट्, तामादेश, सलोप, वर्णसम्मेलन- **अद्याताम्** बना।

अद्युः। अद् धातु से विधिलिङ्, झि, अन्त् आदेश को बाधकर **झेर्जुस्** से जुस् आदेश, अनुबन्ध लोप, शप्, उसका लुक्, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम, अनुबन्धलोप, **अद्+यास्+उस्** बना। यास् के सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप हुआ, **अद्+या+उस्** बना। **या+उस्** में **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर युस् बना, **अद्+युस्** में वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **अद्युः।**

अद् धातु के विधिलिङ् के रूप- अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः। अद्याः, अद्यातम्, अद्यात। अद्याम्, अद्याव, अद्याम।

आशीर्लिङ् में अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः। अद्याः, अद्यास्तम्, अद्यास्त। अद्यासम्, अद्यास्व, अद्यास्म।

५५८- लुङ्सनोर्घस्लृ। लुङ् च सञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लुङ्सनौ, तयोर्लुङ्सनोः। लुङ्सनोः सप्तम्यन्तं, घस्लृ लुप्तप्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति** से **अदः** की अनुवृत्ति आती है।

लुङ् लकार और सन् के परे होने पर अद् धातु के स्थान पर घस्लृ आदेश होता है।

घस्लृ में लृ की इत्संज्ञा होती है, **घस्** शेष रहता है।

अघसत्। अद् से लुङ्, अट् आगम, तिप्, अद् के स्थान पर **लुङ्सनोर्घस्लृ** से घस्लृ आदेश, अनुबन्धलोप, शप् प्राप्त, उसके स्थान पर च्लि, च्लि के स्थान पर **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **अघस्+अत्,** वर्णसम्मेलन **अघसत्।**

अद् के लुङ्-लकार के रूप- **अघसत्, अघसताम्, अघसन्। अघसः, अघसतम्, अघसत। अघसम्, अघसाव, अघसाम।**

अद् के लृङ् में आट् आगम, स्य आदि करने पर रूप बनते हैं- **आत्स्यत्, आत्स्यताम्, आत्स्यन्। आत्स्यः, आत्स्यतम्, आत्स्यत। आत्स्यम्, आत्स्याव, आत्स्याम।**

हन हिंसागत्योः। हन धातु **हिंसा करना** और **गति** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है और **हन्** शेष रहता है।

अनुनासिकलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५५९. अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७।।

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे। **यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः। तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादयः।** हतः। घ्नन्ति। हंसि। हथः। हथ। हन्मि। हन्वः। हन्मः। जघान। जघ्नतुः। जघ्नुः।

....

हन्ति। हन् से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **हन्+ति** है। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण करके पुनः नकार ही हो जाता है, **हन्ति**।

५५९- अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति। अनुदात्तः उपदेशे येषां ते अनुदात्तोपदेशाः। तनोतिर् आदिर्येषां ते तनोत्यादयः, बहुव्रीहिः। अनुदात्तोपदेशाश्च वनतिश्च तनोत्यादयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादयः, तेषाम् अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम्। क् च ङ् च क्ङौ, तौ इतौ यस्य तत् क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनां षष्ठ्यन्तम्, अनुनासिक इति लुप्तषष्ठीकं पदं, लोपः प्रथमान्तं, झलि सप्तम्यन्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

वन् धातु, अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु और अनुनासिकान्त तन् आदि धातुओं के अनुनासिक का लोप होता है झलादि कित् ङित् के परे होने पर।

अनुदात्त धातुओं की गणना भ्वादिप्रकरण में हो चुकी है। उनमें अनुनासिक वर्ण अन्त वाली अनुदात्त ये धातुएँ हैं- **यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्**। तनोत्यादि धातु हैं- **तनु, क्षिणु, क्षणु, ऋणु, तृणु घृणु, वनु, मनु**। यदि इन धातुओं से झलादि कित् ङित् परे हो तो धातु में विद्यमान अनुनासिक वर्ण का लोप हो जाता है।

हतः। हन् से तस्, शप्, उसका लुक् करके **हन्+तस्** है। तस् अपित् सार्वधातुक होने के कारण उसे **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हुआ है, तस् का तकार झल् में आता है और हन् धातु अनुनासिक अनुदात्तोपदेश है। अतः हन् के नकार का **अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से लोप हो गया, **ह+तस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग होकर **हतः** सिद्ध हुआ।

घ्नन्ति। हन्+अन्ति में झलादि न होने के कारण अनुनासिक का लोप नहीं हुआ किन्तु **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधाभूत हन् के अकार का लोप हुआ, **ह्+न्+अन्ति** बना। नकार के परे होने पर **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से हकार को घकार आदेश होकर **घ्+न्+अन्ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **घ्नन्ति** सिद्ध हुआ। इस तरह से **लट्** के रूप बने- हन्ति, हतः, घ्नन्ति, हंसि, हथः, हथ, हन्मि, हन्वः, हन्मः।

जघान। हन् से लिट्, तिप्, णल् आदेश करके **हन्+अ** बना है। द्वित्व, हलादि शेष करके **ह+हन्+अ** बना। **कुहोश्चुः** से हकार को कुत्व होकर झकार और उसके स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जकार होकर **जहन्+अ** बना। णित् परे मानकर **हो**

कुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५६०. अभ्यासाच्च ७।३।५५।।

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्।

जघनिथ, जघन्थ। जघ्नथुः। जघ्न। जघान, जघन। जघ्निव। जघ्निम। हन्ता। हनिष्यति। हन्तु, हतात्। हताम्। घ्नन्तु।

जादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५६१. हन्तेर्जः ६।४।३६।।

हौ परे।

अतिदेशविधायकमधिकारसूत्रम्

५६२. असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२।।

इत ऊर्ध्वम् आपादसमाप्तेराभीयम्, समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तदसिद्धम्। इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि, हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव। हनाम। अहन्। अहताम्। अघ्नन्। अहन्। अहतम्। अहत। अहनम्। अहन्व। अहन्म। हन्यात्। हन्याताम्। हन्युः।

....

हन्तेर्ञ्णिन्नेषु से कुत्व होकर घकार हुआ, **जघन्+अ** बना। **अत उपधाया** से वृद्धि होकर **जघान** सिद्ध हुआ। आगे **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होने के कारण **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधालोप होने पर कुत्व होकर **जघ्नतुः, जघ्नुः** आदि रूप बनते हैं।

५६०- **अभ्यासाच्च।** अभ्यासात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से **हः** और **चजोः कु घिण्यतोः** से **कु** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास से परे भी हन् धातु के हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ञित्, णित् प्रत्यय और नकार के परे ही कुत्व करता है। जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ अभ्यास से परे हन् के हकार को कुत्व का विधान इस सूत्र के द्वारा किया गया है।

जघनिथ, जघन्थ। हन् धातु के अनिट् होने पर भी **थल्** में भारद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। इट् और अनिट् दोनों पक्ष में **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से कुत्व की प्राप्ति नहीं थी। अतः **अभ्यासाच्च** से हकार को कुत्व होकर **जघनिथ, जघन्थ** ये दो रूप बने। शेष रूप सरल ही हैं। **लिट्-** जघान, जघ्नतुः, जघ्नु,:, जघनिथ-जघन्थ, जघ्नथुः, जघ्न, जघान-जघन, जघ्निव, जघ्निम।

लुट्- हन्ता, हन्तारौ, हन्तारः, हन्तासि, हन्तास्थः, हन्तास्थ, हन्तास्मि, हन्तास्वः, हन्तास्मः। **लृट् में- ऋद्धनोः स्ये** से इट् का आगम होता है। हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति, हनिष्यसि, हनिष्यथः, हनिष्यथ, हनिष्यामि, हनिष्यावः, हनिष्यामः।

हन्तु, हतात्। लोट् में **हन्ति** बनाकर **एरुः** से उत्व करके **हन्तु** बनता है किन्तु **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से तातङ् होने के पक्ष में **हन्+तात्** है। नकार का **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से लोप होकर **हतात्** भी बनता है। आगे **हताम्, घ्नन्तु** सरल ही हैं।

५६१- हन्तेर्जः। हन्तेः षष्ठ्यन्तं, जः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **शा हौ** से **हौ** की अनुवृत्ति आती है।

हि के परे होने पर हन् के स्थान पर ज आदेश होता है।

ज के अनेकाल होने के कारण हन् सम्पूर्ण के स्थान पर सर्वादेश होता है।

५६२- असिद्धवदत्राभात्। असिद्धवत् अव्ययपदम्, अत्र अव्ययपदम्, आ अव्ययपदं, भात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

किसी आश्रय को लेकर किया गया आभीय कार्य पुनः दूसरे आभीय के प्रति असिद्ध होता है।

भस्य ६।४।१२९॥ इस सूत्र का अधिकार चतुर्थपाद की समाप्ति पर्यन्त है। **असिद्धवदत्राभात्** से जहाँ तक भसंज्ञा का अधिकार है उन सूत्रों के कार्य को **आभीय** कहते हैं। **भम् अभिव्याप्य आभीयम्। आभीये कर्तव्ये आभीयम् असिद्धम्।** समान है आश्रय जिसका अर्थात् जिन कार्यों का निमित्त समान हो, उन्हें समानाश्रय कहते हैं। समान आश्रय में यदि दूसरा आभीय कार्य करना हो तो पहला आभीय कार्य असिद्ध होता है। **जहि** इस प्रयोग में दो सूत्र आभीय के अन्तर्गत आते हैं- **हन्तेर्जः ६.४.३६** और **अतो हेः ६.४.१०५।** पहले प्रवृत्त होने वाला सूत्र **हन्तेर्जः** है और उत्तर सूत्र **अतो हेः** है। यहाँ पर **अतो हेः** से हि के लुक् की कर्तव्यता में **हन्तेर्जः** का कार्य असिद्ध होता है। इसीलिए हि का लुक् नहीं हो पाता है। अन्यथा ज को अदन्त मान कर हि का लुक हो जाता और **जहि** के स्थान पर **ज** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता क्योंकि **ज** आदेश और **हि** के लुक् समानाश्रय आभीय कार्य हैं। **ज** आदेश का आश्रय निमित्त(प्रकृति) हन् धातु और प्रत्यय दोनों ही हैं एवं हि-लोप का आश्रय-निमित्त भी प्रकृति-अदन्त अङ्ग **ज**(हन्) और प्रत्यय दोनों ही हैं। अतः दोनों समानाश्रय आभीय कार्य होने से, पहले किया हुआ आभीय **ज** आदेश बाद में प्राप्त आभीय हिलोप करते समय असिद्ध(के समान) हो जाता है। असिद्ध होने से हि-लोप के प्रति हन् ही दीखता है। अतः **अतो हेः** से लोप नहीं होता।

जहि, हतात्। हन् धातु से लोट्, मध्यमपुरुष का एकवचन सिप्, शप्, उसका लुक्, सि के स्थान पर हि आदेश, **हन्तेर्जः** से हन् धातु के स्थान पर ज आदेश होने पर **ज+हि** बना। **असिद्धवदत्राभात्** से पूर्वशास्त्र **हन्तेर्जः** के असिद्ध होने के कारण **अतो हेः** से हि का लुक् नहीं हुआ। **जहि** ही रह गया। तातङ् आदेश होने के पक्ष में हि के अभाव में ज आदेश भी नहीं होता है किन्तु तातङ् के ङित् होने के कारण **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से अनुनासिक नकार का लोप होने पर **हतात्** यह सिद्ध हो जाता है। आगे **हतम्, हत, हनानि** भी सरल ही हैं। **हनाव** और **हनाम** में आट् आगम होने के कारण **हन्+आव** और **हन्+आम** है। झलादि न मिलने के कारण अनुनासिकलोप नहीं हुआ। इस तरह से लोट् में रूप बने- **हन्तु-हतात्, हताम्, घ्नन्तु, जहि-हतात्, हतम्, हत, हनानि, हनाव, हनाम।**

अहन्। लङ् में अट् आगम, तिप्, शप्, उसका लुक् करने के बाद **अहन्+त्** है। तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अहन्** बना।

अहताम्। तस् और उसके स्थान पर ताम् आदेश होने के बाद **अहन्+ताम्** है। ताम् के परे होने पर अनुनासिकलोप होकर **अहताम्** बनता है। बहुवचन में **अहन्+अन्** है। उपधालोप, कुत्व करके **अघ्नन्** बनता है।

अधिकारसूत्रम्

५६३. आर्धधातुके २।४।३५॥

इत्यधिकृत्य।

वधादेशविधायकं सूत्रद्वयम्

५६४. हनो वध लिङि २।४।४२॥

५६५. लुङि च २।४।४३॥

वधादेशोऽदन्तः। आर्धधातुके इति विषयसप्तमी, तेन आर्धधातुकोपदेशे अकारान्तत्वादतो लोपः। वध्यात्। वध्यास्ताम्। आदेशस्यानेकाच्त्वादेकाच इतीण्निषेधाभावादिट्। **अतो हलादेः** इति वृद्धौ प्राप्तायाम्।

....

सिप् में भी इकार के लोप के बाद सकार का संयोगान्तलोप होकर **अहन्** ही बनता है। **लङ्** के रूप- अहन् अहताम्, अघ्नन्, अहन्, अहतम्, अहत, अहनम्, अहन्व, अहन्म।

विधिलिङ्- हन्यात्, हन्याताम्, हन्युः, हन्याः, हन्यातम्, हन्यात, हन्याम्, हन्याव, हन्याम।

५६३- आर्धधातुके। आर्धधातुके सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकार सूत्र है।

आर्धधातुक में या आर्धधातुक की विवक्षा में।

आर्धधातुके का अधिकार **ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञोः २।४।५८।** तक जाता है। **आर्धधातुके** इस पद में विषय-सप्तमी मानकर **आर्धधातुक के विषय में** ऐसा अर्थ किया जाता है न कि पर सप्तमी मानकर **आर्धधातुके परे रहते** ऐसा। **आर्धधातुके** के अधिकार में जो कार्य होगा वह आर्धधातुक के परे नहीं अपितु आर्धधातुक के विषय में या आर्धधातुक की विवक्षा में होगा।

५६४- हनो वध लिङि। हनः षष्ठ्यन्तं, वध लुप्तप्रथमाकं पदं, लिङि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

हन् धातु के स्थान पर वध आदेश होता है आर्धधातुक लिङ् की विवक्षा होने पर।

आर्धधातुके के अधिकार के कारण इस सूत्र से आशीर्लिङ में ही **वध** आदेश होता है क्योंकि **लिङाशिषि** से आशीर्लिङ् की आर्धधातुकसंज्ञा होती है, विधिलिङ् की नहीं होती।

५६५- लुङि च। लुङि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है ही, **हन वध लिङि** से **हन** और **वध** की अनुवृत्ति आती है।

हन् धातु के स्थान पर वध आदेश होता है आर्धधातुक लुङ् की विवक्षा में।

वध आदेश अदन्त है अर्थात् धकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः आर्धधातुकोपदेश में यह धातुरूप आदेश अदन्त है, फलतः **अतो लोपः** से अकार का लोप हो जाता है।

अनेक आचार्य इन दोनों सूत्रों का सम्मिलित अर्थ करते हैं- **हन् धातु के स्थान पर वध आदेश होता है, आर्धधातुक लिङ् और लुङ् की विवक्षा होने पर।**

वध्यात्। हन् से आशीर्लिङ् की विवक्षा में **हनो वध लिङि** से **वध** आदेश होने

स्थानिवद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५६६. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ १।१।५७॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्, स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इत्यल्लोपस्य स्थानिवत्तान्न वृद्धिः। अवधीत्। अहनिष्यत्।

यु मिश्रणामिश्रणयोः॥३॥

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

५६७. उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। यौति। युतः। युवन्ति। यौषि। युथः। युथ। यौमि। युवः। युमः। युयाव। यविता। यविष्यति। यौतु, युतात्। अयौत्। अयुताम्। अयुवन्। युयात्। इह उतो वृद्धिर्न, भाष्ये- **पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्न** इति व्याख्यानात्। युयाताम्। युयुः। यूयात्। यूयास्ताम्। यूयासुः। अयावीत्। अयविष्यत्।

या प्रापणे॥४॥ याति। यातः। यान्ति। ययौ। याता। यास्यति। यातु। अयात्। अयाताम्।

....

के बाद लिङ्, ति, यासुट्, अनुबन्धलोप **वध+यास्+त्** बना। उसके बाद **अतो लोपः** से अकार का और **स्कोः संयोगाद्योः** से सकार का लोप होकर **वध्यात्** सिद्ध होता है। वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासुः, वध्याः, वध्यास्तम्, वध्यास्त, वध्यासम्, वध्यास्व, वध्यास्म।

५६६- अचः परस्मिन् पूर्वविधौ। अचः षष्ठ्यन्तं, परस्मिन् सप्तम्यन्तं, पूर्वविधौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **स्थानिवत्** और **आदेशः** की अनुवृत्ति आती है।

पर को निमित्त मानकर हुआ अजादेश स्थानिवत् होता है, यदि उस स्थानिभूत अच् से पूर्व देखे गये के स्थान पर कोई कार्य करना हो तो।

अच् के स्थान पर हुए आदेश को अजादेश कहा जाता है। **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से अनल्विधि में और इससे अल्विधि में स्थानिवद्भाव होता है। ध्यान रहे कि यह सूत्र आदेश के पहले जो अच् के रूप में स्थानी थी, उससे पूर्व की किसी विधि के करने में ही करता है।

अवधीत्। लुङ् लकार की विवक्षा में **लुङि च** से **वध** आदेश करके लुङ्, अट्, तिप्, इकार का लोप, च्लि, सिच्। यद्यपि **हन्** धातु एकाच् होने के कारण अनिट् है फिरभी **वध** आदेश के अनेकाच् होने के कारण सेट् हो जाता है। अतः वलादि आर्धधातुक को इट् होगा। **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् होकर **अवध+इस्+ईत्** बना। **अतो लोपः** से **अवध** में ध कारोत्तरवर्ती अकार का लोप होने के बाद हलन्त धातु मानकर **अतो हलादेर्लघोः** से वकारोत्तरवर्ती अकार को वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त थी। ऐसी स्थिति में **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से स्थानिवद्भाव हो जाता है अर्थात् अकार के लोप का स्थानिवद्भाव होकर अदन्त जैसा दीखता है। यहाँ पर स्थानिभूत अच् है **वध** का **अ।** उस अकार से पूर्व को वृद्धि प्राप्त है। स्थानिवद्भावेन धातु और सिच् के बीच में अकार दीखने के कारण वृद्धि नहीं हुई। **इट ईटि** से सकार का लोप, सवर्णदीर्घ, वर्णसम्मेलन होकर **अवधीत्** सिद्ध हुआ।

लुङ्- अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः, अवधीः, अवधिष्टम्, अवधिष्ट, अवधिषम्, अवधिष्व, अवधिष्म। **लृङ्**- अहनिष्यत्, अहनिष्यताम्, अहनिष्यन् आदि।

यु मिश्रणामिश्रणयोः। यु धातु **मिलाना** और **अलग करना** दोनों अर्थों में है। **उदूदन्तैः.....** इस कारिका के अनुसार यह धातु सेट् है।

५६७- उतो वृद्धिर्लुकि हलि। उतः षष्ठ्यन्तं, वृद्धिः प्रथमान्तं, लुकि सप्तम्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **न, अभ्यस्तस्य, पिति** और **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

लुक् के विषय में अभ्यस्त से भिन्न उदन्त अङ्ग को वृद्धि होती है हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो।

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में तिप्, सिप् और मिप् के परे रहते पूर्व को वृद्धि हो जाती है।

यौति। यु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **यु+ति** बना। **ति** पित् सार्वधातुक है, अतः **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से वृद्धि होकर **यौ+ति=यौति** सिद्ध हुआ। इसी तरह **यौषि, यौमि** भी सिद्ध होते हैं। शेष में पित् न होने के कारण वृद्धि नहीं होती। अन्ति के परे होने पर अजादि परे मिलता है, अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् होकर **युवन्ति** बनता है। इस तरह लट् में रूप बनते हैं- यौति, युतः, युवन्ति, यौषि, युथः, युथ, यौमि, युवः, युमः।

लिट् के तिप् में **युयु+अ** है, **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **युयौ+अ** बना। आव् आदेश होकर **युयाव** सिद्ध हुआ। अपित् में इयङ् आदेश होता है। युयाव, युयुवतुः, युयुवुः। युयविथ, युयुवथुः, युयुव। युयाव-युयव, युयुविव, युयुविम।

लुट्- यविता, यवितारौ, यवितारः, यवितासि, यवितास्थः। यवितास्थ, यवितास्मि, यवितास्वः, यवितास्मः। **लृट्**- यविष्यति, यविष्यतः, यविष्यन्ति। यविष्यसि, यविष्यथः, यविष्यथ। यविष्यामि, यविष्यावः, यविष्यामः। **लोट्**- यौतु-युतात्, युताम्, युवन्तु। युहि-युतात्, युतम्, युत। यवानि, यवाव, यवाम। **लङ्**- अयौत्, अयुताम्, अयुवन्। अयौः, अयुतम्, अयुत। अयवम्, अयुव, अयुम।

विधिलिङ् में **यु+यास्+त्** है। तिप् पित् है और उसको यासुट् आगम हुआ है, वह **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से ङित् है किन्तु ति में विद्यमान पित्व उसके आगम **यासुट्** में भी आ जाता है। **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते**। अतः यास् को पित् मानकर **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से वृद्धि हो जानी चाहिए। इसके समाधान के लिए **महाभाष्यकार** ने किसी दूसरे उपाय से वृद्धि को रोका है। उनका कहना है कि **ङिच्च पिन्न, पिच्च ङिन्न** अर्थात् जो ङित् होता है वह पित् नहीं होता और जो पित् होता है वह ङित् नहीं होता। यासुट् ङित् है, अतः उसमें पित्त्व नहीं आ सकता। पित्त्वाभावात् वृद्धि भी नहीं होती। अतः **युयात्** ही रह जाता है।

युयात्, युयाताम, युयुः। युयाः, युयातम्, युयात। युयाम्, युयाव, युयाम।

आशीर्लिङ् में सार्वधातुक न होने से वृद्धि नहीं होती है किन्तु **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होकर यूयात्, यूयास्ताम्, यूयासुः। यूयाः, यूयास्तम्, यूयास्त। यूयासम्, यूयास्व, यूयास्म रूप बनते हैं।

लुङ् में यु से तिप्, अट्, सिच्, इट्, ईट् होने पर **अयु+इस्+ईत्** बना है। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर **अयौ,** सकार का **इट ईटि** से लोप करके सवर्णदीर्घ,

वैकल्पिकजुसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५६८. लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात्।

अयुः, अयान्। यायात्। यायाताम्, यायुः, यायात्, यायास्ताम्, यायासुः, अयासीत्, अयास्यत्। **वा गतिगन्धनयोः॥५॥ भा दीप्तौ॥६॥ ष्णा शौचे॥७॥ श्रा पाके॥८॥ द्रा कुत्सायां गतौ॥९॥ प्सा भक्षणे॥१०॥ रा दाने॥११॥ ला आदाने॥१२॥ दाप् लवने॥१३॥ पा रक्षणे॥१४॥ ख्या प्रकथने॥१५॥** अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः। **विद ज्ञाने॥१६॥**

....

अयौ+ईत् बना। आव् आदेश होकर **अयावीत्** सिद्ध हुआ। अयावीत्, अयाविष्टाम्, अयाविषुः, अयावीः, अयाविष्टम्, अयाविष्ट, अयाविषम्, अयाविष्व, अयाविष्म।

लृङ्- अयविष्यत्, अयविष्यताम्, अयविष्यन् इत्यादि।

या प्रापणे। या धातु **जाना** अर्थ में है। अनिट् है। लिट् में **पा** धातु की प्रक्रिया का स्मरण करें जैसे कि **णल्** में **आत और णलः** से औकार आदेश और **अतुस्** आदि में **आतो लोप इटि च** से आकार लोप आदि।

लट्- याति, यातः, यान्ति, यासि, याथः, याथ, यामि, यावः, यामः।

लिट्- पा धातु की तरह- ययौ, ययतुः, ययुः, ययिथ-ययाथ, ययथु, यय, ययौ, ययिव, ययिम।

लुट्-याता, यातारौ, यातारः, यातासि, यातास्थः, यातास्थ, यातास्मि, यातास्वः, यातास्मः।

लृट्- यास्यति, यास्यतः, यास्यन्ति, यास्यसि, यास्यथः, यास्यथ, यास्यामि, यास्यावः, यास्यामः।

लोट्- यातु-यातात्, याताम्, यान्तु, याहि-यातात्, यातम्, यात, यानि, याव, याम।

५६८- लङः शाकटायनस्यैव। लङः षष्ठ्यन्तं, शाकटायनस्य षष्ठ्यन्तम्, एव अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आतः** और **झेर्जुस्** ये दोनों सूत्र अनुवर्तित होते हैं।

आदन्त धातु से परे लङ् के झि के स्थान पर विकल्प से जुस् आदेश होता है।

लङ् के तिप् और तस् में **अयात्, अयाताम्** बनते हैं। **झि** के स्थान पर अप्राप्त जुस् आदेश का **लङः शाकटायनस्यैव** से विकल्प से होकर **अया+उस्** बना। **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर **अयुः** सिद्ध हुआ। जुस् न होने के पक्ष में **अन्त्** आदेश होकर तकार का संयोगान्तलोप होकर **अयान्** बनता है। अयात्, अयाताम्, अयुः-अयान्, अयाः, अयातम्, अयात, अयाम्, अयाव, अयाम। **विधिलिङ्-** यायात्, यायाताम्, यायुः, यायाः, यायातम्, यायात, यायाम्, यायाव, यायाम। **आशीर्लिङ्-** यायात्, यायास्ताम्, यायासुः, यायाः, यायास्तम्, यायास्त, यायासम्, यायास्व, यायास्म।

लुङ् में **यमरमनमातां सक् च** से इट् व सक् होकर रूप बनते हैं- अयासीत्, अयासिष्टाम्, अयासिषुः, अयासीः, अयासिष्टम्, अयासिष्ट, अयासिषम्, अयासिष्व, अयासिष्म। **लृङ्-** अयास्यत्, अयास्यताम्, अयास्यन् आदि।

वा गतिगन्धनयोः। वा धातु **गति** अर्थात् वायु का चलना **और गन्धन** अर्थात् सूचित करना, हिंसा, उत्साहित करना आदि अर्थ में है। इस धातु समग्र के रूप **या** धातु की तरह ही होते हैं। **लट्-** वाति, वातः, वान्ति, वासि, वाथः, वाथ, वामि, वावः, वामः। **लिट्-** ववौ, ववतुः, ववुः, वविथ-ववाथ, ववथुः, वव, ववौ, वविव, वविम। **लुट्-** वाता, वातारौ,

वातारः आदि। **लृट्**- वास्यति, वास्यतः, वास्यन्ति। **लोट्**- वातु-वातात्, वाताम्, वान्तु, वाहि-वातात्, वातम्, वात, वानि, वाव, वाम। **लङ्**- अवात्, अवाताम्, अवुः। **विधिलिङ्**- वायात्, वायाताम्, वायुः। **आशीर्लिङ्**- वायात्, वायास्ताम्, वायासुः। **लुङ्**- अवासीत्, अवासिष्टाम्, अवासिषुः, अवासीः, अवासिष्टम्, अवासिष्ट, अवासिषम्, अवासिष्व, अवासिष्म। **लृङ्**- अवास्यत्, अवास्यताम्, अवास्यन् आदि।

भा दीप्तौ। भा धातु **चमकना** अर्थ में है। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं है अतः यह आत्मनेपदनिमित्त से हीन है। इसके रूप भी **या** की तरह ही चलते हैं। यहाँ पर प्रत्येक लकार से एक-एक रूप प्रदर्शित हैं, शेष स्वयं बनायें। भाति। बभौ, बभतुः, बभुः। भाता। भास्यति। भातु। अभात्। भायात्। भायात्। अभासीत्। अभास्यत्।

ष्णा शौचे। ष्णा-धातु **स्नान करना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश और **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के अनुसार णकार भी नकार में आ जाता है, क्योंकि षकार के योग में ही नकार ष्टुत्व होकर णकार में बदल गया था। जब निमित्त षकार ही सकार में बदल गया तो नैमित्तिक णकार को भी नकार में बदलना पड़ेगा ही। इस तरह यह धातु **स्ना** बन जाता है। इसके रूप भी **या** की तरह ही **स्नाति, स्नातः, स्नान्ति** आदि होते हैं किन्तु लिट् में थोड़ा ध्यान देना होगा क्योंकि यहाँ पर हलादिशेष होकर **सा+स्ना+औ** में अभ्यास को ह्रस्व होकर **सस्नौ, सस्नतुः, सस्नुः** आदि रूप बनते हैं। **आशीर्लिङ् में वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एत्व होकर दो-दो रूप बनते हैं। आगे के लकारों में- **स्नाता। स्नास्यति। स्नातु। अस्नात्। स्नायात्। स्नेयात्-स्नायात्। अस्नासीत्। अस्नास्यत्।**

श्रा पाके। श्रा-धातु **पकना** अर्थ में है। **पकाना** अर्थ होता तो सकर्मक होता किन्तु **पकना** अर्थ है, अतः अकर्मक है। इसकी सारी प्रक्रिया **या** की तरह ही है किन्तु **आशीर्लिङ्** में **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एत्व होकर दो-दो रूप बनते हैं। **श्राति, शश्रौ, श्राता, श्रास्यति, श्रातु, अश्रात्, श्रायात्, श्रेयात्-श्रायात्, अश्रासीत्, अश्रास्यत्।**

प्सा भक्षणे। प्सा-धातु **भक्षण करना** अर्थ में है। यह भी संयोगादि धातु है, अतः आशीर्लिङ् में वैकल्पिक एत्व होता है, शेष रूप **या** की तरह ही होते हैं। **प्साति, पप्सौ, प्साता, प्सास्यति, प्सातु, अप्सात्, प्सायात्, प्सेयात्-प्सायात्, अप्सासीत्, अप्सास्यत्।**

रा दाने। रा-धातु **देने** अर्थ में है। इसकी भी सारी प्रक्रिया या धातु के समान ही है। **लट्**- राति, रातः, रान्ति। रासि, राथः, राथ। रामि, रावः, रामः। **लिट्**- ररौ, ररतुः, ररुः। ररिथ-रराथ, ररथुः, रर। ररौ, ररिव, ररिम। **लुट्**- राता, रातारौ, रातारः। रातासि, रातास्थः, रातास्थ। रातास्मि, रातास्वः, रातास्मः। **लृट्**- रास्यति, रास्यतः, रास्यन्ति। रास्यसि, रास्यथः, रास्यथ। रास्यामि, रास्यावः, रास्यामः। **लोट्**- रातु-रातात्, राताम्, रान्तु। राहि-रातात्, रातम्, रात। राणि, राव, राम। **लङ्**- अरात्, अराताम्, अरुः। अराः, अरातम्, अरात। अराम्, अराव, अराम। **विधिलिङ्**- रायात्, रायाताम्, रायुः। रायाः, रायातम्, रायात। रायाम्, रायाव, रायाम। **आशीर्लिङ्**- रायात्, रायास्ताम्, रायासुः। रायाः, रायास्तम्, रायास्त। रायासम्, रायास्व, रायास्म। **लुङ्**- अरासीत्, अरासिष्टाम्, अरासिषुः। अरासीः, अरासिष्टम्, अरासिष्ट। अरासिषम्, अरासिष्व, अरासिष्म। **लृङ्**- अरास्यत्, अरास्यताम्, अरास्यन्। अरास्यः, अरास्यतम्, अरास्यत। अरास्यम्, अरास्याव, अरास्याम।

ला आदाने। ला-धातु **ग्रहण करना** अर्थ में है। इसकी प्रक्रिया भी **या** की तरह ही है। लाति, ललौ, लाता, लास्यति, लातु, अलात्, लायात्, लायात्, अलासीत्, अलास्यत्।

णलाद्यादेशविधायकं सूत्रम्

५६९. विदो लटो वा ३।४।८३॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः। वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म। पक्षे- वेत्ति। वित्तः। विदन्ति।

....

दाप् लवने। दाप्-धातु **काटना** अर्थ में है। पकार की इत्संज्ञा होती है, **दा** मात्र अवशिष्ट है। इसके रूप भी **या** की तरह ही हैं। **दाति, ददौ, दाता, दास्यति, दातु, अदात्, दायात्, दायात्, अदासीत्, अदास्यत्।**

पा रक्षणे। पा-धातु **रक्षा करना** अर्थ में है। इसकी भी प्रक्रिया या धातु के समान ही है। **लट्-** पाति, पातः, पान्ति। पासि, पाथः, पाथ। पामि, पावः, पामः। **लिट्-** पपौ, पपतुः, पपुः। पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप। पपौ, पपिव, पपिम। **लुट्-** पाता, पातारौ, पातारः। पातासि, पातास्थः, पातास्थ। पातास्मि, पातास्वः, पातास्मः। **लृट्-** पास्यति, पास्यतः, पास्यन्ति। पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ। पास्यामि। पास्यावः, पास्यामः। **लोट्-** पातु-पातात्, पाताम्, पान्तु। पाहि-पातात्, पातम्, पात। पानि, पाव, पाम। **लङ्-** अपात्, अपाताम्, अपुः। अपाः, अपातम्, अपात। अपाम्, अपाव, अपाम। **विधिलिङ्-** पायात्, पायाताम्, पायुः। पायाः, पायातम्, पायात। पायाम्, पायाव, पायाम। **आशीर्लिङ्-** पायात्, पायास्ताम्, पायासुः। पायाः, पायास्तम्, पायास्त। पायासम्, पायास्व, पायास्म। **लुङ्-** अपासीत्, अपासिष्टाम्, अपासिषुः। अपासीः, अपासिष्टम्, अपासिष्ट, अपासिषम्, अपासिष्व, अपासिष्म। **लृङ्-** अपास्यत्, अपास्यताम्, अपास्यन्। अपास्यः, अपास्यतम्, अपास्यत। अपास्यम्, अपास्याव, अपास्याम।

ख्या प्रकथने। ख्या-धातु **कहना** अर्थ में है। इस धातु का प्रयोग सार्वधातुक में ही होता है अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में ही इसके रूप होते हैं, लिट् आदि आर्धधातुकों में नहीं। **लट्-** ख्याति, ख्यातः, ख्यान्ति। **लोट्-** ख्यातु-ख्यातात्, ख्याताम्, ख्यान्तु। **लङ्-** अख्यात्, अख्याताम्, अख्युः। **विधिलिङ्-** ख्यायात्, ख्यायाताम्, ख्यायुः।

विद ज्ञाने। विद-धातु **जानना** अर्थ में है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **विद्** शेष रहता है। इसी धातु से कृत्प्रकरण में **विद्वान्, विद्या, वेद** आदि शब्द बनते हैं।

५६९- **विदो लटो वा।** विदः पञ्चम्यन्तं, लटः षष्ठ्यन्तं, वा अव्ययं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

विद् धातु से परे लट् के परस्मैपद के स्थान पर णल् आदि नौ प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

अभी तक लिट् लकार के परस्मैपद प्रत्ययों के स्थान पर ही णल्, अतुस्, उस् आदि आदेश होते आये हैं। यहाँ केवल विद धातु से लट् लकार में भी ये आदेश हो रहे हैं। द्वित्व आदि तो नहीं होते हैं।

वेद। विद् से लट्, तिप्, उसके स्थान पर णल् आदेश करके, शप्, उसका लुक् करके **विद्+अ** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **वेद्+अ,** वर्णसम्मेलन होकर **वेद** सिद्ध हुआ। **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव होने से अपित् में गुण नहीं होता। सिप् के स्थान पर थल् होकर **विद्+थ** हुआ। गुण होकर **वेद्+थ** बना। **खरि च** से चर्त्व होकर तकार हुआ तो **वेत्थ** सिद्ध हुआ। इस तरह लट् के रूप बने- **वेद, विदतुः, विदुः, वेत्थ, विदथुः, विद,**

आम्विधायकं विधिसूत्रम्

५७०. उष-विद-जागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।३८॥

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात्। विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः। विदाञ्चकार, विवेद। वेदिता। वेदिष्यति।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

५७१. विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३।१।४१॥

वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते, पुरुषवचने न विवक्षिते।

....

वेद, विद्व, विद्म। णल् आदि आदेश न होने के पक्ष में **विद्+ति**, गुण एवं चर्त्व होकर **वेत्ति** बनता है। आगे सिप् और मिप् में गुण, अन्यत्र गुणाभाव होकर रूप बनते हैं- **वेत्ति, वित्तः, विदन्ति, वेत्सि, वित्थः, वित्थ, वेद्मि, विद्वः, विद्मः।**

५७०- **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्।** उषश्च विदश्च जागा च तेषामितरेतरद्वन्द्व उषविदजागारः, तेभ्य उषविदजागृभ्यः। उषविदजागृभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **आम्** और **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

उष्, विद् और जागृ धातुओं से परे विकल्प से आम् होता है लिट् परे होने पर।

आम् के सन्नियोग में **विद्** धातु को अदन्त **विद** ऐसा निपातन किया गया है, अतः **आम्** के परे होने पर यह धातु अदन्त ही रहता है।

विदाञ्चकार। विद धातु से लिट्, उसके परे होने पर **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्** से आम् और विद् को **विद** के रूप में निपातन आदि करके **विद+आम्+लिट्** बना। विद् को हलन्त समझकर आम् को आर्धधातुक मानकर के **पुगन्तलघूपधस्य च** से **विद्** में उपधागुण प्राप्त हो सकता था किन्तु आम्विधायक सूत्र में **विद्** को **विद** के रूप में अदन्तत्व निपातन होने के कारण गुण नहीं हुआ अपितु **अतो लोपः** से लोप हुआ। **विद्+आम्** में वर्णसम्मेलन होकर **विदाम्** से परे लिट् का **आमः** से लुक् हुआ। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को पर लेकर **कृ, भू, अस्** का बारी-बारी से अनुप्रयोग हुआ। कृ के पक्ष में **गोपायाञ्चकार** की तरह **विदाञ्चकार** बन जाता है।

कृ-धातु के अनुप्रयोग होने पर- विदाञ्चकार, विदाञ्चक्रतुः, विदाञ्चक्रुः, विदाञ्चकर्थ, विदाञ्चक्रथुः, विदाञ्चक्र, विदाञ्चकार-विदाञ्चकर, विदाञ्चकृव, विदाञ्चकृम। **भू-धातु का अनुप्रयोग होने पर-** विदाम्बभूव, विदाम्बभूवतुः आदि। **अस्-धातु का अनुप्रयोग होने पर-** विदामास, विदामासतुः आदि। **आम् न होने के पक्ष में-** विवेद, विविदतुः आदि।

लुट्- वेदिता, वेदितारौ, वेदितारः आदि। **लृट्-** वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति।

५७१- **विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्।** विदाङ्कुर्वन्तु क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लोट् लकार के परे होने पर विद् धातु से आम् प्रत्यय, उसके परे होने पर लघूपधगुण का अभाव, लोट् का लुक् और लोडन्त कृ-धातु का अनुप्रयोग ये सब कार्य विकल्प से होते हैं।

उप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

५७२. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात्। शपोऽपवादः। गुणौ। विदाङ्करोतु।

उदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५७३. अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति।

विदाङ्कुरुतात्। विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु। विदाङ्कुरु।

विदाङ्करवाणि। अवेत्। अवित्ताम्। अविदुः।

....

यह निपातन करने वाला सूत्र है। सूत्र में **विदाङ्कुर्वन्तु** यह सिद्ध रूप दिखाया गया है। इस रूप की सिद्धि में जो जो भी प्रक्रिया अपेक्षित हो, वह-वह कर लेनी चाहिए अर्थात् **विद्** धातु से **विदाङ्कुर्वन्तु** बनाने में जो जो कार्य अपेक्षित है, जो जो आगम, आदेश, किसी प्रक्रिया का अभाव आदि करने में स्वतन्त्र हैं। जैसे **विद्+ति** में आम् किया गया और आम् के परे होने पर लघूपधगुण प्राप्त होता है, उसका अभाव अर्थात् गुण को रोका गया और आम् से **लोट्** को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग किया गया। इस तरह कमोबेस आम्प्रकृतिक धातु से लिट् लकार में बनने वाले रूपों की तरह प्रक्रिया की गई, किन्तु लोट् लकार होने के कारण द्वित्व आदि नहीं हुए। उत्व आदि तो उत्सर्गतः प्राप्त हैं ही। इस निपातन और अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति के बाद **विदाङ्करोतु** सिद्ध होगा। इस निपातन में पुरुष और वचन की विवक्षा नहीं की गई है अर्थात् लोट् लकार के तीनों पुरुष और सभी वचनों में यह निपातन होगा।

५७२- तनादिकृञ्भ्य उः। तन् आदि येषां ते तनादयः, तनादयश्च कृञ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः तनादिकृञः, तेभ्यः तनादिकृञ्भ्यः। तनादिकृञ्भ्यः पञ्चम्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे होने पर तनादिगणीय धातु और कृ धातु से उ प्रत्यय होता है।

यह सूत्र शप् का अपवाद है। **उ** भी एक विकरण है।

विदाङ्करोतु। विद् धातु से लोट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्** से आम्, लघूपध गुण का अभाव, लोट् का लुक्, लोट् को पर लेकर कृ का अनुप्रयोग आदि निपातित होकर विदाम्+कृति बना। कृ से ति के परे रहते **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **तनादिकृञ्भ्य उः** से **उ** प्रत्यय हुआ, **विदाम्+कृ+उ+ति** बना। उ की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और उसके परे होने पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **कृ** के ऋकार को गुण हुआ। **उरण् रपरः** की सहायता से रपर होकर **अर्** हुआ। **विदाम्+कर्+उति** बना। उ को भी गुण होकर ओकार और **ति** के इकार को **एरुः** से उकार होकर **विदाम्+करोतु** बना। विदाम् में मकार को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसको **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर **विदाङ्करोतु** यह रूप सिद्ध होता

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५७४. दश्च ८।२।७५॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि रुर्वा। अवे:, अवेत्। विद्यात्। विद्याताम्। विद्यु:। विद्यात्। विद्यास्ताम्। अवेदीत्। अवेदीष्यत्।

अस भुवि॥१७॥ अस्ति।

....

है। तु होने के बाद **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से **तातङ्** आदेश होकर **विदाङ्कुरुतात्** बनता है जिसके लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

५७३- **अत उत्सार्वधातुके।** अत: षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **उत:** और **प्रत्ययात्** की, **नित्यं करोते:** से **करोते:** और **गमहनजनखनघसां लोप: क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक कित्, ङित् के परे होने पर उप्रत्ययान्त कृञ् धातु के ह्रस्व अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

तनादिकृञ्भ्य उ: से किये गये उकार के आर्धधातुक होने के कारण उसके परे रहते कृ के ऋकार को सभी वचनों में गुण होता है। गुण होकर जो उकार बना, उसके स्थान पर यह सूत्र उकार आदेश करता है कित्, ङित् के परे रहते।

विदाङ्कुरुतात्। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् होकर ति के इकार के स्थान पर उकार होने के बाद तातङ् आदेश होकर **विदाङ्कर्+उ+तात्** बना है। ककारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर **अत उत्सार्वधातुके** से उकार आदेश होकर **विदाङ्कुर्+उ+तात्** हुआ। वर्णसम्मेलन करने पर **विदाङ्कुरुतात्** सिद्ध हुआ।

विदाङ्कुरुताम्। विद् से लोट्, शप्, शप् का लुक, आम्, गुणाभाव, लोट् का लुक्, लोडन्त कृ का अनुप्रयोग, तस्, उसके स्थान पर ताम् आदेश, कृ को गुण, उसके अकार को उकार आदेश करके **विदाङ्कुरुताम्** सिद्ध होता है। अब आगे **विदाङ्कुर्वन्तु, विदाङ्कुरु-विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत** ये रूप लगभग इसी प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं। उत्तमपुरुष में आट् का आगम होता है, अत: **आनि, आव, आम** के परे होने पर **कुरु** के उकार को गुण और अवादेश होकर **विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम** बनते हैं।

आम् आदि का निपातन वैकल्पिक है। निपातन के अभाव में- वित्तु-वित्तात्, वित्ताम्, विदन्तु, विद्धि-वित्तात्, वित्तम्, वित्त, वेदानि, वेदाव, वेदाम।

५७४- **दश्च।** द: पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिपि धातो रुर्वा** यह पूरा सूत्र अनुवर्तित होता है। **पदस्य** का अधिकार है।

सिप् के परे होने पर धातु के पदान्त दकार के स्थान पर विकल्प से रु आदेश होता है।

लङ् में अवेत्, अवित्ताम्, अविदु:, इन तीन प्रयोगों की प्रक्रिया सरल ही है। सिप् में **अविद्+स्** है। **पुगन्तलघूपधस्य च** से लघूपधगुण होकर सकार का संयोगान्तलोप होता है और दकार के स्थान पर **दश्च** से वैकल्पिक रुत्व करके उसके स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **अवे:** बन जाता है। रुत्व न होने के पक्ष में दकार को **वावसाने** से

अल्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

५७५. श्नसोरल्लोपः ६।४।१११॥

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति।

स्तः। सन्ति। असि। स्थः। स्थ। अस्मि। स्वः। स्मः।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५७६. उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८।३।८७॥

उपसर्गेण प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि परे।

निष्यात्। प्रनिषन्ति। प्रादुःषन्ति। यच्परः किम्? अभिस्तः।

....

वैकल्पिक चर्त्व होकर **अवेत्** और **अवेद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। इस तरह सिप् में तीन रूप बन गये। शेष रूप- **अवित्तम्, अवित्त, अवेदम्, अविद्व, अविद्म।**
विधिलिङ्- विद्यात्, विद्याताम्, विद्युः, विद्याः, विद्यातम्, विद्यात, विद्याम्, विद्याव, विद्याम। **आशीर्लिङ्-** विद्यात्, विद्यास्ताम्, विद्यासुः आदि। **लुङ्-** अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषुः, अवेदीः, अवेदिष्टम्, अवेदिष्ट, अवेदिषम्, अवेदिष्व, अवेदिष्म। **लृङ्-** अवेदिष्यत्, अवेदिष्यताम्, अवेदिष्यन् आदि।

अस भुवि। अस धातु **सत्ता, होना** आदि अर्थों में है। सकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है, **अस्** बचता है। उदात्तेत् होने और आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण यह धातु परस्मैपदी है।

अस्ति। अस् धातु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक्, वर्णसम्मेलन करके **अस्ति** बनता है।

५७५- **श्नसोरल्लोपः।** श्नश्च अस् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः श्नसौ(अत्र **शकन्ध्वादिपररूपम्।** श्नसोः षष्ठ्यन्तम्, अल्लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

श्नम् के अकार और अस् धातु के अकार का लोप होता है सार्वधातुक कित्, ङित् परे रहते।

तिप्, सिप्, मिप् में पित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् नहीं हो पाता है, अतः अल्लोप नहीं होता है। शेष में ङिद्वद्भाव हो जाने के कारण अकार का लोप हो जाता है।

स्तः। सन्ति। अस् से प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, **अस्+तस्** बना। शप्, उसका लुक् करके **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव करके **श्नसोरल्लोपः** से अस् के अकार का लोप हुआ, **स्+तस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **स्तस्** बना, सकार को रुत्व और विसर्ग हुआ- **स्तः** बना। **झि** में **श्नसोरल्लोपः** से अकार का लोप होकर **स्+अन्ति,** वर्णसम्मेलन होकर **सन्ति।**

इस प्रकार से अस् धातु के लट्-लकार में रूप बनते हैं- **अस्ति, स्तः, सन्ति। असि, स्थः, स्थ। अस्मि, स्वः, स्मः।**

५७६- **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः।** उपसर्गश्च प्रादुष् च उपसर्गप्रादुषौ। य् च अच् च तौ

'भू' इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५७७. अस्तेर्भूः २।४।५२॥

आर्धधातुके। बभूव। भविता। भविष्यति। अस्तु-स्तात्। स्ताम्, सन्तु।

....

यचौ, तौ परौ यस्मात् स यच्परः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। उपसर्गप्रादुर्भ्याम् पञ्चम्यन्तम्, अस्तिः प्रथमान्तं, यच्परः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सहेः साडः सः** से **सः** और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है। **इण्कोः** का अधिकार है किन्तु **इण्** का यहाँ पर उपयोग है और **कोः** का नहीं है। अतः सूत्र का अर्थ बनता है-

उपसर्गस्थ इण् से परे या प्रादुस् इस अव्यय से परे अस् धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्य षकार आदेश होता है यकार और अच् के परे होने पर।

जिस सकार के स्थान पर षकार हो रहा है उससे परे या तो यकार होना चाहिए या अच्।

निष्यात्। प्रनिषन्ति। नि-उपसर्ग से अस् धातु के विधिलिङ् का स्यात् परे है। उपसर्गस्थ इण् नि का इकार है, उससे परे अस् का सकार है और उस सकार से यकार परे मिलता है। अतः **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** से षकार आदेश हुआ- **निष्यात्** सिद्ध हुआ। **प्रनि+सन्ति** में सकार से अच् परे सकारोत्तरवर्ती अकार मिलता है। अतः षत्व होकर **प्रनिषन्ति** बना।

प्रादुःषन्ति। प्रादुस् इस अव्यय से परे **सन्ति** के सकार को षत्व होकर प्रादुस् के सकार को रुत्व और विसर्ग होने पर **प्रादुःषन्ति** सिद्ध होता है।

यच्परः किम्? अभिस्तः। यदि सूत्र में **यच्परः** अर्थात् **यकार और अच् परे** ऐसा न कहते तो **अभि+स्तः** में सकार को षत्व हो जाता जिससे षकार से परे तकार को भी ष्टुत्व होकर **अभिष्टः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। **यच्परः** कहने से यहाँ पर सकार से न तो यकार परे है और न ही अच्, किन्तु तकार परे है। अतः षत्व नहीं हुआ।

५७७- **अस्तेर्भूः।** अस्तेः षष्ठ्यन्तं, भूः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आर्धधातुके** इसका अधिकार आ रहा है।

आर्धधातुक की विवक्षा होने पर अस् धातु के स्थान पर भू आदेश होता है।

बभूव। अस् धातु से लिट्, तिप्, णल्, अ, **अस्+अ** बना। **अस्तेर्भूः** से अस् के स्थान पर भू आदेश करने पर **भू+अ** बना। अब जैसे भ्वादिप्रकरण के लिट् लकार में प्रक्रिया हुई, उसी प्रकार से **बभूव** आदि बनाइये। **बभूव, बभूवतुः, बभूवुः। बभूविथ, बभूवथुः, बभूव। बभूव, बभूविव, बभूविम।**

लुट् लकार में तासि आर्धधातुकसंज्ञक है। अतः आर्धधातुक की विवक्षा में **अस्तेर्भूः** से भू आदेश होकर भ्वादिगणीय प्रक्रिया के अनुसार ही रूप हो जाते हैं। **भविता, भवितारौ, भवितारः। भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ। भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः।**

लृट् में भी भू आदेश करके बनाइये- **भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति। भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ। भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः।**

अस्तु-स्तात्। अस् धातु से लोट्, शप्, उसका लोप, **एरुः** से उत्व करके

एत्वाभ्याससलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५७८. घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्याद्धौ परेऽभ्यासलोपश्च। एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः। स्नसोरित्यल्लोपः। तातङ्पक्षे एत्वं न, परेण तातङा बाधात्। एधि-स्तात्। स्तम्। स्त। असानि। असाव। असाम। आसीत् आस्ताम्। आसन्। स्यात्। स्याताम्। स्युः। भूयात्। अभूत्। अभविष्यत्। **इण् गतौ॥१८॥** एति। इतः।

....

अस्तु, तु के स्थान पर वैकल्पिक तातङ् आदेश करके तात् को ङित् मानकर **श्नसोरल्लोपः** से अस् के अकार का लोप करने पर **स्तात्** बन जाता है, आदेशाभाव में **अस्तु** ही रहता है। **स्ताम्** और **सन्तु** में भी अकार का लोप होता है।

५७८- **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च**। घुश्च अस् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो घ्वसौ, तयोर्घ्वसोः। घ्वसोः षष्ठ्यन्तम्, एत् प्रथमान्तम्, हौ सप्तम्यन्तम्, अभ्यासलोपः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

हि के परे होने पर घुसंज्ञक धातु और अस् धातु के स्थान पर एकार आदेश होता है यदि अभ्यास हो तो उसका लोप भी हो जाता है।

यह सूत्र दो काम करता है- पहला यह कि **हि** के परे होने पर घुसंज्ञक धातु और **अस्** धातु के स्थान पर **एकार** आदेश तथा दूसरा यदि अभ्यास हो तो उसका लोप भी होता है। इस सूत्र के द्वारा किये गये एत्व को **हुझल्भ्यो हेर्धिः** की दृष्टि में असिद्ध माना जाता है। यदि यह सिद्ध होता तो धि करने के लिए झलन्त नहीं मिलता और धि आदेश ही नहीं हो पाता। दा-रूप और धा-रूप धातुओं की **दाधाघ्वदाप्** से घुसंज्ञा होती है।

एधि। अस् धातु से लोट् लकार के मध्यमपुरुष का एकवचन सिप् आया, **अस् सि**, शप्, उसका लुक्, **सेर्ह्यपिच्च** से सि के स्थान पर हि आदेश, **अस् हि** बना। **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से अस् के स्थान पर एकार आदेश होकर **ए हि** बना। एत्व को असिद्ध मानकर **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से हि के स्थान पर धि आदेश हो जाता है। इस तरह **एधि** सिद्ध हो जाता है। एक पक्ष में **हि** के स्थान पर **तातङ्** आदेश होता ही है। उस पक्ष में **श्नसोरल्लोपः** से अकार का लोप भी होगा और **स्तात्** यह रूप बनेगा।

उत्तमपुरुष में **अस् मि**, अस् नि, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् आगम होकर **अस् आनि**, वर्णसम्मेलन होकर **असानि** बनता है। इसी तरह वस् मस् में भी आट् आगम होता है। इस तरह अस् धातु के लोट् लकार में निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- **अस्तु-स्तात्, स्ताम्, सन्तु। एधि-स्तात्, स्तम्, स्त। असानि, असाव, असाम।**

आसीत्। अस् धातु से लङ्, **आडजादीनाम्** से आट् आगम, तिप्, शप्, उसका लुक्, **आ+अस्+ति, आ+अस्+त्** में **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से अपृक्त तकार को ईट् आगम हुआ और टित् होने के कारण उसके आदि में बैठा। **आ+अस्+ईत्** बना। **आ+अस्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई, **आस्+ईत्** हुआ, वर्णसम्मेलन होने पर **आसीत्** सिद्ध हुआ। यह ईट् केवल तिप् और सिप् में ही होता है, क्योंकि एक अल् अपृक्त प्रत्यय तिप्, सिप् में ही मिल

यण्विधायकं विधिसूत्रम्

५७९. इणो यण् ६।४।८१॥

अजादौ प्रत्यये परे। यन्ति।

....

पाता है। द्विवचन में तस् के स्थान पर ताम् आदेश होने पर **आस्ताम्** बनता है। वहुवचन में झि के झकार के स्थान पर अन्त् आदेश और इकार का लोप करके संयोगान्तलोप करने पर अन् शेष रहता है और **आ+अस्+अन्** से **आसन्** बना लेना आसान ही है। सिप् में ईट् का आगम करना भी आप नहीं छोड़ेंगे। इस तरह अस् धातु के लङ् में रूप बनते हैं- **आसीत्, आस्ताम्, आसन्। आसीः, आस्तम्, आस्त। आसम्, आस्व, आस्म।**

विधिलिङ् में यासुट् आगम होता है और उसे ङिद्वद्भाव भी किया जाता है। तीनों पुरुष और तीनों वचनों में यासुट् के ङित् होने से **श्नसोरल्लोपः** से अस् से अकार का लोप होकर धातु का केवल स् शेष रहता है जिससे निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- **स्यात्, स्याताम्, स्युः। स्याः, स्यातम्, स्यात। स्याम्, स्याव, स्याम।**

आशीर्लिङ् में लिङ् लकार की **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा की जाती है और **अस्तेर्भूः** से अस् धातु के स्थान पर भू आदेश हो जाता है जिससे भ्वादिगणीय **भू** धातु के समान रूप सिद्ध हो जाते हैं। भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः। भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त। भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म।

लुङ्- लकार में सिच् की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। अतः आर्धधातुक की विवक्षा में पूर्ववत् भू आदेश होता है। अब भ्वादिगणीय भू धातु की तरह सिच् का लुक् आदि करके रूप बनते हैं- **अभूत्, अभूताम्, अभूवन्। अभूः, अभूतम्, अभूत। अभूवम्, अभूव, अभूम।**

लृङ् लकार में भी स्य की आर्धधातुकसंज्ञा होने के कारण अस् धातु के स्थान पर भू आदेश करके शुद्ध भू धातु की तरह रूप बनते हैं- **अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन्। अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत। अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम।**

इण् गतौ। इण्-धातु **गति** अर्थ में है। णकार की इत्संज्ञा होती है, **इ** बचता है। णकार लगाने का प्रयोजन यह है कि **इणो यण्, इणो गा लुङि** इत्यादि सूत्रों में केवल इसी धातु का ग्रहण हो, **इङ्** आदि का ग्रहण न हो।

एति। इ से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **इ+ति** बना। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से इकार को गुण होकर **एति** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **इ+तस्,** रुत्वविसर्ग करके **इतः** सिद्ध होता है।

५७९- इणो यण्। इणः षष्ठ्यन्तं, यण् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि प्रत्यय के परे होने पर इण् धातु को यण् आदेश होता है।

यन्ति। बहुवचन में **इ+अन्ति** है। **इको यणचि** से **यण्** प्राप्त है, उसे बाधकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश प्राप्त है, उसे भी बाधकर **इणो यण्** से इकार के स्थान पर यण् हुआ अर्थात् इकार के स्थान पर यकार आदेश हुआ, **य्+अन्ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **यन्ति** सिद्ध हुआ।

इयङुवङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८०. अभ्यासस्यासवर्णे ६।४।७८॥

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि। इयाय।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

५८१. दीर्घ इणः किति ७।४।६९॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि। ईयतुः। ईयुः। इययिथ, इयेथ। एता। एष्यति। एतु। ऐत्। ऐताम्। आयन्। इयात्।

....

लट्- एति, इतः, यन्ति, एषि, इथः, इथ, एमि, इवः, इमः।

५८०- अभ्यासस्यासवर्णे। न सवर्णः असवर्णः, तस्मिन् असवर्णे। अभ्यासस्य षष्ठ्यन्तम्, असवर्णे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि, य्वोः** और **इयङुवङौ** की अनुवृत्ति आती है।

असवर्ण अच् के परे होने पर अभ्यास के इवर्ण और उवर्ण के स्थान पर क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं।

इयाय। इण् से लिट्, तिप्, णल्, अ, **इ+अ** बना। इ को द्वित्व करके **इइ+अ** बना। द्वितीय इकार को **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **इऐ+अ** बना। आय् आदेश होकर **इ+आय्+अ** बना। अब प्रथम इवर्ण के स्थान पर **अभ्यासस्यासवर्णे** से **इयङ्** होकर **इय्+आय्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इयाय** सिद्ध हुआ।

५८१- दीर्घ इणः किति। दीर्घः प्रथमान्तम्, इणः षष्ठ्यन्तं, किति सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **व्यथो लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

कित् लिट् के परे होने पर इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है।

ईयतुः। इ+इ+अतुस् में अतुस् कित् लिट् है। **दीर्घ इणः किति** से अभ्यास इवर्ण को दीर्घ होकर **ई+इ+अतुस्** बना। **इणो यण्** से द्वितीय इकार को यण् होकर यकार हुआ, **ई+य्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ईयतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **ईयुः** सिद्ध हुआ।

इययिथ, इयेथ। अनिट् धातु होने के कारण थल् में भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट् होगा। द्वित्व, इट् आदि होकर **इ+इ+इथ** बना है। द्वितीय इकार को **आर्धधातुक** गुण होकर **इ+ए+इथ** बना। **ए+इथ** में **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर **इ+अय्+इथ** बना। अब **अभ्यासस्यासवर्णे** से प्रथम इकार को इयङ् होकर **इय्+अय्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इययिथ** सिद्ध हुआ। इट् न होने के पक्ष में **इयेथ** बनता है।

लिट् के रूप- इयाय, ईयतुः, ईयुः, इययिथ-इयेथ, ईयथुः, ईय, इयाय-इयय, ईयिव, ईयिम।

लुट्, लृट् में धातु के इकार को **गुण** करना है।

लुट्- एता, एतारौ, एतारः, एतासि, एतास्थः, एतास्थ, एतास्मि, एतास्वः, एतास्मः।

लृट्- एष्यति, एष्यतः, एष्यन्ति, एष्यसि, एष्यथः, एष्यथ, एष्यामि, एष्यावः, एष्यामः।

लोट्- इतु-इतात्, इताम्, यन्तु, इहि-इतात्, इतम्, इत, अयानि, अयाव, अयाम।

अजादि धातु होने के कारण **लङ्** में आट् का आगम होता है। **आ+इ+त्** है। **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐत्** सिद्ध होता है। यह वृद्धि आट् आगम और धातु के इकार के

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

५८२. एतेर्लिङि ७।४।२४॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि। निरियात्।

उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। अभीयात्। अण: किम्? समेयात्।

....

बीच का है, अत: कित् और ङित् का प्रसंग नहीं है। इस कारण **क्ङिति च** यह निषेध सूत्र भी नहीं लगता। तीनों पुरुषों के तीनों वचनों में वृद्धि होती है। प्रथमपुरुष के बहुवचन में **आ+इ+अन्ति** है। इकार का लोप, तकार का संयोगान्तलोप करके **आ+इ+अन्** बना है। आ+इ में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐ+अन्** बना। ऐकार के स्थान पर आय् आदेश होकर **आय्+अन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आयन्** सिद्ध हुआ।

लङ्- ऐत्, ऐताम्, आयन्, ऐ:, ऐतम्, ऐत, आयम्, ऐव, ऐम।

विधिलिङ्- इयात्, इयाताम्, इयु:, इया:, इयातम्, इयात, इयाम्, इयाव, इयाम।

आशीर्लिङ्- ईयात्, ईयास्ताम्, ईयासु:, ईया:, ईयास्तम्, ईयास्त, ईयासम्, ईयास्व, ईयास्म। यहाँ पर **अकृत्सार्ववधातुकयोर्दीर्घ:** से दीर्घ हुआ है।

५८२- **एतेर्लिङि**। एते: षष्ठ्यन्तं, लिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **केऽण:** से **अण:**, **उपसर्गात् ह्रस्व ऊहते:** से **उपसर्गात्** और **ह्रस्व:** तथा **अयङ् यि क्ङिति** से **किति** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्ग से परे इण्-धातु के अण् को ह्रस्व आदेश होता है आर्धधातुक कित् लिङ् के परे होने पर।

निरियात्। इण् धातु के आशीर्लिङ् में निर् उपसर्ग पूर्वक **निर्+ईयात्** है। **एतेर्लिङि** से ई को ह्रस्व होकर **निरियात्** बना।

उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। यह परिभाषा है। एक ही काल में दोनों ओर का आश्रयण करने पर **अन्तादिवच्च** नहीं लगता।

अभि+ईयात् में सवर्णदीर्घ होकर **अभीयात्** बना। यहाँ पर सवर्णदीर्घ होकर बने ई को **अन्तादिवच्च** से पर का आदि भाग मान कर **ईयात्** बन जाने से इण् धातु का अण् मिल जाता है और इधर इसी तरह **ई** को पूर्व का अन्तभाग मान कर **अभि** यह उपसर्ग का भी मान लिया जाता है। इस प्रकार से उपसर्ग से परे इण् के इकार को **एतेर्लिङि** से ह्रस्व हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में एक न्याय उपस्थित होता है- **उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्** अर्थात् **अन्तादिवच्च** से एक ओर आश्रय करके अन्तादिवद्भाव किया जा सकता है किन्तु दोनों ओर आश्रय करके नहीं किया जा सकता। जैसे कि यहाँ पर उपसर्ग और अण् दोनों का आश्रय हो रहा है। अत: अन्तादिवद्भाव नहीं हुआ और उपसर्ग से परे अण् न मिलने के कारण ह्रस्व भी नहीं हुआ- **अभीयात्।**

अण: किम्? समेयात्। अब प्रश्न करते हैं कि इस सूत्र में **अण:** की अनुवृत्ति नहीं लाते तो क्या होता? उत्तर दिया **समेयात्। सम्+आ** ये दो उपसर्ग हैं और **ईयात्** यह आशीर्लिङ् का रूप है। **आ+ईयात्** में गुण होकर **एयात्** बना। **सम्+एयात्=समेयात्** बना। सूत्र में **अण:** कहने से एकार अण् में नहीं आता, अत: ह्रस्व नहीं होता। अन्यथा उक्त सूत्र से ह्रस्व हो जाता और **समियात्** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८३. इणो गा लुङि २।४।४५॥

गातिस्थेति सिचो लुक्। अगात्। ऐष्यत्। **शीङ् स्वप्ने॥१९॥**

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

५८४. शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः। शेते। शयाते।

....

५८३- इणो गा लुङि। इणः षष्ठ्यन्तं, गा लुप्तप्रथमाकं पदं, लुङि वैषयिकं सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लुङ् की विवक्षा में इण् धातु के स्थान पर गा आदेश होता है।

गा आदेश लुङ् की विवक्षा में होता है, अन्यथा **इङ्** धातु के अजादि होने के कारण **आडजादीनाम्** से आट् आगम होने के बाद ही **गा** आदेश होता। यहाँ पर **गा** आदेश पहले होने के कारण **आट्** आगम न होकर **अट्** होता है।

अगात्। इ-धातु से लुङ् की विवक्षा में **गा** आदेश, उसके बाद लुङ् लकार अट् आगम, ति, च्लि, सिच् करके **अ+गा+स्+त्** बना। **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक्, सिच् के अभाव में **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् नहीं हुआ। इस तरह **अगात्** सिद्ध हुआ।

लुङ्- अगात्, अगाताम्, अगुः, अगाः, अगातम्, अगात, अगाम्, अगाव, अगाम।

लृङ्- ऐष्यत्, ऐष्यताम्, ऐष्यन्, ऐष्यः, ऐष्यतम्, ऐष्यत, ऐष्यम्, ऐष्याव, ऐष्याम।

परस्मैपदी धातुओं का विवेचन करके अब आत्मनेपदी धातुओं का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

शीङ् स्वप्ने। शीङ्-धातु **शयन करना** अर्थात् **सोना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। **शी** बचता है। ङित् होने के कारण **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपदी होता है। यह धातु सेट् है अर्थात् इससे परे वलादि आर्धधातुक को इट् होता है।

५८४- शीङः सार्वधातुके गुणः। शीङः षष्ठ्यन्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

सार्वधातुक परे हो तो शीङ् को गुण हो जाता है।

आत्मनेपद में पित् कोई नहीं है, अतः **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हो जाने के कारण गुण नहीं हो पा रहा था, अतः इस सूत्र का आरम्भ किया गया। यह केवल सार्वधातुक के परे होने पर ही अर्थात् लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में ही लगता है।

शेते। शी से लट्, त, शप्, शप् का लुक करके **शी+त** बना। **शीङः सार्वधातुके गुणः** से शी के ईकार को गुण होकर **शे+त** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व होकर **शेते** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **शी+आताम्** में भी गुण और एत्व करके **शे+आते** बना। अय् आदेश होकर **शयाते** सिद्ध होता है।

५८५- शीङो रुट्। शीङः पञ्चम्यन्तं, रुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झोऽन्तः** से **झः** और **अदभ्यस्तात्** से षष्ठ्यन्त में परिणत करके **अतः** की अनुवृत्ति आती है।

शीङ् से परे झ् के स्थान पर आदेश हुए अत् को रुट् का आगम होता है।

रुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५८५. शीङो रुट् ७।१।६॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात्। शेरते। शेषे। शयाथे। शेध्वे। शये। शेवहे। शेमहे। शिश्ये। शिश्याते। शिश्यिरे। शयिता। शयिष्यते। शेताम्। शयाताम्। अशेत। अशयाताम्। अशेरत। शयीत। शयीयाताम्। शयीरन्। शयिषीष्ट। अशयिष्ट। अशयिष्यत।

इङ् अध्ययने॥२०॥ इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः। अधीते। अधीयाते। अधीयते।

....

उकार और टकार की इत्संज्ञा होती है और **र्** शेष रहता है। टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से **अत्** का आद्यवयव होकर बैठता है।

शेरते। शी से झ, शप्, उसका लुक्, झ के स्थान पर **आत्मनेपदष्वनतः** से अत् आदेश करके **शी+अत** बना। **शीङो रुट्** से अत् को रुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **र्+अत=रत, शी+रत** बना। **शीङः सार्वधातुके गुणः** से गुण और **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **शेरते** सिद्ध हुआ।

लट्- शेते, शयाते, शेरते, शेषे, शयाथे, शेध्वे, शये, शेवहे, शेमहे।

शिश्ये। शी से लिट्, त, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, शी को ह्रस्व, त को एश् आदेश करके **शिशी+ए** बना। यण् होकर **शिश्ये** सिद्ध हुआ।

लिट्- शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे, शिश्यिषे, शिश्याथे, शिश्यिढ्वे-शिश्यिध्वे, शिश्ये, शिश्यिवहे, शिश्यिमहे। **लुट्**- शयिता, शयितारौ, शयितारः, शयितासे, शयितासाथे, शयिताध्वे, शयिताहे, शयितास्वहे, शयितास्महे। **लृट्**- शयिष्यते, शयिष्येते, शयिष्यन्ते, शयिष्यसे, शयिष्येथे, शयिष्यध्वे, शयिष्ये, शयिष्यावहे, शयिष्यामहे। **लोट्**- शेताम्, शयाताम्, शेरताम्, शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम्, शयै, शयावहै, शयामहै। **लङ्**- अशेत, अशयाताम्, अशेरत, अशेथाः, अशयाथाम्, अशेध्वम्, अशयि, अशेवहि, अशेमहि। **विधिलिङ्**- शयीत, शयीयाताम्, शयीरन्, शयीथाः, शयीयाथाम्, शयीध्वम्, शयीय, शयीवहि, शयीमहि। **आशीर्लिङ्**- शयिषीष्ट, शयिषीयास्ताम्, शयिषीरन्, शयिषीष्ठाः, शयिषीयास्थाम्, शयिषीढ्वम्-शयिषीध्वम्, शयिषीय, शयिषीवहि, शयिषीमहि। **लुङ्**- अशयिष्ट, अशयिषाताम्, अशयिषत, अशयिष्ठाः, अशयिषाथाम्, अशयिढ्वम्-अशयिध्वम्, अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि। **लृङ्**- अशयिष्यत, अशयिष्येताम्, अशयिष्यन्त, अशयिष्यथाः, अशयिष्येथाम्, अशयिष्यध्वम्, अशयिष्ये, अशयिष्यावहि, अशयिष्यामहि।

इङ् अध्ययने। इङ् धातु **अध्ययन करना** अर्थात् **पढ़ना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है, **इ** शेष रहता है। यह धातु और **इक् स्मरणे** धातु **अधि** उपसर्ग के विना प्रयोग नहीं किये जाते अर्थात् इन दो धातुओं के पूर्व में **अधि** उपसर्ग लगाकर ही प्रयोग किया जाता है।

अधीते। अधि पूर्वक **इ** से लट्, त, शप्, उसका लुक् करके **अधि+इ+त** बना। **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध, **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **इते** बना। **अधि+इते** में सवर्णदीर्घ होने पर **अधीते** बना। द्विवचन में

गाङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८६. गाङ् लिटि २।४।४९।।

इङो गाङ् स्याल्लिटि। अधिजगे। अधिजगाते। अधिजगिरे। अध्येता। अध्येष्यते। अधीताम्। अधीयाताम्। अधीयताम्। अधीष्व। अधीयाथाम्। अधीध्वम्। अध्ययै। अध्ययावहै। अध्ययामहै। अध्यैत। अध्यैयाताम्। अध्यैयत। अध्यैथाः। अध्यैयाथाम्। अध्यैध्वम्। अध्यैयि। अध्यैवहि। अध्यैमहि। अधीयीत। अधीयीयाताम्। अधीयीरन्। अध्येषीष्ट।

....

अधि+इ+आते है, **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से धातु के इकार को इयङ् होकर **इयाते** बना। **अधि+इयाते** में सवर्णदीर्घ होकर **अधीयाते** बनता है। इसी तरह बहुवचन में भी अत् आदेश, इयङ्, सवर्णदीर्घ होकर **अधीयते** बनता है।

लट्- अधीते, अधीयाते, अधीयते, अधीषे, अधीयाथे, अधीध्वे, अधीये, अधीवहे, अधीमहे।

५८६- गाङ् लिटि। गाङ् प्रथमान्तं, लिटि सप्तम्यन्तं (विषये सप्तमी), द्विपदमिदं सूत्रम्। **इङश्च** से **इङः** की अनुवृत्ति है।

लिट् की विवक्षा में इङ् धातु के स्थान पर गाङ् आदेश होता है।

लिटि यह पद विषय-सप्तमी होने के कारण लिट् लकार की विवक्षा में गाङ् आदेश होता है। इसके ङकार की इत्संज्ञा होती है। आत्मनेपदार्थ ङित्करण है। यद्यपि इङ् में ङित् होने से स्थानिवद्भावेन गा में ङित्व आ जाता, तथापि **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्** इस सूत्र में केवल इसी का ग्रहण हो, अन्य गा का ग्रहण न हो, इसको जताने के लिए इसे ङित् किया गया है।

अधिजगे। अधि-पूर्वक इ-धातु से लिट् की विवक्षा में **गाङ् लिटि** से गा आदेश, लिट्, त, एश् आदेश, द्वित्व करके **अधि+गागा+ए** बना। ह्रस्व, **कुहोश्चुः** से चुत्व करके **अधि+जगा+ए** बना। **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करके **अधिजगे** सिद्ध हुआ। इसी तरह आगे भी बनेंगे।

लिट्- अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे, अधिजगिषे, अधिजगाथे, अधिजगिध्वे, अधिजगे, अधिजगिवहे, अधिजगिमहे।

लुट् में **अधि+इ+ता** है, धातु के इकार को सार्वधातुक गुण होकर **अधि+एता** बना। यण् होकर **अध्येता** बनता है। अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः, अध्येतासे, अध्येतासाथे, अध्येताध्वे, अध्येताहे, अध्येतास्वहे, अध्येतास्महे।

लृट् में भी धातु को गुण और **स्य** के सकार को षत्व होकर **अधि+एष्यते** में यण् करके रूप बनते हैं। अध्येष्यते, अध्येष्येते, अध्येष्यन्ते, अध्येष्यसे, अध्येष्येथे, अध्येष्यध्वे, अध्येष्ये, अध्येष्यावहे, अध्येष्यामहे।

लोट् में **लट्** की तरह **अधीते** रूप बना कर **आमेतः** से आम् आदि करके रूप बनते हैं- अधीताम्, अधीयाताम्, अधीयताम्, अधीष्व, अधीयाथाम्, अधीध्वम्, अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै।

लङ् में **आट्** करके धातु के ईकार के साथ **आटश्च** से वृद्धि करने पर **अधि+ऐत** बनता है। इसके बाद यण् आदि करके रूप बनते हैं- अध्यैत, अध्यैयाताम्, अध्यैयत, अध्यैथाः, अध्यैयाथाम्, अध्यैध्वम्, अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि।

वैकल्पिकगाङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८७. विभाषा लुङ्लृङोः २।४।५०॥

इङो गाङ् वा स्यात्।

ङिद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

५८८. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित् १।२।१॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः।

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८९. घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६।४।६६॥

एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके।

अध्यगीष्ट। अध्यैष्ट। अध्यगीष्यत। अध्यैष्यत।

दुह प्रपूरणे॥ २१॥ दोग्धि। दुग्धः। दुहन्ति। धोक्षि। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे, दुह्महे। दुदोह, दुदुहे। दोग्धासि, दोग्धासे। धोक्ष्यति, धोक्ष्यते। दोग्धु-दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि-दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दोहाव। दोहाम। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक्। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्। दुहीत।

....

विधिलङ् में **अधि+इत** बनने पर सीयुट् और सुट्, दोनों सकारों का लोप और इय् के यकार का लोप करके **अधि+इ+ईत** होने पर धातु के इकार के स्थान पर इयङ् करने से **अधि+इय्+ईत** बनता है। सवर्णदीर्घ करके वर्णसम्मेलन करने पर **अधीयीत** सिद्ध होता है। अधीयीत, अधीयीयाताम्, अधीयीरन्,, अधीयीथाः, अधीयीयाथाम्, अधीयीध्वम्, अधीयीय, अधीयीवहि, अधीयीमहि।

आशीर्लिङ् में सीयुट्, सुट्, आर्धधातुकगुण, यण् और षत्व करने पर **अध्येषीष्ट** बनता है। अध्येषीष्ट, अध्येषीयास्ताम्, अध्येषीरन्, अध्येषीष्ठाः, अध्येषीयास्थाम्, अध्येषीढ्वम्, अध्येषीय, अध्येषीवहि, अध्येषीमहि।

५८७- **विभाषा लुङ्लृङोः**। लुङ् च लृङ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लुङ्लृङौ, तयोर्लुङ्लृङोः। विभाषा प्रथमान्तं, लुङ्लङोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इङश्च** से **इङः** और **गाङ् लिटि** से **गाङ्** की अनुवृत्ति आती है।

लुङ् और लृङ् की विवक्षा में इङ् के स्थान पर विकल्प से गाङ् आदेश होता है।

५८८- **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्**। कुट आदिर्येषां ते कुटादयः, बहुव्रीहिः। गाङ् च कुटादयश्च ते गाङ्कुटादयः, तेभ्यः गाङ्कुटादिभ्यः। ञ् च ण् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो ञ्णौ, ञ्णौ इतौ यस्य स ञ्णित् बहुव्रीहिः, न ञ्णित् अञ्णित्, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः।

गाङ् आदेश और कुटादि धातुओं से परे ञित् और णित् से भिन्न प्रत्यय ङिद्वत् होता है।

५८९- **घुमास्थागापाजहातिसां हलि।** घुश्च माश्च स्थाश्च गाश्च पाश्च जहातिश्च साश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो घुमास्थागापाजहातिसा:, तेषां घुमास्थागापाजहातिसाम्। घुमास्थागापाजहातिसां षष्ठ्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दीङो युडचि क्ङिति** से **क्ङिति** की, **आतो लोप इटि च** से **आत:** की और **ईद्यति** से **ईत्** की अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

घु, मा, स्था, गा, पा, हा (ओहाक्) और सा (षो) धातुओं के आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है हलादि कित्, ङित् आर्धधातुक के परे होने पर।

अध्यगीष्ट। अधि-पूर्वक इ-धातु से लुङ् की विवक्षा में **विभाषा लुङ्लृङो:** से वैकल्पिक गाङ् आदेश करके लुङ्, अट्, त, सिच् करके **अधि+अ+गा+स्+त** बना। गा से परे ञित्, णित् से भिन्न प्रत्यय सिच् वाला सकार है, उसको **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्** से **ङिद्वद्भाव** हुआ और **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से गा के आकार के स्थान पर **ईकार** आदेश होकर **अधि+अ+गी+स्+त** बना। ईकार से परे सकार को षत्व और षकार से पर तकार को ष्टुत्व करके **अधि+अ+गीष्ट** बना। **अधि+अ** में यण् करके **अध्यगीष्ट** सिद्ध हुआ। **गाङ् आदेश** न होने के पक्ष में **इ** धातु के अजादि होने के कारण **आडजादीनाम्** से आट् का आगम होकर **अधि+आ+इ+स्+त** बनता है। **आ+इ** में **आटश्च** से वृद्धि करके **ऐ, अधि+ऐ** में यण् होकर **अध्यैस्त** बना। सकार को षत्व और तकार को ष्टुत्व और वर्णसम्मेलन करके **अध्यैष्ट** सिद्ध होता है। इस तरह लुङ् में दो-दो रूप बनते हैं।

लुङ् में (गादेशपक्ष में) अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत, अध्यगीष्ठा:, अध्यगीषाथाम्, अध्यगीढ्वम्, अध्यगीषि, अध्यगीष्वहि, अध्यगीष्महि। **गाङ् के अभाव में**- अध्यैष्ट, अध्यैषाताम्, अध्यैषत, अध्यैष्ठा:, अध्यैषाथाम्, अध्यैढ्वम्, अध्यैषि, अध्यैष्वहि, अध्यैष्महि।

लृङ् में भी गाङ् आदेश विकल्प से होता है। आदेश के पक्ष में ङिद्वद्भाव, ईत्व करके रूप बनते हैं- अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम्, अध्यगीष्यन्त, अध्यगीष्यथा:, अध्यगीष्येथाम्, अध्यगीष्यध्वम्, अध्यगीष्ये, अध्यगीष्यावहि, अध्यगीष्यामहि। गाङ् न होने के पक्ष में- अध्यैष्यत, अध्यैष्येताम्, अध्यैष्यन्त, अध्यैष्यथा:, अध्यैष्येथाम्, अध्यैष्यध्वम्, अध्यैष्ये, अध्यैष्यावहि, अध्यैष्यामहि।

अब उभयपदी धातुओं का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

दुह प्रपूरणे। दुह धातु **प्रपूरण** अर्थात् **दुहना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है और **दुह्** शेष रहता है। अनिट् धातुओं की गणना में आता है। अनिट् होते हुए अजन्त एवं अकारवान् न होने से थल् में नित्य से इट् होता है।

दोग्धि। दुह् से लट्, परस्मैपद में ति, शप्, उसका लुक् करके **दुह्+ति** है। **लघूपधगुण** करके **दोह्+ति** बना। **दादेर्धातोर्घ:** से हकार के स्थान पर **घकार** आदेश और **झषस्तथोर्धोऽध:** से ति के तकार के स्थान पर **धकार** आदेश करके **दोघ्+धि** बना। घकार के स्थान पर **झलां जश् झशि** से जश्त्व **गकार** होकर **दोग्धि** सिद्ध हुआ।

दुग्ध:। द्विवचन में सारी प्रक्रिया **दोग्धि** की तरह किन्तु अपित् सार्वधातुक ङित् होने के कारण गुण का निषेध हुआ। **दुग्+धस्=दुग्ध:।**

दुहन्ति। बहुवचन में झल् परे न मिलने के कारण **दादेधातोर्घः** से घकार नहीं हुआ और तकार एवं थकार न होने के कारण धकार भी नहीं हुआ तो **दुह्+अन्ति** में केवल वर्णसम्मेलन होकर **दुहन्ति** सिद्ध हुआ।

धोक्षि। दुग्धः। दुग्ध। दुह् से सिप्, शप्, शब्लुक् करके **दुह्+सि** है। गुण करके **दादेर्धातोर्घः** से हकार के स्थान घकार आदेश करके **दोघ्+सि** बना। **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से सकार के परे होने के कारण धातु के दकार के स्थान पर भष् होकर धकार होता है। इस तरह **धोघ्+सि** बना। घकार को जश्त्व करके गकार और गकार को सकार के परे रहते **खरि च** से चर्त्व होकर ककार हुआ और ककार से परे सि के सकार को षत्व होकर **धोक्+षि** बना। क् और ष् के संयोग होने पर **क्ष्** होता है। अतः **धोक्षि** यह रूप सिद्ध हुआ। प्रथमपुरुष के द्विवचन की तरह मध्यमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में **दुग्धः, दुग्ध** बन जाते हैं, क्योंकि **झषस्तथोर्धोऽधः** यह सूत्र तकार और थकार दोनों के स्थान पर धकार आदेश करता है।

दोह्मि। दुह्वः। दुह्मः। उत्तमपुरुष में **झल्** के परे न होने के कारण **घकार** आदेश नहीं हुआ। केवल वर्णसम्मेलन करके उक्त तीनों रूप बन जाते हैं।

लट् के परस्मैपद में- दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति, धोक्षि, दुग्धः, दुग्ध, दोह्मि, दुह्वः, दुह्मः।

आत्मनेपद में **पित्** न होने के कारण सभी प्रत्यय **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होते हैं, अतः गुण का प्रसंग नहीं है किन्तु घकार आदेश, सकार और ध्वम् के परे रहने पर दकार को धकार आदेश, केवल **त** के स्थान पर धकार आदेश होकर सिद्ध होते हैं, साथ ही आताम्, झ, आथाम् में अजादि के परे होने के कारण केवल वर्णसम्मेलन होता है। उत्तमपुरुष में परस्मैपद की तरह केवल वर्णसम्मेलन करना होता है। बाकी शप्, शप् का लुक्, एत्व आदि तो होते ही हैं।

लट् के आत्मनेपद में- दुग्धे, दुहाते, दुहते, धुक्षे, दुहाथे, धुग्ध्वे, दुहे, दुह्वहे, दुह्महे।

दुदोह, दुदुहे। लिट् में द्वित्व, हलादिशेष, गुण और गुण का निषेध आदि करके रूप बनते हैं।

लिट् के परस्मैपद में- दुदोह, दुदुहतुः, दुदुहुः, दुदोहिथ, दुदुहथुः, दुदुह, दुदोह, दुदुहिव, दुदुहिम। **आत्मनेपद**- दुदुहे, दुदुहाते, दुदुहिरे, दुदुहिषे, दुदुहाथे, दुदुहिढ्वे-दुदुहिध्वे, दुदुहे, दुदुहिवहे, दुदुहिमहे। अनिट् धातु के होते हुए भी **क्रादिनियम** से लिट् में इट् हो जाता है।

लुट् में ता के तकार को झल् परे मानकर **दादेर्धातोर्घः** से हकार के स्थान पर घकार आदेश और तकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार एवं गुण करके **दोग्धा** बनता है। **परस्मैपद में**- दोग्धा, दोग्धारौ, दोग्धारः, दोग्धासि, दोग्धास्थः, दोग्धास्थ, दोग्धास्मि, दोग्धास्वः, दोग्धास्मः। **आत्मनेपद में**- दोग्धा, दोग्धारौ, दोग्धारः, दोग्धासे, दोग्धासाथे, दोग्धाध्वे, दोग्ध ाहे, दोग्धास्वहे, दोग्धास्महे।

लृट् में स्य के सकार के परे रहते घत्व, भष्त्व, षत्व, चर्त्व, क्षत्व होकर **धोक्ष्यति, धोक्ष्यतः** आदि रूप बनते हैं। **परस्मैपद** में- धोक्ष्यति, धोक्ष्यतः, धोक्ष्यन्ति, धोक्ष्यसि, धोक्ष्यथः, धोक्ष्यथ, धोक्ष्यामि, धोक्ष्यावः, धोक्ष्यामः। **आत्मनेपद में**- धोक्ष्यते, धोक्ष्येते, धोक्ष्यन्ते, धोक्ष्यसे, धोक्ष्येथे, धोक्ष्यध्वे, धोक्ष्ये, धोक्ष्यावहे, धोक्ष्यामहे।

लोट् में सभी कार्य लट् की तरह ही होते है। किन्तु लोट् के विशेष कार्य होकर रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- दोग्धु-दुग्धात्, दुग्धाम्, दुहन्तु, दुग्धि-दुग्धात्, दुग्धम्, दुग्ध,

किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५९०. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १।२।११॥

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। धुक्षीष्ट।

....

दोहानि, दोहाव, दोहाम। **आत्मनेपद** में- दुग्धाम्, दुहाताम्, दुहताम्, धुक्ष्व, दुहाथाम्, धुग्ध्वम्, दोहै, दोहावहै, दोहामहै।

लङ्- में दुह् लङ्, अट् आगम, तिप्, शप्, उसका लुक्, ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **अदुह् त्** बना है। लघूपधगुण होकर **अदोह्+त्** बना। तकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **अदोह्** में पदान्त हकार के स्थान पर **दादेर्धातोर्घः** से घकार आदेश और धातु के आदि दकार को **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से भष् करके घकार को जश्त्व करने पर **अधोग्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **अधोक्, अधोग्** ये दो रूप बनते हैं। द्विवचन में **अदुह्+ताम्** है। घत्व, धत्व, जश्त्व करके **अदुग्धाम्** बनता है। बहुवचन में **अदुह्+अन्ति** है। इकार का लोप, तकार का संयोगान्तलोप करके **अदुह्+अन्** बना। वर्णसम्मेलन करके **अदुहन्** सिद्ध हुआ। सिप् में तिप् की तरह **अधोक्, अधोग्** बनते हैं। थस् और थ में तस् की तरह **अदुग्धम्, अदुग्ध** बनते हैं। उत्तमपुरुष में **अदोहम्, अदुह्व, अदुह्म**।

लङ् के रूप परस्मैपद में- अधोक्-अधोग्, अदुग्धाम्, अदुहन्, अधोक्-अधोग्, अदुग्धम्, अदुग्ध, अदोहम्, अदुह्व, अदुह्म। **आत्मनेपद** में- अदुग्ध, अदुहाताम्, अदुहत, अदुग्धाः, अदुहाथाम्, अधुग्ध्वम्, अदुहि, अदुह्वहि, अदुह्महि।

विधिलिङ्, परस्मैपद- दुह्यात्, दुह्याताम्, दुह्युः, दुह्याः, दुह्यातम्, दुह्यात, दुह्याम्, दुह्याव, दुह्याम। **आत्मनेपद**- दुहीत, दुहीयाताम्, दुहीरन्, दुहीथाः, दुहीयाथाम्, दुहीध्वम्, दुहीय, दुहीवहि, दुहीमहि।

आशीर्लिङ्, परस्मैपद- दुह्यात्, दुह्यास्ताम्, दुह्यासुः, दुह्याः, दुह्यास्तम्, दुह्यास्त, दुह्यासम्, दुह्यास्व, दुह्यास्म।

५९०- लिङ्सिचावात्मनेपदेषु। लिङ् च सिच् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लिङ्सिचौ। लिङ्सिचौ प्रथमान्तम्, आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको झल्** सम्पूर्ण सूत्र, **हलन्ताच्च** से **हलन्तात्** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है। **झल्** जो है यह **लिङ्सिचौ** का विशेषण है और **हलन्तात्** का अर्थ है **समीपवर्ती हल् से।**

इक् के समीप जो हल् उससे परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं तङ् के परे होने पर।

लिङ् लकार में लिङ् के स्थान पर त, आताम् आदि आदेश हुए हैं। उनको सीयुट् करके झलादि होने से वे कित् हो जाते हैं और **लुङ्** लकार का **सिच्** कित् हो जाता है।

धुक्षीष्ट। दुह् से आशीर्लिङ्, त, सीयुट्, सुट् करके **दुह्+सीय्+स्+त** बना है। यहाँ दकारोत्तरवर्ती उकार इक् है, इसके समीप् हल् है **ह्**, उससे परे झलादि लिङ है- **सीय्+स्+त**। अतः **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से उसको कित्व अर्थात् किद्वद्भाव हुआ। कित् के परे होने पर **दुह्** में प्राप्त लघूपधगुण का निषेध हुआ। इसके बाद हकार को घत्व, घकार को जश्त्व करके गकार, दकार को भष्त्व करके धकार बना, सकार के परे होने पर गकार

क्सादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९१. शल इगुपधादनिटः क्सः ३।१।४५॥

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात्। अधुक्षत्।

वैकल्पिकक्सलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५९२. लुग्वा दुह-दिह-लिह-गुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद् दन्त्ये तङि। अदुग्ध, अधुक्षत।

....

को चर्त्व होकर ककार, ककार से परे सकार को षत्व करके **धुक्+षीय्+स्+त** बना। ककार और षकार के संयोग से क्षकार, यकार का लोप करके **धुक्षी+स्+त** बना। सकार को षत्व और उसके योग में तकार को ष्टुत्व होकर **धुक्षीष्ट** सिद्ध हुआ।

आशीर्लिङ् के रूप- धुक्षीष्ट, धुक्षीयास्ताम्, धुक्षीरन्, धुक्षीष्ठाः, धुक्षीयास्थाम्, धुक्षीध्वम्, धुक्षीय, धुक्षीवहि, धुक्षीमहि।

५९१- शल इगुपधादनिटः क्सः। शलः पञ्चम्यन्तम्, इगुपधाद् पञ्चम्यन्तम्, अनिटः षष्ठ्यन्तं, क्सः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** और **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है।

इक् जिसकी उपधा में हो ऐसा जो शल् अन्त वाला धातु, उससे परे अनिट् च्लि के स्थान पर क्स आदेश होता है।

यह सूत्र **च्लेः सिच्** का अपवाद है और ककार की इत्संज्ञा होकर **स** यह अदन्त ही शेष रहता है। क्स और सिच् में यही अन्तर है कि क्स कित् है और अदन्त **स** शेष रहता है सिच् में केवल **स्** बचता है।

अधुक्षत्। दुह् से लुङ्, अट् का आगम, त, च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त, उसे बाधकर **शल इगुपधादनिटः क्सः** से क्स आदेश, अनुबन्धलोप करके **अदुह्+स+त** बना। **स** कित् है, अतः **क्ङिति च** से लघूपधगुण का निषेध हुआ। अब घत्व, भष्त्व, जश्त्व, चर्त्व, षत्व करके **अधुक्षत्** सिद्ध हुआ।

परस्मैपद लुङ् के रूप- अधुक्षत्, अधुक्षताम्, अधुक्षन्, अधुक्षः, अधुक्षतम्, अधुक्षत, अधुक्षम्, अधुक्षाव, अधुक्षाम।

५९२- लुग्वा दुह-दिह-लिह-गुहामात्मनेपदे दन्त्ये। दुहश्च दिहश्च लिहश्च गुह् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः दुहदिहलिहगुहः, तेषां दुहदिहलिहगुहाम्। दन्तेषु भवो दन्त्यः (**शरीरावयवाद्यत्**) लुक् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, दुहदिहलिहगुहां षष्ठ्यन्तम्, आत्मनेपदे सप्तम्यन्तं, दन्त्ये सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **क्सस्याचि** से **क्सस्य** की अनुवृत्ति आती है।

दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं से परे क्स का विकल्प से लुक् होता है दन्त्यादि तङ् के परे होने पर।

आत्मनेपद में दन्त्यादि **त, थास्, ध्वम्** और **वहि** है। इनके परे होने पर विकल्प से और अग्रिम सूत्र से अच् के परे होने पर नित्य से क्स का लोप होता है। **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य अल् अकार मात्र का लोप होता है और स् शेष रहता है।

अदुग्ध, अधुक्षत। दुह् से लुङ् लकार, अट् का आगम, त, च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त था, उसे बाधकर **शल इगुपधादनिटः क्सः** से **क्स** हुआ। उसका त के परे

नित्येन क्सलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५९३. क्सस्याचि ७।३।७२॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः। अधुक्षाताम्। अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः। अधुक्षाथाम्। अधुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। अधुक्षि। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। एवं **दिह उपचये॥२२॥ लिह आस्वादने॥२३॥** लेढि। लीढः। लिहन्ति। लेक्षि। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिलेह, लिलिहे। लेढासि, लेढासे। लेक्ष्यति, लेक्ष्यते। लेढु। लीढाम्। लिहन्तु। लीढि। लेहानि। लीढाम्। अलेट्, अलेड्। अलिक्षत्, अलीढ, अलिक्षत। अलेक्ष्यत्, अलेक्षत।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि॥२४॥

....

होने पर **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** से विकल्प से **स** के अकार का लुक् हुआ। **अदुह्+स्+त** बना। सकार का **झलो झलि** से लोप हुआ। अब घत्व, होकर **अदुघ्+त** बना। सकारादि प्रत्यय न होने के कारण भष्त्व नहीं हुआ। घकार से परे तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश होकर **अदुघ्+ध** बना। घकार को जश्त्व होकर गकार बना। इस तरह **अदुग्ध** सिद्ध हुआ। क्स के लुक् न होने के पक्ष में **अदुह्+स्+त** है। घत्व, भष्त्व, जश्त्व करके **अधुक्+स+त** बना। ककार से परे सकार को षत्व और **क्+ष्** का क्षत्व होकर **अधुक्षत** सिद्ध हुआ।

५९३- **क्सस्याचि।** क्सस्य षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घोर्लोपो लेटि वा** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। अग्रिम सूत्र **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** से **तङ्** का अर्थबोधक **आत्मनेपदे** का अपकर्षण करके **अचि** का विशेष्य बनाया जाता है।

अजादि तङ् अर्थात् आत्मनेपद के परे होने पर क्स का लोप होता है।

यहाँ पर भी **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य अल् **अकार** का लोप होकर **स्** शेष रहता है। अकार के लोप का प्रयोजन **आतो ङितः** से इय् आदेश को रोकना है, अन्यथा स के अदन्त होने पर इय् होकर अनिष्ट रूप बन जाता।

लुङ् प्रथमपुरुष के द्विवचन में **अदुह्+स+आताम्** है। यहाँ पर अजादि तङ् **आताम्** है। अतः **क्सस्याचि** से **स** के अकार का लुक् हुआ, **अदुह्+स्+आताम्** बना। अब घत्व, भष्त्व, जश्त्व, चर्त्व, षत्व, क्षत्व करके **अधुक्ष्+आताम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अधुक्षाताम्** सिद्ध हुआ। बहुवचन में झ के स्थान पर अन्त् आदेश होने से अजादि बन जाता है। अतः क्स के अकार का लोप आदि करके **अधुक्षन्त** बन जाता है। **थास्, ध्वम्, वहि** में विकल्प से लुक् होकर दो-दो रूप बनते हैं और आथाम् में **क्यस्याचि** से नित्य से लुक् होता है। शेष जगहों पर क्स का लुक् नहीं होता।

लुङ् आत्मनेपद के रूप- अदुग्ध-अधुक्षत, अधुक्षाताम्, अधुक्षन्त, अदुग्धाः-अधुक्षथाः, अधुक्षाथाम्, अधुग्ध्वम्-अधुक्षध्वम्, अदुह्वहि-अधुक्षावहि, अधुक्षामहि। **लृङ्-** अधोक्ष्यत्, अधोक्ष्यत।

दिह उपचये। दिह् धातु उपचय अर्थात् वृद्धि, बढ़ाना अर्थ में है। इसके रूप **दुह्** की तरह ही होते हैं। अन्तर यह है कि **दुह्** को गुण होने पर ओकार **दोह्** होता है तो **दिह्**

में इकार को गुण होकर एकार **देह्** बनता है। कुछ आचार्यों ने इसका एक अर्थ **लेप करना** भी माना है और देह, सन्देह, देहिन् आदि शब्दों की सिद्धि भी इसी धातु से बताई है।

लट्-(परस्मैपद)देग्धि, दिग्धः, दिहन्ति। धेक्षि, दिग्धः, दिग्ध, देह्मि, दिह्वः, दिह्मः।

(आत्मनेपद) दिग्धे, दिहाते, दिहते, धिक्षे, दिहाथे, धिग्ध्वे, दिहे, दिह्वहे, दिह्महे।

लिट्- दिदेह, दिदिहतुः, दिदिहुः। दिदिहे, दिदिहाते, दिदिहिरे।

लुट्- देग्धा, देग्धारौ, देग्धारः, देग्धासि। देग्धासे, देग्धासाथे, देग्धाध्वे।

लृट्- धेक्ष्यति, धेक्ष्यतः, धेक्ष्यन्ति। धेक्ष्यते, धेक्ष्येथे, धेक्ष्यध्वे।

लोट्- दिग्धु-दिग्धात्, दिग्धाम्, दिहन्तु, दिग्धि-दिग्धात्, दिग्धम्, दिग्ध, देहानि, देहाव, देहाम। दिग्धाम्, दिहाताम्, दिहताम्, धिक्ष्व, दिहाथाम्, धिग्ध्वम्, देहै, देहावहै, देहामहै।

लङ्- अधेक्-अधेग्, अदिग्धाम्, अदिहन्। अदिग्ध, अदिहाताम्, अदिहत।

विधिलिङ्- दिह्यात्, दिह्याताम्, दिह्युः। दिहीत, दिहीयाताम्, दिहीरन्।

आशीर्लिङ्- दिह्यात्, दिह्यास्ताम्, दिह्यासुः। धिक्षीष्ट, धिक्षीयास्ताम्, धिक्षीरन्।

लुङ्- अधिक्षत्, अधिक्षताम्, अधिक्षन्। अदिग्ध-अधिक्षत, अधिक्षाताम्, अधिक्षन्त। अदिग्धाः-अदिक्षथाः, अधिक्षाताम्, अधिग्ध्वम्-अधिक्षध्वम्, अधिक्षि, अधिह्वहि-अधिक्षावहि, अधिक्षामहि।

लृङ्- अधेक्ष्यत्, अधेक्ष्यताम्, अधेक्ष्यन्। अधेक्ष्यत, अधेक्ष्येताम्, अधेक्ष्यन्त।

लिह आस्वादने। लिह धातु **आस्वादन** अर्थात् **चाटना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने के कारण उभयपदी है। **लिह्** शेष रहता है। दकारादि न होने के कारण **दादेर्धातोर्घः** का विषय नहीं है और बश् प्रत्याहार के वर्ण न होने के कारण **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** का भी विषय नहीं है। हकारान्त होने के कारण **हो ढः** से ढत्व होता है।

लेढि। लिह् से लट्, परस्मैपद तिप्, शप्, उसका लुक्, लघूपधगुण करके **लेह्+ति** बना। **हो ढः** से ढत्व करके **झषस्तथोर्धोऽधः** से ति के तकार को धकार करके **लेढ्+धि** बना। ढकार के योग में धकार को ष्टुत्व होकर ढकार हुआ, **लेढ्+ढि** बना। **ढो ढे लोपः** से पूर्व ढकार का लोप होकर **लेढि** सिद्ध हुआ। द्विवचन आदि अपित् में **सार्वधातुकमपित्** से ङित्त्व हो जाने के कारण गुण का निषेध होता है। अतः **लि+ढस्** बना हुआ है। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से पूर्व के अण् इकार को दीर्घ होकर **लीढः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में झल् परे न होने कारण ढत्व नहीं हुआ, केवल वर्णसम्मेलन करके **लिहन्ति** बनता है। सिप् में गुण होकर **लेढ्+सि** बना है। **षढोः कः सि** से ढकार को ककार और ककार से परे सि के सकार को षत्व और ककार तथा षकार के संयोग में क्षकार **लेक्षि** सिद्ध हुआ। थस् में ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढकार का लोप, दीर्घ करके **लीढः** बनता है। **थ** में इसी प्रकार से **लीढ** बनता है। उत्तमपुरुष में झल् न मिलने के कारण ढत्व नहीं होता। अतः वर्णसम्मेलन करके **लेह्मि, लिह्वः, लिह्मः** सिद्ध होते हैं। इस तरह परस्मैपद में रूप बने- **लेढि, लीढः, लिहन्ति, लेक्षि, लीढः, लीढ, लेह्मि, लिह्वः, लिह्मः**। आत्मनेपद में कोई कठिनाई नहीं है। अपित् होने के कारण गुण कहीं भी नहीं होता है और जहाँ झलादि मिलता है, वहाँ ढत्व होगा, अन्यत्र नहीं। ढकार के बाद तकार और थकार को धकार आदेश और उसके स्थान पर ष्टुत्व होकर ढकार आदि करके ढलोप, दीर्घ आदि होकर रूप बनते हैं- **लीढे, लिहाते, लिहते, लिक्षे, लिहाथे, लीढ्वे, लिहे, लिह्वहे, लिह्महे।**

लिट् में दोनों पदों में **दुह्** की तरह ही रूप बनते हैं- लिलेह, लिलिहतुः, लिलिहुः, लिलेहिथ, लिलिहथुः, लिलिह, लिलेह, लिलिहिव, लिलिहिम। लिलिहे, लिलिहाते, लिलिहिरे, लिलिहिषे, लिलिहाथे, लिलिहिढ्वे-लिलिहिध्वे, लिलिहे, लिलिहिवहे, लिलिहिमहे।

लुट् में लघूपधगुण होकर **लेह्+ता** बनने के बाद ढत्व, धत्व, ष्टुत्व करके **लेढ्+ढा** बनता है। ढकार का लोप करके **लेढा** सिद्ध हो जाता है। लेढा, लेढारौ, लेढारः, लेढासि। लेढासे, लेढासाथे, लेढाध्वे, लेढाहे, लेढास्वहे, लेढास्महे।

लृट् में लघूपधगुण, ढत्व करके **लेढ्+स्यति** बना। **षढोः कः सि** से ढकार को ककार और ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **लेक्+ष्यति** बना। ककार और षकार के संयोग से क्षकार होकर **लेक्ष्यति** सिद्ध हुआ। लेक्ष्यति, लेक्ष्यतः, लेक्ष्यन्ति। लेक्ष्यते, लेक्ष्येते, लेक्ष्यन्ते आदि।

लोट् में लट् की तरह ही कार्य होकर कुछ विशेष कार्य उत्व आदि होते हैं- लेढु-लीढात्, लीढाम्, लिहन्तु। सिप् में- लिह् सि, लिह् हि, लिढ् हि होने के बाद **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से हि को **धि, लिढ् धि,** ष्टुत्व, पूर्व के ढ का लोप, दीर्घ होकर **लीढि** बनता है। तातङ् होने के पक्ष में- लीढात्। आगे- लीढम्, लीढ, लेहानि, लेहाव, लेहाम। **आत्मनेपद** में- लीढाम्, लिहाताम्, लिहताम्, लिक्ष्व, लिहाथाम्, लीढ्वम्, लेहै, लेहावहै, लेहामहै।

लङ् में तिप्, अट् का आगम, शप्, उसका लुक्, इकार का लोप, लघूपधगुण करके **अलेह्+त्** बना है। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से अपृक्त तकार का लोप करके पदान्त हकार को ढत्व, जश्त्व करके, **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **अलेट्-अलेड्** ये दो रूप बनते हैं। सिप् में भी ये ही रूप बनते हैं क्योंकि वहाँ अपृक्त सकार का लोप होता है। अन्य रूपों में कोई विशेषता नहीं है। परस्मैपद के रूप-
अलेट्-अलेड्, अलीढाम्, अलिहन्, अलेट्-अलेड्, अलीढम्, अलीढ, अलेहम्, अलिह्व, अलिह्म। **आत्मनेपद**- अलीढ, अलिहाताम्, अलिहत, अलीढाः, अलिहाथाम्, अलीढ्वम्, अलिहि, अलिह्वहि, अलिह्महि।
विधिलिङ्- लिह्यात्, लिह्याताम्, लिह्युः। लिहीत, लिहीयाताम्, लिहीरन्।
आशीर्लिङ्- लिह्यात्, लिह्यास्ताम्, लिह्यासुः। लिक्षीष्ट, लिक्षीयास्ताम्, लिक्षीरन्।
लुङ् परस्मैपद में- अधुक्षत् की तरह ही- अलिक्षत्, अलिक्षताम्, अलिक्षन्। **आत्मनेपद** में दन्त्यादि प्रत्ययों में **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** से क्स के अकार का वैकल्पिक लुक् और अजादि के परे **क्सस्याचि** से नित्य से क्स के अकार का लोप होता है। इस तरह रूप बनते हैं- अलीढ-अलिक्षत, अलिक्षाताम्, अलिक्षन्त, अलीढाः-अलिक्षथाः, अलिक्षाथाम्, अलीढ्वम्-अलिक्षध्वम्, अलिक्षि, अलिह्वहि-अलिक्षावहि, अलिक्षामहि।
लृङ्- अलेक्ष्यत्, अलेक्ष्यताम्, अलेक्ष्यन्। अलेक्ष्यत, अलेक्ष्येताम्, अलेक्ष्यन्त।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। ब्रूञ् धातु **स्पष्ट बोलना** अर्थ में है जैसे- **रामो ब्रवीति,** किन्तु **अश्वो ब्रवीति** नहीं होगा क्योंकि घोड़े आदि पशुओं की बोली अस्पष्ट है। ञकार की इत्संज्ञा होती है। ञित् होने के कारण **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। चकारान्त अनिट् धातुओं में **वच्** के रूप में इसकी गणना है।

आहादेशविधायकं णलादिविधायकं च विधिसूत्रम्

५९४. ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४॥

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः। आह। आहतुः। आहुः।

थकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९५. आहस्थः ८।२।३५॥

झलि परे। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः।

ईडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५९६. ब्रुव ईट् ७।३।९३॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्।

ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते।

५९४- **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः**। ब्रुवः पञ्चम्यन्तं, पञ्चानां षष्ठ्यन्तम्, आदितः अव्ययपदम्, आहः प्रथमान्तं, ब्रुवः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **विदो लटो वा** से **लटः** और **वा** की तथा **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसः** की अनुवृत्ति आती है।

ब्रू-धातु से परे लट् के स्थान पर हुए तिप्, तस्, झि, सिप् और थस् इन पाँच प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः णल्, अतुस्, उस्, थल् और अथुस् ये पाँच आदेश विकल्प से होते हैं साथ ही ब्रू के स्थान पर आह आदेश भी हो जाता है।

यह सूत्र दो कार्य करता है- प्रथम तो णल् आदि आदेश और दूसरा धातु के स्थान पर **आह** आदेश। अभी तक लिट् लकार के स्थान पर हुए तिप् आदि के स्थान पर णल् आदि आदेश हो रहे थे। यहाँ पर **ब्रू** धातु के लट् के आदि से पाँच प्रत्ययों के स्थान पर भी इस सूत्र से उक्त आदेशों का विधान हुआ है।

आह। ब्रू धातु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **ब्रू+ति** बना। **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** से **ति** के स्थान पर वैकल्पिक **णल्** और **ब्रू** के स्थान पर वैकल्पिक **आह्** आदेश होकर **आह्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आह** सिद्ध हुआ। लिट् न होने के कारण द्वित्व आदि का प्रसंग नहीं है। इसी तरह द्विवचन और बहुवचन में **आहतुः** और **आहुः** ये रूप बनते हैं।

५९५- **आहस्थः**। आहः षष्ठ्यन्तं, थः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलो झलि** से **झलि** की अनुवृत्ति आती है। षष्ठीनिर्दिष्ट होने से **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति होती है।

झल् परे होने पर आह् के अन्त्य अल् हकार के स्थान पर थकार आदेश होता है।

आत्थ। ब्रू से सिप्, उसके स्थान पर थल् आदेश और धातु के स्थान पर **आह्** आदेश करके **आह्+थ** बना। **आहस्थः** से हकार के स्थान पर थकार आदेश हुआ तो **आथ्+थ** बना। पूर्व थकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **आत्थ** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **आहथुः** बनेगा ही। **आह्** और **णल्** आदि न होने के पक्ष में अग्रिम सूत्र लगता है।

वचादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९७. ब्रुवो वचिः २।४।५३।।

आर्धधातुके। उवाच। ऊचतुः। ऊचुः। उवचिथ, उवक्थ। ऊचे। वक्तासि, वक्तासे। वक्ष्यति, वक्ष्यते। ब्रवीतु, ब्रूतात्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि। ब्रवाणि। ब्रूताम्। ब्रवै। अब्रवीत्। अब्रूत। ब्रूयात्, ब्रुवीत। उच्यात्, वक्षीष्ट।

....

५९६- **ब्रुव ईट्।** ब्रुवः पञ्चम्यन्तम्, ईट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि** और **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति** एवं **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

ब्रू से परे हलादि पित् को ईट् का आगम होता है।

इस तरह तिप्, सिप् और मिप् में ही ईट् हो पाता है।

ब्रवीति। ब्रू से लट् में **आह्** आदि न होने के पक्ष में **ब्रू+ति** है। पित् **ति** को **ब्रुव ईट्** से ईट् का आगम होकर **ब्रू+ईति** बना। सार्वधातुकगुण होकर **ब्रो+ईति** हुआ। अव् आदेश होकर **ब्रवीति** सिद्ध हुआ। द्विवचन में पित् न होने के कारण ईट् नहीं होता। अतः **ब्रूतः** बनता है। बहुवचन में **ब्रू+अन्ति** है। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **ब्र्+उव्+अन्ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ब्रुवन्ति** सिद्ध हुआ। सिप् और मिप् में ईट्, गुण और अव् आदेश होते है तथा शेष में कुछ नहीं होता। इस तरह **ब्रू** के परस्मैपद में रूप बनते हैं- आह-ब्रवीति, आहतुः-ब्रूतः, आहुः-ब्रुवन्ति, आत्थ-ब्रवीषि, आहथुः-ब्रूथः, ब्रूथ, ब्रवीमि, ब्रूवः, ब्रूमः। आत्मनेपद में ङित्त्व के कारण कहीं भी गुण नहीं होगा और पित् न होने से ईट् भी नहीं होगा। अजादि प्रत्ययों के परे उवङ् होता है। इस तरह रूप बनते हैं- ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते, ब्रूषे, ब्रुवाथे, ब्रूध्वे, ब्रुवे, ब्रूवहे, ब्रूमहे।

५९७- **ब्रुवो वचिः।** ब्रुवः षष्ठ्यन्तं, वचिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

आर्धधातुक की विवक्षा में ब्रू के स्थान पर वच् आदेश होता है।

उवाच। ब्रू से लिट् लकार में आर्धधातुकसंज्ञा होती ही है, उसकी विवक्षा में **ब्रुवो वचि** से वच् आदेश हुआ। उसके बाद, परस्मैपद में तिप्, णल् होकर **वच्+अ** बना। **वच्** को द्वित्व, हलादिशेष होकर **व+वच्+अ** बना। **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास के वकार को सम्प्रसारण होकर उकार और **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **उवच्+अ** बना। **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **उवाच** सिद्ध हुआ। द्विवचन में तो **वचिस्वपियजादीनां किति** से द्वित्व के पहले ही सम्प्रसारण होकर **उच्+अतुस्** बनता है। उच् को द्वित्व, हलादिशेष की प्रक्रिया में चकार का लोप होकर **उ+उच्+अतुस्** बना। सवर्णदीर्घ, वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग करके **ऊचतुः** सिद्ध होता है। इसी तरह बहुवचन में **ऊचुः** बनता है। **थल्** में क्रादिनियम से इट् की प्राप्ति, **उपदेशेऽत्वतः** से इट् का निषेध, पुनः **ऋतो भारद्वाजस्य** के अनुसार वैकल्पिक इट् होता है। इट् के पक्ष में **वच्+इथ** ऐसी स्थिति है। वच् को द्वित्व, हलादिशेष, सम्प्रसारण करके **उवच्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उवचिथ** सिद्ध हुआ। इट् न होने के पक्ष में चकार को **चोः कुः** से कुत्व करके **उवक्थ** बनता है। इस तरह परस्मैपद लिट् में रूप बनते हैं- उवाच, ऊचतुः, ऊचुः, उवचिथ-उवक्थ, ऊचथुः, ऊच। उवाच-उवच, ऊचिव, ऊचिम।

च्लेरङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९८. अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२।।

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्।

उमागमविधायकं विधिसूत्रम्

५९९. वच उम् ७।४।२०।।

अङि परे। अवोचत्, अवोचत। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

गणसूत्रम्- **चर्करीतं च।** चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य संज्ञा, तददादौ बोध्यम्।

ऊर्णुञ् आच्छादने।।२५।।

....

लिट् के आत्मनेपद में- वचिस्वपियजादीनां किति से पहले ही सम्प्रसारण होकर रूप बनते हैं- ऊचे, ऊचाते, ऊचिरे, ऊचिषे, ऊचाथे, ऊचिध्वे, ऊचे, ऊचिवहे, ऊचिमहे।

लुट्- वच्+तास्+डा, वच्+ता, **चोः कुः** से कुत्व होकर **वक्ता**। वक्ता, वक्तारौ, वक्तारः, वक्तासि। वक्तासे, वक्तासाथे, वक्ताध्वे, वक्ताहे, वक्तास्वहे, वक्तास्महे।

लृट्- वच्+स्यति, कुत्व, षत्व, क्षत्व होकर **वक्ष्यति** बनता है। वक्ष्यते।

लोट्- ब्रवीतु-ब्रूतात्, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु, ब्रूहि-ब्रूतात्, ब्रूतम्, ब्रूत, ब्रवाणि, ब्रवाव, ब्रवाम। **आत्मनेपद**- ब्रूताम्, ब्रुवाताम्, ब्रुवताम्, ब्रूष्व, ब्रुवाथाम्, ब्रूध्वम्, ब्रवै, ब्रवावहै, ब्रवामहै।

लङ्- अब्रवीत्, अब्रूताम्, अब्रुवन्, अब्रवीः, अब्रूतम्, अब्रूत, अब्रवम्, अब्रूव, अब्रूम। **आत्मनेपद**- अब्रूत, अब्रुवाताम्, अब्रुवत, अब्रूथाः, अब्रुवाथाम्, अब्रूध्वम्, अब्रुवि, अब्रूवहि, अब्रूमहि।

विधिलिङ्- ब्रूयात्, ब्रूयाताम्, ब्रूयुः, ब्रूयाः। ब्रुवीत, ब्रवीयाताम्, ब्रुवीरन्।

आशीर्लिङ्- उच्यात्, उच्यास्ताम्, उच्यासुः। वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन्।

५९८- **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्।** अस्यतिश्च वक्तिश्च ख्यातिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अस्यतिवक्तिख्यातयः, तेभ्यः अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः। अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** की, **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **कर्तरि** और **च्लि लुङि** से **लुङि** की अनुवृत्ति आती है।

अस्, वच् और ख्या इन धातुओं से परे च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है।

५९९- **वच उम्।** वचः षष्ठ्यन्तम्, उम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ऋदृशोऽङि गुणः** से **अङि** की अनुवृत्ति आती है।

अङ् के परे होने पर वच् धातु को उम् का आगम होता है।

मकार की इत्संज्ञा होती है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात् परः** से अन्त्य अच् वकारोत्तरवर्ती अकार के बाद और चकार के पहले होता है।

अवोचत्। ब्रू से लुङ् की विवक्षा में **ब्रुवो वचि** से वच् आदेश, लुङ्, अट् का आगम, ति, करके अवच्+त् बना। च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त, उसे बाधकर के

वैकल्पिकवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

६००. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०।।

वा वृद्धिः स्याद् हलादौ पिति सार्वधातुके।

ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णुतः, ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते।

वार्तिकम्- **उर्णोतेराम्नेति वाच्यम्।**

....

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् से **अङ्** आदेश करके **अवच्+अत्** बना। **वच उम्** से उम् का आगम, **अव+उच्+अत्** बना। **अव+उच्** में गुण होकर **अवोच्** बना। आगे वर्णसम्मेलन करके **अवोचत्** सिद्ध हुआ। इसी तरह ही आत्मनेपद में भी होता है।

लुङ्- अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्, अवोचः, अवोचतम्, अवोचत, अवोचम्, अवोचाव, अवोचाम। अवोचत, अवोचेताम्, अवोचन्त, अवोचथाः, अवोचेथाम्, अवोचध्वम्, अवोचे, अवोचावहि, अवोचामहि। **लृङ्-** अवक्ष्यत्। अवक्ष्यत।

चर्करीतं च। इसे गणसूत्र माना जाता है। **चर्करीत** यह यङ्लुगन्त की संज्ञा है, इसे अदादिगण में मानना चाहिए। यह वचन पाणिनि जी ने धातुपाठ के अदादिगण में पढ़ा है। इसका तात्पर्य यह है कि **चर्करीत** को अदादिगण में गिना जाये। पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों ने यङ्लुगन्त धातुओं को **चर्करीत** संज्ञा दी थी। उसी का व्यवहार पाणिनि जी ने यहाँ पर किया है। **चर्करीत** का अदादिगण में पाठ करने से यङ्लुगन्त में **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** से **शप्** का लुक् हो सकता है।

ऊर्णुञ् आच्छादने। ऊर्णुञ् धातु **आच्छादन** अर्थात् **ढकने** के अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **ऊर्णु** शेष रहता है। **ञित्** होने से उभयपदी है और अनेकाच् होने से सेट् है।

६००- **ऊर्णोतेर्विभाषा।** ऊर्णोतेः षष्ठ्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **वृद्धिः** और **हलि** की तथा **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति** और **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर ऊर्णुञ् धातु की विकल्प से वृद्धि होती है।

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् ये सार्वधातुक है और तिप, सिप्, मिप् ये पित् हैं। विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने के कारण वृद्धि का निषेध होता है।

ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **ऊर्णु+ति** है। **ति** के पित् होने के कारण **ऊर्णोतेर्विभाषा** से **णु** के उकार की विकल्प से औ के रूप में वृद्धि होकर **ऊर्णौति** सिद्ध हुआ। वृद्धि न होने के पक्ष में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ओकार गुण होकर **ऊर्णोति** बना। इसी तरह सिप् और मिप् में भी दो-दो रूप बनते हैं। द्विवचन में तो अपित् सार्वधातुक होने के कारण ङित् है, अतः गुण भी निषिद्ध है- **ऊर्णुतः।** बहुवचन में **झि** के स्थान पर **अन्त्** आदेश होने के बाद अजादि मिलता है। अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से णु के उकार के स्थान पर **उवङ्** होकर **ऊर्णुवन्ति** बनता है। आत्मनेपद में सभी अपित् हैं अतः ङित् हो जाते हैं। अतः वृद्धि भी नहीं होगी और गुण भी नहीं होगा।

द्वित्वनिषेधकसूत्रम्

६०१. न न्द्राः संयोगादयः ६।१।३॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। नु शब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः। ऊर्णुनुवुः।

वैकल्पिकङिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

६०२. विभाषोर्णोः १।२।३॥

इडादिप्रत्ययो वा ङित् स्यात्। ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति। ऊर्णौतु, ऊर्णोतु। ऊर्णवानि। ऊर्णवै।

....

लट्, परस्मैपद- ऊर्णौति-ऊर्णोति, ऊर्णुतः, ऊर्णुवन्ति, ऊर्णौषि-ऊर्णोषि, ऊर्णुथः, ऊर्णुथ, ऊर्णौमि-ऊर्णोमि, ऊर्णुवः, ऊर्णुमः। **आत्मनेपद**- ऊर्णुते, ऊर्णुवाते, ऊर्णुवते, ऊर्णुषे, ऊर्णुवाथे, ऊर्णुध्वे, ऊर्णुवे, ऊर्णुवहे, ऊर्णुमहे।

वार्तिकम्- **ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्**। ऊर्णुञ् धातु से लिट् में आम् नहीं होता है। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः** को बाधकर **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम् प्राप्त होता है। उसका यह वार्तिक निषेध करता है।

६०१- **न न्द्राः संयोगादयः**। न् च द् च रश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो न्द्राः। संयोगस्य आदयः संयोगादयः। न अव्ययपदं, न्द्राः प्रथमान्तं, संयोगादयः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अजादेर्द्वितीयस्य** से **अजादेः** और **एकाचो द्वे प्रथमस्य** से **द्वे** की अनुवृत्ति आती है।

अच् से परे संयोग के आदि में स्थित नकार, दकार और रकार को द्वित्व नहीं होता है।

ऊर्णु आदिभूत अच् वाला अनेकाच् धातु है। अतः **अजादेर्द्वितीयस्य** के नियम से द्वितीय एकाच **र्णु** को द्वित्व प्राप्त है। र्णु में रेफ को द्वित्व करना आचार्य को अभीष्ट नहीं था। अतः इस सूत्र से रेफ के द्वित्व का निषेध किया गया। अब **णु** को द्वित्व किया जा सकता है क्या? नहीं, क्योंकि रेफ के योग में नकार को णत्व हुआ था। अब रेफ के अलग हो जाने से **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से णकार भी नकार को प्राप्त होता है। इस तरह **णु** भी **नु** के रूप में आयेगा और केवल **नु** मात्र को द्वित्व होगा।

ऊर्णुनाव। ऊर्णु से लिट्, तिप्, णल् करके ऊर्णु+अ बना। **ऊर्+णु** में णु को नु मानकर द्वित्व हुआ- **ऊर्+णु+नु+अ** बना। नु को **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **ऊर्णुनौ+अ** बना। आव् आदेश और वर्णसम्मेलन करके **ऊर्णुनाव** सिद्ध हुआ। अतुस् के परे वृद्धि प्राप्त नहीं है, अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **नु** के उकार के स्थान पर **उवङ्** होकर **ऊर्णु+न्+उव्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णुनुवतुः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में भी इसी तरह **ऊर्णुनुवुः** बनता है।

६०२- **विभाषोर्णोः**। विभाषा प्रथमान्तम्, ऊर्णोः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विज इट्** से **इट्** और **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से **ङित्** की अनुवृत्ति आती है।

ऊर्णुञ् धातु से परे इट् आदि में हो ऐसा प्रत्यय विकल्प से ङित् होता है।

लिट् में थल्, व, म में इट् होता है और तासि, स्य, सिच् को भी इट् होता है।

इनमें इस सूत्र से वैकल्पिक ङित् का अतिदेश कर देने से **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। गुणाभाव में इट् को अजादि मानकर उवङ् आदेश और ङित् न होने के पक्ष में गुण होकर दो-दो रूप सिद्ध होते हैं।

ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। मध्यमपुरुष के एकवचन सिप्, उसके स्थान पर थल् होने के बाद इट् का आगम और नु को द्वित्व करके **उर्णु+नु+इथ** बना है। यहाँ पर पित् होने के कारण ङित् नहीं था। अतः नित्य सार्वधातुक गुण प्राप्त था किन्तु **विभाषोर्णोः** से ङिद्वद्भाव कर देने के कारण गुणनिषेध हो गया। नु के उकार को उवङ् होकर **ऊर्णु+न्+उव्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णुनुविथ** बना। ङित् वैकल्पिक है, ङित् न होने के पक्ष में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से नु के उकार को गुण होकर **ओकार** हुआ, **ऊर्णुनो+इथ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश और वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णुनविथ** सिद्ध हुआ। द्विवचन और बहुवचन में उवङ् होकर **ऊर्णुनुवथुः, ऊर्णुनुव।** प्रथमपुरुष के एकवचन की तरह उत्तमपुरुष के एकवचन में बनता है किन्तु **णलुत्तमो वा** से वैकल्पिक णित् होने से **ऊणुनाव-ऊणुनव** ये दो रूप बनते हैं। द्विवचन और बहुवचन में इट् आदि में होने के कारण **विभाषोर्णोः** से वैकल्पिक ङित् तो होता है किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्त्व हो जाने के कारण गुण नहीं हो पाता। अतः उवङ् वाले एक-एक ही रूप बनते हैं-**ऊर्णुनुविव, ऊर्णुनुविम।** आत्मनेपद में से, ध्वे, वहे, महे को इट् तो हो जाता है किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से नित्य कित्त्व हो जाने के कारण गुणनिषेध हो जाता है और उवङ् होकर रूप बनते हैं।

लिट् के **परस्मैपद** के रूप- ऊर्णुनाव, ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुवुः, ऊर्णुनुविथ-ऊर्णुनविथ, ऊर्णुनुवथुः, ऊर्णुनव, ऊर्णुनाव-ऊर्णुनव, ऊर्णुनुविव, ऊर्णुनुविम। **आत्मनेदपद में**- ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुवाते, ऊर्णुनुविरे, ऊर्णुनुविषे, ऊर्णुनुवाथे, ऊर्णुनुविढ्वे-ऊर्णुनुविध्वे(**विभाषेटः**) ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुविवहे, ऊर्णुनुविमहे।

लुट् में- इडादिप्रत्यय होने के कारण विकल्प से ङित् होकर ङित् के पक्ष में उवङ् और ङित् के अभाव में गुण अवादेश होकर दो-दो रूप सिद्ध होते हैं। **परस्मैपद के ङित्त्वपक्ष में**- ऊर्णुविता, ऊर्णुवितारौ, ऊर्णुवितारः, ऊर्णुवितासि, ऊर्णुवितास्थः, ऊर्णुवितास्थ, ऊर्णुवितास्मि, ऊर्णुवितास्वः, ऊर्णुवितास्मः। **ङित्त्वाभावपक्षे**- ऊर्णविता, ऊर्णवितारौ, ऊर्णवितारः, ऊर्णवितासि, ऊर्णवितास्थः, ऊर्णवितास्थ, ऊर्णवितास्मि, ऊर्णवितास्वः, ऊर्णवितास्मः। **आत्मनेपद में**- ऊर्णुवितासे-ऊर्णवितासे।

लृट् में भी लुट् की तरह ही दो-दो रूप बनते हैं। **ऊर्णुविष्यति-ऊर्णविष्यति। ऊर्णुविष्यते-ऊर्णविष्यते।**

लोट्- परस्मैपद के प्रथमपुरुष के एकवचन में **लट्** की तरह वैकल्पिक वृद्धि करके **एरुः** से उत्व करके **ऊर्णौतु-ऊर्णोतु** बनते हैं। **तातङ्** होने के पक्ष में ङित् होने के कारण पित् नहीं होगा, क्योंकि **भाष्य में ङिच्च पिन्न, पिच्च ङिन्न** कहा गया है। पित् न होने के कारण वैकल्पिक वृद्धि भी नहीं होगी, अतः **ऊर्णुतात्** बनता है। इस तरह तीन रूप बने। सिप् में हि होने के पक्ष में **ऊर्णुहि** बनता है। यहाँ पर **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से हि का लुक् नहीं होता, क्योंकि वह सूत्र असंयोगपूर्व होने पर करता है यह धातु संयोगपूर्व है और तातङ् के पक्ष में **ऊर्णुतात्** बनता ही है। उत्तमपुरुष में **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् आगम होता है। आगम के पित् होने पर भी हलादि के अभाव में **ऊर्णोतेर्विभाषा** से वैकल्पिक वृद्धि नहीं होती। गुण होकर

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६०३. गुणोऽपृक्ते ७।३।९१॥

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्ध्यपवादः। और्णोत्। और्णोः। ऊर्णुयात्। ऊर्णुयाः। ऊर्णुवीत। ऊर्णूयात्। ऊर्णुविषीष्ट। ऊर्णविषीष्ट।

....

ऊर्णो+आनि, अव् आदेश और वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णवानि**। आत्मनेपद के रूप सामान्य हैं। **परस्मैपद के रूप**- ऊर्णौतु-ऊर्णोतु-ऊर्णुतात्, ऊर्णुताम्, ऊर्णुवन्तु, ऊर्णुहि-ऊर्णुतात्, ऊर्णुतम्, ऊर्णुत, ऊर्णवानि, ऊर्णवाव, ऊर्णवाम। **आत्मनेपद में**- ऊर्णुताम्, ऊर्णुवाताम्, ऊर्णुवताम्, ऊर्णुष्व, ऊर्णुवाथाम्, ऊर्णुध्वम्, ऊर्णवै, ऊर्णवावहै, ऊर्णवामहै।

६०३- **गुणोऽपृक्ते**। गुणः प्रथमान्तम्, अपृक्ते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से हलि, **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति, सार्वधातुके** और **ऊर्णोतेर्विभाषा** से **ऊर्णोतेः** की अनुवृत्ति आती है।

अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर ऊर्णु को गुण होता है।

यह सूत्र **ऊर्णोतेर्विभाषा** का अपवाद है। यहाँ अपृक्त हल् तिप् और सिप् सम्बन्धी ही मिलता है।

और्णोत्। ऊणु से लङ्, अजादि होने के कारण **आडजादीनाम्** से आट् का आगम, तिप्, शप्, शप् का लुक् करके **आ+ऊर्णु+त्** बना। **आ+ऊर्णु** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **और्णु+त्** बना। **णु** के उकार को **ऊर्णोतेर्विभाषा** से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर **गुणोऽपृक्ते** से गुण होकर **और्णोत्** सिद्ध हुआ। यही प्रक्रिया सिप् में भी होती है किन्तु वहाँ पर अपृक्त सकार का रुत्व विसर्ग होकर **और्णोः** बन जाता है। मिप् के स्थान पर अम् आदेश होने के कारण अपृक्त नहीं मिलता। फलतः हलादि न होने से वृद्धि और अपृक्त न होने से विशेष गुण ये दोनों नहीं होते। अतः सार्वधातुकगुण होकर **और्णवम्** बनता है। शेष जगहों पर गुण नहीं होता। आत्मनेपद में भी गुण का प्रसंग नहीं है, क्योंकि न तो पित् मिलता है और न ही अपृक्त।

लङ्- परस्मैपद के रूप- और्णोत्, और्णुताम्, और्णुवन्, और्णोः, और्णुतम्, और्णुत, और्णवम्, और्णुव, और्णुम। **आत्मनेपद**- और्णुत, और्णुवाताम्, और्णुवत, और्णुथाः, और्णुवाथाम्, और्णुध्वम्, और्णवि, और्णुवहि, और्णुमहि।

विधिलिङ् में यासुट् ङित् है, अतः पित् नहीं हो सकता। फलतः वैकल्पिक वृद्धि नहीं होगी और ङित्त्व के कारण सार्वधातुकगुण का भी निषेध होगा। आत्मनेपद में सीयुट् के सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप होने के कारण अच् मिलता है, अतः उवङ् होकर रूप सिद्ध होते हैं। **परस्मैपद**- ऊर्णुयाद्, ऊर्णुयाताम्, ऊर्णुयुः, ऊर्णुयाः, ऊर्णुयातम्, ऊर्णुयात, ऊर्णुयाम्, ऊर्णुयाव, ऊर्णुयाम। **आत्मनेपद**- ऊर्णुवीत, ऊर्णुवीयाताम्, ऊर्णुवीरन्, ऊर्णुवीथाः, ऊर्णुवीयाथाम्, ऊर्णुवीध्वम्, ऊर्णुवीय, ऊर्णुवीवहि, ऊर्णुवीमहि।

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होता है और आत्मनेपद में सीयुट्, सुट्, इट् आदि होकर **उर्णु+इ+सीस्+त** है, **विभाषोर्णोः** से इडादिप्रत्यय को विकल्प से ङित् होकर उवङ् और अङित् के पक्ष में आर्धधातुकगुण

वैकल्पिकवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

६०४. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६।।

इडादौ सिचि वा वृद्धिः परस्मैपदे परे। पक्षे गुणः। और्णावीत्, और्णुवीत्, और्णवीत्। और्णाविष्टाम्, और्णुविष्टाम्, और्णविष्टाम्। और्णुविष्ट, और्णविष्ट। और्णुविष्यत्, और्णविष्यत्। और्णुविष्यत, और्णविष्यत।।

इत्यदादयः।।१३।।

....

होकर रूप बनते हैं। **परस्मैपद**- ऊर्णूयात्, ऊर्णूयास्ताम्, ऊर्णूयासुः आदि। **आत्मनेपद, ङित्त्वपक्ष में उवङ्**- ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णुविषीयास्ताम्, ऊर्णुविषीरन्, ऊर्णुविषीष्ठाः, ऊर्णुविषीयास्थाम्, ऊर्णुविषीढ्वम्-ऊर्णुविषीध्वम्, ऊर्णुविषीय, ऊर्णुविषीवहि, ऊर्णुविषीमहि। **अङित् के पक्ष में गुण**- ऊर्णविषीष्ट, ऊर्णविषीयास्ताम्, ऊर्णविषीरन् आदि।

६०४- **ऊर्णोतेर्विभाषा**। ऊर्णोतेः षष्ठ्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **नेटि** से इटि की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद सिच् के परे होने पर जो इडादि सिच् उसके परे रहते ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्धि होती है।

और्णावीत्। लुङ्, आट् आगम, तिप्, च्लि, सिच् करके ह्रस्व इडागम और दीर्घ ईडागम करने के बाद **आ+ऊर्णु+इस्+ईत्** बना है। ऊर्णु के उकार की **ऊर्णोतेर्विभाषा** से वैकल्पिक वृद्धि करके **आ+ऊर्णौ+इस्+ईत्** बना। **आ+ऊ** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **और्णौ+इस्+ईत्** बना। औकार को आव् आदेश करके **इट ईटि** से सकार का लोप और **इ+ई** में सवर्णदीर्घ करके वर्णसम्मेलन करने पर **और्णावीत्** सिद्ध हुआ। वृद्धि न होने के पक्ष में **विभाषोर्णोः** से वैकल्पिक ङित्त्व होता है। ङित्त्व के पक्ष में उवङ् और अङित् में आर्धधातुकगुण होकर **और्णुवीत्** और **और्णवीत्** ये रूप बनते हैं। इस तरह तीन-तीन रूप बन गये।

लुङ्(परस्मैपद) वृद्धिपक्ष में- और्णावीत्, और्णाविष्टाम्, और्णाविषुः, और्णावीः, और्णाविष्टम्, और्णाविष्ट, और्णाविषम्, और्णाविष्व, और्णाविष्म। **वृद्ध्यभावे ङित्त्वपक्षे उवङ्**- और्णुवीत्, और्णुविष्टाम्, और्णुविषुः, और्णुवीः, और्णुविष्टम, औणुविष्ट, और्णुविषम्, और्णुविष्व, और्णुविष्म। **ङित्त्वाभावे गुणः**- और्णवीत्, और्णविष्टाम्, और्णविषुः आदि।

लृङ् में- इडादिप्रत्यय के परे विकल्प से ङित् होकर ङित्त्वपक्ष में उवङ् और ङित्त्वाभाव में गुण होकर दो-दो रूप बनते हैं। परस्मैपद में- **और्णुविष्यत्-और्णविष्यत्**। आत्मनेपद में- **और्णुविष्यत-और्णविष्यत**।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न पाँच-पाँच अंक के हैं।

१- भ्वादि और अदादिप्रकरण में मूलभूत अन्तर क्या है?

२- लुक् और लोप में क्या अन्तर है?

३- शासिवसिघसीनाञ्च में कौन-कौन पद कहाँ-कहाँ से अनुवृत्त होते हैं?

४- किन-किन लकारों के किन-किन प्रत्ययों को किन-किन सूत्रों से किद्वद्भाव किया जाता है?

५- यदि शप् का लुक् न होता तो अद् धातु के लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कैसे रूप बनते?

६- अस् धातु के ङित् लकारों के रूप लिखिए।

७- वा धातु के टित् लकारों के रूप लिखिए।

८- अदादिगण में पढ़े गये सभी धातुओं के लोट् लकार में मध्यमपुरुष एकवचन के रूपों की सूत्र लगाकर सिद्धि कीजिए।

९- अदादिगणीय सभी आकारान्त धातुओं के लिट् लकार के रूप लिखिए।

१०- किस लकार की प्रक्रिया में आप कठिनाई अनुभव करते हैं, यदि करते हैं तो क्यों?

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अदादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ जुहोत्यादयः

हु दानादनयोः॥१॥

शपः श्लुविधायकं विधिसूत्रम्

६०५. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५॥

शपः श्लुः स्यात्।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

६०६. श्लौ ६।१।१०॥

धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तिङन्तप्रकरण का तीसरा जुहोत्यादिप्रकरण आरम्भ होता है। इस गण के आदि में **हु** धातु है, अतः ह्वादिगण अर्थात् ह्वादिप्रकरण कहना चाहिए था किन्तु जुहोत्यादि कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकरण में **शप्** को **श्लु** (लोप जैसा) होता है और उसके होने के बाद धातु को द्वित्व हो जाता है। जैसे **हु** धातु से **ति** के परे होने पर शप् को श्लु और धातु को द्वित्व होकर **जुहोति** रूप बनता है। गण की इस विशेषता को दिखाने के लिए **जुहोत्यादि** कहा गया। **जुहोतिः (हु धातुः) आदिरस्ति येषां ते जुहोत्यादयः।**

हु धातु **देना** और **खाना** अर्थ में है। लोक में यज्ञ करने के अर्थ में इसका प्रयोग ज्यादा होता है। यह धातु अनिट् है।

६०५- जुहोत्यादिभ्यः श्लुः। जुहोतिरादिर्येषां ते जुहोत्यादयः, तेभ्यो जुहोत्यादिभ्यः। जुहोत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्लुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** से **शपः** की अनुवृत्ति आती है।

जुहोत्यादिगण में पठित धातुओं से परे शप् का श्लु आदेश है।

श्लु भी एक तरह का लोप ही है। जैसे अदादिगण में लुक् को भी लोप माना गया, उसी तरह श्लु को भी लोप ही समझा जाता है।। श्लु करने का विशेष कारण यह है कि श्लु के बाद **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** से प्राप्त प्रत्ययलक्षण कार्य का **न लुमताङ्गस्य** से निषेध किया जाता है जिससे शप् आदि के लुक् होने पर उसको मानकर होने वाले कार्य भी रूक जाते हैं।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६०७. अदभ्यस्तात् ७।१।४।।

झस्यात् स्यात्। **हुश्नुवोरिति** यण्। जुह्वति।

आमादिविधायकं विधिसूत्रमतिदेशसूत्रञ्च

६०८. भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९।।

एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यञ्च।

जुहवाञ्चकार, जुहाव। होता। होष्यति। जुहोतु, जुहुतात्। जुहुताम्। जुह्वतु। जुहुधि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्।

....

६०६- **श्लौ**। श्लौ सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **धातोः** की तथा **एकाचो द्वे प्रथमस्य** से **द्वे** की अनुवृत्ति आती है।

श्लु के परे होने पर धातु को द्वित्व होता है।

जुहोति। हु धातु से लट्-लकार, उसके स्थान पर तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, उसका **जुहोत्यादिभ्यः श्लुः** से श्लु(लोप)। **हु ति** में शप् को श्लु हुआ है, उसके होने पर धातु को **श्लौ** से द्वित्व, **हुहु ति**। इस प्रकरण में द्वित्व होने पर प्रथम की अभ्याससंज्ञा तो होती ही है। अभ्यास हु को **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर हकार को झकार, उसके स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **जु** बना। **जुहु+ति** हुआ। ति को सार्वधातुक मानकर हु के उकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **जुहोति**।

तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्य प्रत्ययों को **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाने के कारण उनके परे होने पर **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। अतः द्विवचन आदि में गुण नहीं होता। **जुहुतः**।

६०७- **अदभ्यस्तात्**। अत् प्रथमान्तम्, अभ्यस्तात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **झोऽन्तः** से **झः** तथा **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से वचनविपरिणाम करके **प्रत्ययादेः** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यस्तसंज्ञक धातु से परे प्रत्यय के आदि अवयव झकार के स्थान पर अत् आदेश होता है।

जुह्वति। हु धातु से प्रथमपुरुष के बहुवचन में झि आया, शप्, उसका श्लु, हु को द्वित्व, **हुहु झि** बना, **कुहोश्चुः** से कुत्व और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **जुहु** बना। **जुहु** की **उभे अभ्यस्तम्** से अभ्यस्तसंज्ञा हुई, **अदभ्यस्तात्** से झि के झकार के स्थान पर अत् आदेश हुआ- **अत्+इ=अति** बना। **जुहु+अति** में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् प्राप्त था, उसे भी बाधकर **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से द्वितीय हु के उकार को यण् होकर व् आदेश हुआ, **जुह्व्+अति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **जुह्वति**।

हु धातु के लट् के रूप- **जुहोति, जुहुतः, जुह्वति। जुहोषि, जुहुथः, जुहुथ। जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः।**

६०८- **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च।** भीश्च ह्रीश्च भा च हुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो भीह्रीभृहुव:, तेषां भीह्रीभृहुवाम्। श्लौ इव इति श्लुवत्, इवार्थे वतिप्रत्यय:। भीह्रीभृहुवां षष्ठ्यन्तं, श्लुवत् अव्ययं, च अव्ययं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **लिटि** और **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय:** और **परश्च** का अधिकार है।

भी, ह्री, भृ और हु धातुओं से वैकल्पिक आम् और आम् के परे होने पर श्लु के समान द्वित्व आदि कार्य भी हों।

यह सूत्र पहले तो आम् करेगा, फिर आम् में श्लुवद्भाव करता है। जिस प्रकार से श्लु को मानकर द्वित्व आदि कार्य होते हैं, उसी प्रकार आम को मानकर भी होंगे। आम् होने के बाद की प्रक्रिया तो **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से **कृ, भू, अस्** का अनुप्रयोग आदि होती ही हैं।

जुहवाञ्चकार। हु-धातु से लिट्, तिप्, णल्, अ। हु+अ में **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** से आम् और श्लुवद्भाव होने पर **श्लौ** से द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, **कुहोश्चु:** से चुत्व, **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होने के बाद **जु+हु+आम्+अ** बना। **आम:** से लिट् का लुक्, **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से **लिट्** को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, **हु+आम्+कृ+लिट्** बना। **तिप्** आदेश होकर उसके स्थान पर णल् आदेश होकर **जु+हु+आम्+कृ+अ** बना। आम् तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण **आर्धधातुकं शेष:** से आर्धधातुकसंज्ञक है। अत: उसके परे होने पर **जुहु** के **उकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयो:** से गुण होकर **जुहो+आम्** बना, अवादेश होकर **जुहवाम्** बना। आगे **कृ+अ** भी है। अब **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, उरत्, रपर, हलादिशेष, चुत्व होकर **चकृ+अ** में **अचो ञ्णिति** से वृद्धि और वर्णसम्मेलन हुआ- **चकार** बना। **जुहवाम्+चकार** में मकार को **मोऽनुस्वार:** से अनुस्वार और **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण करके **जुहवाञ्चकार** सिद्ध हो जाता है। अब आगे भी आप स्वयं बनाइये- जुहवाञ्चक्रतु:, जुहवाञ्चक्रु:। जुहवाञ्चकर्थ, जुहवाञ्चक्रथु:, जुहवाञ्चक्र, जुहवाञ्चकार-जुहवाञ्चकर, जुहवाञ्चकृव, जुहवाञ्चकृम।

भू के अनुप्रयोग होने पर- जुहवाम्बभूव, जुहवाम्बभूवतु:, जुहवाम्बभूवु:। जुहवाम्बभूविथ, जुहवाम्बभूवथु:, जुहवाम्बभूव। जुहवाम्बभूव, जुहवाम्बभूविव, जुहवाम्बभूविम।

अस् के अनुप्रयोग होने पर- जुहवामास, जुहवामासतु:, जुहवामासु:। जुहवामासिथ, जुहवामासथु:, जुहवामास। जुहवामास, जुहवामासिव, जुहवामासिम।

आम् आदि न होने के पक्ष में- हु से लिट्, तिप्, णल्, अ होकर **हु** को **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, चुत्व, जश्त्व आदि होकर **जुहु+अ** में **अचो ञ्णिति** से वृद्धि, **जुहौ+अ,** आव् आदेश, वर्णसम्मेलन होकर **जुहाव** बनता है। अजादि के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से हु के उकार के स्थान पर उवङ्, अनुबन्धलोप, उव् शेष, वर्णसम्मेलन होकर **जुहुवतु:** आदि बनते हैं। इस तरह आप स्वयं- जुहाव, जुहुवतु:, जुहुवु:। जुहोथ-जुहविथ, जुहुवथु:, जुहुव। जुहाव-जुहव, जुहुविव, जुहुविम बनायें।

लुट् लकार के रूप (अनिट्)- होता, होतारौ, होतार:। होतासि, होतास्थ:, होतास्थ। होतास्मि, होतास्व:, होतास्म:।

लृट् के रूप- होष्यति, होष्यत:, होष्यन्ति। होष्यसि, होष्यथ:, होष्यथ। होष्यामि, होष्याव:, होष्याम:।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६०९. जुसि च ७।३।८३॥

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। **ञिभी भये॥२॥** बिभेति।

....

लोट् लकार में- जुहोतु-जुहुतात्, जुहुताम्, जुह्वतु। **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से हि को धि आदेश होकर- जुहुधि-जुहुतात्, जुहुतम्, जुहुत। जुहवानि, जुहवाव, जुहवाम।

लङ् लकार में- **अजुहोत्** और **अजुहुताम्** भी आप बना सकते हैं।

६०९- **जुसि च**। जुसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **क्सस्याचि** से **अचि** तथा **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अजादि जुस् के परे होने पर इगन्त अङ्ग को गुण होता है।

अजुहवुः। हु धातु से प्रथमपुरुष बहुवचन झि, शप्, श्लु, द्वित्वादि, अट् आगम, झि के स्थान पर अत् आदेश प्राप्त, अभ्यस्तसंज्ञक होने के कारण उसे बाधकर **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् आदेश, अनुबन्धलोप, **अजुहु+उस्** में **जुसि च** से गुण, **अजुहो+उस्**, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन, सकार को रुत्वविसर्ग, **अजुहवुः**।

हु धातु के लङ् के रूप- **अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः। अजुहोः, अजुहुतम्, अजुहुत। अजुहवम्, अजुहुव, अजुहुम।**

विधिलिङ् में हु धातु से शप्, श्लु, द्वित्व, यासुट् आदि करने पर निम्नानुसार रूप सिद्ध होते हैं- **जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुहुयुः। जुहुयाः, जुहुयातम्, जुहुयात। जुहुयाम्, जुहुयाव, जुहुयाम।**

आशीर्लिङ् में हु धातु से यासुट् के परे होने पर **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से हु को दीर्घ होकर रूप सिद्ध होते हैं- **हूयात्, हूयास्ताम्, हूयासुः। हूयाः, हूयास्तम्, हूयास्त। हूयासम्, हूयास्व, हूयास्म।**

लुङ् लकार में हु धातु से लुङ्, अट्, तिप्, च्लि, सिच् आदेश, इकार का लोप, अपृक्त हल् को ईट् आगम करके **अहु+स्+ईत्** बना। सिच् वाले सकार के परे होने पर **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से हु के उकार की वृद्धि हुई, **अहौ+स्+ईत्** बना, षत्व और वर्णसम्मेलन करके **अहौषीत्** सिद्ध हुआ। ईट् आगम तो तिप् और सिप् में ही हो सकता है। अन्यत्र वृद्धि, षत्व और ष्टुत्व आदि करके निम्नलिखित रूप बनते हैं- **अहौषीत्, अहौष्टाम्, अहौषुः। अहौषीः, अहौष्टम्, अहौष्ट। अहौषम्, अहौष्व, अहौष्म।**

लृङ् लकार में- **अहोष्यत्, अहोष्यताम्, अहोष्यन्। अहोष्यः, अहोष्यतम्, अहोष्यत। अहोष्यम्, अहोष्याव, अहोष्याम।**

ञिभी भये। ञिभी धातु **डरना** अर्थ में है। **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा होती है और उसका लोप होकर **भी** बचता है। ञीत् होने का फल **ञीतः क्तः** सूत्र की प्रवृत्ति है जो कृदन्तप्रकरणम् में स्पष्ट होगा। इसी धातु से भीम, भयानक, भय, भीति आदि शब्द बनते हैं। यह हु की तरह ही अनिट् है।

वैकल्पिकेकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६१०. भियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५।।

इकारो वास्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभितः, बिभीतः। बिभ्यति। बिभयाञ्चकार, बिभाय। भेता। भेष्यति। बिभेतु, बिभितात्, बिभीतात्। अबिभेत्। बिभीयात्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत्। **ह्री लज्जायाम्।।३।।** जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। ह्रेता। ह्रेष्यति। जिह्रेतु। अजिह्रेत्। जिह्रीयात्। ह्रीयात्। अह्रैषीत्। अह्रेष्यत्।

पॄ पालनपूरणयोः।।४।।

....

बिभेति। भी से लट्, तिप्, शप्, उसका श्लु, **श्लौ** से द्वित्व करके **भीभी+ति** बना। पूर्व की अभ्याससंज्ञा करके **भी** को ह्रस्व और भकार को **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बिभी+ति** बना। द्वितीय भी के ईकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **बिभेति** सिद्ध हुआ। मध्यमपुरुष के एकवचन में **बिभेषि** और उत्तमपुरुष के एकवचन में **बिभेमि** बनते हैं।

६१०- **भियोऽन्यतरस्याम्।** भियः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इद् दरिद्रस्य** से **इत्, ई हल्यघोः** से **हलि, गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** और **अत उत् सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि कित्, ङित् सार्वधातुक के परे होने पर धातु को विकल्प से इकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण भी के ईकार के स्थान पर ह्रस्व इकार हो जाता है। वैकल्पिक होने के कारण एक पक्ष में ह्रस्व इकार और एक पक्ष में दीर्घ ईकार वाले रूप बनते हैं। तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्य सभी **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हैं। झि के झकार के स्थान पर **अदभ्यस्तात्** से **अत्** आदेश होने के कारण हलादि नहीं है, शेष सभी हलादि हैं। अतः दो-दो रूप होंगे।

बिभितः, बिभीतः। भी से तस्, शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, ह्रस्व, जश्त्व करके **बिभी+तस्** बना। **भियोऽन्यतरस्याम्** से **भी** के **ईकार** के स्थान पर वैकल्पिक **इकार** आदेश होकर **बिभितस्** बना। सकार को रुत्व और विसर्ग होकर **बिभितः** सिद्ध हुआ। **इकार** आदेश न होने के पक्ष में **बिभीतः** बनता है। इस तरह दो रूप बन गये। आगे **थस्, थ, वस्, मस्** में भी इस तरह दो-दो रूप बनेंगे।

बिभ्यति। भी से प्रथमपुरुष का बहुवचन झि, उसके झकार के स्थान पर **अदभ्यस्तात्** से **अत्** आदेश होकर **बिभी+अति** बना है। हलादि न मिलने के कारण इकार आदेश नहीं होता किन्तु **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होकर **बिभ्यति** बनता है।

लट् के रूप- बिभेति, बिभितः-बिभीतः, बिभ्यति, बिभेषि, बिभिथः-बिभीथः, बिभिथ-बिभीथ, बिभेमि, बिभिवः-बिभीवः, बिभिमः-बिभीमः।

लिट् में हु की तरह **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** से आम्, द्वित्व, गुण करके **बिभयाम्** बनाकर **कृञ्** का अनुप्रयोग करके **बिभयाञ्चकार, भू** का अनुप्रयोग करके **बिभयाम्बभूव**

और **अस्** का अनुप्रयोग करके **बिभयामास** आदि रूप बनते हैं। आम् आदि न होने के पक्ष में **बिभाय** बन जाता है।

लिट् के रूप- कृ के अनुप्रयोग में- बिभयाञ्चकार, बिभयाञ्चक्रतुः, बिभयाञ्चक्रुः, बिभयाञ्चकर्थ, बिभयाञ्चक्रथुः, बिभयाञ्चक्र, बिभयाञ्चकार-बिभयाञ्चकर, बिभयाञ्चकृव, बिभयाञ्चकृम। **भू** के अनुप्रयोग में- बिभयाम्बभूव, विभयाम्वभूवतुः, बिभयाम्बभूवुः, बिभयाम्बभूविथ, बिभयाम्बभूवथुः, बिभयाम्बभूव, बिभयाम्बभूव, बिभयाम्बभूविव, बिभयाम्बभूविम। **अस्** के अनुप्रयोग में- बिभयामास, बिभयामासतुः, बिभयामासुः, बिभयामासिथ, बिभयामासथुः, बिभयामास, बिभयामास, बिभयामासिव, बिभयामासिम। **आम** आदि न होने के पक्ष में- बिभाय, बिभ्यतुः, बिभ्युः, बिभयिथ-बिभेथ, बिभ्यथुः, बिभ्य, बिभाय-बिभय, बिभ्यिव, बिभ्यिम। **लुट्**- भेता, भेतारौ, भेतारः। **लृट्**- भेष्यति, भेष्यतः, भेष्यन्ति। **लोट्**- बिभेतु-बिभितात्-बिभीतात्, बिभिताम्-बिभीताम्, बिभ्यतु, बिभिहि-बिभीहि-बिभितात्- बिभीतात्, बिभितम्-बिभीतम्, बिभित-बिभीत, बिभयानि, बिभयाव, बिभयाम।

लङ्- अबिभेत्, अबिभिताम्-अबिभीताम्, अबिभयुः। अबिभेः, अबिभितम्-अबिभीतम्, अबिभित-अबिभीत। अबिभयम्, अबिभिव-अबिभीव, अबिभिम-अबिभीम।

विधिलिङ्- में यासुट् होने से हलादि ङित् सावधातुक होने के कारण सर्वत्र वैकल्पिक इत्व हो जाता है। बिभियात्-बिभीयात्, बिभियाताम्-बिभीयाताम्, बिभियुः-बिभीयुः, बिभियाः-बिभीयाः, बिभियातम्-बिभीयातम्, बिभियात-बिभीयात, बिभियाम्-बिभीयाम्, बिभियाव-बिभीयाव, बिभियाम-बिभीयाम।

आशीर्लिङ्- भीयात्, भीयास्ताम्, भीयासुः, भीयाः, भीयास्तम्, भीयास्त, भीयासम्, भीयास्व, भीयास्म। **लुङ्**- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होती है- अभैषीत्, अभैष्टाम्, अभैषुः, अभैषीः, अभैष्टम्, अभैष्ट, अभैषम्, अभैष्व, अभैष्म।

लृङ्- अभेष्यत्, अभेष्यताम्, अभेष्यन्, अभेष्यः, अभेष्यतम्, अभेष्यत, अभेष्यम्, अभेष्याव, अभेष्याम।

ह्री लज्जायाम्। ह्री धातु **लज्जा करना, शरमाना** अर्थ में है। इसमें किसी की इत्संज्ञा नहीं हुई है। आत्मनेपद के निमित्तों से रहित है, अतः परस्मैपदी है। अनिट् है। इसकी प्रक्रिया भी **भी** की तरह ही होती है किन्तु **भियोऽन्यतरस्याम्** नहीं लगेगा और संयोगपूर्व में होने के कारण **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** नहीं लगेगा। उस स्थल पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् हो जायेगा। **ह्री** को द्वित्व होकर हलादिशेष, ह्रस्व होने पर **हि+ह्री** बनता है और **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर झकार औ जश्त्व होकर जकार हो जाता है।

लट्- जिह्रेति, जिह्रीतः, जिह्रियति, जिह्रेषि, जिह्रीथः, जिह्रीथ, जिह्रेमि, जिह्रीवः, जिह्रीमः। **लिट्**- (आम् के पक्ष में) जिह्रयाञ्चकार, जिह्रयाम्बभूव, जिह्रयामास। (आम् के अभाव में) जिह्राय, जिह्रियतुः, जिह्रियुः, जिह्रयिथ-जिह्रेथ, जिह्रियथुः, जिह्रिय, जिह्राय-जिह्रय, जिह्रियिव, जिह्रियिम। **लुट्**- ह्रेता, ह्रेतारौ, ह्रेतारः, ह्रेतासि आदि। **लृट्**- ह्रेष्यति, ह्रेष्यतः, ह्रेष्यन्ति, ह्रेष्यसि आदि। **लोट्**- जिह्रेतु-जिह्रीतात्, जिह्रीताम्, जिह्रियतु, जिह्रीहि-जिह्रीतात्, जिह्रीतम्, जिह्रीत, जिह्रयाणि, जिह्रयाव, जिह्रयाम। **लङ्**- अजिह्रेत्, अजिह्रीताम्, अजिह्रयुः, अजिह्रेः, अजिह्रीतम्, अजिह्रीत, अजिह्रयम्, अजिह्रीव, अजिह्रीम। **विधिलिङ्**- जिह्रीयात्, जिह्रीयाताम्, जिह्रीयुः, जिह्रीयाः, जिह्रीयातम्, जिह्रीयात आदि। **आशीर्लिङ्**- ह्रीयात्, ह्रीयास्ताम्, ह्रीयासुः, ह्रीयाः, ह्रीयास्तम्, ह्रीयास्त, ह्रीयासम् आदि।

इकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६११. अर्तिपिपर्त्योश्च ७।४।७७॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ। पिपर्ति।

उदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६१२. उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

६१३. हलि च ८।२।७७॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि। पिपूर्तः। पिपुरति। पपार।

....

लुङ्- अह्वैषीत्, अह्वैष्टाम्, अह्वैष्ट, अह्वैषीः, अह्वैष्टम्, अह्वैष्ट, अह्वैषम्, अह्वैष्व, अह्वैष्म।
लृङ्- अह्वेष्यत्, अह्वेष्यताम्, अह्वेष्यन्।

पृ पालनपूरणयोः। पृ धातु **पालन करना** और **पूर्ण करना** अर्थ में है। दीर्घ ॠकारान्त है। दीर्घ-ॠकारान्त होने से इसको इट् हो जाता है अर्थात् सेट् है।

६११- अर्तिपिपर्त्योश्च। अर्तिश्च पिपर्तिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्व अर्तिपिपर्ती, तयोः अर्तिपिपर्त्योः। अर्तिपिपर्त्योः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य, भृञामित्** से **इत्** और **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** से **श्लौ** की अनुवृत्ति आती है।

ऋ-धातु और पृ धातु के अभ्यास के अन्त्य वर्ण के स्थान पर इकार आदेश होता है श्लु के परे होने पर।

पिपर्ति। पृ धातु से लट्, तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व करके **पृ+पृ+ति** बना। **उरत्** से अर्, हलादिशेष करके **प+पृ+ति** बना। अभ्यास के अकार के स्थान पर **अर्तिपिपर्त्योश्च** से इकार आदेश करने पर **पि+पृ+ति** बना। अनभ्यास **पृ** के ॠ को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **पिपर्+ति** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **पिपर्ति** सिद्ध हुआ।

६१२- उदोष्ठ्यपूर्वस्य। ओष्ठयोर्भवः ओष्ठ्यः। ओष्ठ्यः पूर्वो यस्य स ओष्ठ्यपूर्वः, तस्य ओष्ठ्यपूर्वस्य। उत् प्रथमान्तम्, ओष्ठ्यपूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ॠत इद्धातोः** से **ॠतः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग का अवयव ओष्ठस्थान वाला वर्ण पूर्व में हो, ऐसा जो ॠवर्ण, तदन्त अङ्ग को उत् अर्थात् ह्रस्व उकार आदेश होता है।

पृ धातु में आदि पकार ओष्ठस्थान वाला है। अतः यह सूत्र लगता है।

६१३- हलि च। हलि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिपि धातो रुर्वा** से **धातोः** तथा **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

हल् के परे होने पर रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा रूप इक् को दीर्घ होता है।

र्वोरुपधाया दीर्घ इकः यह सूत्र पदान्त में दीर्घ करता है और यह सूत्र अपदान्त में भी हल् के परे होने पर दीर्घ करता है। दोनों सूत्रों में बस इतना ही अन्तर है।

पिपूर्तः। तस् में **अर्तिपिपर्त्योश्च** से इत्व करने के बाद **पि+पृ+तस्** बना है।

वैकल्पिकह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

६१४. शृदृप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२॥

एषां लिटि ह्रस्वो वा स्यात्। पप्रतुः।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६१५. ऋच्छत्यॄताम् ७।४।११॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ॠतां च गुणो लिटि। पपरतुः। पपरुः।

....

अलोऽन्त्यस्य की सहायता से अनभ्यास **पॄ** के ॠकार के स्थान पर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत् अर्थात् ह्रस्व उकार आदेश प्राप्त है किन्तु **उरण् रपरः** की सहायता से रपर होकर **उर्** आदेश हो जाता है। इस तरह **पि+पुर्+तस्** बना। **हलि च** से रेफान्त उपधा रूप **पु** के उकार को दीर्घ हुआ, **पिपूर्+तस्** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन और सकार को रुत्व, विसर्ग करके **पिपूर्तः** सिद्ध हुआ।

पिपुरति। बहुवचन में झकार के स्थान पर अत् आदेश होता है, अभ्यास को इत्व, धातु को उत्व करके **पिपुर्+अति** बना है। वर्णसम्मेलन होकर **पिपुरति** सिद्ध हुआ।

लट् के रूप- पिपर्ति, पिपूर्तः, पिपुरति, पिपर्षि, पिपूर्थः, पिपूर्थ, पिपर्मि, पिपूर्वः, पिपूर्मः।

पपार। पॄ से लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, उरत् करके हलादिशेष करने पर **पपॄ+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **पपार** सिद्ध हुआ।

६१४- **शृदृप्रां ह्रस्वो वा**। शृश्च दृश्च पृश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शृदृप्रः, तेषां शृदृप्राम्। शृदृप्रां षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **दयतेर्दिगि लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

कित् लिट् के परे होने पर शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प से ह्रस्व होता है।

अचश्च इस परिभाषा सूत्र की उपस्थिति से **ॠकार** को विकल्प से ह्रस्व किया जाता है।

६१५- **ऋच्छत्यॄताम्**। ऋच्छतिश्च ऋ च ॠत् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः ऋच्छत्यॄतः, तेषाम् ऋच्छत्यॄताम्। ऋच्छत्यॄताम् षष्ठ्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **ऋतश्च संयोगादेर्गुणः** से **गुणः** और **दयतेर्दिगि लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

तुदादि के ऋच्छ धातु, ऋ-धातु और ॠकारान्त धातुओं को गुण होता है।

इको गुणवृद्धी की उपस्थिति से **इक्** अर्थात् **ऋकार** या **ॠकार** के स्थान पर ही गुण हो पाता है।

पप्रतुः, पपरतुः। लिट् के द्विवचन **पॄ+अतुस्** में द्वित्व, उरत्, हलादि शेष करके **पपॄ+अतुस्** बना। **शृदृप्रां ह्रस्वो वा** से दीर्घ ॠकार को वैकल्पिक ह्रस्व होकर **पपृ+अतुस्** बना। ह्रस्वपक्ष में ह्रस्वविधान के सामर्थ्य से **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण नहीं होगा। अतः **इको यणचि** से यण् होकर **पप्+र्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पप्रतुः** सिद्ध हुआ। ह्रस्व न होने के पक्ष में **ऋच्छत्यॄताम्** से ॠकार को गुण होकर अर् हो जाता है, जिससे **पपर्+अतुस्** हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **पपरतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह आगे भी **पप्रुः-पपरुः** आदि बनते हैं।

वैकल्पिकेड्विधायकं विधिसूत्रम्

६१६. वृतो वा ७।२।३८॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि।

परीता, परिता। परीष्यति, परिष्यति। पिपर्तु। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्।

....

लिट् के रूप- पपार, पप्रतुः-पपरतुः, पप्रुः-पपरुः, पपरिथ, पप्रथुः-पपरथुः, पप्र-पपर, पपार-पपर, पप्रिव-पपरिव, पप्रिम-पपरिम।

६१६- **वृतो वा**। वृ च ॠत् च तयोः समाहारद्वन्द्वो वृत्, तस्मात्। वृतः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **इट्** और **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **दीर्घः** और **अलिटि** की अनुवृत्ति आती है।

वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओ से परे इट् को विकल्प से दीर्घ होता है किन्तु लिट् परे हो तो नहीं।

वृ में अनुबन्ध न होने के कारण ङकारानुबन्धक **वृङ्** और ञकारानुबन्धक **वृञ्** ये दोनों लिए जाते हैं। **अलिटि** का तात्पर्य लिट् में नहीं होता और लकारों में हो जाता है।

परीता, परिता। **पॄ** से लुट्, तासि, इट् का आगम, डा आदि करके गुण करने पर **पर्+इ+ता** बना है। **वृतो वा** से इट् को वैकल्पिक दीर्घ करने पर **परीता** बना। दीर्घ न होने के पक्ष में **परिता** ही रहेगा। इस तरह दो रूप बन गये। आगे लृट्-लकार में भी वैकल्पिक दीर्घ होगा।

लुट्- दीर्घपक्षे में- परीता, परीतारौ, परीतारः। दीर्घाभाव में- परिता, परितारौ, परितारः।

लृट्- दीर्घपक्ष में- परीष्यति, परीष्यतः, परीष्यन्ति और दीर्घाभाव में परिष्यति, परिष्यतः आदि।

लोट् में लट् की तरह ही प्रक्रिया होती है किन्तु लोट् में होने वाले विशेष उत्व, हित्व, तातङ्, आट् आगम आदि कार्य भी होंगे। तातङ् में ङित्त्व के कारण गुण का निषेध होकर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्व तथा **हलि च** से दीर्घ हो जाता है। इसी तरह अपित्त्व के कारण ङित् हो जाने से **हि** में भी समझना चाहिए। उत्तमपुरुष में आट् का आगम पित् है, अतः गुण हो जाता है। **झि** में **अदभ्यस्तात्** से झकार को अत् आदेश हो जाता है।

लोट् के रूप- पिपर्तु-पिपूर्तात्, पिपूर्ताम्, पिपरतु, पिपूर्हि-पिपूर्तात्, पिपूर्तम्, पिपूर्त, पिपराणि, पिपराव, पिपराम।

लङ् में- **पॄ** से तिप्, अट्, इकार का लोप, शप्, श्लु, द्वित्व और **अर्तिपिपर्त्योश्च** से अभ्यास को इत्त्व, सार्वधातुकगुण, रपर आदि होने के बाद **अपिपर्+त्** बना। त् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होने पर **अपिपर्** बना। रेफ का विसर्ग हुआ- **अपिपः**। सिप् में भी **अपिपः** ही बनता है। मिप् में यही प्रक्रिया होकर **अपिपरम्** बनता है। शेष जगहों पर **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव होने के कारण गुणनिषेध होकर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्व और **हलि च** से दीर्घ होता है किन्तु झि में **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् और **जुसि च** से गुण होकर **अपिपरुः** बनता है।

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

६१७. सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०॥

अत्र इटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरीष्यत्, अपरिष्यत्।

ओहाक् त्यागे॥५॥ जहाति।

वैकल्पिकेत्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

६१८. जहातेश्च ६।४।११६॥

इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। जहितः।

....

लङ्- अपिपः, अपिपूर्ताम्, अपिपरुः, अपिपः, अपिपूर्तम्, अपिपूर्त, अपिपरम्, अपिपूर्व, अपिपूर्म।

विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने के कारण गुण नहीं होता, अतः **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्त्व तथा **हलि च** से दीर्घ होकर इसके रूप बनते हैं- पिपूर्यात्, पिपूर्याताम्, पिपूर्युः, पिपूर्याः, पिपूर्यातम्, पिपूर्यात, पिपूर्याम्, पिपूर्याव, पिपूर्याम।

आशीर्लिङ् में शप् और श्लु नहीं होते, जिसके कारण द्वित्व आदि नहीं होता। यासुट् को कित्त्व करने के कारण गुण का निषेध होकर उत्व तथा **हलि च** से दीर्घ हो जाता है- पूर्यात्, पूर्यास्ताम्, पूर्यासुः, पूर्याः, पूर्यास्तम्, पूर्यास्त, पूर्यासम्, पूर्यास्व, पूर्यास्म।

अपारीत्। लुङ् में **अपॄ+इस्+ईत्** बनने के बाद **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर सकार का **इट ईटि** से लोप ई+ई में सवर्णदीर्घ होकर **अपारीत्** सिद्ध हुआ।

६१७- सिचि च परस्मैपदेषु। सिचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **वॄतो वा** से **वॄतः**, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **इट्**, **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **दीर्घः** और **न लिङि** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपदपरक सिच् के परे होने पर वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ नहीं होता।

इट् को **वॄतो वा** से प्राप्त वैकल्पिक दीर्घ का निषेध करता है।

अपारिष्टाम्। अपार्+इस्+ताम् में **वॄतो वा** से इट् वाले इकार को वैकल्पिक दीर्घ प्राप्त था, उसका **सिचि च परस्मैपदेषु** से निषेध हुआ। सकार को षत्व और षकार के योग में तकार को ष्टुत्व होकर **अपारिष्टाम्** बना।

लुङ्- अपारीत्, अपारिष्टाम्, अपारिषुः, अपारीः, अपारिष्टम्, अपारिष्ट, अपारिषम्, अपारिष्व, अपारिष्म।

लृङ् में इट् को वैकल्पिक दीर्घ करके अपरीष्यत्, अपरिष्यत् आदि दो-दो रूप बनते हैं।

ओहाक् त्यागे। ओहाक् धातु **छोडने** अर्थ में है। **ओ** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और अन्त्य ककार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है, **हा** बचता है। आत्मनेपद निमित्तों से हीन है, अतः परस्मैपदी है। उपदेश अवस्था में अनुदात्त होने के कारण अनिट् भी है।

जहाति। हा से लट्, तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, ह्रस्व और **कुहोश्चुः** से हकार के स्थान पर चुत्व करके झकार और उसको जश्त्व करके जकार होने पर **जहाति** सिद्ध होता है।

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६१९. ई हल्यघोः ६।४।११३॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलादौ न तु घोः। जहीतः।

आतो लोपविधायकं विधिसूत्रम्

६२०. श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२॥

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके।

जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु-जहितात्-जहीतात्।

....

६१८- जहातेश्च। जहातेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इद् दरिद्रस्य** से **इत्**, **भिञोऽतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्**, **ई हल्यघोः** से **हलि**, **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** और **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि कित्, ङित् सार्वधातुक के परे होने पर ओहाक् धातु को विकल्प से ह्रस्व इकार आदेश होता है।

यह अग्रिम सूत्र **श्नाभ्यस्तयोरातः** का अपवाद है।

६१९- ई हल्यघोः। न घुः अघुः, तस्य अघोः। ई लुप्तप्रथमाकं पदं, हलि सप्तम्यन्तम्, अघोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की, **श्नाभ्यस्तयोरातः** से **आतः** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

श्ना प्रत्यय और अभ्यस्तसंज्ञक धातु के आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है हलादि कित् ङित् सार्वधातुक के परे होने पर किन्तु घुसंज्ञक धातुओं को नहीं।

जहितः, जहीतः। हा से तस्, शप्, श्लु, द्वित्व, ह्रस्व, चुत्व, जश्त्व करके **जहा+तस्** बना है। **सार्वधातुकमपित्** से **तस्** ङित् है और हलादि भी। अतः इसके परे होने पर **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **ई हल्यघोः** से दीर्घ ईकार आदेश प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर **जहातेश्च** से हा के आकार के स्थान पर विकल्प से इकार आदेश हुआ, **जहितः** बना। इकार आदेश न होने के पक्ष में **ई हल्यघोः** से नित्य से ईकार आदेश होकर **जहीतः** बना। इस तरह दो रूप सिद्ध हुए।

६२०- श्नाभ्यस्तयोरातः। श्नाश्च अभ्यस्तश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः श्नाभ्यस्तौ, तयोः श्नाभ्यस्तयोः। श्नाभ्यस्तयोः षष्ठ्यन्तम्, आतः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **श्नसोरल्लोपः** से **लोपः**, **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

कित्, ङित् सार्वधातुक के परे होने पर श्ना-प्रत्यय के तथा अभ्यस्तसंज्ञक धातु के आकार का लोप होता है।

इस सूत्र से केवल झि के परे होने पर ही लोप हो पाता है क्योंकि अन्यत्र हलादि के मिलने के कारण इसे बाधकर **ई हल्यघोः** आदि सूत्र लगते हैं।

जहति। झि के स्थान पर **अदभ्यस्तात्** से अत् आदेश होने के बाद **जहा+अति** बना है। **श्नाभ्यस्तयोरातः** से हा के आकार का लोप होकर **जह्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जहति** सिद्ध हुआ।

आकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६२१. आ च हौ ६।४।११७॥

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ।

जहाहि, जहिहि, जहीहि। अजहात्। अजहुः।

....

लट् के रूप- जहाति, जहितः-जहीतः, जहति, जहासि, जहिथः-जहीथः, जहिथ-जहीथ, जहामि, जहिवः-जहीवः, जहिमः-जहीमः।

आकारान्त होने के कारण **लिट् में पा**-धातु की तरह प्रक्रिया होती है। अन्तर यह है कि पा के पकार के स्थान पर कोई आदेश नहीं होता किन्तु हा धातु के अभ्यास हकार के स्थान पर **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर झकार और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **जकार** आदेश होता है जिससे **जहौ** आदि रूप बनते हैं। **लिट् के रूप**- जहौ, जहतुः, जहुः, जहिथ-जहाथ, जहथुः, जह, जहौ, जहिव, जहिम।

लुट् में अनिट् होने के कारण **हाता, हातारौ, हातारः** आदि रूप बनते हैं। इसी तरह **लृट्** में भी **हास्यति, हास्यतः, हास्यन्ति** आदि।

जहातु-जहितात्-जहीतात्। लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन में लट् की तरह **जहा+ति** बनाकर **एरुः** से उत्व करके **जहातु** बनता है, यहाँ पर कित्, ङित् न होने के कारण इत्व, ईत्व नहीं होते। किन्तु उसके बाद **तातङ्** करके, उसे ङित् मानकर **जहातेश्च** से इत्व और **ई हल्यघोः** से ईत्व करने पर **जहितात्, जहीतात्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। इस तरह तीन रूप बन गये। द्विवचन में **जहिताम्, जहीताम्** बनते हैं। बहुवचन में अत् आदेश होकर **जहा+अति** बना है। **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप और **एरुः** से उत्व करने पर **जहतु** सिद्ध हो जाता है।

६२१- आ च हौ। आ लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, हौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इद् दरिद्रस्य** से **इत्, ई हल्यघोः** से **ई** और **जहातेश्च** से **जहातेः** की अनुवृत्ति आती है।

हि के परे होने पर ओहाक् धातु के आकार के स्थान पर आकार आदेश होता है साथ ही इकार और ईकार आदेश भी होते हैं।

सूत्र में **चकार** पढ़े जाने के कारण, उसके बल पर पूर्व सूत्रों से विहित इकार और ईकार का भी विधान माना जाता है। इस तरह **हि** के परे होने पर आकार, इकार और ईकार वाले तीन रूप हो जाते हैं।

जहाहि, जहिहि, जहीहि। लोट् के सिप् में **जहा+हि** बना है। **सेर्ह्यपिच्च** से हि के अपित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हुआ है। अतः पूर्व सूत्रों से इकार और ईकार आदेश प्राप्त थे किन्तु **आ च हौ** से आकार आदेश का विधान हुआ अर्थात् **हा** के आकार के स्थान पर एक पक्ष में आकार ही रहा, चकारात् इकार और ईकार आदेश भी हुए। इस तरह उक्त तीन रूप सिद्ध हुए। **लोट्** के रूप- जहातु-जहितात्-जहीतात्, जहिताम्-जहीताम् जहतु, जहाहि-जहिहि-जहीहि-जहितात्-जहीतात्, जहितम्-जहीतम्, जहित-जहीत, जहानि, जहाव, जहाम।

लङ् में पूर्ववत् ही है किन्तु झि के स्थान पर **सिचभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् करने पर **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप होता है। इस तरह रूप बनते हैं- अजहात्, अजहिताम्-अजहीताम्, अजहुः, अजहाः, अजहितम्-अजहीतम्, अजहित-अजहीत, अजहाम्, अजहिव-अजहीव, अजहिम-अजहीम।

आकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६२२. लोपो यि ६।४।११८॥

जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके। जह्यात्। एर्लिङि। हेयात्। अहासीत्। अहास्यत्। **माङ् माने शब्दे च॥६॥**

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६२३. भृञामित् ७।४।७६॥

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ।

मिमीते। मिमाते। मिमते। ममे। माता। मास्यते। मिमीताम्। अमिमीत। मिमीत। मासीष्ट। अमास्त। अमास्यत। **ओहाङ् गतौ॥७॥** जिहीते। जिहाते। जिहते। जहे। हाता। हास्यते। जिहीताम्। अजिहीत। जिहीत। हासीष्ट। अहास्त। अहास्यत। **डुभृञ् धारणपोषणयोः॥८॥** बिभर्ति। बिभृतः। बिभ्रति। बिभृते। बिभ्राते। बिभ्रते। बिभराञ्चकार, बभार। बभर्थ। बभृव। बभृम। बिभराञ्चक्रे, बभ्रे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। बिभर्तु। बिभराणि। बिभृताम्। अबिभः। अबिभृताम्। अबिभरुः। अबिभृत। बिभृयात्। बिभ्रीत। भ्रियात्, भृषीष्ट। अभार्षीत्, अभृत। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। **डुदाञ् दाने॥९॥** ददाति। दत्तः। ददति। दत्ते। ददाते। ददते। ददौ, ददे। दातासि, दातासे। दास्यति, दास्यते। ददातु।

....

६२२- **लोपो यि।** लोपः प्रथमान्तं, यि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **जहातेश्च** से **जहातेः** की अनुवृत्ति आती है।

यकारादि सार्वधातुक के परे होने पर ओहाक् धातु के आकार का लोप होता है।

विधिलिङ् सार्वधातुक है और आशीर्लिङ् **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञक है। अतः यह सूत्र विधिलिङ् में ही लगता है।

जह्यात्। विधि आदि अर्थों में लिङ्, तिप्, इकार का लोप, शप्, श्लु, द्वित्व, चुत्व, जश्त्व करके यासुट् करने पर **जहा+यात्** बना है। **लोपो यि** से **हा** के आकार के लोप होने पर **जह्+यात्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जह्यात्** सिद्ध हुआ। जह्यात्, जह्याताम्, जह्युः, जह्याः, जह्यातम्, जह्यात, जह्याम्, जह्याव, जह्याम।

हेयात्। आर्धधातुक में शप्, श्लु नहीं होते। अतः द्वित्वादि भी नहीं होते हैं। **हा+यात्** बना है। **एर्लिङि** से आकार के स्थान पर एत्व करके **हेयात्** बन जाता है। हेयात्, हेयास्ताम्, हेयासुः, हेयाः, हेयास्तम्, हेयास्त, हेयासम्, हेयास्व, हेयास्म।

अहासीत्। लुङ् में **अहा+त्** है। पा-धातु की तरह **यमरमनमातां सक् च** से सक् आगम, सिच् को इट् आदि करके **अहासीत्** बन जाता है। अहासीत्, अहासिष्टाम्, अहासिषुः, अहासीः, अहासिष्टम्, अहासिष्ट, अहासिषम्, अहासिष्व, अहासिष्म।

लृङ्- अहास्यत्, अहास्यताम्, अहास्यन् आदि।

अब जुहोत्यादि में आत्मनेपदी धातुओं का कथन करते हैं-

माङ् माने शब्दे च। माङ् धातु **नापना** तथा **शब्द करना** अर्थ में है। **ङकार** की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने के कारण आत्मनेपदी है। यह धातु अनिट् है।

६२३- **भृञामित्।** भृञां षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** से **त्रयाणाम्** और श्लौ और **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

श्लु के परे होने पर भृञ्, माङ् और ओहाङ् धातुओं के अभ्यास को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

यह सूत्र **श्लु** के परे होने पर अभ्यास को **इकार** करता है। अतः लिट् में नहीं लगेगा।

मिमीते। मा धातु से लट्, त, शप्, श्लु, द्वित्व आदि करके अभ्याससंज्ञा करके ह्रस्व करने पर **ममा+त** बना है। **भृञामित्** से अभ्यास **म** के अकार के स्थान पर इकार आदेश होकर **मिमा+त** बना। हलादि त के परे होने पर **ई हल्यघोः** से **मा** के आकार के स्थान पर **ईकार** आदेश होकर **मिमी+त** बना। आत्मनेपद होने के कारण **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **मिमीते** सिद्ध हुआ। अजादि आताम् के परे होने पर **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप होता है, **मिमाते।** झ के स्थान पर अत् आदेश होने के बाद यह भी अजादि ही है। अतः आकार का लोप होता है। **मिम्+अते=मिमते।** हलादि कित्, ङित् परे रहते तो **ई हल्यघोः** से ईत् होता है।

लट्- मिमीते, मिमाते, मिमते, मिमीषे, मिमाथे, मिमीध्वे, मिमे, मिमीवहे, मिमीमहे।

लिट् में- **ममा+ए** बनने के बाद **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होकर **ममे** बनता है। इसी तरह आगे भी होता है। रूप- ममे, ममाते, ममिरे, ममिषे, ममाथे, ममिध्वे, ममे, ममिवहे, ममिमहे।

लुट्- माता, मातारौ, मातारः। **लृट्**- मास्यते, मास्येते, मास्यन्ते आदि।

लोट्- मिमीताम्, मिमाताम्, मिमताम्, मिमीष्व, मिमाथाम्, मिमीध्वम्, मिमै, मिमावहै, मिमामहै।

लङ्- अमिमीत, अमिमाताम्, अमिमत, अमिमीथाः, अमिमाथाम्, अमिमीध्वम्, अमिमि, अमिमीवहि, अमिमीमहि। **विधिलिङ्**- मिमीत, मिमीयाताम्, मिमीरन्, मिमीथाः, मिमीयाथाम्, मिमीध्वम्, मिमीय, मिमीवहि, मिमीमहि। **आशीर्लिङ्**- मासीष्ट, मासीयास्ताम्, मासीरन्, मासीष्ठाः, मासीयास्थाम्, मासीध्वम्, मासीय, मासीवहि, मासीमहि। **लुङ्**- अमास्त, अमासाताम्, अमासत, अमास्थाः, अमासाथाम्, अमाध्वम्, अमासि, अमास्वहि, अमास्महि। **लृङ्**- अमास्यत, अमास्येताम्, अमास्यन्त।

ओहाङ् गतौ। ओहाङ् धातु **जाना** अर्थ में है। **ओ** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से और ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। केवल **हा** शेष रहता है। ङित् होने के कारण आत्मनेपदी है। अनिट् भी है। श्लु होने पर **भृञामित्** से अभ्यास को इकार आदेश होता है। **मा**-धातु के रूप बनाने के बाद इसकी प्रक्रिया में कोई कठिनाई नहीं है। द्वित्व और अभ्याससंज्ञा करके हा को **कुहोश्चुः** से चुत्व और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जकार हो जाता है।

लट्- जिहीते, जिहाते, जिहते, जिहीषे, जिहाथे, जिहीध्वे, जिहे, जिहीवहे, जिहीमहे।

लिट्- जहे, जहाते, जहिरे, जहिषे, जहाथे, जहिढ्वे-जहिध्वे, जहे, जहिवहे, जहिमहे।

लुट्- हाता, हातारौ, हातारः। **लृट्**- हास्यते, हास्येते, हास्यन्ते। **लोट्**- जिहीताम्, जिहाताम्,

जिहताम्, जिहीष्व, जिहाथाम्, जिहीध्वम्, जिहै, जिहावहै, जिहामहै। **लङ्-** अजिहीत, अजिहाताम्, अजिहत, अजिहीथाः, अजिहाथाम्, अजिहीध्वम्, अजिहि, अजिहीवहि, अजिहीमहि। **विधिलिङ्-** जिहीत, जिहीयाताम्, जिहीरन् आदि। **आशीर्लिङ्-** हासीष्ट, हासीयास्ताम्, हासीरन्, हासीष्ठाः आदि। **लुङ्-** अहास्त, अहासाताम्, अहासत, अहास्थाः, अहासाथाम्, अहाध्वम्, अहासि, अहास्वहि, अहास्महि। **लृङ्-** अहास्यत, अहास्येताम्, अहास्यन्त आदि।

डु-भृञ् धारणपोषणयोः। डुभृञ् धातु **धारण करना** और **पोषण करना** अर्थों में है। **आदिर्ञिटुडवः** से डु की इत्संज्ञा और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। **भृ** शेष रहता है। ञित् होने के कारण **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। डु की इत्संज्ञा का फल आगे कृदन्त में **ड्वितः क्त्रिः** आदि सूत्रों में मिलेगा। सार्वधातुक लकारों में शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास के ऋकार के स्थान पर **भृञामित्** से इत्व, रपर्, हलादि शेष आदि कार्य होते हैं।

बिभर्ति। भृ से लट्, परस्मैपद में तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व करके **भृभृ+ति** बना। अभ्यास के ऋकार के स्थान पर **भृञामित्** से रपर सहित इकार आदेश, हलादि शेष, **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बिभृ+ति** बना। भृ को सार्वधातुक गुण होकर **बिभर्ति** सिद्ध हुआ। तस् आदि में **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होने के कारण गुण नहीं होता- **बिभृतः**। झि के झकार को अत् आदेश **बिभृ+अति** बना है। गुणाभाव है, अतः यण् होकर **बिभ्+र्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बिभ्रति** सिद्ध हुआ। आत्मनेपद में तो पित् के अभाव में सभी ङित् हैं, अतः गुण का प्रसंग ही नहीं है।

लट्- (परस्मैपद) बिभर्ति, बिभृतः, बिभ्रति, बिभर्षि, बिभृथः, बिभृथ, बिभर्मि, बिभृवः, बिभृम। (आत्मनेपद) बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते, बिभृषे, बिभ्राथे, बिभृध्वे, बिभ्रे, बिभृवहे, बिभृमहे।

बिभराञ्चकार। लिट् में **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** से वैकल्पिक आम् और श्लुवद्भाव होता है। आम् होने के पक्ष में **भृ+आम, भृ+भृ+आम्, भर्+भृ+आम्, भ+भृ+आम्, ब+भृ+आम्** होने के बाद **भृञामित्** से अभ्यास के अकार को इकार आदेश होकर **बिभृ+आम्** बना। आम् के परे भृ को गुण होकर अर् आदेश, **बिभर्+आम्=बिभराम्** बना। इसके बाद कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि कार्य होते हैं।

लिट्- आम् और कृ के अनुप्रयोग के पक्ष में- बिभराञ्चकार, बिभराञ्चक्रतुः, बिभराञ्चक्रु आदि। आत्मनेपद में- बिभराञ्चक्रे, बिभराञ्चक्राते, बिभराञ्चक्रिरे आदि। **भू के अनुप्रयोग में-** बिभराम्बभूव, बिभराम्बभूवतुः, बिभराम्बभूवुः आदि। **अस् के अनुप्रयोग में-** बिभरामास, बिभरामासतुः, बिभरामासुः आदि। **आम्, श्लुवद्भाव न होने के पक्ष में-** बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः, बभर्थ, बभ्रथुः, बभ्र, बभार-बभर, बभृव, बभृम। आत्मनेपद में- बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे, बभृषे, बभ्राथे, बभृढ्वे, बभ्रे, बभृवहे, बभृमहे। **लुट्-** भर्ता, भर्तारौ, भर्तारः, भर्तासि, भर्तासे। **लृट्** में **ऋद्धनोः स्ये** से इट् हो जाता है। भरिष्यति, भरिष्यते। **लोट्- (परस्मैपद)** बिभर्तु-बिभृतात्, बिभृताम्, बिभ्रतु, बिभृहि-बिभृतात्, बिभृतम्, बिभृत, बिभराणि, बिभराव, बिभराम। **(आत्मनेपद)** बिभृताम्, बिभ्राताम्, बिभ्रताम्, बिभृष्व, बिभ्राथाम्, बिभृध्वम्, बिभरै, बिभरावहै, बिभरामहै। **लङ्- (परस्मैपद)** अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः, अबिभः, अबिभृतम्, अबिभृत, अबिभरम्, अबिभृव, अबिभृम। **(आत्मनेपद)** अबिभृत, अबिभ्राताम्, अबिभ्रत, अबिभृथाः, अबिभ्राथाम्, अबिभृध्वम्, अबिभ्रि, अबिभृवहि, अबिभृमहि। **विधिलिङ्- (परस्मैपद)** बिभृयात्, बिभृयाताम्, बिभृयुः, बिभृयाः, बिभृयातम्, बिभृयात,

घुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

६२४. दाधा घ्वदाप् १।१।२०।।

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना। **घ्वसोरित्येत्वम्।** देहि। दत्तम्। अददात्, अदत्त। दद्यात्, ददीत। देयात्, दासीष्ट। अदात्। अदाताम्, अदुः।

....

बिभृयाम्, बिभृयाव, बिभृयाम। **(आत्मनेपद)** बिभ्रीत, बिभ्रीयाताम्, बिभ्रीरन्, बिभ्रीथाः, बिभ्रीयाथाम्, बिभ्रीध्वम्, बिभ्रीय, बिभ्रीवहि, बिभ्रीमहि।

आशीर्लिङ्- (परस्मैपद) रिङ् शयग्लिङ्क्षु से ऋ को **रिङ्** होकर भ्रियात्, भ्रियास्ताम्, भ्रियासु, भ्रियाः, भ्रियास्तम, भ्रियास्त, भ्रियासम्, भ्रियास्व, भ्रियास्म। **(आत्मनेपद)** भृषीष्ट, भृषीयास्ताम्, भृषीरन्, भृषीष्ठाः, भृषीयास्थाम्, भृषीध्वम्, भृषीय, भृषीवहि, भृषीमहि।

लुङ्- परस्मैपद में **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होती है किन्तु आत्मनेपद में **उश्च** से सिच् को कित् किये जाने के कारण वृद्धि नहीं होती और त, थास्, ध्वम् में **ह्रस्वादङ्गात्** से सिच् का लोप हो जाता है। **रूप- (परस्मैपद)** अभार्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्षुः, अभार्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट, अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म। **(आत्मनेपद)** अभृत, अभृषाताम्, अभृषत, अभृष्ठाः, अभृषाथाम्, अभृढ्वम्, अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि।

लृङ्- अभरिष्यत्, अभरिष्यत।

यहाँ तक **भृञामित्** के तीनों धातुओं का वर्णन हो गया। अब आगे के धातुओं में अभ्यास को इत्व नहीं होगा।

डुदाञ् दाने। डुदाञ् धातु **देना** अर्थ में है। **डु** और **ञ्** की इत्संज्ञा होती है और **दा** शेष रहता है। ञित् होने के कारण उभयपदी है। अनिट् होने पर भी थल् में भारद्वाजनियम के कारण इट् हो जाता है। यह धातु **दाधाघ्वदाप्** से घुसंज्ञक है।

ददाति। दा से लट्, तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, ह्रस्व करके **ददाति** बन जाता है।

दत्तः। ददा+तस् में **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप करके **दद्+तस्** बना। **खरि च** से दकार को चर्त्व होकर तकार हो जाता है। **दत्तः।** बहुवचन में **अदभ्यस्तात्** से अत् आदेश होकर आकार के लोप से **ददति** बनता है। आत्मनेपद में सर्वत्र ङिद्वद्भाव होने के कारण आकार का लोप होकर यथासम्भव चर्त्व हो जाता है।

लट्- (परस्मैपद) ददाति, दत्तः, ददति, ददासि, दत्थः, दत्थ, ददामि, दद्वः, दद्मः। **(आत्मनेपद)** दत्ते, ददाते, ददते, दत्से, ददाथे, दद्ध्वे, ददे, दद्वहे, दद्महे।

लिट् के परस्मैपद में **पा**-धातु की तरह ही रूप बनते हैं। आत्मनेपद में सर्वत्र **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होता है। **(परस्मैपद)** ददौ, ददतुः, ददुः, ददिथ-ददाथ, ददथुः, दद, ददौ, ददिव, ददिम। **(आत्मनेपद)** ददे, ददाते, ददिरे, ददिषे, ददाथे, ददिध्वे, ददे, ददिवहे, ददिमहे। **लुट्-** दाता, दातारौ, दातारः, दातासि। दातासे, दातासाथे, दाताध्वे आदि। **लृट्-** दास्यति, दास्यतः, दास्यन्ति। दास्यते, दास्येते, दास्यन्ते आदि।

लोट्, परस्मैपद, प्रथमपुरुष में **एरुः** से उत्व आदि होकर ददातु-दत्तात्, दत्ताम् ददतु सरलता से बन जाते हैं।

इदन्तादेशविधायकं विधिसूत्रं किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रञ्च

६२५. स्थाघ्वोरिच्च १।२।१७॥

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे।

अदित। अदास्यत्, अदास्यत। **डुधाञ् धारणपोषणयोः॥१०॥** दधाति।

....

६२४- **दाधा घ्वदाप्।** दाश्च दाश्च दाश्च तेषामेकशेषो दाः, धाश्च धाश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो धौ, दाश्च धौ च तेषामितरेतरद्वन्द्वो दाधाः। न दाप्, अदाप्। दाधाः प्रथमान्तं, घु लुप्तप्रथमाकम्, अदाप् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

दा-रूप वाले तथा धा-रूप वाले धातुओं की घुसंज्ञा होती है दाप् और दैप् को छोड़कर।

जो धातु स्वयं **दा** एवं **धा** के रूप में हों या आदेश आदि होकर **दा** एवं **धा** के रूप में आ जाती हों, ऐसी धातुओं की घुसंज्ञा की जाती है। कुछ धातु स्वतः दा एवं धा रूप वाली हैं और कुछ धातुओं में लोप, आदेश आदि होकर दा एवं धा के रूप में आ जाते हैं। उन सभी का यहाँ पर ग्रहण है किन्तु **दाप्** धातु में पकार के लोप तथा **दैप्** धातु में पकार के लोप एवं **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होकर दा के रूप में आने वाले इन दो धातुओं की घुसंज्ञा नहीं होती। घुसंज्ञा के अनेक प्रयोजन हैं, जैसे- **घुमास्थागापाजहातिसां हलि, घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च, एर्लिङि, गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु, स्थाघ्वोरिच्च, ई हल्यघोः** आदि। यह दा धातु इस सूत्र से घुसंज्ञक है।

देहि, दत्तात्। दा से लोट, सिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास को ह्रस्व करके **ददा+सि** बना है। सि के स्थान पर **सेर्ह्यपिच्च** से हि आदेश करके **ददा+हि** बना। घुसंज्ञक होने के कारण **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से घु के आकार को एत्व और अभ्याससंज्ञक द का लोप होकर **देहि** सिद्ध हुआ। हि के स्थान पर तातङ् होने के पक्ष में **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप होकर **दत्तात्** बनता है। शेष रूप सरल ही हैं।

लोट्-(परस्मैपद) ददातु-दत्तात्, दत्ताम्, ददतु, देहि-दत्तात्, दत्तम्, दत्त, ददानि, ददाव, ददाम। **(आत्मनेपद)** दत्ताम्, ददाताम्, ददताम्, दत्स्व, ददाथाम्, दद्ध्वम्, ददै, ददावहै, ददामहै। **लङ्- (परस्मैपद)** अददात्, अदत्ताम्, अददुः, अददाः, अदत्तम्, अदत्त, अददाम्, अदद्व, अदद्म। **(आत्मनेपद)** अदत्त, अददाताम्, अददत, अदत्थाः, अददाथाम्, अदद्ध्वम्, अददि, अदद्वहि, अदद्महि। **विधिलिङ्- (परस्मैपद)** दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः, दद्याः, दद्यातम्, दद्यात, दद्याम्, दद्याव, दद्याम। **(आत्मनेपद)** ददीत, ददीयाताम्, ददीरन्, ददीथाः, ददीयाथाम्, ददीध्वम्, ददीय, ददीवहि, ददीमहि।

आशीर्लिङ् में यासुट् के आर्धधातुक कित् होने के कारण **एर्लिङि** से घुसंज्ञक दा के आकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **देयात्** आदि रूप बनते हैं। **(परस्मैपद)** देयात्, देयास्ताम्, देयासुः, देयाः, देयास्तम्, देयास्त, देयासम्, देयास्व, देयास्म। **(आत्मनेपद)** दासीष्ट, दासीयास्ताम्, दासीरन्, दासीष्ठाः, दासीयास्थाम्, दासीध्वम्, दासीय, दासीवहि, दासीमहि।

६२५- **स्थाघ्वोरिच्च।** स्थाश्च घुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्थाघू, तयोः स्थाघ्वोः। स्थाघ्वोः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **हनः सिच्** से **सिच्, असंयोगाल्लिट्**

भषादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६२६. दधस्तथोश्च ८।२।३८॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथोः स्ध्वोश्च परतः। धत्तः। दधति। दधासि। धत्थः। धत्थ। धत्ते। दधाते। दधते। धत्से। धद्ध्वे। घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च। धेहि। अदधात्, अधत्त। दध्यात्, दधीत। धेयात्, धासीष्ट। अधात्। अधित। अधास्यत्। अधास्यत।

णिजिर् शौचपोषणयोः॥११॥

वार्तिकम्- **इर इत्संज्ञा वाच्या।**

....

कित् से **कित्** और **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से **आत्मनेपदेषु** की अनुवृत्ति आती है। **अलोऽन्त्यस्य** की भी उपस्थिति होती है।

स्था तथा घुसंज्ञक धातुओं के अन्त्य अल् के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है तथा सिच् को किद्वद्भाव होता है आत्मनेपद के परे होने पर।

अदात्। अदित। परस्मैपद में **अदा+स्+त्** बना है। घुसंज्ञक होने के कारण **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् होता है जिससे **अदात्** सिद्ध हो जाता है। झि में **आतः** से झि के स्थान पर जुस् आदेश और **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर **अदुः** बनता है। आत्मनेपद में **अदा+स्+त** होने के बाद **स्थाघ्वोरिच्च** से दा के आकार को इकार और सिच् को किद्वद्भाव कर दिए जाने के बाद सिच् को निमित्त मान कर होने वाले गुण का निषेध करके **ह्रस्वादङ्गात्** से सकार का लोप करने पर **अदित** बन जाता है। जहाँ पर झल् परे न हो वहाँ सकार का लोप नहीं होता।

लुङ्-(**परस्मैपद**) अदात्, अदाताम्, अदुः, अदाः, अदातम्, अदात, अदाम्, अदाव, अदाम। (**आत्मनेपद**) अदित, अदिषाताम्, अदिषत, अदिथाः, अदिषाथाम्, अदिढ्वम्, अदिषि, अदिष्वहि, अदिष्महि। **लृङ्**- अदास्यत्, अदास्यत।

डुधाञ् धारणपोषणयोः। डुधाञ् धातु **धारण करना** और **पोषण करना** अर्थों में है। डु और ञ् की इत्संज्ञा होती है, धा शेष रहता है। ञित् होने से उभयपदी है। अनिट् है। धा-रूप होने से घुसंज्ञक भी है। श्लु होने पर द्वित्व आदि होकर **दधस्तथोश्च** से त, थ, स् और ध्व के परे होने पर अभ्यास के दकार को भष् करके धकार हो जाता है। शेष प्रक्रिया लगभग **दा** धातु की तरह ही है।

दधाति। दा धातु **ददाति** की तरह **दधाति** बन जाता है किन्तु **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **धा** के स्थान पर **दकार** भी होता है।

६२६- दधस्तथोश्च। तश्च थ् च तथौ। तकारादकार उच्चारणार्थः। तयोः तथोः। दधः षष्ठ्यन्तं, तथोः सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो बश् भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से **एकाचः** को छोड़कर सभी पद अनुवृत्त होते हैं।

तकार, थकार, सकार और ध्व के परे होने पर द्वित्व किये गये झषन्त धाञ् धातु के बश् के स्थान पर भष् आदेश होता है।

द्वित्व के बाद धाञ्, उसका झषन्त होना, उससे परे तकार, थकार, सकार और ध्व का होना इस सूत्र की प्रवृत्ति में कारण है।

धत्तः। **धा+तस्** के बाद शप्, श्लु, द्वित्व और अभ्यास को ह्रस्व करके **ध+धा+तस्** बना। अभ्यास के धकार के स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश् करके **दधा+तस्** बना। **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार के लोप होने पर **दध्+तस्** बना। अब झषन्त मिलने के कारण अभ्यास के दकार के स्थान पर **दधस्तथोश्च** से भष् आदेश होकर **धकार** हुआ, **ध ध्+तस्** बना। द्वितीय धकार को जश्त्व करके **खरि च** से चर्त्व करने पर तकार हुआ- **ध त्+तस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **धत्तः** सिद्ध हुआ। इसी तरह की ही प्रक्रिया प्रायः थकार, सकार आदि के परे रहने पर भी होती है। आकार के लोप न होने की स्थिति में झषन्त नहीं मिलता, अतः तकारादि के परे होने पर भी भष् आदेश नहीं होता।

लट् के रूप- **(परस्मैपद)** दधाति, धत्तः, दधति, दधासि, धत्थः, धत्थ, दधामि, दध्वः, दध्मः। **(आत्मनेपद)** धत्ते, दधाते, दधते, धत्से, दधाथे, धद्ध्वे, दधे, दध्वहे, दध्महे।

लिट् के परस्मैपद में **पा**-धातु की तरह ही रूप बनते हैं। आत्मनेपद में **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होता है। **(परस्मैपद)** दधौ, दधतुः, दधुः, दधिथ-दधाथ, दधथुः, दध, दधौ, दधिव, दधिम। **(आत्मनेपद)** दधे, दधाते, दधिरे, दधिषे, दधाथे, दधिध्वे, दधे, दधिवहे, दधिमहे। **लुट्**- धाता, धातारौ, धातारः, धातासि। धातासे, धातासाथे, धाताध्वे आदि। **लृट्**- धास्यति, धास्यतः, धास्यन्ति। धास्यते, धास्येते, धास्यन्ते आदि। **लोट्-(परस्मैपद)** दधातु-धत्तात्, धत्ताम्, दधतु, धेहि-धत्तात्, धत्तम्, धत्त, दधानि, दधाव, दधाम। **(आत्मनेपद)** धत्ताम्, दधाताम्, दधताम्, धत्स्व, दधाथाम्, धद्ध्वम्, दधै, दधावहै, दधामहै। **लङ्-(परस्मैपद)** अदधात्, अधत्ताम्, अदधुः, अदधाः, अधत्तम्, अधत्त, अदधाम्, अधद्व, अधद्म। **(आत्मनेपद)** अधत्त, अदधाताम्, अदधत, अधत्थाः, अदधाथाम्, अधद्ध्वम्, अदधि, अदध्वहि, अदध्महि। **विधिलिङ्- (परस्मैपद)** दध्यात्, दध्याताम्, दध्युः, दध्याः, दध्यातम्, दध्यात, दध्याम्, दध्याव, दध्याम। **(आत्मनेपद)** दधीत, दधीयाताम्, दधीरन्, दधीथाः, दधीयाथाम्, दधीध्वम्, दधीय, दधीवहि, दधीमहि।

आशीर्लिङ् में यासुट् के आर्धधातुक कित् होने के कारण **एर्लिङि** से घुसंज्ञक दा के आकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **धेयात्** आदि रूप बनते हैं। **(परस्मैपद)** धेयात्, धेयास्ताम्, धेयासुः, धेयाः, धेयास्तम्, धेयास्त, धेयासम्, धेयास्व, धेयास्म। **(आत्मनेपद)** धासीष्ट, धासीयास्ताम्, धासीरन्, धासीष्ठाः, धासीयास्थाम्, धासीध्वम्, धासीय, धासीवहि, धासीमहि।

अधात्। **अधित।** परस्मैपद में **अधा+स्+त्** बना है। घुसंज्ञक होने के कारण **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् होता है जिससे **अधात्** सिद्ध हो जाता है। झि में **आतः** से झि के स्थान पर जुस् आदेश और **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर **अधुः** बनता है। आत्मनेपद में **अधा+स्+त** होने के बाद **स्थाघ्वोरिच्च** से धा के आकार को इकार और सिच् को किद्वद्भाव कर दिए जाने के बाद सिच् को निमित्त मान कर होने वाले गुण का निषेध करके **ह्रस्वादङ्गात्** से सकार का लोप करने पर **अधित** बन जाता है। जहाँ पर झल् परे न हो वहाँ सकार का लोप नहीं होता।

लुङ्-(परस्मैपद) अधात्, अधाताम्, अधुः, अधाः, अधातम्, अधात, अधाम्, अधाव, अधाम। **(आत्मनेपद)** अधित, अधिषाताम्, अधिषत, अधिथाः, अधिषाथाम्, अधिढ्वम्, अधिषि, अधिष्वहि, अधिष्महि। **लृङ्**- अधास्यत्, अधास्यत।

णिजिर् शौचपोषणयोः। णिजिर् धातु **शुद्ध होना** और **पोषण करना** अर्थों में

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६२७. णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७।४।७५॥

णिज्-विज्-विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ। नेनेक्ति। नेनिक्तः। नेनिजति। नेनिक्ते। निनेज, निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यति, नेक्ष्यते। नेनेक्तु। नेनिग्धि।

गुणनिषेधकं विधिसूत्रम्

६२८. नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७॥

लघूपधगुणो न स्यात्। नेनिजानि। नेनिक्ताम्। अनेनेक्। अनेनिक्ताम्। अनेनिजुः। अनेनिजम्। अनेनिक्त। नेनिज्यात्। नेनिजीत। निज्यात्। निक्षीष्ट।

....

है। इसमें इर् की अग्रिम वार्तिक से इत्संज्ञा होती है। आदि णकार के स्थान पर **णो नः** से नकार आदेश होता है। निज् से लट् आदि होते हैं। स्वरितेत् होने से उभयपदी है। अनुदात्त धातुओं की कोटि में आता है।

इर इत्संज्ञा वाच्या। यह वार्तिक है। धातुओं में विद्यमान इर् की इत्संज्ञा होती है।

यद्यपि **हलन्त्यम्** से रेफ की और **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इकार की इत्संज्ञा करने पर भी काम चल सकता था फिर भी ऐसा नहीं किया गया, क्योंकि ऐसा करने पर धातु इदित् हो जाता और **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होने का प्रसंग बन जाता। उसे रोकने के लिए सीधे **इर्** इस समुदाय की इत्संज्ञा की गई। अतः इदित् भी नहीं माना गया। दूसरी बात यह भी है कि इरित् धातुओं के सम्बन्ध में **इरितो वा** आदि सूत्रों की प्रसक्ति भी होती है।

६२७- **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ।** णिजां षष्ठ्यन्तं, त्रयाणां षष्ठ्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, श्लौ सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

णिज्, विज् और विष् इन तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होता है, श्लु के परे होने पर।

इको गुणवृद्धी की उपस्थिति से **इक्** को ही गुण होता है।

नेनेक्ति। निज् से लट्, तिप्, शप्, श्लु करके द्वित्व, अभ्यासंज्ञा, हलादिशेष करके **निनिज्+ति** बना। अभ्याससंज्ञक नि के इकार को **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** से गुण और अनभ्यास में **लघूपधगुण** होकर **नेनेज्+ति** बना। जकार को **चोः कुः** से कुत्व करके गकार और गकार को **खरि च** से चर्त्व होने पर **नेनेक्ति** सिद्ध हुआ। इस तरह श्लु में सर्वत्र उक्त सूत्र से गुण होता है किन्तु अपित् में ङित् होने का कारण लघूपधगुण नहीं हो पाता।

लट् (परस्मैपद)- नेनेक्ति, नेनिक्तः, नेनिजति, नेनेक्षि, नेनिक्थः, नेनिक्थ, नेनेज्मि, नेनिज्वः, नेनिज्मः। **(आत्मनेपद)** नेनिक्ते, नेनिजाते, नेनिजते, नेनिक्षे, नेनिजाथे, नेनिग्ध्वे, नेनिजे, नेनिज्वहे, नेनिज्महे।

लिट् में शप्-श्लु आदि नहीं होते। अतः अभ्यास का गुण भी नहीं होता। **(परस्मैपद)** निनेज, निनिजतुः, निनिजुः, निनेजिथः, निनिजथुः, निनिज, निनेज, निनिजिव, निनिजिम। **(आत्मनेपद)** निनिजे, निनिजाते, निनिजिरे, निनिजिषे, निनिजाथे, निनिजिध्वे, निनिजे, निनिजिवहे, निनिजिमहे। **लुट्**- नेक्ता, नेक्तारौ, नेक्तारः, नेक्तासि, नेक्तासे।

अङो विकल्पार्थं विधिसूत्रम्

६२९. इरितो वा ३।१।५७।।

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु।

अनिजत्, अनैक्षीत्। अनिक्त। अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत।

इति जुहोत्यादयः।।१४।।

लृट् में जकार को कुत्व होकर गकार और गकार को चर्त्व होकर ककार करके ककार से परे स्य के सकार को षत्व और क् और ष् के संयोग में क्ष् होता है। नेक्ष्यति, नेक्ष्यते।
६२८- नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके। न अव्ययपदम्, अभ्यस्तस्य षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, पिति सप्तम्यन्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पुगन्तलघूपधस्य च** से **लघूपधस्य** और **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर अभ्यस्त को लघूपधगुण नहीं होता।

लोट् में लट् की तरह ही कार्य होने के बाद लोट् के विशेष कार्य करके **नेनेक्तु-नेनिक्तात्, नेनिक्ताम्** आदि रूप बनते हैं किन्तु **हि** के अपित् होने के कारण ङित् हो जाता है, अतः गुण का निषेध हो जाता है और **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से **हि** के स्थान पर **धि** आदेश करके जकार को कुत्व करके **नेनिग्धि** बन जाता है। उत्तमपुरुष के एकवचन में **नेनिज्+आनि** बनने के बाद लघूपधगुण प्राप्त था, उसका **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से निषेध हो जाता है, जिससे **नेनिजानि** बन जाता है। आत्मनेपद के उत्तमपुरुष में भी इसी सूत्र से लघूपधगुण का निषेध किया जाता है और अन्यत्र ङित्त्व के कारण स्वतः निषेध होता है। **लोट् (परस्मैपद)** के रूप- नेनेक्तु, नेनिक्तात्, नेनिक्ताम्, नेनिजतु, नेनिग्धि-नेनिक्तात्, नेनिक्तम्, नेनिक्त, नेनिजानि, नेनिजाव, नेनिजाम। **(आत्मनेपद)** नेनिक्ताम्, नेनिजाताम्, नेनिजताम्, नेनिक्ष्व, नेनिजाथाम्, नेनिग्ध्वम्, नेनिजै, नेनिजावहै, नेनिजामहै।

लङ् के तिप् में **अनेनिज्+त्** बनने के बाद लघूपधगुण, तकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, जकार को **चोः कुः** से कुत्व करके गकार, उसको **वावसाने** से चर्त्व करके ककार करके **अनेनेक्, अनेनेग्** ये दो रूप बनते हैं। सिप् में भी यही रूप बनते हैं। **झि** को **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् आदेश होकर **अनेनिजुः** बनता है। मिप् में अमादेश होने के बाद **नाभ्यस्तास्याचि पिति सार्वधातुके** से गुणनिषेध होकर **अनेनिजम्** बनता है। आत्मनेपद में ङित्त्व के कारण सर्वत्र गुणनिषेध होता है।

लङ्- (परस्मैपद) अनेनेक्-अनेनेग्, अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः, अनेनेक्-अनेनेग्, अनेनिक्तम्, अनेनिक्त, अनेनिजम्, अनेनिज्व, अनेनिज्म। **(आत्मनेपद)** अनेनिक्त, अनेनिजाताम्, अनेनिजत, अनेनिक्थाः, अनेनिजाथाम्, अनेनिग्ध्वम्, अनेनिजि, अनेनिज्वहि, अनेनिज्महि।

विधिलिङ्- परस्मैपद में- यासुट् के ङित् होने के कारण लघूपधगुण नहीं होता और आत्मनेपद में तो त, आताम् सभी ङित् हैं ही। **(परस्मैपद)** नेनिज्यात्, नेनिज्याताम्, नेनिज्युः आदि। **(आत्मनेपद)** नेनिजीत, नेनिजीयाताम्, नेनिजीरन्, नेनिजीथाः आदि।

आशीर्लिङ् में यासुट् के कित् होने से लघूपधगुण का निषेध और आत्मनेपद में **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से झलादि लिङ् के कित् हो जाने के कारण गुण का निषेध हो जाता है। रूप- निज्यात्, निज्यास्ताम् निज्यासुः आदि। आत्मनेपद में- निक्षीष्ट, निक्षीयास्ताम्, निक्षीरन् आदि।

६२९- **इरितो वा**। इर् इत् यस्य स इरित्, तस्माद् इरितः। इरितः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः**, **च्लेः सिच्** से **च्लेः**, **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** और **पुषादिद्युताद्युलृदितः परस्मैपदेषु** से **परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है। जिस धातु में इर् की इत्संज्ञा हुई हो वह इरित् धातु कहलाता है।

इरित् धातु से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ् आदेश हो जाता है परस्मैपद परे होने पर।

णिजिर् में इर् की इत्संज्ञा होकर **निज्** बना है। अतः इससे लुङ् में विकल्प से अङ् होता है।

अनिजत्, अनैक्षीत्। लुङ् के तिप् में **अनिज्+च्लि+त्** बना है। च्लि के स्थान पर सिच् आदेश प्राप्त था। उसे बाधकर के **इरितो वा** से वैकल्पिक अङ् आदेश हुआ। **अनिज्+अत्**, वर्णसम्मेलन होकर **अनिजत्** बना। अङ् न होने के पक्ष में सिच् होकर **अनिज्+स्+ईत्** है। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से नि के इकार की वृद्धि, जकार को कुत्व, गकार को चर्त्व, सकार को षत्व, क्षत्व करके **अनैक्षीत्** बन जाता है। आत्मनेपद में **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से सिच् को कित् होकर गुण का निषेध और **झलो झलि** से झल् परे होने पर सिच् के सकार का लोप होता है, अन्यत्र नहीं। आत्मनेपद में अङ् प्राप्त ही नहीं है।

लुङ् के रूप- परस्मैपद में अङ्पक्ष में- अनिजत्, अनिजताम्, अनिजन्, अनिजः, अनिजतम्, अनिजत, अनिजम्, अनिजाव, अनिजाम। **अङ् न होने पर-** अनैक्षीत्, अनैक्ताम्, अनैक्षुः, अनैक्षीः, अनैक्तम्, अनैक्त, अनैक्षम्, अनैक्ष्व, अनैक्ष्म। **आत्मनेपद में-** अनिक्त, अनिक्षाताम्, अनिक्षत, अनिक्थाः, अनिक्षाथाम्, अनिग्ध्वम्, अनिक्षि, अनिक्ष्वहि, अनिक्ष्महि। **लृङ्-** अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१-	अपनी पुस्तिका में हु धातु के सारे रूप लिखें।	५
२-	हु धातु के लिट् के सभी रूपों की सिद्धि करें।	१५
३-	हु धातु के लुङ् के सभी रूपों की सिद्धि करें।	१५
४-	हा-धातु के सभी रूप उतारें	५
५-	**भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** की व्याख्या करें।	५
६-	**ई हल्यघोः** और **श्नाभ्यस्तयोरातः** में बाध्यबाधकभाव स्पष्ट करें।	५
७-	अदादि और जुहोत्यादि का अन्तर करके एक पेज का लेख लिखें।	१०
८-	**भृञामित्** के अभाव में तीनों धातुओं के कैसे रूप बनते? स्पष्ट करें	५
९-	जुह्वति में यदि **हुश्नुवोः सार्वधातुके** न लगता तो क्या रूप बनता?	५
१०-	**इरितो वा** की पूर्ण व्याख्या करें।	५
११-	जुहोत्यादिगणीय सभी धातुओं के लिट् लकार के रूप लिखें।	२५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का जुहोत्यादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ दिवादयः

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु॥१॥

श्यन्-विधायकं विधिसूत्रम्

६३०. दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९॥

शपोऽपवादः। **हलि चेति दीर्घः।** दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्।

एवं षिवु तन्तुसन्ताने॥२। नृती गात्रविक्षेपे॥३॥ नृत्यति। ननर्त। नर्तिता।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

तिङन्त का चतुर्थ प्रकरण **दिवादि** है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक् और जुहोत्यादि में शप् होकर उसके स्थान पर श्लु हुए, उसी प्रकार **दिवादि** में **शप्** को बाधकर **श्यन्** होता है। **श्यन्** में नकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा तथा **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **य** बचता है। **य** शित् है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है। सार्वधातुक होते हुए अपित् भी है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके परे होने पर पूर्व इक् को होने वाली गुणवृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए श्यन् के परे होने पर पूर्व को **गुण** और **वृद्धि** दोनों ही नहीं होते। श्यन् करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **दिवादिभ्यः श्यन्** से श्यन् और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं, श्यन् के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य श्यन् ही हो जाता है। एक परिभाषा है- **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः,** अर्थात् पूर्वसूत्र से परसूत्र बलवान् होता है, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवादसूत्र। तुलना में जो सूत्र बलवान् होता है, वही पहले लगता है। यहाँ पर नित्य का तात्पर्य नित्य से कार्य करना नहीं है अपितु **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः,** अर्थात् अन्य सूत्र से किसी काम के कर दिए जाने के बाद भी लगे और कार्य न किए जाने पर भी लगे, उसे नित्य कहा गया है। श्यन् करने वाला सूत्र गुण-वृद्धि के होने पर भी लगेगा और न हुए हों तब भी लगेगा। अतः श्यन् नित्य है, फलतः गुण-वृद्धि के पहले ही लगता है।

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। दिवु धातु में उकार की इत्संज्ञा हो जाती है, दिव् ही बचता है। आत्मनेपद-निमित्तक न होने से परस्मैपदी

है। इसके अनेक अर्थ हैं। जैसे- **क्रीड़ा=खेलना, विजिगीषा=जीतने की इच्छा करना, व्यवहार= क्रय-विक्रय रूप व्यवहार करना, द्युति=चमकना, स्तुति=स्तुति करना, मोद=प्रसन्न होना, मद=मदमत्त होना, स्वप्न=सोना, कान्ति=इच्छा करना** और **गति=गमन करना**। प्रसंग के अनुसार अर्थ किये जाते हैं।

३३०- **दिवादिभ्यः श्यन्**। दिव् आदिर्येषां ते दिवादयः, तेभ्यो दिवादिभ्यः। दिवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्यन् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुक प्रत्यय के परे होने पर दिवादिगण में पढ़े गये धातुओं से परे श्यन् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **कर्तरि शप्** का अपवाद है।

दीव्यति। दिव् धातु से लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **दिवादिभ्यः श्यन्** से श्यन्, शकार और नकार का लोप, **दिव्+य+ति** बना। दिव् में इकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा हुई और उसको **हलि च** से दीर्घ हुआ- **दीव्+य+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दीव्यति**।

लट् के रूप- दीव्यति, दीव्यतः, दीव्यन्ति, दीव्यसि, दीव्यथः, दीव्यथ, दीव्यामि, दीव्यावः, दीव्यामः।

लिट्-लकार में कोई विशेषता नहीं है। धातु सेट् अर्थात् इट् होने के योग्य है, अतः वलादि-आर्धधातुक के परे होने पर इट् आगम हो जाता है। पित् प्रत्ययों में लघूपधगुण होता है किन्तु अपितों में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्त्व होने के कारण **क्ङिति च** से उसका निषेध होता है। प्रक्रिया का दिग्दर्शन मात्र देखें- दिव् लिट्, दिव् तिप्, दिव् णल्, दिव् अ, दिव् दिव् अ, दि दिव् अ, दि देव् अ, **दिदेव**। अपित् में गुण नहीं होगा- **दिदिवतुः, दिदिवुः** आदि।

लिट् के रूप- दिदेव, दिदिवतुः, दिदिवुः। दिदेविथ, दिदिवथुः, दिदिव। दिदेव, दिदिविव, दिदिविम।

लुट् में दिव् लुट्, दिव् ति, दिव् तास् ति, दिव् इ तास् ति, देव् इ तास् ति, देव् इ तास् डा, देव् इ त् आ, वर्णसम्मेलन **देविता** सिद्ध हुआ। हल् परे न होने के कारण **हलि च** से दीर्घ नहीं हुआ। इस तरह रूप बनते हैं- देविता, देवितारौ, देवितारः। देवितासि, देवितास्थः, देवितास्थ। देवितास्मि, देवितास्वः, देवितास्मः।

लृट् में- देविष्यति, देविष्यतः, देविष्यन्ति। देविष्यसि, देविष्यथः, देविष्यथ। देविष्यामि, देविष्यावः, देविष्यामः।

लोट् में- लट् की तरह श्यन्, **हलि च** से दीर्घ होकर सिद्ध होते हैं- दीव्यतु-दीव्यतात्, दीव्यताम्, दीव्यन्तु। दीव्य-दीव्यतात्, दीव्यतम्, दीव्यत। दीव्यानि, दीव्याव, दीव्याम।

लङ् में- अट्, श्यन्, दीर्घ करके रूप बनाइये- अदीव्यत्, अदीव्यताम्, अदीव्यन्। अदीव्यः, अदीव्यतम्, अदीव्यत। अदीव्यम्, अदीव्याव, अदीव्याम।

विधिलिङ् में- श्यन् होकर भ्वादिगण की तरह यासुट्, **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से प्राप्त सलोप को बाधकर **अतो येयः** से इय् आदेश, यकारलोप आदि कार्य होते हैं। दीव्येत्, दीव्येताम्, दीव्येयुः। दीव्येः, दीव्येतम्, दीव्येत। दीव्येयम्, दीव्येव, दीव्येम।

आशीर्लिङ् में- यासुट् के कित् होने के कारण लघूपधगुण निषिद्ध हो जाता है। केवल **हलि च** से उपधादीर्घ होकर बनते हैं- दीव्यात्, दीव्यास्ताम्, दीव्यासुः। दीव्याः, दीव्यास्तम्, दीव्यास्त। दीव्यासम्, दीव्यास्व, दीव्यास्म।

लुङ् लकार में भ्वादिगणीय **असेधीत्** की तरह रूप बनाइये- अदेवीत्, अदेविष्टाम्, अदेविषुः। अदेवीः, अदेविष्टम्, अदेविष्ट। अदेविषम्, अदेविष्व, अदेविष्म।

लृङ् में- अदेविष्यत्, अदेविष्यताम्, अदेविष्यन्। अदेविष्यः, अदेविष्यतम्, अदेविष्यत। अदेविष्यम्, अदेविष्याव, अदेविष्याम।

षिवु धातु **तन्तुसन्ताने= धागे का विस्तार करना** अर्थात् **सीना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा और लोप होता है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होकर **सिव्** बन जाता है। इसके बाद की पूरी प्रक्रिया **दिव्** धातु की तरह ही होती है।

लट् के रूप- सीव्यति, सीव्यतः, सीव्यन्ति। सीव्यसि, सीव्यथः, सीव्यथ। सीव्यामि, सीव्यावः, सीव्यामः।

लिट् में द्वित्व आदि करके **सिसिव् अ** के बाद द्वितीय सि के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होता है और पित् में उपधागुण और अपित् में निषेध होकर निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- सिषेव, सिषिवतुः, सिषिवुः। सिषेविथ, सिषिवथुः, सिषिव। सिषेव, सिषिविव, सिषिविम।

लुट् में- सेविता, सेवितारौ, सेवितारः। सेवितासि, सेवितास्थः, सेवितास्थ। सेवितास्मि, सेवितास्वः, सेवितास्मः। **लृट् में-** सेविष्यति, सेविष्यतः, सेविष्यन्ति। सेविष्यसि, सेविष्यथः, सेविष्यथ। सेविष्यामि, सेविष्यावः, सेविष्यामः। **लोट् में-** सीव्यतु-सीव्यतात्, सीव्यताम्, सीव्यन्तु। सीव्य-सीव्यतात्, सीव्यतम्, सीव्यत। सीव्यानि, सीव्याव, सीव्याम। **लङ् में-** असीव्यत्, असीव्यताम्, असीव्यन्। असीव्यः, असीव्यतम्, असीव्यत। असीव्यम्, असीव्याव, असीव्याम। **विधिलिङ् में-** सीव्येत्, सीव्येताम्, सीव्येयुः। सीव्येः, सीव्येतम्, सीव्येत। सीव्येयम्, सीव्येव, सीव्येम। **आशीर्लिङ् में-** सीव्यात्, सीव्यास्ताम्, सीव्यासुः। सीव्याः, सीव्यास्तम्, सीव्यास्त। सीव्यासम्, सीव्यास्व, सीव्यास्म। **लुङ् में-** असेवीत्, असेविष्टाम्, असेविषुः। असेवीः, असेविष्टम्, असेविष्ट। असेविषम्, असेविष्व, असेविष्म। **लृङ् में-** असेविष्यत्, असेविष्यताम्, असेविष्यन्। असेविष्यः, असेविष्यतम्, असेविष्यत। असेविष्यम्, असेविष्याव, असेविष्याम।

नृती गात्रविक्षेपे। नृती धातु **गात्रविक्षेप** अर्थात् **नाचना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। नृत् शेष रहता है। गुण होने पर **नर्त्** और **श्यन्** होने पर **नृत्य** बन जाता है।

नृत् के लट् में रूप- नृत्यति, नृत्यतः, नृत्यन्ति। नृत्यसि, नृत्यथः, नृत्यथ। नृत्यामि, नृत्यावः, नृत्यामः।

लिट् लकार में- नृत् तिप्, उसके स्थान पर णल् आदेश करके अनुबन्धलोप करने पर नृत्+अ बना। द्वित्व करने पर **नृत् नृत् अ** बना। नृ नृत् मे **उरत्** से अर् होने पर नर् नृत् अ बना। हलादिशेष होकर न नृत् अ बनने के बाद **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत नृ के ऋकार के स्थान पर रपर सहित गुण होकर **न नर्त् अ** बना, वर्णसम्मेलन होकर **ननर्त** सिद्ध हुआ।

यह गुण केवल तिप्, सिप् और मिप् में होगा क्योंकि शेष में तो **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। इसलिए **ननृत्+अतुस्**

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६३१. सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ७।२।५७॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा।

नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत्यतु। अनृत्यत्। नृत्येत्। नृत्यात्। अनर्तीत्, अनर्तिष्यत्, अनर्त्स्यत्। **त्रसी उद्वेगे॥४॥ वा भ्राशेति श्यन्वा।** त्रस्यति, त्रसति। तत्रास।

....

आदि में वर्णसम्मेलन होकर निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं- ननर्त, ननृततुः, ननृतुः। ननर्तिथ, ननृतथुः ननृत। ननर्त, ननृतिव, ननृतिम।

लुट् में- नर्तिता, नर्तितारौ, नर्तितारः। नर्तितासि, नर्तितास्थः, नर्तितास्थ। नर्तितास्मि, नर्तितास्वः, नर्तितास्मः।

६३१- सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः। न सिच् असिच्, तस्मिन् असिचि। कृतश्च चृतश्च छृदश्च, तृदश्च नृत् च तेषां समाहारद्वन्द्वः कृतचृतच्छृदतृदनृत्, तस्मात् कृतचृतच्छृदतृदनृतः। से सप्तम्यन्तम्, असिचि सप्तम्यन्तं, कृतचृतच्छृदतृदनृतः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् और **उदितो वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

कृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत् धातु से परे सिच् से भिन्न सकारादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् आगम होता है।

सूत्र में **से** का **सकारादि के परे होने पर** ऐसा अर्थ करने पर सिच् के परे होने पर भी विकल्प से इट् प्राप्त हो सकता था। इसलिए सिच् को रोकने के लिए **असिचि** ऐसा कहा।

नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत् धातु से से लृट् लकार, **नृत् स्य ति। आर्धधातुकं शेषः** से स्य की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। उसको **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से वैकल्पिक इट् आगम हुआ, **नृत् इस्य ति** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत ऋकार को रपर सहित गुण, **नर्त् इस्य ति** बना। इकार से परे सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ, **नर्तिष्यति** बन गया। इट् आगम न होने के पक्ष में षत्व भी नहीं हुआ, गुण करके **नर्त् स्य ति** में वर्णसम्मेलन हुआ- **नर्त्स्यति।**

नृत् धातु के लृट् के इट् आगम के पक्ष में- नर्तिष्यति, नर्तिष्यतः, नर्तिष्यन्ति। नर्तिष्यसि, नर्तिष्यथः, नर्तिष्यथ। नर्तिष्यामि, नर्तिष्यावः, नर्तिष्यामः। **इट् के अभाव में**- नर्त्स्यति, नर्त्स्यतः, नर्त्स्यन्ति। नर्त्स्यसि, नर्त्स्यथः, नर्त्स्यथ। नर्त्स्यामि, नर्त्स्यावः, नर्त्स्यामः।

लोट् के रूप- नृत्यतु-नृत्यतात्, नृत्यताम्, नृत्यन्तु। नृत्य-नृत्यतात्, नृत्यतम्, नृत्यत। नृत्यानि, नृत्याव, नृत्याम। **लङ् में**- अनृत्यत्, अनृत्यताम्, अनृत्यन्। अनृत्यः, अनृत्यतम्, अनृत्यत। अनृत्यम्, अनृत्याव, अनृत्याम। **विधिलिङ् में**- नृत्येत्, नृत्येताम्, नृत्येयुः। नृत्येः, नृत्येतम्, नृत्येत। नृत्येयम्, नृत्येव, नृत्येम।

आशीर्लिङ् में- नृत्यात्, नृत्यास्ताम्, नृत्यासुः। नृत्याः, नृत्यास्तम्, नृत्यास्त। नृत्यासम्, नृत्यास्व, नृत्यास्म। **लुङ् में**- अनर्तीत्, अनर्तिष्टाम्, अनर्तिषुः, अनर्तीः, अनर्तिष्टम्, अनर्तिष्ट, अनर्तिषम्, अनर्तिष्व, अनर्तिष्म। **लृङ् के इट् पक्ष में**- अनर्तिष्यत्, अनर्तिष्यताम्, अनर्तिष्यन्। अनर्तिष्यः, अनर्तिष्यतम्, अनर्तिष्यत। अनर्तिष्यम्, अनर्तिष्याव, अनर्तिष्याम। **इट् न होने के**

वैकल्पिकैत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६३२. वा जॄभ्रमुत्रसाम् ६।४।१२४॥

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा।

त्रेसतुः, तत्रसतुः। त्रेसिथ, तत्रसिथ। त्रसिता। **शो तनूकरणे**॥५॥

....

पक्ष में- अनत्र्स्यत्, अनत्र्स्यताम्, अनत्र्स्यन्। अनत्र्स्यः, अनत्र्स्यतम्, अनत्र्स्यत, अनत्र्स्यम्, अनत्र्स्याव, अनत्र्स्याम।

त्रसी उद्वेगे। त्रसी धातु **उद्वेग** अर्थात् **डरना** या **घबराना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है, त्रस् शेष रहता है। सेट् और परस्मैपदी है।

त्रस्यति, त्रसति। त्रस् से लट्, तिप्, शप् को बाधकर नित्य से श्यन् प्राप्त था, उसे बाधकर **वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः** से विकल्प से श्यन् हुआ। अनुबन्धलोप करके **त्रस्+यति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **त्रस्यति** सिद्ध हुआ। श्यन् न होने के पक्ष में शप् होता है। अतः **त्रसति** भी बन जाता है। त्रस्यति, त्रस्यतः, त्रस्यन्ति एवं त्रसति, त्रसतः, त्रसन्ति आदि।

तत्रास। लिट्, तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष करके **तत्रस्+अ** बना। **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **तत्रास** सिद्ध हुआ।

६३२- वा जॄभ्रमुत्रसाम्। जॄश्च भ्रमुश्च, त्रस् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो जॄभ्रमुत्रसः, तेषां जॄभ्रमुत्रसाम्। वा अव्ययपदं, जॄभ्रमुत्रसाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **अतः**, **लिटि** तथा **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से **एत्, अभ्यासलोपः, च** एवं **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **किति** और **थलि च सेटि** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

कित् लिट् या सेट् थल् के परे होने पर जॄ, भ्रम्, त्रस् धातुओं को एत्त्व और अभ्यास का लोप विकल्प से होता है।

तिप्, सिप् और मिप् के पित् होने के कारण **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित् नहीं होता है। अतः इनमें एत्वाभ्यासलोप की प्राप्ति नहीं है। सिप्(थल्) में विशेष विधान होने के कारण हो जाता है।

त्रेसतुः, तत्रसतुः। लिट् के तस् में **त+त्रस्+अतुस्** बनने के बाद अप्राप्त का **वा जॄभ्रमुत्रसाम्** से विकल्प से एत्त्वाभ्यासलोप हुआ अर्थात् त का लोप और त्रस् के अकार को एत्व होकर **त्रेस्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग होकर **त्रेसतुः** बना। एत्त्वाभ्यासलोप न होने के पक्ष में **तत्रस्+अतुस्=तत्रसतुः** बना। इस तरह दो रूप बन गये

लिट् के एत्वाभ्यासलोपपक्ष में- तत्रास, त्रेसतुः, त्रेसुः, त्रेसिथ, त्रेसथुः, त्रेस, तत्रास-तत्रस, त्रेसिव, त्रेसिम। **एत्त्वाभ्यास के अभाव में**- तत्रास, तत्रसतुः, तत्रसुः, तत्रसिथ, तत्रसथुः, तत्रस, तत्रास-तत्रस, तत्रसिव, तत्रसिम। **लोट्**- त्रसिता, त्रसितारौ, त्रसितारः आदि। **लृट्**- त्रसिष्यति, त्रसिष्यतः, त्रसिष्यन्ति आदि। **लोट्- (श्यन्पक्षे)** त्रस्यतु-त्रस्यतात्, त्रस्यताम्, त्रस्यन्तु। **(शप्पक्षे)** त्रसतु-त्रसतात्, त्रसताम्, त्रसन्तु। **लङ्**- श्यन् होने पर **अत्रस्यत्** और शप् होने पर- **अत्रसत्**। **विधिलिङ्**- त्रस्येत्, त्रसेत्। **आशीर्लिङ्**- त्रस्यात्, त्रस्यास्ताम्, त्रस्यासुः।

लुङ् में- **वदव्रजहलन्तस्याचः** से प्राप्त वृद्धि का **नेटि** से निषेध होने के

ओतो लोपविधायकं विधिसूत्रम्

६३३. ओतः श्यनि ७।३।७१॥

लोपः स्यात्।

श्यति। श्यतः। श्यन्ति। शशौ। शशतुः। शाता। शास्यति।

....

बाद पुनः **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिकवृद्धि होती है। **वृद्धिपक्ष के रूप**- अत्रासीत्, अत्रासिष्टाम्, अत्रासिषुः, अत्रासीः, अत्रासिष्टम्, अत्रासिष्ट, अत्रासिषम्, अत्रासिष्व, अत्रासिष्म। **वृद्धि के अभाव में**- अत्रसीत्, अत्रसिष्टाम्, अत्रसिषुः आदि। **लृङ्**- अत्रसिष्यत्, अत्रसिष्यताम् आदि।

शो तनूकरणे। शो धातु **पतला करना, छीलना** अर्थ में है। शो में ओकार की अनुनासिक न होने से इत्संज्ञा भी नहीं होती है।

६३३- **ओतः श्यनि**। ओतः षष्ठ्यन्तं, श्यनि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घोर्लोपो लेटि वा** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

श्यन् के परे होने पर धातु के अन्त में विद्यमान ओकार का लोप होता है।

श्यति। शो धातु से लट्, तिप्, श्यन् करके **शो+यति** बना। **ओतः श्यनि** से ओकार का लोप होने पर **श्+यति** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **श्यति** सिद्ध हुआ। इस प्रकार लट् लकार के रूप बनते हैं- श्यति, श्यतः, श्यन्ति। श्यसि, श्यथः, श्यथ। श्यामि, श्यावः, श्यामः।

शशौ। शो धातु से लिट्, तिप्, णल्, अ होने के बाद **शो+अ** बना। यहाँ पर श्यन् न होने के कारण शित् नहीं है और **शो** धातु उपदेश अवस्था में **एजन्त** है। अतः **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व हुआ, **शा+अ** बना। **आत औ णलः** से अकार के स्थान पर औकार आदेश, **शा+औ** बना। शा को द्वित्व, **शाशा+औ**, अभ्याससंज्ञा करके **ह्रस्वः** से प्रथम शा के आकार को ह्रस्व होकर **शशा+औ** बना। पा-पाने धातु से **पपौ** की तरह **शशा+औ** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि हुई- **शशौ**।

णल् के परे होने पर शशौ और शेष में द्वित्व आदि करने के बाद **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप और वर्णसम्मेलन करके बनते हैं- शशौ, शशतुः, शशुः। शशिथ-शशाथ, शशथुः, शश। शशौ, शशिव, शशिम।

लुट् में भी **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होता है। शाता, शातारौ, शातारः। शातासि, शातास्थः, शातास्थ। शातास्मि, शातास्वः, शातास्मः। **लृट् में**- शास्यति, शास्यतः, शास्यन्ति। शास्यसि, शास्यथः, शास्यथ। शास्यामि, शास्यावः, शास्यामः। **लोट् में**- श्यतु-श्यतात्, श्यताम्, श्यन्तु। श्य-श्यतात्, श्यतम्, श्यत। श्यानि, श्याव, श्याम। **लङ्**- अश्यत्, अश्यताम्, अश्यन्। अश्यः, अश्यतम्, अश्यत। अश्यम्, अश्याव, अश्याम। **विधिलिङ्**- श्येत्, श्येताम्, श्येयुः। श्येः, श्येतम्, श्येत। श्येयम्, श्येव, श्येम।

आशीर्लिङ् में शित् न होने के कारण **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व करके शायात्, शायास्ताम्, शायासुः। शायाः, शायास्तम्, शायास्त। शायासम्, शायास्व, शायास्म बन जाते हैं।

सिचो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

६३४. विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८॥

एभ्यः सिचो लुग् वा स्यात् परस्मैपदे परे।

अशात्। अशाताम्, अशुः। इट्सकौ- अशासीत्। अशासिष्टाम्।

छो छेदने॥६॥ छ्यति। **षोऽन्तकर्मणि॥७॥** स्यति। ससौ।

दोऽवखण्डने॥८॥

द्यति। ददौ। देयात्। अदात्। **व्यध ताडने॥९॥**

....

६३४- **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः।** घ्राश्च धेट् च शास् च छाश्च साश्च तेषां समहारद्वन्द्वो घ्राधेट्शाच्छास्, तस्मात् घ्राधेट्शाच्छासः। विभाषा प्रथमान्तं, घ्राधेट्शाच्छासः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से **सिचः** और **परस्मैपदेषु** की तथा **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद के परे रहते घ्रा, धेट्, शो, छो और षो धातु से परे सिच् का विकल्प से लुक् होता है।

अशात्। शो धातु से लुङ्, तिप्, अट्, च्लि, सिच् और आत्व करके **अ+शा+स्+त्** बना। पा पाने धातु से **अपात्** की तरह यहाँ पर भी **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः** से सिच् का वैकल्पिक लुक् होकर **अशात्** बना। सिच् विद्यमान न होने के कारण **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से इट् आगम और **यमरमनमातां सक् च** से **सक्** और **इट्** भी नहीं होते हैं। इस तरह लुङ् के रूप बने- अशात्, अशाताम्, अशुः। अशाः, अशातम्, अशात। अशाम्, अशाव, अशाम। सिच् के लुक् न होने के पक्ष में- **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से इट् आगम और **यमरमनमातां सक् च** से इट्-सक् करके सिद्ध होते हैं- अशासीत्, अशासिष्टाम्, अशासिषुः। अशासीः, अशासिष्टम्, अशासिष्ट। अशासिषम्, अशासिष्व, अशासिष्म।

लृङ् में- अशास्यत्, अशास्यताम्, अशास्यन्। अशास्यः, अशास्यतम्, अशास्यत। अशास्यम्, अशास्याव, अशास्याम।

छो छेदने। छो धातु काटने के अर्थ में है। इस में शित् के परे होने पर ओकार का लोप और अशित् के परे रहने पर आत्व करके शो धातु की तरह ही रूप सिद्ध होते हैं। विशेषता यह है कि लङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में अट् आगम होने के बाद **छे च** से अ को तुक् आगम और तकार को छकार के परे होने के कारण **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होकर चकार आदेश होता है, जिससे **अच्छ्यत्** आदि रूप बनते हैं।

छो धातु के लट् के रूप- छ्यति, छ्यतः, छ्यन्ति। छ्यसि, छ्यथः, छ्यथ। छ्यामि, छ्यावः, छ्यामः।

लिट् में **छे च** से तुक् आगम और **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होने पर- चच्छौ, चच्छतुः, चच्छुः। चच्छिथ-चच्छाथ, चच्छथुः, चच्छ। चच्छौ, चच्छिव, चच्छिम। **लुट्**- छाता, छातारौ, छातारः। छातासि, छातास्थः, छातास्थ। छातास्मि, छातास्वः, छातास्मः। **लृट्**- छास्यति, छास्यतः छास्यन्ति। छास्यसि, छास्यथः, छास्यथ। छास्यामि, छास्यावः, छास्यामः। **लोट्**- छ्यतु-छ्यतात्, छ्यताम्, छ्यन्तु। छ्य-छ्यतात्, छ्यतम्, छ्यत। छ्यानि, छ्याव, छ्याम।

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

६३५. ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६॥

एषां सम्प्रसारणं स्यात् किति ङिति च।

विध्यति। विव्याध। विविधतुः। विविधुः। विव्यधिथ, विव्यद्ध। व्यद्धा। व्यत्स्यति। विध्येत्। विध्यात्। अव्यात्सीत्। **पुष पुष्टौ॥१०॥** पुष्यति। पुपोष। पुपोषिथ। पोष्टा। पोक्ष्यति। पुषादीत्यङ्। अपुषत्। **शुष शोषणे॥११॥** शुष्यति। शुशोष। अशुषत्। **णश अदर्शने॥१२॥** नश्यति। ननाश। नेशतुः।

....

लङ् अच्छ्यत्, अच्छ्यताम्, अच्छ्यन्। अच्छ्यः, अच्छ्यतम्, अच्छ्यत। अच्छ्यम्, अच्छ्याव, अच्छ्याम। **विधिलिङ्**- छ्येत्, छ्येताम्, छ्येयुः। छ्येः, छ्येतम्, छ्येत। छ्येयम्, छ्येव, छ्येम। **आशीर्लिङ्**- छायात्, छायास्ताम्, छायासुः। छायाः, छायास्तम्, छायास्त। छायासम्, छायास्व, छायास्म। **लुङ् में- सिच् के लुक् पक्ष में-** अच्छात्, अच्छाताम्, अच्छुः। अच्छाः, अच्छातम्, अच्छात। अच्छाम्, अच्छाव, अच्छाम। **लुक् न होने के पक्ष में-** अच्छासीत्, अच्छासिष्टाम्, अच्छासिषुः। अच्छासीः, अच्छासिष्टम्, अच्छासिष्ट। अच्छासिषम्, अच्छासिष्व, अच्छासिष्म। **लृङ्**- अच्छास्यत्, अच्छास्यताम्, अच्छास्यन्। अच्छास्यः, अच्छास्यतम्, अच्छास्यत। अच्छास्यम्, अच्छास्याव, अच्छास्याम।

षोऽन्तकर्मणि। षो धातु **अन्तकर्म** अर्थात् **नाश करना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर दन्त्य सकार आदेश होता है। अन्त्य ओकार की इत्संज्ञा नहीं होती। अतः **सो** शेष रहता है। यह भी धातु पूर्ववत् अनिट् ही है। अनुनासिक न होने से इसकी भी सम्पूर्ण प्रक्रिया **शो तनूकरणे** की तरह ही होती है।

प्रत्येक लकार में तिप् के रूप- स्यति। ससौ। साता। सास्यति। स्यतु। अस्यत्। स्येत्। सायात्। असात्-असासीत्। असास्यत्।

दोऽवखण्डने। दो धातु **अवखण्डन** अर्थात् **काटना** अर्थ में है। इसमें भी सार्वधातुक ओकार की इत्संज्ञा होकर **द्** शेष रहता है। इसके भी सारे रूप **छो छेदने** की तरह ही रूप होते हैं किन्तु **दाधा घ्वदाप्** से घुसंज्ञा होने के कारण **लिङ्** में **एर्लिङि** से नित्य से एत्व तथा **लुङ्** में **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् आदि विशेष कार्य होते हैं।

प्रत्येक लकार के तिप् में रूप- द्यति। ददौ। दाता। दास्यति। द्यतु। अद्यत्। द्येत्। देयात्। अदात्(अदाताम्, अदुः)। अदास्यत्।

व्यध ताडने। व्यध धातु **ताडन** अर्थात् **बींधना** अर्थ में है। बाण आदि के द्वारा लक्ष्य करके बींधना आदि कहा जा सकता है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है। व्यध् शेष रहता है। परस्मैपदी और अनिट् है।

६३५- ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च। ग्रहिश्च ज्याश्च वयिश्च व्यधिश्च वष्टिश्च विचतिश्च वृश्चतिश्च पृच्छतिश्च भृज्जतिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतयः, तेषां ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनाम्। ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-

वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां षष्ठ्यन्तं, ङिति सप्तम्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **किति** की तथा **ष्यङः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है।

ग्रह्, ज्या, वय्, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् और भ्रस्ज् इन धातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् या ङित् प्रत्यय के परे होने पर।

विध्यति। व्यध् से लट्, तिप्, श्यन्, अनुबन्धलोप होने पर **व्यध्+यति** बना। श्यन् का य अपित् सार्वधातुक होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् है। अतः **व्+य्+अ+ध्=व्यध्** के यकार के स्थान पर **ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति** से सम्प्रसारण होकर इकार हो गया। **व्+इ+अ+ध्** बना। **इ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इकार** ही हो गया। इस तरह **विध्+यति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **विध्यति** सिद्ध हुआ। वकार का भी सम्प्रणार प्राप्त होता है किन्तु **न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्** से निषेध हो जाता है। निषेधक सूत्र का अर्थ है- **सम्प्रसारण के परे होने पर पूर्व को सम्प्रसारण नहीं होता।** इससे सिद्ध हो जाता है कि जहाँ दो वर्ण सम्प्रसारण के योग्य हों, वहाँ पर पहले पर वर्ण को सम्प्रसारण होता है।

लट्- विध्यति, विध्यतः, विध्यन्ति आदि।

विव्याध। लिट् में **व्यध्+अ** बनने के बाद द्वित्व होकर **व्यध्+व्यध्+अ** बना। **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होकर पूर्वरूप होने पर हलादि शेष होने के बाद **विव्यध्+अ** बना। उपधावृद्धि, वर्णसम्मेलन करके **विव्याध** बनता है। द्विवचन एवं बहुवचन में कित् होने के कारण **ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च** से पहले सम्प्रसारण होकर बाद में **विध्** को द्वित्व आदि कार्य होते हैं। **विविध्+अतुस्=विविधतुः।** थल् के कित्, ङित् न होने के कारण **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। **भारद्वाजनियम** से थल् को इट् होने पर **विव्यधिथ** और इट् न होने के पक्ष में **विव्यध्+थ** बनने के बाद **झषस्तथोर्धोऽधः** से थकार के स्थान पर धकार आदेश और पूर्वधकार को जश्त्व होकर **विव्यद्ध** बनता है। लिट् के वस् और मस् में क्रादिनियम से नित्य से इट् हो जाता है।

लिट् के रूप- विव्याध, विविधतुः, विविधुः, विव्यधिथ-विव्यद्ध, विविधथुः, विविध, विव्याध-विव्यध, विविधिव, विविधिम।

लुट्- में इट् का अभाव है। **व्यध्+ता में झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धकार होकर पूर्वधकार को जश्त्व होकर दकार होता है। व्यद्धा, व्यद्धारौ, व्यद्धारः, व्यद्धासि, व्यद्धास्थः आदि।

लृट्- **व्यध्+स्यति** में धकार को **खरि च** से चर्त्व होकर तकार होता है। व्यत्स्यति, व्यत्स्यतः, व्यत्स्यन्ति आदि। **लोट्**- विध्यतु-विध्यतात्, विध्यताम्, विध्यन्तु आदि। **लङ्**- अविध्यत्, अविध्यताम्, अविध्यन् आदि। **विधिलिङ्**- विध्येत्, विध्येताम्, विध्येयुः आदि। **आशीर्लिङ्**- में कित् होने के कारण सम्प्रसारण होता है। विध्यात्, विध्यास्ताम्, विध्यासुः आदि।

लुङ्- के तिप् में **अव्यध्+स्+ईत्** बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर धकार को **खरि च** से चर्त्व होता है, **अव्यात्सीत्।** तस् में **अव्याध्+स्+ताम्** बनने के बाद **झलो झलि** से सकार का लोप, **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धकार और पूर्वधकार को जश्त्व होकर दकार होने पर **अव्याद्धाम्** बनता है। झि के स्थान पर **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च**

इटो विकल्पार्थं विधिसूत्रम्

६३६. रधादिभ्यश्च ७।२।४५॥

रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात्। नेशिथ।

....

से जुस् आदेश होने पर **अव्याध्+स्+उस्** बना है। झल् के परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ। **अव्यात्सुः।**

लुङ् के रूप- अव्यात्सीत्, अव्याद्धाम्, अव्यात्सुः, अव्यात्सीः, अव्याद्धम्, अव्याद्ध, अव्यात्सम्, अव्यात्स्व, अव्यात्स्म। **लृङ्**- अव्यत्स्यत्, अव्यत्स्यताम् आदि।

पुष पुष्टौ। पुष धातु **पालना** या **पुष्ट करना** अर्थ में है। अनिट् है। अकार इत्संज्ञक है। अजन्त या अकारवान् न होने से क्रादिनियम से लिट् में सर्वत्र इट् होता है।

लट् के रूप- पुष्यति, पुष्यतः, पुष्यन्ति। पुष्यसि, पुष्यथः, पुष्यथ। पुष्यामि, पुष्यावः, पुष्यामः। **लिट् में**- पुपोष, पुपुषतुः, पुपुषुः। पुपोषिथ, पुपुषथुः, पुपुष। पुपोष, पुपुषिव, पुपुषिम। **लुट् में** षकार से परे तासि के तकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व और लघूपधगुण होकर- पोष्टा, पोष्टारौ, पोष्टारः। पोष्टासि, पोष्टास्थः, पोष्टास्थ। पोष्टास्मि, पोष्टास्वः, पोष्टास्मः।

पोक्ष्यति। पुष् धातु से लृट् लकार, तिप्, स्य, लघूपधगुण करके **पोष्+स्यति** बना। **षढोः कः सि** से स्य के सकार के परे होने के कारण पोष् के षकार के स्थान पर ककार आदेश हुआ- **पोक्+स्यति** बना। ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **पोक्+ष्यति** बना। ककार और षकार के संयोग होने पर **क्ष्** होकर- **पोक्ष्यति।**

लृट् के रूप- पोक्ष्यति, पोक्ष्यतः, पोक्ष्यन्ति। पोक्ष्यसि, पोक्ष्यथः, पोक्ष्यथ। पोक्ष्यामि, पोक्ष्यावः, पोक्ष्यामः। **लोट् में**- पुष्यतु-पुष्यतात्, पुष्यताम्, पुष्यन्तु। पुष्य-पुष्यतात्, पुष्यतम्, पुष्यत। पुष्याणि, पुष्याव, पुष्याम। **लङ् में**- अपुष्यत्, अपुष्यताम्, अपुष्यन्। अपुष्यः, अपुष्यतम्, अपुष्यत। अपुष्यम्, अपुष्याव, अपुष्याम। **विधिलिङ् में**- पुष्येत्, पुष्येताम्, पुष्येयुः। पुष्येः, पुष्येतम्, पुष्येत। पुष्येयम्, पुष्येव, पुष्येम। **आशीर्लिङ् में**- पुष्यात्, पुष्यास्ताम्, पुष्यासुः। पुष्याः, पुष्यास्तम्, पुष्यास्त। पुष्यासम्, पुष्यास्व, पुष्यास्म।

लुङ् में पुषादि धातु के होने के कारण **पुषादिद्युताद्युलृदितः परस्मैपदेषु** से च्लि के स्थान पर चङ् आदेश होकर **अपुषत्** बनता है। अपुषत्, अपुषताम्, अपुषन्। अपुषः, अपुषतम्, अपुषत। अपुषम्, अपुषाव, अपुषाम। **लृङ् में**- अपोक्ष्यत्, अपोक्ष्यताम्, अपोक्ष्यन्। अपोक्ष्यः, अपोक्ष्यतम्, अपोक्ष्यत। अपोक्ष्यम्, अपोक्ष्याव, अपोक्ष्याम।

शुष शोषणे। शुष धातु **शोषण** अर्थात् **सूखने** के अर्थ में है। ध्यान रहे कि सूखना ही अर्थ है, सुखाना नहीं। सुखाना अर्थ के लिए तो णिजन्त में **शोषयति** यह रूप बनता है। अकार की इत्संज्ञा होने के बाद शुष् के रूप भी पुष् के समान ही होते हैं। जैसे- शुष्यति। शुशोष। शोष्टा। शोक्ष्यति। शुष्यतु। अशुष्यत्। शुष्येत्। शुष्यात्। अशुषत्। अशोक्ष्यत्।

णश अदर्शने। णश धातु **अदर्शन** अर्थात् **लोप** या **नाश होना** अथवा **नेत्रों से ओझल होना** अर्थ में है। **णो नः** से आदि णकार के स्थान पर नकार आदेश और **उपदेशेऽज्अनुनासिक इत्** से शकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा और लोप होने पर **नश्** बचता है। परस्मैपदी और सेट् है।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६३७. मस्जिनशोर्झलि ७।१।६०।।

नुम् स्यात्। ननंष्ठ। नेशिव, नेश्व। नेशिम, नेश्म। नशिता, नंष्टा। नशिष्यति, नङ्क्ष्यति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत्।

षूङ् प्राणिप्रसवे।।१३।। सूयते। सुषुवे। क्रादिनियमादिट्। सुषुविषे। सुषुविवहे। सुषुविमहे। सविता, सोता।

दुङ् परितापे।।१४।। दीङ् क्षये।।१५।। दीयते।

....

लट्- नश्+यति=नश्यति, नश्यतः, नश्यन्ति आदि।

६३६- **रधादिभ्यश्च**। रध् आदियेषां ते रधादयः, तेभ्यः रधादिभ्यः। रधादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** यह सम्पूर्ण सूत्र और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् इन धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से होता है।

६३७- **मस्जिनशोर्झलि**। मस्जिश्च नश् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो मस्जिनशौ, तयोर्मस्जिनशोः। मस्जिनशोः षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है, जिससे **प्रत्ययः** पद आक्षिप्त होता है और **झलि** से **झलादि प्रत्यय** यह अर्थ निकलता है।

झलादि प्रत्यय के परे होने पर मस्ज् और नश् धातुओं को नुम् आगम होता है।

ननाश। लिट्, तिप्, णल्, अ, नश् को द्वित्व, हलादिशेष होकर **ननश्+अ=ननाश**। तस् और झि में एत्वाभ्यासलोप होकर **नेशतुः, नेशुः** बनते हैं।

नेशिथ, ननंष्ठ। लिट् के सिप् में **ननश्+थ** बनने के बाद **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से नित्य से इट् प्राप्त था, उसे बाधकर **रधादिभ्यश्च** से विकल्प से इट् हुआ। इट् से युक्त थल् के परे होने पर **थलि च सेटि** से एत्वाभ्यासलोप हुआ- **नेश्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **नेशिथ** सिद्ध हुआ। इट् होने पर झलादि न मिलने के कारण **नुम्** नहीं हुआ। इट् न होने के पक्ष में एत्वाभ्यासलोप भी प्राप्त नहीं है। अतः **ननश्+थ** है। **मस्जिनशोर्झलि** से नुम् का आगम, मित् होने के कारण अन्त्य अच् नकारोत्तरवर्ती अकार के बाद और शकार के पहले बैठा। **ननन्श्+थ** बना। नकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार, शकार को **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश, षकार से परे थकार को **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व से **ठकार** आदेश होकर **ननंष्ठ** सिद्ध हुआ। इस तरह दो रूप बन गये- **नेशिथ, ननंष्ठ**।

लिट् के रूप- ननाश, नेशतुः, नेशुः, नेशिथ-ननंष्ठ, नेशथुः, नेश, ननाश-ननश, नेशिव, नेशिम। **लुट् में** इट्पक्ष और इट् के अभाव पक्ष में दो-दो रूप बनते हैं। नशिता, नशितारौ, नशितारः एवं नंष्टा, नंष्टारौ, नंष्टारः।

लृट् में- **रधादिभ्यश्च** से इट् होने के पक्ष में **नशिष्यति** और इट् के अभाव में नुम् का आगम होकर **नन्श्+स्यति** बना है। नकार को अनुस्वार, शकार को षकार आदेश

और सि के सकार के परे रहते षकार को **षढोः कः सि** से ककार आदेश होकर **नंक्+स्यति** बना। ककार से परे सकार को षत्व करके **क्षसंयोगे क्षः** होकर **नंक्ष्यति** बना। **क्ष्य में** विद्यमान ककार के परे होने पर **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर ङकार हुआ। इस तरह से **नङ्क्ष्यति** बना। **इट् के पक्ष में** नशिष्यति, नशिष्यतः, नशिष्यन्ति आदि। **इट् न होने के पक्ष में-** नङ्क्ष्यति, नङ्क्ष्यतः, नङ्क्ष्यन्ति।

लोट्- नश्यतु-नश्यतात्, नश्यताम्, नश्यन्तु आदि। **लङ्-** अनश्यत्, अनश्यताम्, अनश्यन् आदि। **विधिलिङ्-** नश्येत्, नश्येताम्, नश्येयुः। **आशीर्लिङ्-** झलादि न होने के कारण नुम् का आगम नहीं हुआ। नश्यात्, नश्यास्ताम्, नश्यासुः आदि। **लुङ्- पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होकर- अनशत्, अनशताम्, अनशन्, अनशः, अनशतम्, अनशत, अनशम्, अनशाव, अनशाम। **लृङ्-** अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत्।

षूङ् प्राणिप्रसवे। षूङ् धातु **प्राणियों को पैदा करना** अर्थ में है। धातु के आदि षकार के स्थान पर **धात्वादेः षः सः** से सकार आदेश होता है। ङकार भी इत्संज्ञक है। सू बचता है। ङकारानुबन्ध के कारण आत्मनेपदी और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वलादि में **वेट्** है किन्तु लिट् में **श्र्युकः किति** से नित्य से इट् का निषेध प्राप्त होने पर क्रादिनियम से नित्य से इट् हो जाता है।

लट्- सूयते, सूयेते, सूयन्ते, सूयसे, सूयेथे, सूयध्वे, सूये, सूयावहे, सूयामहे।

लिट्- में **ए, आते, इरे, आथे, इट्** ये स्वतः ही अजादि है और से, ध्वे, वहे, महे में इट् होने के कारण अजादि है। अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश होता है। द्वितीय सकार को षत्व हो जाता है। **रूप-** सुषुवे, सुषुवाते, सुषुविरे, सुषुविषे, सुषुवाथे, सुषुविढ्वे-सुषुविध्वे, सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे।

लुट्- इट् होने के पक्ष में सविता, सवितारौ, सवितारः, सवितासे आदि और इट् न होने के पक्ष में सोता, सोतारौ, सोतारः, सोतासे आदि। इसी तरह **लृट्** में- सविष्यते, सविष्येते, सविष्यन्ते, सोष्यते, सोष्येते, सोष्यन्ते आदि। **लोट्-** सूयताम्, सूयेताम्, सूयन्ताम्, सूयस्व, सूयेथाम, सूयध्वम्, सूयै, सूयावहै, सूयामहै। **लङ्-** असूयत, असूयेताम्, असूयन्त, असूयथाः, असूयेथाम्, असूयध्वम्, असूये, असूयावहि, असूयामहि। **विधिलिङ्-** सूयेत, सूयेयाताम्, सूयेरन् आदि। **आशीर्लिङ्- इट् के पक्ष में-** सविषीष्ट, सविषीयास्ताम्, सविषीरन्, सविषीष्ठाः, सविषीयास्थाम्, सविषीढ्वम्-सविषीध्वम्, सविषीय, सविषीवहि, सविषीमहि। **इट् के अभाव में-** सोषीष्ट, सोषीयास्ताम्, सोषीरन् आदि। **लुङ् के इट्पक्ष में-** असविष्ट, असविषाताम्, असविषत, असविष्ठाः, असविषाथाम्, असविढ्वम्-असविध्वम्, असविषि, असविष्वहि, असविष्महि। **इट् न होने पर-** असोष्ट, असोषाताम्, असोषत, असोष्ठाः, असोषाथाम्, असोढ्वम्, असोषि, असोष्वहि, असोष्महि। **लृङ्-** असविष्यत, असोष्यत।

दूङ् परितापे। दूङ् धातु **परिताप** अर्थात् **दुःखी होना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपदी है और ऊदन्त होने से सेट् है।

लट्- दूयते, दूयेते, दूयन्ते आदि। **लिट्-** दुदुवे, दुदुवाते, दुदुविरे आदि। **लुट्-** दविता, दवितारौ, दवितारः, दवितासे आदि। **लृट्-** दविष्यते, दविष्येते, दविष्यन्ते आदि। **लोट्-** दूयताम्, दूयेताम्, दूयन्ताम् आदि। **लङ्-** अदूयत, अदूयेताम्, अदूयन्त आदि। **विलिलिङ्-** दूयेत, दूयेयाताम्, दूयेरन् आदि। **आशीर्लिङ्-** दविषीष्ट, दविषीयास्ताम्, दविषीरन् आदि। **लुङ्-** अदविष्ट, अदविषाताम्, अदविषत आदि। **लृङ्-** अदविष्यत, अदविष्येताम् आदि।

युटागमविधायकं विधिसूत्रम्

६३८. दीङो युडचि क्ङिति ६।४।६३॥

दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट्।

वार्तिकम्- **वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ।** दिदीये।

आत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६३९. मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ६।१।५०॥

एषामात्त्वं स्याल्ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते। दाता। दास्यति।

वार्तिकम्- **स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः।** अदास्त। **डीङ् विहायसा गतौ॥१६॥**

डीयते। डिड्ये। डयिता। **पीङ् पाने॥१७॥** पीयते। पेता। अपेष्ट।

माङ् माने॥१८॥ मायते। ममे। **जनी प्रादुर्भावे॥१९॥**

....

दीङ् क्षये। दीङ् धातु **नष्ट होना** अर्थ में है। यह भी ङकार की इत्संज्ञा हो जाने के कारण आत्मनेपदी है और अनिट् कारिका के अनुसार अनिट् भी किन्तु लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है।

लट्- दूयते, दूयेते, दूयन्ते आदि।

६३८- दीङो युडचि क्ङिति। क् च ङ च क्ङौ, तौ इतौ यस्य तत् क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। दीङः पञ्चम्यन्तं, युट् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

दीङ् से परे अजादि कित्, ङित् आर्धधातुक को युट् आगम होता है।

उकार और टकार की इत्संज्ञा होकर केवल **य्** बचता है और टित् होने के कारण अजादि आर्धधातुक का आदि-अवयव होकर बैठता है।

वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ। यह वार्तिक है। **उवङ् और यण् की कर्तव्यता में वुक् और युट् को सिद्ध कहना चाहिए।**

भाष्य में यह वार्तिक **असिद्धवदत्राभात्** सूत्र में पठित है। षष्ठाध्याय के चतुर्थपाद के बाइसवें सूत्र से पाद की समाप्ति पर्यन्त के सूत्र आभीय सूत्र कहलाते हैं और उक्त सूत्र से एक आभीय की कर्तव्यता में दूसरा आभीय असिद्ध कर दिया जाता है। इसी क्रम में **दीङो युडचि क्ङिति** इस आभीय के द्वारा किया गया युट् आगम **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** इस आभीय की कर्तव्यता में असिद्ध होने से यण् की प्राप्ति होती है। इसलिए आचार्य को वार्तिक के द्वारा कहना पड़ा कि उवङ् और यण् की कर्तव्यता में वुक् और युट् असिद्ध नहीं होते अर्थात् सिद्ध ही होते हैं। युट् के सिद्ध होने से अजादि न मिलने के कारण यण् और वुक् के सिद्ध होने से अजादि न मिलने से उवङ् नहीं होता।

दिदीये। लिट् के तिप् में **दिदी+ए** बनने के बाद **दीङो युडचि क्ङिति** से युट् आगम होकर **दिदी+य्+ए** बना। अब आभीयशास्त्र के द्वारा किया गया युट् **असिद्धवदत्राभात्** के नियम से आभीयशास्त्र **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** की दृष्टि में असिद्ध था तो **वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ** से सिद्ध हुआ अर्थात् आगे यकार दिखाई दिया। अब अजादि न मिलने के कारण यण्

नहीं हो सका। वर्णसम्मेलन होकर **दिदीये** सिद्ध हुआ। **लिट् के रूप**- दिदीये, दिदीयाते, दिदीयिरे, दिदीयिषे, दिदीयाथे, दिदीयिढ्वे-दिदीयिध्वे, दिदीये, दिदीयिवहे, दिदीयिमहे।

६३९- **मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च।** मीनातिश्च मिनोतिश्च दीङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो मीनातिमिनोतिदीङः, तेषां मीनातिमिनोतिदीङाम्। मीनातिमिनोतिदीङां षष्ठ्यन्तं, ल्यपि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आदेच उपदेशेऽशिति** यह पूरा सूत्र अनुवर्तित होता है।

ल्यप् के विषय में या एच् करने में निमित्त शिद्भिन्न प्रत्यय के विषय में क्र्यादि के मीञ्, स्वादि के मिञ् और दिवादि के दीङ् धातुओं को आकार अन्तादेश होता है।

एच् करने में निमित्त का तात्पर्य यह है जिसे निमित्त मानकर धातु में गुण, वृद्धि आदि होकर एच् अर्थात् **ए, ओ, ऐ, औ** बन जाता हो, वह वर्ण एच् निमित्तक है। एच् का निमित्त होते हुए शित् नहीं होना चाहिए। लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ् में स्य, तास् आदि एज्निमित्तक हैं। अतः इन लकारों में आत्त्व हो जाता है। जिस लकार में श्यन् होता है, वहाँ शित् होने के कारण नहीं होता।

दाता। दी से लुट्, त, तास्, डा आदि करके **दी+ता** बना। ता इस आर्धधातुक को मानकर धातु के ईकार को गुण होकर एकार बनता है। अतः एज्निमित्तक है ता। उसके परे होने पर **मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** से धातु के ईकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **दाता** सिद्ध हुआ।

लुट् में- दाता, दातारौ, दातारः, दातासे आदि। इसी तरह **लृट् में**- दास्यते, दास्येते, दास्यन्ते आदि। **लोट्**- दीयताम्, दीयेताम्, दीयन्ताम् आदि। **लङ्**- अदीयत, अदीयेताम्, अदीयन्त। **विधिलिङ्**- दीयेत, दीयेयाताम्, दीयेरन् आदि। **आशीर्लिङ्**- दासीष्ट, दासीयास्ताम्, दासीरन् आदि।

स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेध। यह भाष्य वार्तिक है। **स्थाघ्वोरिच्च से होने वाला इत्त्व दीङ् धातु में नहीं होता है।**

लुङ् में- अदा+स्+त बनने के बाद **दा-रूप** मानकर **दाधा घ्वदाप्** से घुसंज्ञा और **स्थाघ्वोरिच्च** से इत्त्व प्राप्त होता है किन्तु **स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः** से निषेध हो जाने से इत्व नहीं हुआ। अतः **अदास्त** ही रह गया। **रूप**- अदास्त, अदासाताम्, अदासत, अदास्थाः, अदासाथाम्, अदाध्वम्, अदासि, अदास्वहि, अदास्महि। **लृङ्**- अदास्यत, अदास्येताम्, अदास्यन्त आदि।

डीङ् विहायसा गतौ। डीङ् धातु **आकाशमार्ग से जाना** अर्थात् **उड़ना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपदी है। **ऊदॄदन्तैः** इस कारिका में आने के कारण सेट् है।

लट्- डीयते, डीयेते, डीयन्ते आदि। उत् उपसर्ग के लगने से **उड्डीयते** आदि रूप बनते हैं। **लिट्**- डिड्ये, डिड्याते, डिड्यिरे आदि। **लुट्**- डयिता, डयितारौ, डयितारः आदि। **लृट्**- डयिष्यते, डयिष्येते, डयिष्यन्ते। **लोट्**- डीयताम्, डीयेताम्, डीयन्ताम् आदि। **लङ्**- अडीयत, अडीयेताम्, अडीयन्त। **विधिलिङ्**- डीयेत, डीयेयाताम्, डीयेरन्। **आशीर्लिङ्**- डयिषीष्ट, डयिषीयास्ताम्, डयिषीरन्। **लुङ्**- अडयिष्ट, अडयिषाताम्, अडयिषत, अडयिष्ठाः, अडयिषाथाम्, अडयिढ्वम्-अडयिध्वम्, अडयिषि, अडयिष्वहि, अडयिष्महि। **लृङ्**- अडयिष्यत, अडयिष्येताम्, अडयिष्यन्त।

जादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६४०. ज्ञाजनोर्जा ७।३।७९॥

अनयोर्जादेशः स्याच्छिति। जायते। जज्ञे। जनिता। जनिष्यते।

....

पीङ् पाने। पीङ् धातु **पीना** अर्थ में है। ङित् होने से आत्मनेपदी है। अनिट् है।

लट्- पीयते, पीयेते, पीयन्ते। **लिट्-** पिप्ये, पिप्याते, पिप्यिरे। **लुट्-** पेता, पेतारौ, पेतारः, पेतासे। **लृट्-** पेष्यते, पेष्येते, पेष्यन्ते। **लोट्-** पीयताम्, पीयेताम्, पीयन्ताम्। **लङ्-** अपीयत, अपीयेताम्, अपीयन्त। **विधिलिङ्-** पीयेत, पीयेयाताम्, पीयेरन्। **आशीर्लिङ्-** पेषीष्ट, पेषीयास्ताम्, पेषीरन्। **लुङ्-** अपेष्ट, अपेषाताम्, अपेषत, अपेष्ठाः, अपेषाथाम्, अपेढ्वम्, अपेषि, अपेष्वहि, अपेष्महि। **लृङ्-** अपेष्यत, अपेष्येताम्, अपेष्यन्त।

माङ् माने। माङ् धातु **मापना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपदी है। अनिट् है।

लट्- मायते, मायेते, मायन्ते। **लिट् में-** ममे, ममाते, ममिरे, ममिषे, ममाथे। **लुट्-** माता, मातारौ, मातारः, मातासे। **लृट्-** मास्यते, मास्येते, मास्यन्ते। **लोट्-** मायताम्, मायेताम्, मायन्ताम्। **लङ्-** अमायत, अमायेताम्, अमायन्त। **विधिलिङ्-** मायेत, मायेयाताम्, मायेरन्। **आशीर्लिङ्-** मासीष्ट, मासीयास्ताम्, मासीरन्। **लुङ्-** अमास्त, अमासाताम्, अमासत। **लृङ्-** अमास्यत, अमास्येताम्, अमास्यन्त।

जनी प्रादुर्भावे। जनी धातु **उत्पन्न होना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। इसी धातु से जन, जननी, जनक, जाति, जन्मन्, जाया आदि शब्द बनते हैं। अनुदात्त की इत्संज्ञा होने के कारण यह आत्मनेपदी है। सेट् है।

६४०- **ज्ञाजनोर्जा।** ज्ञाश्च जन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो ज्ञाजनौ, तयोः ज्ञाजनोः। ज्ञाजनोः षष्ठ्यन्तं, जा लुप्तप्रथमाकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

शित् प्रत्यय के परे होने पर ज्ञा और जन् धातुओं के स्थान पर जा आदेश होता है।

अनेकाल् होने के कारण सर्वादेश हो जाता है।

जायते। जन् से लट्, त, श्यन् आदि होकर **जन्+यते** बना है। **ज्ञाजनोर्जा** से जा सर्वादेश होकर **जायते** बन गया। जायते, जायेते, जायन्ते। जायसे, जायेथे, जायध्वे, जाये, जायावहे, जायामहे।

जज्ञे। लिट् में श्यन् न होने से अशित् होने के कारण **जा** आदेश नहीं हुआ। द्वित्वादि होकर **जजन्+ए** बना है। **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधालोप होकर **जज्+न्+ए** बना। जकार से परे नकार को श्चुत्व होकर ञकार हुआ, **जज्ञ्+ए** बना। **जकार** और **ञकार** के संयोग से ज्ञ बन गया, **जज्ञ्+ए,** वर्णसम्मेलन होकर **जज्ञे** सिद्ध हुआ। **लिट् के रूप-** जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे, जज्ञिषे, जज्ञाथे, जज्ञिध्वे, जज्ञे, जज्ञिवहे, जज्ञिमहे। **लुट्-** जनिता, जनितारौ, जनितारः। **लृट्-** जनिष्यते, जनिष्येते, जनिष्यन्ते। **लोट्-** जायताम्, जायेताम्, जायन्ताम्, जायस्व, जायेथाम्, जायध्वम्, जायै, जायावहै, जायामहै। **लङ्-** अजायत, अजायेताम्, अजायन्त, अजायथाः, अजायेथाम्, अजायध्वम्, अजाये, अजायावहि, अजायामहि।

वैकल्पिकचिणादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६४१. दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने त-शब्दे परे।

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

६४२. चिणो लुक् ६।४।१०४॥

चिणः परस्य लुक् स्यात्।

वृद्धिनिषेधकं विधिसूत्रम्

६४३. जनिवध्योश्च ७।३।३५॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। अजनि, अजनिष्ट। **दीपी दीप्तौ॥२०॥** दीप्यते। दिदीपे। अदीपि, अदीपिष्ट। **पद गतौ॥२१॥** पद्यते। पेदे। पत्ता। पत्सीष्ट।

....

विधिलिङ्- जायेत, जायेयाताम्, जायेरन्, जायेथाः, जायेयाथाम्, जायेध्वम्, जायेय, जायेवहि, जायेमहि। **आशीर्लिङ्-** जनिषीष्ट, जनिषीयास्ताम्, जनिषीरन्, जनिषीष्ठाः, जनिषीयास्थाम्, जनिषीध्वम्, जनिषीय, जनिषीवहि, जनिषीमहि।

६४१- दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्। दीपश्च जनश्च बुधश्च पूरिश्च तायिश्च प्यायिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो दीपजनबुधपूरितायिप्यायय:, तेभ्य: दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्य:। दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्य: पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** और **चिण् ते पदः** से **चिण्, ते** की अनुवृत्ति आती है।

एकवचन त शब्द के परे होने पर दीप्, जन्, बुध्, पूर्, ताय् और प्याय् धातुओं से परे च्लि के स्थान पर चिण् आदेश होता है।

६४२- चिणो लुक्। चिणः पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

चिण् से परे (तशब्द का) लुक् होता है।

यह सूत्र अङ्गाधिकार में है अर्थात् **अङ्गस्य** का अधिकार आता है। अङ्ग से परे प्रत्यय यहाँ पर केवल **त** ही मिलता है क्योंकि केवल त के परे ही चिण् हुआ है।

६४३- जनिवध्योश्च। जनिश्च वधिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो जनिवधी, तयोर्जनिवध्योः। जनिवध्योः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत उपधायाः** से **उपधायाः**, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः**, **नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः** से **न**, **आतो युक् चिण्कृतोः** से **चिण्कृतोः** और **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् के परे होने पर अथवा कृत्संज्ञक ञित् या णित् के परे होने पर जन् और वध् धातुओं की उपधा की वृद्धि नहीं होती है।

अजनि, अजनिष्ट। जन् से लुङ्, अट्, त, च्लि करके उसके स्थान पर **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक **चिण्** आदेश करने पर **अजन्+इत** बना। **चिणो लुक्** से त का लुक् हुआ, **अंजन्+इ** बना। **चिण्** के इकार को णित् मानकर

चिणादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६४४. **चिण् ते पदः ३।१।६०॥**

पदेश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे। अपादि। अपत्साताम्। अपत्सत।

विद सत्तायाम्॥२२॥ विद्यते। वेत्ता। अवित्त। **बुध अवगमने॥२३॥** बुध्यते। बोद्धा। भोत्स्यते। भुत्सीष्ट। अबोधि, अबुद्ध। अभुत्साताम्।

युध सम्प्रहारे॥२४॥ युध्यते। युयुधे। योद्धा। अयुद्ध।

सृज विसर्गे॥२५॥ सृज्यते। ससृजे। ससृजिषे।

....

अत उपधायाः से वृद्धि प्राप्त होने पर **जनिवध्योश्च** से निषेध हुआ। इस तरह **अजनि** सिद्ध हुआ। चिण् न होने के पक्ष में सिच् आदेश होकर उसको इट् का आगम करके **अजन्+इस्+त** है। इकार से पर सकार को षत्व और षकार से पर तकार को ष्टुत्व करके **अजन्+इष्ट=अजनिष्ट** सिद्ध हुआ। इस तरह दो रूप बने। आताम् आदि में कहीं भी चिण् नहीं होता। अतः सिच् होकर एक ही रूप बनते हैं।

लुङ्- अजनि-अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत, अजनिष्ठाः, अजनिषाथाम्, अजनिढ्वम्, अजनिषि, अजनिष्वहि, अजनिष्महि। **लृङ्**- अजनिष्यत, अजनिष्येताम् आदि।

दीपी दीप्तौ। दीपी धातु **चमकना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। ईदित् होने से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के परे रहते **श्वीदितो निष्ठायाम्** से इट् का निषेध होता है, अन्यत्र इट् होता है। अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी है। अन्य रूप सामान्य ही हैं, केवल लुङ् के एकवचन में **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** से चिण् होकर **चिणो लुक्** से त का लुक् होकर **अदीपि, अदीपिष्ट** ये दो रूप बनते हैं।

लट्- दीप्यते, दीप्येते, दीप्यन्ते। **लिट्**- दिदीपे, दिदीपाते, दिदीपिरे। **लुट्**- दीपिता, दीपितारौ, दीपितारः। **लृट्**- दीपिष्यते, दीपिष्येते, दीपिष्यन्ते। **लोट्**- दीप्यताम्, दीप्येताम्, दीप्यन्ताम्। **लङ्**- अदीप्यत, अदीप्येताम्, अदीप्यन्त। **विधिलिङ्**- दीप्येत, दीप्येयाताम्, दीप्येरन्। **आशीर्लिङ्**- दीपिषीष्ट, दीपिषीयास्ताम्, दीपिषीरन्। **लुङ्**- अदीपि-अदीपिष्ट, अदीपिषाताम्, अदीपिषत, अदीपिष्ठाः, अदीपिषाथाम्, अदीपिध्वम्, अदीपिषि, अदीपिष्वहि, अदीपिष्महि। **लृङ्**- अदीपिष्यत, अदीपिष्येताम्, अदीपिष्यन्त।

पद गतौ। पद धातु **जाना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **पद्** शेष रहता है। अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी और अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। इसी धातु में उपसर्ग आदि लगकर **उत्पत्तिः, सम्पत्तिः, विपत्तिः** आदि रूप बनते हैं।

लट्- पद्यते, पद्येते, पद्यन्ते। **लिट्**- पेदे, पेदाते, पेदिरे। **लुट्**- पत्ता, पत्तारौ, पत्तारः। **लृट्**- पत्स्यते, पत्स्येते, पत्स्यन्ते। **लोट्**- पद्यताम्, पद्येताम्, पद्यन्ताम्। **लङ्**-अपद्यत, अपद्येताम्, अपद्यन्त। **विधिलिङ्**- पद्येत, पद्येयाताम्, पद्येरन्। **आशीर्लिङ्**- पत्सीष्ट, पत्सीयास्ताम्, पत्सीरन्।

६४४- **चिण् ते पदः**। चिण् प्रथमान्तं, ते सप्तम्यन्तं, पदः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** की अनुवृत्ति आती है।

पद धातु से परे च्लि के स्थान पर चिण् आदेश होता है त-शब्द के परे होने पर।

अमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६४५. सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६।१।५८।।

अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति। स्रष्टा। स्रक्ष्यते। सृक्षीष्ट। असृष्ट। असृक्षाताम्। **मृष तितिक्षायाम्।।२६।।** मृष्यति, मृष्यते। ममर्ष। ममर्षिथ। ममृषिषे। मर्षितासि। मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। **णह बन्धने।।२७।।** नह्यति, नह्यते। ननाह। नेहिथ, ननद्ध। नेहे। नद्धा। नत्स्यति। अनात्सीत्, अनद्ध।

इति दिवादयः।।१५।।

इस सूत्र से विधीयमान **चिण्** नित्य है।

अपादि। पद् से लुङ्, अट् का आगम, त, च्लि करके उसके स्थान पर **चिण् ते पदः** से नित्य से चिण् आदेश होकर **अपद्+इत** बना। **अत उपधायाः** से पकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि और **चिणो लुक्** से त का लुक् करके **अपादि** बना। ताम् आदि में चिण् नहीं होगा।

लुङ् के रूप- अपादि, अपत्साताम्, अपत्सत, अपत्थाः, अपत्साथाम्, अपद्ध्वम्, अपत्सि, अपत्स्वहि, अपत्स्महि। **लृङ्**- अपत्स्यत, अपत्स्येताम्, अपत्स्यन्त।

विद सत्तायाम्। विद धातु **सत्ता** अर्थात् होना, विद्यमान रहना, पाया जाना अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **विद्** शेष रहता है। अनुदात्तेत् होने के कारण आत्मनेपदी है। अनुदात्तों में पढ़े जाने से अनिट् है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से सर्वत्र इट् होता है। **लट्**- विद्यते, विद्येते, विद्यन्ते। **लिट्**- विविदे, विविदाते, विविदिरे। **लुट्**- वेत्ता, वेत्तारौ, वेत्तारः। **लृट्**- वेत्स्यते, वेत्स्येते, वेत्स्यन्ते। **लोट्**- विद्यताम्, विद्येताम्, विद्यन्ताम्। **लङ्**- अविद्यत, अविद्येताम्, अविद्यन्त। **विधिलिङ्**- विद्येत, विद्येयाताम्, विद्येरन्। **आशीर्लिङ्**- वित्सीष्ट, वित्सीयास्ताम्, वित्सीरन्। **लुङ्** के **त** में **झलो झलि** से सकार का लोप होता है। अवित्त, अवित्साताम्, अवित्सत, अवित्थाः, अवित्साथाम्, अविद्ध्वम्, अवित्सि, अवित्स्वहि, अवित्स्महि। **लृङ्**- अवित्स्यत, अवित्स्येताम्, अवित्स्यन्त।

बुध अवगमने। बुध धातु **जानना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होकर **बुध्** शेष रहता है। अनिट् और आत्मनेपदी है। स्य, सीयुट् और सिच् के सकार के परे होने पर **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से **बकार** के स्थान पर **भष्** आदेश होकर **भकार** हो जाता है। तासि के तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश होकर **बुध्** के पूर्व धकार को **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर दकार बनता है। लुङ् के त में **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** से चिण् होता है। उसके बाद **चिणो लुक्** से **त** का लुक् होता है। लघूपधगुण होता है। चिण् न होने के पक्ष में सिच् के सकार का **झलो झलि** से लोप होता है।

लट्- बुध्यते, बुध्येते, बुध्यन्ते। **लिट्**- बुबुधे, बुबुधाते, बुबुधिरे। **लुट्**- बोद्धा, बोद्धारौ, बोद्धारः। **लृट्**- भोत्स्यते, भोत्स्येते, भोत्स्यन्ते। **लोट्**- बुध्यताम्, बुध्येताम्, बुध्यन्ताम्। **लङ्**- अबुध्यत, अबुध्येताम्, अबुध्यन्त। **विधिलिङ्**- बुध्येत, बुध्येयाताम्, बुध्येरन्। **आशीर्लिङ्**- भुत्सीष्ट, भुत्सीयास्ताम्, भुत्सीरन्। **लुङ्**- अबोधि-अबुद्ध, अभुत्साताम्, अभुत्सत, अबुद्धाः, अभुत्साथाम्, अभुद्ध्वम्, अभुत्सि, अभुत्स्वहि, अभुत्स्महि। **लृङ्**- अभोत्स्यत, अभोत्स्येताम्, अभोत्स्यन्त।

युध सम्प्रहारे। युध धातु **युद्ध करना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है। **युध्** शेष रहता है। आत्मनेपदी एवं अनिट् है। चिण् और भष्भाव का विषय नहीं है।

लट्- युध्यते, युध्येते, युध्यन्ते। **लिट्**- युयुधे, युयुधाते, युयुधिरे। **लुट्**- योद्धा, योद्धारौ, योद्धारः। **लृट्**- योत्स्यते, योत्स्येते, योत्स्यन्ते। **लोट्**- युध्यताम्, युध्येताम्, युध्यन्ताम्। **लङ्**- अयुध्यत, अयुध्येताम्, अयुध्यन्त। **विधिलिङ्**- युध्येत, युध्येयाताम्, युध्येरन्। **आशीर्लिङ्**- युत्सीष्ट, युत्सीयास्ताम्, युत्सीरन्। **लुङ्**- अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत, अयुद्धाः, अयुत्साथाम्, अयुद्ध्वम्, अयुत्सि, अयुत्स्वहि, अयुत्स्महि। **लृङ्**- अयोत्स्यत, अयोत्स्येताम्, अयोत्स्यन्त।

सृज विसर्गे। सृज धातु **छोड़ना** अर्थ में है। तुदादिगण में पठित सृज धातु का **निर्माण करना, रचना करना, सृजना करना** आदि अर्थ है किन्तु दिवादिगणीय इस धातु का तो **छोड़ना** अर्थ ही उचित है।

लट्- सृज्यते, सृज्येते, सृज्यन्ते। **लिट्**- ससृजे, ससृजाते, ससृजिरे।

६४५- सृजिदृशोर्झल्यमकिति। सृजिश्च दृश् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सृजिदृशौ, तयोः सृजिदृशोः। न कित् अकित्, तस्मिन्। सृजिदृशोः षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तम्, अम् प्रथमान्तम्, अकिति सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

कित्-भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो सृज् और दृश् धातुओं को अम् आगम होता है।

स्रष्टा। सृज् से लुट्, तासि, डा, टि का लोप करके **सृज्+ता** बना है। **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से **अम्** आगम हुआ। अनुबन्धलोप होकर अकार के मित् होने से अन्त्य अच् के बाद बैठा तो **सृ+अ+ज्+ता** बना। **सृ+अ** में यण् होकर **स्र्+अ=स्र, स्रज्+ता** बना। जकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयज- राजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश होकर **स्रष्+ता** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्रष्टा** सिद्ध हो गया। स्रष्टा, स्रष्टारौ, स्रष्टारः।

स्रक्ष्यते। लृट् में भी अम् आगम, यण्, षकारादेश करके **स्रष्+स्यत** बना है। **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर ककार आदेश, ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व, ककार और षकार के संयोग से क्षकार होकर **स्रक्ष्यते** सिद्ध होता है। स्रक्ष्यते, स्रक्ष्येते, स्रक्ष्यन्ते।

लोट्- सृज्यताम्, सृज्येताम्, सृज्यन्ताम्। **लङ्**- असृज्यत, असृज्येताम्, असृज्यन्त। **विधिलिङ्**- सृज्येत, सृज्येयाताम्, सृज्येरन्। **आशीर्लिङ्**- **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से कित् होने के कारण **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से अम् नहीं होगा- सृक्षीष्ट, सृक्षीयास्ताम्, सृक्षीरन्। **लुङ्**- असृष्ट, असृक्षाताम्, असृक्षत, असृष्ठाः, असृक्षाथाम्, असृड्ढ्वम्, असृक्षि, असृक्ष्वहि, असृक्ष्महि। **लृङ्**- अस्रक्ष्यत, अस्रक्ष्येताम्, अस्रक्ष्यन्त।

मृष तितिक्षायाम्। मृष धातु **तितिक्षा** अर्थात् **सहना** अर्थ में है। स्वरित अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। स्वरितेत् होने से **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी हो जाता है। अनुदात्तधातुओं में परिगणित न होने से सेट् है।

लट्- मृष्यति, मृष्यतः, मृष्यन्ति। मृष्यते, मृष्येते, मृष्यन्ते। **लिट्**- ममर्ष, ममृषतुः, ममृषुः, ममर्षिथ। ममृषे, ममृषाते, ममृषिरे। **लुट्**- मर्षिता, मर्षितारौ, मर्षितारः, मर्षितासि, मर्षितासे। **लृट्**- मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। **लोट्**- मृष्यतु-मृष्यतात्, मृष्यताम्, मृष्यन्तु। मृष्यताम्, मृष्येताम्, मृष्यन्ताम्। **लङ्**- अमृष्यत्, अमृष्यताम्, अमृष्यन्। अमृष्यत, अमृष्येताम्, अमृष्यन्त। **विधिलिङ्**- मृष्येत्, मृष्येताम्, मृष्येयुः। मृष्येत, मृष्येयाताम्, मृष्येरन्। **आशीर्लिङ्**- मृष्यात्,

मृष्यास्ताम्, मृष्यासुः। मृषीष्ट, मृषीयास्ताम्, मृषीरन्। **लुङ्-** अमर्षीत्, अमर्षिष्टाम्, अमर्षिषुः। अमर्षिष्ट, अमर्षिषाताम्, अमर्षिषत। **लृङ्-** अमर्षिष्यत्, अमर्षिष्यत।

णह बन्धने। णह धातु **बाँधना** अर्थ में है। स्वरित अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। अतः उभयपदी है। **णो नः** से नकार आदेश होता है। अनिट् है।

लट्- नह्यति, नह्यते। **लिट्-** ननाह, नेहतुः, नेहुः, नेहिथ, नेहथुः, नेह, ननाह-ननह, नेहिव, नेहिम। नेहे, नेहाते, नेहिरे, नेहिषे, नेहाथे, नेहिढ्वे-नेहिध्वे, नेहे, नेहिवहे, नेहिमहे। **लुट्- नहो धः** से हकार के स्थान पर धकार आदेश और **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार के स्थान पर धकार आदेश होने के बाद पूर्व धकार को जश्त्व होकर-नद्धा, नद्धासि, नद्धासे। **लृट्-** नत्स्यति, नत्स्यते। **लोट्-** नह्यतु-नह्यतात्, नह्यताम्। **लङ्-** अनह्यत्, अनह्यत। **विधि लिङ्-** नह्येत्, नह्येत। **आशीर्लिङ्-** नह्यात्, नत्सीष्ट। **लुङ्-** अनात्सीत्, अनाद्धाम्, अनात्सुः, अनात्सीः, अनाद्धम्, अनाद्ध, अनात्सम्, अनात्स्व, अनात्स्म। अनद्ध, अनत्साताम्, अनत्सत, अनद्धाः, अनत्साथाम्, अनद्ध्वम्, अनत्सि, अनत्स्वहि, अनत्स्महि। **लृङ्-** अनत्स्यत्, अनत्स्यत।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१-	अपनी पुस्तिका में दिव्, षिव्, पुष् और जन् धातु के सारे रूप लिखें।	२०
२-	दिव् धातु के सभी लकारों में प्रथमपुरुष एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्रों को लगाकर करें।	१५
३-	जुहोत्यादिप्रकरण और दिवादिप्रकरण की तुलना करें।	१०
४-	नृत् धातु के सभी रूपों को पुस्तिका में उतारें।	५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का दिवादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ स्वादयः

षुञ् अभिषवे॥१॥

श्नु-विधायकं विधिसूत्रम्

६४६. स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३॥

शपोऽपवादः। सुनोति। सुनुतः। **हुश्नुवोरिति यण्।** सुन्वन्ति। सुन्वः, सुनुवः। सुनुते। सुन्वाते। सुन्वते। सुन्वहे, सुनुवहे। सुषाव, सुषुवे। सोता। सुनु। सुनुवानि। सुनवै। सुनुयात्। सूयात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **स्वादिप्रकरण** पाँचवाँ है। सु धातु आदि में होने के कारण यह **स्वादिप्रकरण** कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु और दिवादि में श्यन् हुए उसी प्रकार स्वादि में **शप्** को बाधकर **श्नु** होता है। **श्नु** में **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **नु** बचता है। **नु** यह **शित्** है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है। सार्वधातुक होते हुए भी **अपित्** है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके परे होने पर पूर्व इक् को मानकर होने वाली गुण-वृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए श्नु के परे होने पर पूर्व को गुण और वृद्धि दोनों ही नहीं होते। श्नु करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **स्वादिभ्यः श्नुः** से श्नु और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं, श्नु के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य श्नु ही हो जाता है। एक परिभाषा है- **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः**, अर्थात् पूर्वसूत्र से परसूत्र बलवान् होता है, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद सूत्र बलवान् होते हैं। तुलना में जो सूत्र बलवान् होता है, वही पहले लगता है। यहाँ पर नित्य का तात्पर्य नित्य से कार्य करना नहीं है अपितु **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः**, अर्थात् अन्य सूत्र से किसी काम के कर दिए जाने के बाद भी लगे और कार्य न किए जाने पर भी लगे, उसे नित्य कहा गया है। श्नु करने वाला सूत्र गुण-वृद्धि के होने पर भी लगेगा और गुणवृद्धि न होने पर भी लगेगा। अतः **नु** नित्य है, इसलिए गुण-वृद्धि के पहले होता है। **श्नु** के परे तिप् आदि सार्वधातुक हैं और तिप्, सिप् एवं मिप् ङित् नहीं होते हैं, अतः उनके परे **श्नु** के **उकार** को अवश्य **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण हो जाता है।

षुञ् अभिषवे। यह धातु अभिषव अर्थ में है। आचार्यों ने अभिषव के चार अर्थ किये हैं- **स्नान कराना, निचोड़ना, स्नान करना** और **सुरासन्धान** अर्थात् **शराब बनाना। धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है। ञकार की इत्संज्ञा होती है। सु बचता है। ञित् होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण अनिट् भी है।

६४६- **स्वादिभ्यः श्नुः।** स्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्नुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर स्वादिगणपठित धातुओं से शप् का बाधक श्नु प्रत्यय होता है।

शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप करके केवल नु शेष बचता है। शित् होने के कारण इसकी भी सार्वधातुकसंज्ञा होती है।

सुनोति। षुञ् धातु में ञकार का लोप, षकार के स्थान पर सकार करने के बाद सु बचा। उससे लट् लकार और उसके स्थान पर पहले परस्मैपद का प्रयोग हुआ तो तिप् आया, सार्वधातुकसंज्ञा करके शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **स्वादिभ्यः श्नुः** से **श्नु** हुआ। शकार की इत्संज्ञा, **सु+नु+ति** बना। नु की सार्वधातुकसंज्ञा करके **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से सु के उकार को गुण प्राप्त था किन्तु **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ, क्योंकि **सार्वधातुकमपित्** से नु को ङिद्वद्भाव हुआ है। ति को सार्वधातुक मानकर नु के ही उकार को गुण हुआ- **सुनोति।**

सुनुतः। द्विवचन में तस्, शेष प्रक्रिया पूर्ववत् हुई। तस् अपित् है, अतः ङिद्वद्भाव होकर नु को प्राप्त गुण का निषेध, सकार को रुत्वविसर्ग करके **सुनुतः** सिद्ध हुआ।

सुन्वन्ति। सु धातु से झि, अन्त् आदेश करके अन्ति बना, श्नु आदि करके **सु+नु+अन्ति** बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से नु के उकार के स्थान पर यण् आदेश व् हो गया, **सुन्व्+अन्ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **सुन्वन्ति।**

सुनोषि। सुनोति की तरह सुनोसि बनाकर सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व कर देने पर **सुनोषि** बन जाता है। इसी तरह **सुनोमि** भी बनाइये। **सुनुतः** की तरह **सुनुथः, सुनुथ, सुनुवः, सुनुमः** भी बना सकते हैं किन्तु **वस् और मस्** के परे होने पर **लोपश्चास्यान्यतरस्याम् म्वोः** से उकार का वैकल्पिक लोप करके **सुन्वः, सुनुवः** एवं **सुन्मः, सुनुमः** ऐसे दो-दो रूप बतने हैं। इस तरह से सु धातु के लट् के परस्मैपद में- सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति। सुनोषि, सुनुथः, सुनुथ। सुनोमि, सुन्वः-सुनुवः, सुन्मः-सुनुमः।

आत्मनेपद में कोई पित् नहीं है, अतः **सार्वधातुकमपित्** से सभी ङित् हैं। फलतः सभी में गुण का निषेध रहेगा ही। परस्मैपद की तरह ही रूप बनाइये किन्तु अच् परे होने पर **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से यण् और **टित आत्मनेपदानां टेरे** एत्व करना भी न भूलें। सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते। सुनुषे, सुन्वाथे, सुनुध्वे। सुन्वे, सुन्वहे-सुनुवहे, सुन्महे-सुनुमहे।

लिट् में द्वित्वादि कार्य होकर **आदेशप्रत्यययोः** से द्वितीय सकार को षत्व हो जाता है। यह भी ध्यान रहे कि लिट् आर्धधातुक लकार है, अतः अजादि-प्रत्ययों के परे **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से यण् न होकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् ही होता है। प्रक्रिया आप स्वयं करिये। सरलता से रूपसिद्धि कर सकेंगे।

इड्-विधायकं विधिसूत्रम्

६४७. स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७।२।७२॥

एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु।

असावीत्, असोष्ट। **चिञ् चयने॥२॥** चिनोति, चिनुते।

....

लिट् में परस्मैपद के रूप- सुषाव, सुषुवतुः, सुषुवुः। सुषविथ-सुषोथ, सुषुवथुः, सुषुव। सुषाव-सुषव, सुषुविव, सुषुविम। **आत्मनेपद में**- सुषुवे, सुषुवाते, सुषुविरे। सुषुविषे, सुषुवाथे, सुषुविढ्वे-सुषुविध्वे। सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे।

लुट् में आर्धधातुक परे होने के कारण गुण हो जाता है। **परस्मैपद के रूप**- सोता, सोतारौ, सोतारः। सोतासि, सोतास्थः, सोतास्थ। सोतास्मि, सोतास्वः, सोतास्मः। **आत्मनेपद में**- सोता, सोतारौ, सोतारः। सोतासे, सोतासाथे, सोताध्वे। सोताहे, सोतास्वहे, सोतास्महे।

लृट्- परस्मैपद में- सोष्यति, सोष्यतः, सोष्यन्ति। सोष्यसि, सोष्यथः, सोष्यथं। सोष्यामि, सोष्यावः, सोष्यामः। **आत्मनेपद में**- सोष्यते, सोष्येते, सोष्यन्ते। सोष्यसे, सोष्येथे, सोष्यध्वे। सोष्ये, सोष्यावहे, सोष्यामहे।

लोट्- सुनोतु-सुनुतात्, सुनुताम्, सुन्वन्तु।

सुनुहि। लोट्, मध्यमपुरुष के एकवचन में सारी प्रक्रिया पूर्ववत् ही है, **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से हि का लुक् करके **सुनु**, तातङ् होने के पक्ष में **सुनुतात्** ये दो रूप बन जाते हैं। इस प्रकार से लोट् के **परस्मैपद में रूप** बने- सुनोतु-सुनुतात्, सुनुताम्, सुन्वन्तु। सुनु-सुनुतात्, सुनुतम्, सुनुत। सुनवानि, सुनवाव, सुनवाम। **आत्मनेपद में**- सुनुताम्, सुन्वाताम्, सुन्वताम्। सुनुष्व, सुन्वाथाम्, सुनुध्वम्। सुनवै, सुनवावहै, सुनवामहै।

लङ्- (परस्मैपद) असुनोत्, असुनुताम्, असुन्वन्। असुनोः, असुनुतम्, असुनुत। असुनवम्, असुनुव-असुन्व, असुनुम-असुन्म। **आत्मनेपद में**- असुनुत, असुन्वाताम्, असुन्वत। असुनुथाः, असुन्वाथाम्, असुनुध्वम्। असुन्वि, असुन्वहि-असुनुवहि, असुन्महि-असुनुमहि।

विधिलिङ्- (परस्मैपद) सुनुयात्, सुनुयाताम्, सुनुयुः। सुनुयाः, सुनुयातम्, सुनुयात। सुनुयाम्, सुनुयाव, सुनुयाम। **आत्मनेपद**- सुन्वीत, सुन्वीयाताम्, सुन्वीरन्। सुन्वीथाः, सुन्वीयाथाम्, सुन्वीध्वम्। सुन्वीय, सुन्वीवहि, सुन्वीमहि।

आशीर्लिङ्- (परस्मैपद) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः से दीर्घ करके सूयात्, सूयास्ताम्, सूयासुः। सूयाः, सूयास्तम्, सूयास्त। सूयासम्, सूयास्व, सूयास्म। **आत्मनेपद**- सीयुट् और सुट् करके- सोषीष्ट, सोषीयास्ताम्, सोषीरन्। सोषीष्ठाः, सोषीयास्थाम्, सोषीढ्वम्। सोषीय, सोषीवहि, सोषीमहि।

६४७- स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु। स्तुश्च सुश्च धूञ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तुसुधूञः, तेभ्यः स्तुसुधूञ्भ्यः। स्तुसुधूञ्भ्यः पञ्चम्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अञ्जेः सिचि** से **सिचि** की षष्ठी में विपरिणाम करके तथा **इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद के परे रहते स्तु, सु और धूञ् इन धातुओं से परे सिच् को इट् आगम होता है।

वैकल्पिककुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६४८. विभाषा चेः ७।३।५८॥

अभ्यासात्परस्य कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च।

चिकाय, चिचाय। चिक्ये, चिच्ये। अचैषीत्। अचेष्ट।

स्तृञ् आच्छादने॥३॥ स्तृणोति, स्तृणुते।

....

सु-धातु अनिट् है, इसलिए इट् प्राप्त नहीं था, अतः इस सूत्र से सिच् में इट् विधान किया गया है।

असावीत्। सु धातु से लुङ्, अट्, तिप्, च्लि, सिच् आदि करके **असु+स्+त्** बना, **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् आगम करके **असु+स्+ईत्** बन गया। **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से सिच् को इट् आगम हुआ, टित् होने से उसके आदि में बैठा- **असु+इस्+ईत्** हुआ। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से सु की वृद्धि और आव् आदेश होकर **असाव्+इस्+ईत्** बना। **इट ईटि** से सकार का लोप, दोनों इकारों में सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **असावीत्** सिद्ध हुआ।

लुङ् में- परस्मैपद- असावीत्, असाविष्टाम्, असाविषुः। असावीः, असाविष्टम्, असाविष्ट। असाविषम्, असाविष्व, असाविष्म। **आत्मनेपद में-** असोष्ट, असोषाताम्, असोषत। असोष्ठाः, असोषाथाम्, असोढ्वम्। असोषि, असोष्वहि, असोष्महि।

लृङ्- परस्मैपद में- असोष्यत्, असोष्यताम्, असोष्यन्। असोष्यः, असोष्यतम्, असोष्यत। असोष्यम्, असोष्याव, असोष्याम। **आत्मनेपद में-** असोष्यत, असोष्येताम्, असोष्यन्त। असोष्यथाः, असोष्येथाम्, असोष्यध्वम्। असोष्ये, असोष्यावहि, असोष्यामहि।

चिञ् चयने। चिञ् धातु चयन करने, संग्रह करने, चुनने, बटोरने आदि अर्थ में है। इसमें भी ञकार की इत्संज्ञा होने से यह उभयपदी है और तासि और स्य आदि में अनिट् है किन्तु थल् में वेट् और अन्य लिट् में सेट् होता है। इसके रूप भी लगभग सु धातु की तरह ही चलते हैं किन्तु इस धातु में लुङ् में इट् आगम नहीं होता है।

लट् के परस्मैपद में- चिनोति, चिनुतः, चिन्वन्ति। चिनोषि, चिनुथः, चिनुथ। चिनोमि, चिन्वः-चिनुवः, चिन्मः-चिनुमः। **आत्मनेपद में-** चिनुते, चिन्वाते, चिन्वते। चिनुषे, चिन्वाथे, चिनुध्वे। चिन्वे, चिन्वहे-चिनुवहे, चिन्महे-चिनुमहे।

६४८- विभाषा चेः। विभाषा प्रथमान्तं, चेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **चजोः कु घिण्यतोः** से **कु**, **अभ्यासाच्च** से **अभ्यासात्** और **सँल्लिटोर्जेः** से **सँल्लिटोः** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास से परे चिञ् धातु को विकल्प से कुत्व होता है सन् या लिट् के परे होने पर।

लिट् में द्वित्वादि कार्य होकर **विभाषा चेः** से अभ्यास से परे चकार को कुत्व होकर वृद्धि, यण् आदेश करने पर रूप बनते हैं। **कुत्व के पक्ष में-** चिकाय, चिक्यतुः, चिक्युः, चिकयिथ-चिकेथ, चिक्यथुः, चिक्य, चिकाय-चिकय, चिक्यिव, चिक्यिम। **कुत्व न होने के पक्ष में-** चिचाय, चिच्यतुः, चिच्युः। चिचयिथ-चिचेथ, चिच्यथुः, चिच्य। चिचाय-चिचय, चिच्यिव, चिच्यिम। **आत्मनेपद में-** यण् होकर कुत्व होने के पक्ष में-

खयां शिष्टार्थं विधिसूत्रम्

६४९. शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यते। तस्तार। तस्तरतुः। तस्तरे। गुणोऽर्तीति गुणः। स्तर्यात्।

....

चिक्ये, चिक्याते, चिक्यिरे, चिक्यिषे, चिक्याथे, चिक्यिढ्वे-चिक्यिध्वे, चिक्ये, चिक्यिवहे, चिक्यिमहे। **कुत्व न होने के पक्ष में**- चिच्ये, चिच्याते, चिच्यिरे। चिच्यिषे, चिच्याथे, चिच्यिढ्वे-चिच्यिध्वे। चिच्ये, चिच्यिवहे, चिच्यिमहे।

लुट् में आर्धधातुक गुण हो जाता है। **परस्मैपद के रूप**- चेता, चेतारौ, चेतारः। चेतासि, चेतास्थः, चेतास्थ। चेतास्मि, चेतास्वः, चेतास्मः। **आत्मनेपद में**- चेता, चेतारौ, चेतारः। चेतासे, चेतासाथे, चेताध्वे। चेताहे, चेतास्वहे, चेतास्महे।

लृट्- परस्मैपद में- चेष्यति, चेष्यतः, चेष्यन्ति। चेष्यसि, चेष्यथः, चेष्यथ। चेष्यामि, चेष्यावः, चेष्यामः। **आत्मनेपद में**- चेष्यते, चेष्येते, चेष्यन्ते। चेष्यसे, चेष्येथे, चेष्यध्वे। चेष्ये, चेष्यावहे, चेष्यामहे।

लोट् के परस्मैपद में- चिनोतु-चिनुतात्, चिनुताम्, चिन्वन्तु। चिनु-चिनुतात्, चिनुतम्, चिनुत। चिनवानि, चिनवाव, चिनवाम। **आत्मनेपद में**- चिनुताम्, चिन्वाताम्, चिन्वताम्। चिनुष्व, चिन्वाथाम्, चिनुध्वम्। चिनवै, चिनवावहै, चिनवामहै।

लङ्- (परस्मैपद) अचिनोत्, अचिनुताम्, अचिन्वन्। अचिनोः, अचिनुतम्, अचिनुत। अचिनवम्, अचिनुव-अचिन्व, अचिनुम-अचिन्म। **आत्मनेपद**- अचिनुत, अचिन्वाताम्, अचिन्वत। अचिनुथाः, अचिन्वाथाम्, अचिनुध्वम्, अचिन्वि, अचिन्वहि-अचिनुवहि, अचिन्महि-अचिनुमहि।

विधिलिङ्- (परस्मैपद) चिनुयात्, चिनुयाताम्, चिनुयुः। चिनुयाः, चिनुयातम्, चिनुयात। चिनुयाम्, चिनुयाव, चिनुयाम। **आत्मनेपद**- चिन्वीत, चिन्वीयाताम्, चिन्वीरन्। चिन्वीथाः, चिन्वीयाथाम्, चिन्वीध्वम्। चिन्वीय, चिन्वीवहि, चिन्वीमहि।

आशीर्लिङ्- (परस्मैपद) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः से दीर्घ करके चीयात्, चीयास्ताम्, चीयासुः। चीयाः, चीयास्तम्, चीयास्त। चीयासम्, चीयास्व, चीयास्म। **आत्मनेपद**- सीयुट् और सकार का लोप करके चेषीष्ट, चेषीयास्ताम्, चेषीरन्। चेषीष्ठाः, चेषीयास्थाम्, चेषीढ्वम्। चेषीय, चेषीवहि, चेषीमहि।

लुङ् में- परस्मैपद- अचैषीत्, अचैष्टाम्, अचैषुः। अचैषीः, अचैष्टम्, अचैष्ट। अचैषम्, अचैष्व, अचैष्म। **आत्मनेपद में**- अचेष्ट, अचेषाताम्, अचेषत। अचेष्ठाः, अचेषाथाम्, अचेढ्वम्। अचेषि, अचेष्वहि, अचेष्महि।

लृङ्- परस्मैपद में- अचेष्यत्, अचेष्यताम्, अचेष्यन्। अचेष्यः, अचेष्यतम्, अचेष्यत। अचेष्यम्, अचेष्याव, अचेष्याम। **आत्मनेपद में**- अचेष्यत, अचेष्येताम्, अचेष्यन्त। अचेष्यथाः, अचेष्येथाम्, अचेष्यध्वम्। अचेष्ये, अचेष्यावहि, अचेष्यामहि।

स्तृञ् आच्छादने। स्तृञ् धातु **आच्छादन** अर्थात् **ढाँकना=ढक देना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और **ऊदृदन्तैः०** इस कारिका के अनुसार अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है किन्तु ऋदन्त होने के कारण थल् में भारद्वाजनियम से विकल्प नहीं होता।

इटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

६५०. ऋतश्च संयोगादेः ७।२।४३॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि।
स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट, अस्तृत।**धूञ् कम्पने॥४॥** धूनोति, धूनुते। दुधाव। **स्वरतीति वेट्।** दुधविथ, दुधोथ।

लट्, परस्मैपद- स्तृणोति, स्तृणुतः, स्तृण्वन्ति। **आत्मनेपद**- स्तृणुते, स्तृण्वाते, स्तृण्वते।

६४९- **शर्पूर्वाः खयः**। शर् पूर्वो येषां ते शर्पूर्वाः। शर्पूर्वाः प्रथमान्तं, खयः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हलादिः शेषः** से वचनविपरिणाम करके **शेषाः** एवम् **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

जिस अभ्यास में पूर्व में शर् हो, उस अभ्यास के खय् का ही शेष होता है, अन्य हल् लुप्त हो जाते हैं।

स्मरण रहे कि **हलादिः शेषः** यह सूत्र किसी भी आदि हल् का शेष करता है किन्तु यह उसका बाधक है। यदि खय् के पहले शर् हो तो आदि हल् का शेष न होकर शर् से परे विद्यमान खय् का शेष होता है।

तस्तार। स्तृ से लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व होकर **स्तृ+स्तृ+अ** बना। इसके बाद उरत्‌ह से अर् होकर **स्तर्+स्तृ+अ** बना। **हलादिः शेषः** से आदि सकार का शेष और अन्त्य **त्र्** का लोप हो रहा था किन्तु पूर्व में सकार शर् है और उससे परे खय् तकार है, अतः उसे बाधकर **शर्पूर्वाः खयः** से **तकार** का शेष और सकार और रेफ का लोप हो गया। **त+स्तृ+अ** बना। **ऋतश्च संयोगादेर्गुणः** से ऋकार को गुण होकर **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **तस्तार** सिद्ध हुआ। अतुस् आदि में भी यही प्रक्रिया होती है। गुण सभी जगह किन्तु णित् को छोड़कर अन्यत्र वृद्धि नहीं होती। तस्तरतुः, तस्तरुः आदि। **आत्मनेपद** में भी लगभग यही प्रक्रिया है।

लिट्, परस्मैपद- तस्तार, तस्तरतुः, तस्तरुः, तस्तर्थ, तस्तरतुः, तस्तर, तस्तार-तस्तर, तस्तरिव, तस्तरिम। **आत्मनेपद**- तस्तरे, तस्तराते, तस्तरिरे, तस्तरिषे, तस्तराथे, तस्तरिढ्वे-तस्तरिध्वे, तस्तरे, तस्तरिवहे, तस्तरिमहे।

लुट् में गुण होता है। स्तर्ता, स्तर्तारौ, स्तर्तारः, स्तर्तासि, स्तर्तासे। **लृट् में- ऋद्धनोः स्ये** से इट् का आगम होकर स्तरिष्यति, स्तरिष्यते। **लोट्**- स्तृणोतु-स्तुणुतात्, स्तृणुताम्। **लङ्**- अस्तृणोत्, अस्तृणुत। **विधिलिङ्**- स्तृणुयात्, स्तृण्वीत। **आशीर्लिङ्** के **परस्मैपद** में **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** से गुण होकर **स्तर्यात्** बनता है। **आत्मनेपद** में अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

६५०- **ऋतश्च संयोगादेः**। संयोगः आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य संयोगादेः। ऋतः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, संयोगादेः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** इस सूत्र के सभी पदों की तथा **इट् सनि वा** से **इट्** और **सनि** की अनुवृत्ति होती है।

संयोग जिस के आदि में हो ऐसे ऋदन्त धातु से परे लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् आगम होता है आत्मनेपद में।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

६५१. श्र्युकः क्किति ७।२।११॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न।

परमपि स्वरत्यादि विकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भ-सामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्।

दुधुविवि। दुधुवे। अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट। अधविष्यत्, अधोष्यत्। अधविष्यताम्, अधोष्यताम्। अधविष्यत, अधोष्यत।

इति स्वादयः॥१६॥

....

स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट। आशीर्लिङ् के आत्मनेपद में सीयुट् आदि होकर **स्तृ+सी+स्+त** बना है। अनिट् धातु होने के कारण इट् प्राप्त नहीं था किन्तु **ऋतश्च संयोगादेः** के विशेष विधान से विकल्प से इट् हो गया। **स्तृ+इ+सी+स्+त** बना। **स्तृ** को सार्वधातुकगुण, इकार से परे सकार को षत्व, ईकार से परे सकार को भी षत्व, षकार से परे तकार को ष्टुत्व करके **स्तरिषीष्ट** बनता है। इट् न होने के पक्ष में **उश्च** इस सूत्र से लिङ् को कित्त्व हो जाने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हुआ। अतः **स्तृषीष्ट** ही बना रहा। इस तरह दो रूप बन गये।

आशीर्लिङ्, आत्मनेपद, इट्पक्ष- स्तरिषीष्ट, स्तरिषीयास्ताम्, स्तरिषीरन् आदि। इट् के अभाव में **उश्च** से कित् होने के कारण गुणनिषेध हो जाता है। स्तृषीष्ट, स्तृषीयास्ताम्, स्तृषीरन् आदि।

लुङ्, परस्मैपद- अस्तार्षीत्, अस्तार्ष्टाम्, अस्तार्षुः, अस्तार्षीः, अस्तार्ष्टम्, अस्तार्ष्ट, अस्तार्षम्, अस्तार्ष्व, अस्तार्ष्म। **आत्मनेपद में- उश्च** से कित् होने के कारण गुणवृद्धि नहीं होती है और **ह्रस्वादङ्गात्** से झल् के परे रहते सकार का लोप होता है। अस्तृत, अस्तृषाताम्, अस्तृषत, अस्तृथाः, अस्तृषाथाम्, अस्तृढ्वम्, अस्तृषि, अस्तृष्वहि, अस्तृष्महि। **लृङ्-** अस्तरिष्यत्, अस्तरिष्यत।

धूञ् कम्पने। धूञ् धातु **कँपाना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होने से उभयपदी है। **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से यह धातु वेट् है।

लट्, परस्मैपद- धूनोति, धूनुतः, धून्वन्ति, धूनोषि, धूनुथः, धूनुथ, धूनोमि, धून्वः-धूनुवः, धून्मः-धूनुमः। **आत्मनेपद-** धूनुते, धून्वाते, धून्वते, धूनुषे, धून्वाथे, धूनुध्वे, धून्वे, धून्वहे-धूनुवहे, धून्महे-धूनुमहे। **लिट्, परस्मैपद-** दुधाव, दुधुवतुः, दुधुवुः। **थल्** में **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वैकल्पिक इट् होकर **दुधविथ-दुधोथ** दो रूप बनते हैं।

६५१- श्र्युकः क्किति। श्रिश्च उक्च तयोः समाहारद्वन्द्वः श्र्युक्, तस्मात् श्र्युकः। ग् च क् च क्कौ, तौ इतौ यस्य तत् क्कित्, तस्मिन् क्किति। श्र्युकः पञ्चम्यन्तं, क्किति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से **एकाचः** और **नेड् वशि कृति** से **न** तथा **इट्** की अनुवृत्ति आती है। उक् प्रत्याहार है।

श्रिञ् धातु से परे या एकाच् उगन्त धातु से परे गित् और कित् प्रत्ययों को इट् आगम नहीं होता है।

आर्धधातुकस्येड् वलादेः यह सूत्र इट् का विधायक औत्सर्गिक सूत्र है और **श्र्युकः क्किति** सूत्र उसका निषेधक है तथा **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** यह विकल्प से इट् का विधान करता है। **धूञ्** धातु के लिट् के **वस्** में पहले तो नित्य से इट् प्राप्त था, उसे बाधकर विकल्प से प्राप्त हुआ और **श्र्युकः किति** निषेध भी प्राप्त हुआ है अर्थात् एक तरफ **श्र्युकः किति** से इट् का निषेध प्राप्त है तो दूसरी तरफ **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वैकल्पिक इट् प्राप्त है। ये दोनों सूत्र अपने-अपने कार्यों में चरितार्थ हो चुके हैं। जैसे **भूतः, भूतवान्** में इट् का निषेध और **धोता, धविता** में इट् का विकल्प। दोनों में कोई भी निरवकाश नहीं है। ऐसी स्थिति में **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** से परकार्य इट् का विकल्प होना चाहिए था किन्तु ऐसा न होकर कुछ भिन्न ही होता है। देखिये मूल में-

परमपि स्वरत्यादिनिषेधं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्। अर्थात् **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** यह सूत्र यद्यपि **श्र्युकः क्किति** से पर है तथापि **विधिकाण्ड** से पूर्व **निषेधकाण्ड** को प्रारम्भ करने से **निषेध** की प्रधानता समझनी चाहिए। अतः निषेध ही प्रवृत्त होगा, विकल्प नहीं। इस तरह यहाँ भी निषेध प्राप्त हुआ किन्तु इसमें भी क्रादिनियम की प्रबलता से नित्य से इट् हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि **अष्टाध्यायी** के सप्तम अध्याय के द्वितीयपाद मे **नेड् वशि कृति, एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्, श्र्युकः क्किति** आदि इट् के निषेधक सूत्रों को पहले पढ़कर के बाद में इट्विधायक या वैकल्पिक इट् विधायक सूत्र पढ़े गये हैं। नियम तो यह होना चाहिए कि पहले विधि हो और बाद में उसका निषेध। विधान से पूर्व निषेध करना युक्तिसंगत नहीं बैठता। फिर भी पाणिनि जी ने ऐसा किया है, वह जरूर किसी कारणवश ही होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि इट् और इट् के निषेध के सम्बन्ध में यदि कहीं विकल्प और निषेध युगपत् प्राप्त हैं तो वहाँ निषेध को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। इस तरह वस्, मस् में क्रानिदनियम से इट् होकर **दुधुविव, दुधुविम** ये रूप सिद्ध होते हैं।

लिट्- दुधाव, दुधुवतुः, दुधुवुः, दुधविथ-दुधोथ, दुधुवथुः, दुधुव, दुधाव-दुधव, दुधुविव, दुधुविम। **आत्मनेपद**- दुधुवे, दुधुवाते, दुधुविरे।

लुट्- इट्पक्षे- धविता, धवितारौ, धवितारः, धवितासि, धवितासे। **इडभावे**- धोता, धोतारौ, धोतारः, धोतासि, धोतासे।

लृट्- इट्पक्षे- धविष्यति, धविष्यते। **इडभावे**- धोष्यति, धोष्यते।

लोट्- धूनोतु-धूनुतात्, धूनुताम्, धून्वन्तु। धूनुताम्, धून्वाताम्, धून्वताम्।

लङ्- अधूनोत्, अधूनुताम्, अधून्वन्, अधूनोः। अधूनुत, अधून्वाताम्, अधून्वत।

विधिलिङ्- धूनुयात्, धूनुयाताम्, धूनुयुः। धून्वीत, धून्वीयाताम्, धून्वीरन्।

आशीर्लिङ्- धूयात्, धूयास्ताम्, धूयासुः। **आत्मनेपद में इट् होने पर** धविषीष्ट, धविषीयास्ताम्, धविषीरन् और **इट् न होने पर** धोषीष्ट, धोषीयास्ताम्, धोषीरन्।

लुङ्- परस्मैपद में **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से विकल्प से इट् प्राप्त था, उसे बाधकर के **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से नित्य से इट् होकर **अधावीत्** बनता है। अधावीत्, अधाविष्टाम्, अधाविषुः, अधावीः, अधाविष्टम्, अधाविष्ट, अधाविषम्, अधाविष्व, अधाविष्म। **आत्मनेपद** में तो विकल्प से ही इट् होता है। अधविष्ट, अधविषाताम्, अधविषत। अधोष्ट, अधोषाताम्, अधोषत।

लृङ्- अधविष्यत्, अधोष्यत्। अधविष्यत, अधोष्यत।

आप **पाणिनीयष्टाध्यायी** का एक-एक अध्याय के क्रम से मासिक पारायण कर ही रहे होंगे, ऐसा हमें विश्वास है।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।

१-	अपनी पुस्तिका में सुञ् और चिञ् धातु के सारे रूप लिखें।	१०
२-	सुञ् धातु के सभी लकारों में प्रथमपुरुष एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्रों को लगाकर करें।	१५
३-	चिञ् धातु के लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये।	१५
४-	दिवादि-प्रकरण और स्वादि-प्रकरण की तुलना करें।	१०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का स्वादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तुदादयः

तुद व्यथने॥१॥

श-विधायकं विधिसूत्रम्

६५२. तुदादिभ्यः शः ३।१।७७॥

शपोऽपवादः। तुदति, तुदते। तुतोद। तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्। अतुत्त। **णुद प्रेरणे॥२॥** नुदति, नुदते। नुनोद। नोत्ता। **भ्रस्ज पाके॥३॥** **ग्रहिज्येति** सम्प्रसारणम्। सस्य श्चुत्वेन शः। शस्य जश्त्वेन जः। भृज्जति। भृज्जते।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **तुदादिप्रकरण** छठा है। तुद् धातु आदि में होने के कारण यह **तुदादिप्रकरण** कहाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु हुए, उसी प्रकार तुदादि में शप् को बाधकर **श** होता है। **श** में शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **अ** बचता है। अ शित् है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है किन्तु सार्वधातुक होते हुए भी वह अपित् है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके पूर्व इक् को प्राप्त गुण और वृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए श के परे होने पर पूर्व को गुण और वृद्धि दोनों ही नहीं होते। श करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **तुदादिभ्यः शः** से श और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं, श के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य श ही हो जाता है। **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः**, अर्थात् पूर्वसूत्र से परसूत्र बलवान् होता है, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद सूत्र बलवान होते हैं। तुलना में जो सूत्र बलवान् होता है, वही पहले लगता है। यहाँ पर नित्य का तात्पर्य नित्य से कार्य करना नहीं है अपितु **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः**, अर्थात् अन्य सूत्र से किसी काम के कर दिए जाने के बाद भी लगे और कार्य न किए जाने पर भी लगे, उसे नित्य कहा गया है। श करने वाला सूत्र गुण-वृद्धि के होने पर भी लगेगा और न होने पर भी लगेगा। अतः श नित्य है, गुण-वृद्धि के पहले ही लगता है।

तुद व्यथने। तुद धातु **दुःख देना, सताना, चुभोना** आदि अर्थ में हैं। तुद में

स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण अनिट् भी है किन्तु लिट् में इट् हो जाता है।

६५२- तुदादिभ्यः शः। तुदादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, शः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर तुदादिगणपठित धातुओं से शप् का बाधक श प्रत्यय होता है।

शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप करके केवल अ शेष बचता है। शित् होने के कारण इसकी भी सार्वधातुकसंज्ञा होती है। शप् और श में अन्तर इतना ही है कि शप् पित् है, श पित् नहीं है। पित् और अपित् का फल आप जानते ही हैं।

तुदति। तुद् से लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **तुदादिभ्यः शः** से श, अनुबन्धलोप, **तुद्+अ+ति** बना। श वाला अ अपित् सार्वधातुक है, अतः **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव होने से तुद् के उकार के स्थान पर **पुगन्तलघूपधस्य च** से प्राप्त लघूपधगुण का **क्ङिति च** से निषेध हुआ। वर्णसम्मेलन करके **तुदति** सिद्ध हुआ।

लट् के परस्मैपद में- तुदति, तुदतः, तुदन्ति। तुदसि, तुदथः, तुदथ। तुदामि, तुदावः तुदामः। **आत्मनेपद-** तुदते, तुदेते, तुदन्ते। तुदसे, तुदेथे, तुदध्वे। तुदे, तुदावहे, तुदामहे।

लिट् में तिप्, णल्, द्वित्व, हलादिशेष, लघूपधगुण करके रूप सिद्ध होते हैं। **परस्मैपद में-** तुतोद, तुतुदतुः, तुतुदुः। तुतोदिथ, तुतुदथुः, तुतुद। तुतोद, तुतुदिव, तुतुदिम। **आत्मनेपद में-** तुतुदे, तुतुदाते, तुतुदिरे। तुतुदिषे, तुतुदाथे, तुतुदिध्वे। तुतुदे, तुतुदिवहे, तुतुदिमहे।

लुट् में- तासि के तकार के परे रहते तुद् के दकार को **खरि च** से चर्त्व करना है। **परस्मैपद में-** तोत्ता, तोत्तारौ, तोत्तारः। तोत्तासि, तोत्तास्थः, तोत्तास्थ। तोत्तास्मि, तोत्तास्वः, तोत्तास्मः। **आत्मनेपद में-** तोत्ता, तोत्तारौ, तोत्तारः। तोत्तासे, तोत्तासाथे, तोत्ताध्वे। तोत्ताहे, तोत्तास्वहे, तोत्तास्महे।

लृट्, परस्मैपद में- तोत्स्यति, तोत्स्यतः, तोत्स्यन्ति। तोत्स्यसि, तोत्स्यथः, तोत्स्यथ। तोत्स्यामि, तोत्स्यावः, तोत्स्यामः। **आत्मनेपद में-** तोत्स्यते, तोत्स्येते, तोत्स्यन्ते। तोत्स्यसे, तोत्स्येथे, तोत्स्यध्वे। तोत्स्ये, तोत्स्यावहे, तोत्स्यामहे।

लोट्, परस्मैपद में- तुदतु-तुदतात्, तुदताम्, तुदन्तु। तुद-तुदतात्, तुदतम्, तुदत। तुदानि, तुदाव, तुदाम। **आत्मनेपद में-** तुदताम्, तुदेताम्, तुदन्ताम्। तुदस्व, तुदेथाम्, तुदध्वम्। तुदै, तुदावहै, तुदामहै।

लङ्, परस्मैपद में- अतुदत्, अतुदताम्, अतुदन्। अतुदः, अतुदतम्, अतुदत। अतुदम्, अतुदाव, अतुदाम। **आत्मनेपद में-** अतुदत, अतुदेताम्, अतुदन्त। अतुदथाः, अतुदेथाम्, अतुदध्वम्। अतुदे, अतुदावहि, अतुदामहि।

विधिलिङ्, परस्मैपद- तुदेत्, तुदेताम्, तुदेयुः। तुदेः, तुदेतम्, तुदेत। तुदेयम्, तुदेव, तुदेम। **आत्मनेपद-** तुदेत, तुदेयाताम्, तुदेरन्। तुदेथाः, तुदेयाथाम्, तुदेध्वम्। तुदेय, तुदेवहि, तुदेमहि।

आशीर्लिङ्, परस्मैपद- तुद्यात्, तुद्यास्ताम्, तुद्यासुः। तुद्याः, तुद्यास्तम्, तुद्यास्त। तुद्यासम्, तुद्यास्व, तुद्यास्म। **आत्मनेपद-** तुत्सीष्ट, तुत्सीयास्ताम्, तुत्सीरन्। तुत्सीष्ठाः, तुत्सीयास्थाम्, तुत्सीध्वम्। तुत्सीय, तुत्सीवहि, तुत्सीमहि।

अतौत्सीत्। तुद् से लुङ्, अट् आगम, तिप्, च्लि, सिच्, इकार का लोप करके **अतुद्+स्त्** बना। **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् आगम करके **अतुद्+स्+ईत्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से तुद् के उकार की वृद्धि हो जाती है। **अतौद्+स्+ईत्** बना। दकार को चर्त्व करके **अतौत्+स्+ईत्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अतौत्सीत्।**

अतौत्ताम्। तुद् से लुङ्, अट् आगम, तस्, ताम् आदेश, च्लि, सिच् करके **अतुद्+स्+ताम्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से तुद् के उकार की वृद्धि हो जाती है। **अतौद्+स्+ ताम्** बना। सकार का **झलो झलि** से लोप हुआ, अतौद् के दकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **अतौत्+ताम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अतौत्ताम्।** ताम्, तम्, त, थास् और ध्वम् में सकार का **झलो झलि** से लोप होता है। आत्मनेपद में वृद्धि प्राप्त ही नहीं होती है। इस तरह रूप सिद्ध होते हैं- **परस्मैपद में**- अतौत्सीत्, अतौत्ताम्, अतौत्सुः। अतौत्सीः, अतौत्तम्, अतौत्त। अतौत्सम्, अतौत्स्व, अतौत्स्म। **आत्मनेपद में**- अतुत्त, अतुत्साताम्, अतुत्सत। अतुत्थाः, अतुत्साथाम्, अतुद्ध्वम्। अतुत्सि, अतुत्स्वहि, अतुत्स्महि।

लृङ्, परस्मैपद में- अतोत्स्यत्, अतोत्स्यताम्, अतोत्स्यन्। अतोत्स्यः, अतोत्स्यतम्, अतोत्स्यत। अतोत्स्यम्, अतोत्स्याव, अतोत्स्याम। **आत्मनेपद में**- अतोत्स्यत, अतोत्स्येताम्, अतोत्स्यन्त। अतोत्स्यथाः, अतोत्स्येथाम्, अतोत्स्यध्वम्। अतोत्स्ये, अतोत्स्यावहि, अतोत्स्यामहि।

णुद प्रेरणे। णुद धातु **प्रेरणा करना, फेंकना, परे हटाना, दूर करना** आदि अर्थ में है। दकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। णकार के स्थान पर **णो नः** इस सूत्र से नकार आदेश होकर नुद् बन जाता है। यह धातु भी **उभयपदी** है। नुद् के रूप भी तुद् धातु की तरह ही चलते हैं।

लट् के परस्मैपद में- नुदति, नुदतः, नुदन्ति। नुदसि, नुदथः, नुदथ। नुदामि, नुदावः नुदामः। **आत्मनेपद में**- नुदते, नुदेते, नुदन्ते। नुदसे, नुदेथे, नुदध्वे। नुदे, नुदावहे, नुदामहे। **लिट्, परस्मैपद में**- नुनोद, नुनुदतुः, नुनुदुः। नुनोदिथ, नुनुदथुः, नुनुद। नुनोद, नुनुदिव, नुनुदिम। **आत्मनेपद में**- नुनुदे, नुनुदाते, नुनुदिरे। नुनुदिषे, नुनुदाथे, नुनुदिध्वे। नुनुदे, नुनुदिवहे, नुनुदिमहे। **लुट्, परस्मैपद में**- नोत्ता, नोत्तारौ, नोत्तारः। नोत्तासि, नोत्तास्थः, नोत्तास्थ। नोत्तास्मि, नोत्तास्वः, नोत्तास्मः। **आत्मनेपद में**- नोत्ता, नोत्तारौ, नोत्तारः। नोत्तासे, नोत्तासाथे, नोत्ताध्वे। नोत्ताहे, नोत्तास्वहे, नोत्तास्महे। **लृट्, परस्मैपद में**- नोत्स्यति, नोत्स्यतः, नोत्स्यन्ति। नोत्स्यसि, नोत्स्यथः, नोत्स्यथ। नोत्स्यामि, नोत्स्यावः, नोत्स्यामः। **आत्मनेपद में**- नोत्स्यते, नोत्स्येते, नोत्स्यन्ते। नोत्स्यसे, नोत्स्येथे, नोत्स्यध्वे। नोत्स्ये, नोत्स्यावहे, नोत्स्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में**- नुदतु-नुदतात्, नुदताम्, नुदन्तु। नुद-नुदतात्, नुदतम्, नुदत। नुदानि, नुदाव, नुदाम। **आत्मनेपद में**- नुदताम्, नुदेताम्, नुदन्ताम्। नुदस्व, नुदेथाम्, नुदध्वम्। नुदै, नुदावहै, नुदामहै। **लङ्, परस्मैपद में**- अनुदत्, अनुदताम्, अनुदन्। अनुदः, अनुदतम्, अनुदत। अनुदम्, अनुदाव, अनुदाम। **आत्मनेपद में**- अनुदत, अनुदेताम्, अनुदन्त। अनुदथाः, अनुदेथाम्, अनुदध्वम्। अनुदे, अनुदावहि, अनुदामहि।

विधिलिङ्, परस्मैपद- नुदेत्, नुदेताम्, नुदेयुः। नुदेः, नुदेतम्, नुदेत। नुदेयम्, नुदेव, नुदेम। **आत्मनेपद**- नुदेत, नुदेयाताम्, नुदेरन्। नुदेथाः, नुदेयाथाम्, नुदेध्वम्। नुदेय, नुदेवहि, नुदेमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद**- नुद्यात्, नुद्यास्ताम्, नुद्यासुः। नुद्याः, नुद्यास्तम्, नुद्यास्त। नुद्यासम्, नुद्यास्व, नुद्यास्म। **आत्मनेपद**- नुत्सीष्ट, नुत्सीयास्ताम्, नुत्सीरन्। नुत्सीष्ठाः, नुत्सीयास्थाम्, नुत्सीध्वम्। नुत्सीय, नुत्सीवहि, नुत्सीमहि। **लुङ्, परस्मैपद में**- अनौत्सीत्,

रमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६५३. भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६।४।४७॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके। मित्त्वादन्त्यादचः परः। स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः। बभर्ज। बभर्जतुः। बभर्जिथ, बभर्ष्ठ। बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ। **स्कोरिति** सलोपः। **व्रश्चेति** षः। बभ्रष्ठ। बभर्जे, बभ्रज्जे। भर्ष्टा,भ्रष्टा। भर्क्ष्यति,भ्रक्ष्यति।

वार्तिकम्- **क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन।**

भृज्ज्यात्,भृज्ज्यास्ताम्। भृज्ज्यासुः। भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट, अभ्रष्ट। **कृष विलेखने॥४॥** कृषति, कृषते। चकर्ष, चकृषे।

....

अनौत्ताम्, अनौत्सुः। अनौत्सीः, अनौत्तम्, अनौत्त। अनौत्सम्, अनौत्स्व, अनौत्स्म। **आत्मनेपद में**- अनुत्त, अनुत्साताम्, अनुत्सत। अनुत्थाः, अनुत्साथाम्, अनुद्ध्वम्। अनुत्सि, अनुत्स्वहि, अनुत्स्महि। **लृङ्, परस्मैपद में**- अनोत्स्यत्, अनोत्स्यताम्, अनोत्स्यन्। अनोत्स्यः, अनोत्स्यतम्, अनोत्स्यत। अनोत्स्यम्, अनोत्स्याव, अनोत्स्याम। **आत्मनेपद**- अनोत्स्यत, अनोत्स्येताम्, अनोत्स्यन्त। अनोत्स्यथाः, अनोत्स्येथाम्, अनोत्स्यध्वम्। अनोत्स्ये, अनोत्स्यावहि, अनोत्स्यामहि।

भ्रस्ज पाके। भ्रस्ज धातु **भुनना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होती है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। अनुदात्तों में परिगणना होने के कारण अनिट् है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है साथ ही भारद्वाजनियम से थल् में विकल्प से इट् होता है।

भृज्जति। भ्रस्ज् से लट्, परस्मैपद, तिप्, श आदि करके **भ्रस्ज्+अति** बना। **सार्वधातुकमपित्** से **श** वाला **अकार** ङित् हो जाता है। अतः **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से **भ्रस्ज्** के रेफ के स्थान पर सम्प्रसारण ऋकार होकर **भ्+ऋ+अस्ज्** बना। **ऋ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप एकादेश होकर **ऋकार** ही हुआ, **भृस्ज्** बना। सकार को जकार के योग में **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व होकर **शकार** और उसको **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर जकार बना। इस तरह **भृज्ज्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **भृज्जति** सिद्ध हुआ।

लट्- भृज्जति, भृज्जतः, भृज्जन्ति। भृज्जते, भृज्जेते, भृज्जन्ते।

६५३- **भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्।** रश्च उपधा च तयोरितरेतरद्वन्द्वो रोपधे, तयोः रोपधयोः। भ्रस्जः षष्ठ्यन्तं, रोपधयोः षष्ठ्यन्तं, रम् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

आर्धधातुक के परे होने पर भ्रस्ज् धातु के रेफ और उपधा के स्थान पर विकल्प से रम् आगम होता है।

रम् में अकार उच्चारणार्थक है और मकार की इत्संज्ञा होती है, र् शेष रहता है। कौमुदीकार यहाँ पर एक शंका उपस्थापित कर उसका समाधान करते हैं, वह यह कि मित् करने से यह प्रतीत होता है कि यह आगम है और **रोधपयोः** इस पद में स्थानषष्ठी निर्देश होने के कारण यह प्रतीत होता है कि यह आदेश है। यदि आदेश है तो मित् का कोई

प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मित् अन्त्य अच् के बाद करने के लिए होता है और यदि आगम है तो **रेफ और उपधा के स्थान पर** यह कहना भी ठीक नहीं है। अब यहाँ आगम मानकर अन्त्य अच् के बाद करें या आदेश मानकर रेफ और उपधा के स्थान पर करें, यह तो शंका है। उत्तर यह देते हैं कि आचार्य के व्यवहार को देखकर दोनों कार्य करना चाहिए। एक तो यह कि मित् होने के कारण अन्त्य अच् को **रम्** आगम हो जाय और दूसरा **रोपधयोः** कहने से रेफ और उपधा का हटना भी हो जाय। इस तरह यह आगम भी सिद्ध होगा और आदेश भी। **भ्रस्ज्** में अन्त्य अच् है **भ्+र्+अ** का अकार। अतः अकार के बाद और सकार के पहले रम् वाला र् बैठेगा साथ ही रेफ है अकार के पहले का रेफ तथा उपधा है अन्त्य अल् जकार से पहले का सकार। इस तरह रेफ और सकार ये दोनो हटेंगे। इतना सब करने का फल यह हुआ कि एक तो सकार हट गया और दूसरा अकार के पहले का रेफ हटकर अकार के बाद आगम वाला रेफ बैठ गया। एक रेफ का हटना और दूसरा रेफ का आना हुआ। अन्तर यह हुआ कि पहले रेफ अकार के पहले था और अब रेफ अकार के बाद है। इस तरह **भर्ज्** बन गया। यह कार्य वैकल्पिक है। अतः ऐसा न होने के पक्ष में तो भ्रस्ज् रहता है ही।

बभर्ज। भ्रस्ज् से लिट्, तिप्, णल् आदि करके **भ्रस्ज् अ** बना है। **भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्** से रम् आगम और रेफ तथा उपधाभूत सकार की निवृत्ति करके **भर्ज्** बना। इसका द्वित्व, हलादिशेष करके **भभर्ज्** बना। अभ्यास के भकार के स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बभर्ज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बभर्ज** सिद्ध हुआ। इसी तरह **बभर्जतुः, बभर्जुः** भी बन जाते हैं। थल् में भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट् आगम होकर **बभर्जिथ** बनता है। इट् न होने के पक्ष में **बभर्ज्+थ** में झल् परे मिलता है। अतः **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से जकार के स्थान पर षकार आदेश, उसको जश्त्व, थकार को ष्टुत्व होकर **बभर्ष्ठ** बनता है। अब रम् आगम न होने के पक्ष में रूप देखते हैं- **भ्रस्ज्** को द्वित्व होकर हलादिशेष होने पर **बभ्रस्ज्** है। सकार को श्चुत्व और जश्त्व करके जकार ही बनता है। **बभ्रज्ज्+अ=बभ्रज्ज** सिद्ध होता है।

लिट्, परस्मैपद, रमागमपक्ष, - बभर्ज, बभर्जतुः, बभर्जुः, बभर्जिथ-बभर्ष्ठ, बभर्जथुः, बभर्ज, बभर्ज, बभर्जिव, बभर्जिम। **रमागम न होने पर**- बभ्रज्ज, बभ्रज्जतुः, बभ्रज्जुः, बभ्रज्जिथ-बभ्रष्ठ, बभ्रज्जथुः, बभ्रज्ज, बभ्रज्ज, बभ्रज्जिव, बभ्रज्जिम। **आत्मनेपद, रमागमपक्ष**- बभर्जे, बभर्जाते, बभर्जिरे, बभर्जिषे, बभर्जाथे, बभर्जिध्वे, बभर्जे, बभर्जिवहे, बभर्जिमहे। **रमागम न होने पर**- बभ्रज्जे, बभ्रज्जाते, बभ्रज्जिरे, बभ्रज्जिषे, बभ्रज्जाथे, बभ्रज्जिध्वे, बभ्रज्जे, बभ्रज्जिवहे, बभ्रज्जिमहे।

लुट्- रमागमे- भर्ष्टा, भर्ष्टारौ, भर्ष्टारः, भर्ष्टासि, भर्ष्टासे। **आगमाभावे**- भ्रष्टा, भ्रष्टारौ, भ्रष्टारः, भ्रष्टासि, भ्रष्टासे।

लृट्- स्य, रम् आगम करके **भर्ज्+स्यति,** जकार को षकार आदेश, उसके स्थान पर **षढोः कः सि** से ककार आदेश, ककार से परे सकार को षत्व करके क्षत्व होने पर **भर्क्ष्यति, भर्क्ष्यते** बनता है। रम् आगम न होने के पक्ष में **भ्रक्ष्यति, भ्रक्ष्यते।**

लोट्- भृज्जतु-भृज्जतात्, भृज्जताम्, भृज्जन्तु। भृज्जताम्, भृज्जेताम्, भृज्जन्ताम्।

लङ्- अभृज्जत्, अभृज्जताम्, अभृज्जन्। अभृज्जत, अभृज्जेताम्, अभृज्जन्त।

विधिलिङ्- भृज्जेत्, भृज्जेताम्, भृज्जेयुः। भृज्जेत, भृज्जेयाताम्, भृज्जेरन्।

क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन। यह वार्तिक है। कित् ङित् आर्धधातुक के परे रम् आगम को बाधकर पूर्वविप्रतिषेध से सम्प्रसारण होता है।

आशीर्लिङ् आर्धधातुक है और यहाँ यासुट् को कित् होता है। आर्धधातुक कित् होने के कारण **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से सम्प्रसारण और **भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्** से रम् आगम एक साथ प्राप्त है। दोनों सूत्र अपनी अपनी जगहों पर चरितार्थ हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से परकार्य रम् का आगम प्राप्त हो रहा है। यदि रम् आगम होगा तो अनिष्ट रूप बनेगा। अत: कात्यायन ने इस वार्तिक का आरम्भ किया। इसके नियमानुसार रम् को बाध कर सम्प्रसारण होता है।

भृज्ज्यात्। भ्रस्ज् से आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, तिप्, आर्धधातुकसंज्ञा, यासुट्, उसको कित्त्व करके **भ्रस्ज्+यास्+त्** बना। वार्तिक के नियम से रम् को बाधकर सम्प्रसारण ऋकार आदेश करने पर **भृस्ज्+यात्** बना। सकार को श्चुत्व और जश्त्व करने पर **भृज्ज्यात्** सिद्ध हुआ। **भृज्ज्यात्, भृज्ज्यास्ताम्, भृज्ज्यासुः।** आत्मनेपद के आशीर्लिङ् में कित् या ङित् न होने के कारण सम्प्रसारण नहीं होता अपितु वैकल्पिक रम् आगम होकर **भर्ज्+सीस्+त** बना है। जकार को षत्व, षकार को सकार के परे होने पर कत्व, ककार से परे सकार को षत्व, ककार और षकार के संयोग में क्षत्व करके **भर्क्षीस्+त** बना। ईकार से परे सकार को षत्व और षकार से परे तकार को ष्टुत्व करके **भर्क्षीष्ट** सिद्ध हुआ। **भर्क्षीष्ट, भर्क्षीयास्ताम्, भर्क्षीरन्।** रम् आगम न होने के पक्ष में **भ्रक्षीष्ट, भ्रक्षीयास्ताम्, भ्रक्षीरन्।**

लुङ्, परस्मैपद में रमागम होने पर- अभार्क्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्क्षुः, अभार्क्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट, अभार्क्षम्, अभार्क्ष्व, अभार्क्ष्म। **रम् न होने पर-** अभ्राक्षीत्, अभ्राष्टाम्, अभ्राक्षुः, अभ्राक्षीः, अभ्राष्टम्, अभ्राष्ट, अभ्राक्षम्, अभ्राक्ष्व, अभ्राक्ष्म। **आत्मनेपद में** रम् आगम होने पर- **अभर्ज्+स्+त** बना है। **झलो झलि** से सकार का लोप, जकार को षत्व और षकार से परे तकार को ष्टुत्व करके **अभर्ष्ट** बनता है। आताम् में झल् परे न मिलने पर सकार का लोप नहीं होता। अत: षत्व, कत्व, षत्व, क्षत्व करके **अभार्क्षाताम्** बनता है। **रमागम के पक्ष में-** अभर्ष्ट, अभर्क्षाताम्, अभर्क्षत, अभर्ष्ठाः, अभर्क्षाथाम्, अभर्ढ्वम्, अभर्क्षि, अभर्क्ष्वहि, अभर्क्ष्महि। **रम् न होने पर-** अभ्रष्ट, अभ्रक्षाताम्, अभ्रक्षत, अभ्रष्ठाः, अभ्रक्षाथाम्, अभ्रड्वम्, अभ्रक्षि, अभ्रक्ष्वहि, अभ्रक्ष्महि।

लृङ्, परस्मैपद, रमागम- अभर्क्ष्यत्, अभर्क्ष्यताम्, अभर्क्ष्यन्। **रम् के अभाव में-** अभ्रक्ष्यत्, अभ्रक्ष्याताम्, अभ्रक्ष्यन्। **आत्मनेपद-** अभर्क्ष्यत, अभ्रक्षत।

कृष विलेखने। कृष धातु **विलेखन** अर्थात् **हल चलाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **कृष्** बचता है। **भ्वादि** के **कृष् धातु** का **खींचना** अर्थ है जिसके **कर्षति** आदि रूप बनते हैं। इस प्रकरण के **कृष् धातु** के **कृषति** आदि बनते हैं। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने से यह उभयपदी है और अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है।

लट्- कृषति, कृषतः, कृषन्ति। कृषते, कृषेते, कृषन्ते। **लिट्-** चकर्ष, चकृषतुः, चकृषुः। चकृषे, चकृषाते, चकृषिरे।

वैकल्पिकामागमविधायकं विधिसूत्रम्

६५४. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६।१।५९॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्याम् वा स्याज्झलादावकिति।

क्रष्टा, कर्ष्टा। कृक्षीष्ट।

वार्तिकम्- **स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः।**

अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत्। अकृष्ट। अकृक्षाताम्। अकृक्षत।

क्सपक्षे- अकृक्षत। अकृक्षाताम्। अकृक्षन्त। **मिल सङ्गमे॥५॥** मिलति, मिलते। मिमेल। मेलिता। अमेलित्। **मोच्लृ मोचने॥६॥**

....

६५४- **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्।** ऋत् उपधायां यस्य स ऋदुपधः, तस्य ऋदुपधस्य। अनुदात्तस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदम्, ऋदुपधस्य षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आदेच उपदेशेऽशिति** से **उपदेशे** और **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से **झलि, अम्, अकिति** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में अनुदात्त जो ऋदुपध धातु, उसको विकल्प से अम् का आगम होता है कित् से भिन्न झलादि प्रत्यय के परे होने पर।

मकार की इत्संज्ञा होती है, मित् होने के कारण अकार **मिदचोऽन्त्यात्परः** से अन्त्य अच् के बाद बैठता है।

क्रष्टा। कृष् से लुट् में कृष्+ता बना है। उपदेश अवस्था में अनुदात्त और ऋकार उपधा वाला धातु होने के कारण अकित् झलादि **ता** के परे होने पर **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्** से अम् आगम हुआ। मकार की इत्संज्ञा हुई। कृ का ऋकार अन्त्य अच् है, उसके बाद अ बैठा, **कृ+अष्+ता** बना। **कृ+अ** में यण् होकर **क्+र्+अ=क्र, क्रष्+ता** में षकार के योग से तकार को ष्टुत्व होकर **क्रष्टा** सिद्ध हुआ। क्रष्टा, क्रष्टारौ, क्रष्टारः, क्रष्टासि-क्रष्टासे। अम् आगम न होने के पक्ष में **कृष् के ऋकार** को उपधा गुण होकर **कर्ष्टा** आदि रूप सिद्ध होते हैं। कर्ष्टा, कर्ष्टारौ, कर्ष्टारः, कर्ष्टासि-कर्ष्टासे।

लृट्- अम्पक्षे- क्रक्ष्यति, क्रक्ष्यतः, क्रक्ष्यन्ति। क्रक्ष्यते, क्रक्ष्येते, क्रक्ष्यन्ते। अम् के अभाव में- कर्क्ष्यति, कर्क्ष्यतः, कर्क्ष्यन्ति। कर्क्ष्यते, कर्क्ष्येते, कर्क्ष्यन्ते। **लोट्**- कृषतु-कृषतात्, कृषताम्, कृषन्तु। कृषताम्, कृषेताम्, कृषन्ताम्। **लङ्**- अकृषत्, अकृषत। **विधिलिङ्**- कृषेत्, कृषेत। **आत्मनेपद**- कृष्यात्, कृक्षीष्ट।

स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः। यह वार्तिक है। स्पृश्, मृश्, कृष्, तृप्, दृप् धातुओं से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से सिच् होता है।

स्पृश्, मृश् और कृष् से परे च्लि के स्थान पर **शल इगुपधादनिटः क्सः** से क्स आदेश और तृप् एवं दृप् धातुओं के **पुषादि** होने के कारण **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् की प्राप्ति थी, उसे बाधकर इस वार्तिक से वैकल्पिक **सिच्** आदेश का ही विधान किया जाता है। सिच् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त **क्स** और **अङ्** हो जाते हैं।

अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्। कृ से लुङ्, अट्, ति होकर **अकृष्+त्** बना है। च्लि होकर उसके स्थान पर क्स आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा**

वाच्यः से वैकल्पिक सिच् आदेश, वैकल्पिक अम् का आगम करके **अक्रष्+स्+त** बना। ईट् आगम करके **वदव्रजहलन्तस्याचः** से **क्र** की वृद्धि करके धातु के षकार को **षढोः कः सि** से ककार आदेश, ककार से परे सिच् के सकार को षत्व और क्+ष् के संयोग में क्षत्व करके **अक्राक्षीत्** बनता है। अम् न होने के पक्ष में **अकार्क्षीत्** बनता है। सिच् न होकर **क्स** होने के पक्ष में **अकृक्षत्** बनता है।

लुङ्, परस्मैपद, अम्, सिच्- अक्राक्षीत्, अक्राष्टाम्, अक्राक्षुः, अक्राक्षीः, अक्राष्टम्, अक्राष्ट, अक्राक्षम्, अक्राक्ष्व, अक्राक्ष्म। **अमोऽभावे-** अकार्क्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकार्क्षुः, अकार्क्षीः, अकार्ष्टम्, अकार्ष्ट, अकार्क्षम्, अकार्क्ष्व, अकार्क्ष्म। **क्स के पक्ष में** - अकृक्षत्, अकृक्षताम्, अकृक्षन्, अकृक्षः, अकृक्षतम्, अकृक्षत, अकृक्षम्, अकृक्षाव, अकृक्षाम। **आत्मनेपद में- सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि नहीं होती और **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से किद्वद्भाव होने के कारण **अनुदात्तस्य चर्दुप०** से अम् का आगम भी नहीं होता। सिच् होकर- अकृष्ट, अकृक्षाताम्, अकृक्षत, अकृष्ठाः, अकृक्षाथाम्, अकृढ्वम्, अकृक्षि, अकृक्ष्वहि, अकृक्ष्महि। **क्सपक्षे-** अकृक्षत, अकृक्षाताम्, अकृक्षन्त, अकृक्षथाः, अकृक्षाथाम्, अकृक्षध्वम्, अकृक्षि, अकृक्षावहि, अकृक्षामहि।

लृङ्- अम्पक्षे- अक्रक्ष्यत्, अक्रक्ष्यत। **अमोऽभावे-** अकर्क्ष्यत्, अकर्क्ष्यत।

मिल सङ्गमे। मिल धातु **मिलना, संयुक्त होना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने से **उभयपदी** और **सेट्** है। इसके भी रूप सरल ही हैं।

लट्, परस्मैपद में- मिलति, मिलतः, मिलन्ति। मिलसि, मिलथः, मिलथ। मिलामि, मिलावः, मिलामः। **आत्मनेपद में-** मिलते, मिलेते, मिलन्ते। मिलसे, मिलेथे, मिलध्वे। मिले, मिलावहे, मिलामहे। **लिट्, परस्मैपद में-** मिमेल, मिमिलतुः, मिमिलुः। मिमेलिथ, मिमिलथुः, मिमिल। मिमेल, मिमिलिव, मिमिलिम। **आत्मनेपद में-** मिमिले, मिमिलाते, मिमिलिरे। मिमिलिषे, मिमिलाथे, मिमिलिध्वे। मिमिले, मिमिलिवहे, मिमिलिमहे। **लुट्, परस्मैपद में-** मेलिता, मेलितारौ, मेलितारः। मेलितासि, मेलितास्थः, मेलितास्थ। मेलितास्मि, मेलितास्वः, मेलितास्मः। **आत्मनेपद में-** मेलिता, मेलितारौ, मेलितारः। मेलितासे, मेलितासाथे, मेलिताढ्वे-मेलिताध्वे। मेलिताहे, मेलितास्वहे, मेलितास्महे। **लृट्, परस्मैपद में-** मेलिष्यति, मेलिष्यतः, मेलिष्यन्ति। मेलिष्यसि, मेलिष्यथः, मेलिष्यथ। मेलिष्यामि, मेलिष्यावः, मेलिष्यामः। **आत्मनेपद में-** मेलिष्यते, मेलिष्येते, मेलिष्यन्ते। मेलिष्यसे, मेलिष्येथे, मेलिष्यध्वे। मेलिष्ये, मेलिष्यावहे, मेलिष्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में-** मिलतु-मिलतात्, मिलताम्, मिलन्तु। मिल-मिलतात्, मिलतम्, मिलत। मिलानि, मिलाव, मिलाम। **आत्मनेपद में-** मिलताम्, मिलेताम्, मिलन्ताम्। मिलस्व, मिलेथाम्, मिलध्वम्। मिलै, मिलावहै, मिलामहै। **लङ्, परस्मैपद में-** अमिलत्, अमिलताम्, अमिलन्। अमिलः, अमिलतम्, अमिलत। अमिलम्, अमिलाव, अमिलाम। **आत्मनेपद में-** अमिलत, अमिलेताम्, अमिलन्त। अमिलथाः, अमिलेथाम्, अमिलध्वम्। अमिले, अमिलावहि, अमिलामहि। **विधिलिङ्, परस्मैपद में-** मिलेत्, मिलेताम्, मिलेयुः। मिलेः, मिलेतम्, मिलेत। मिलेयम्, मिलेव, मिलेम। **आत्मनेपद में-** मिलेत, मिलेयाताम्, मिलेरन्। मिलेथाः, मिलेयाथाम्, मिलेध्वम्। मिलेय, मिलेवहि, मिलेमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद में-** मिल्यात्, मिल्यास्ताम्, मिल्यासुः। मिल्याः, मिल्यास्तम्, मिल्यास्त। मिल्यासम्, मिल्यास्व, मिल्यास्म। **आत्मनेपद में-** मेलिषीष्ट, मेलिषीयास्ताम्, मेलिषीरन्। मेलिषीष्ठाः, मेलिषीयास्थाम्, मेलिषीढ्वम्-मेलिषीध्वम्। मेलिषीय, मेलिषीवहि, मेलिषीमहि। **लुङ्, परस्मैपद में-** अमेलीत्,

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६५५. शे मुचादीनाम् ७।१।५९॥

मुच्लिप्विद्लुप्सिच्कृत्खिद्पिशां नुम् स्यात् शे परे।

मुञ्चति, मुञ्चते। मोक्ता। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुचत्, अमुक्त। अमुक्षाताम्।

लुप्लृ छेदने॥७॥ लुम्पति, लुम्पते। लोप्ता। अलुपत्। अलुप्त॥

विद्लृ लाभे॥८॥ विन्दति, विन्दते। विवेद, विविदे।

व्याघ्रभूतिमते सेट्। वेदिता। भाष्यमतेऽनिट्। परिवेत्ता।

षिच क्षरणे॥९॥ सिञ्चति, सिञ्चते।

....

अमेलिष्टाम्, अमेलिषुः। अमेलीः, अमेलिष्टम्, अमेलिष्ट। अमेलिषम्, अमेलिष्व, अमेलिष्म। **आत्मनेपद में**- अमेलिष्ट, अमेलिषाताम्, अमेलिषत। अमेलिष्ठाः, अमेलिषाथाम्, अमेलिढ्वम्-अमेलिध्वम्। अमेलिषि, अमेलिष्वहि, अमेलिष्महि। **लृङ्, परस्मैपद में**- अमेलिष्यत्, अमेलिष्यताम्, अमेलिष्यन्। अमेलिष्यः, अमेलिष्यतम्, अमेलिष्यत। अमेलिष्यम्, अमेलिष्याव, अमेलिष्याम। **आत्मनेपद में**- अमेलिष्यत, अमेलिष्येताम्, अमेलिष्यन्त। अमेलिष्यथाः, अमेलिष्येथाम्, अमेलिष्यध्वम्। अमेलिष्ये, अमेलिष्यावहि, अमेलिष्यामहि।

मुच्लृ मोचने। मुच्लृ धातु **छोड़ना** अर्थ में है। स्वरित लृकार की इत्संज्ञा होती है, मुच् शेष रहता है। स्वरितेत् होने से **उभयपदी** है। अनिट् होते हुए भी लिट् में इट् होता है। लृदित् होने से **पुषादि0 से च्लि** के स्थान पर अङ् होता है।

६६५- शे मुचादीनाम्। मुच् आदौ येषां ते मुचादयः, तेषां मुचादीनाम्। शे सप्तम्यन्तं, मुचादीनां षष्ठ्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

शप्रत्यय के परे होने पर मुच्, लिप्, विद्, लुप्, सिच्, कृत्, खिद् और पिश् धातुओं को नुम् का आगम होता है।

नुम् में उकार और मकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर केवल नकार शेष रहता है।

मुञ्चति। मुच् धातु से लट्, तिप्, श, **मुच्+अ+ति** बना। **शे मुचादीनाम्** से नुम्, अनुबन्धलोप, मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** की सहायता से अन्त्य अच् मु के उकार के बाद बैठा- **मुनच्** बना, नकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर **ञकार** बन गया, **मुञ्च्+अ+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **मुञ्चति।**

लट्-लकार परस्मैपद में- मुञ्चति, मुञ्चतः, मुञ्चन्ति। मुञ्चसि, मुञ्चथः, मुञ्चथ। मुञ्चामि, मुञ्चावः, मुञ्चामः। **आत्मनेपद में**- मुञ्चते, मुञ्चेते, मुञ्चन्ते। मुञ्चसे, मुञ्चेथे, मुञ्चध्वे। मुञ्चे, मुञ्चावहे, मुञ्चामहे।

लिट् में- श न होने के कारण नुम् भी नहीं होता है। **परस्मैपद में**- मुमोच, मुमुचतुः, मुमुचुः। मुमोचिथ, मुमुचथुः, मुमुच। मुमोच, मुमुचिव, मुमुचिम। **आत्मनेपद में**- मुमुचे, मुमुचाते, मुमुचिरे। मुमुचिषे, मुमुचाथे, मुमुचिध्वे। मुमुचे, मुमुचिवहे, मुमुचिमहे।

लुट् में लघूपधगुण और चकार के स्थान पर **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार हो जाता है। **परस्मैपद**- मोक्ता, मोक्तारौ, मोक्तारः। मोक्तासि, मोक्तास्थः, मोक्तास्थ। मोक्तास्मि, मोक्तास्वः, मोक्तास्मः। **आत्मनेपद में**- मोक्ता, मोक्तारौ, मोक्तारः। मोक्तासे, मोक्तासाथे, मोक्ताध्वे। मोक्ताहे, मोक्तास्वहे, मोक्तास्महे।

मोक्ष्यति। मुच् से लृट्, ति, स्य, करके **मुच्+स्यति** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **मोच्+स्यति** बना। चकार के स्थान पर **चोः कुः** से कुत्व करके ककार हुआ। ककार से परे स्य के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **मोक्+ष्यति** बना। ककार और षकार के संयोग होने पर क्ष बन जाता है। **मोक्ष्यति** बना। इस प्रकार लृट् के रूप बने- **परस्मैपद में**- मोक्ष्यति, मोक्ष्यतः, मोक्ष्यन्ति। मोक्ष्यसि, मोक्ष्यथः, मोक्ष्यथ। मोक्ष्यामि, मोक्ष्यावः, मोक्ष्यामः। **आत्मनेपद में**- मोक्ष्यते, मोक्ष्येते, मोक्ष्यन्ते। मोक्ष्यसे, मोक्ष्यथे, मोक्ष्यध्वे। मोक्ष्ये, मोक्ष्यावहे, मोक्ष्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में**- मुञ्चतु-मुञ्चतात्, मुञ्चताम्, मुञ्चन्तु। मुञ्च-मुञ्चतात्, मुञ्चताम्, मुञ्चत। मुञ्चानि, मुञ्चाव, मुञ्चाम। **आत्मनेपद में**- मुञ्चताम्, मुञ्चेताम्, मुञ्चन्ताम्। मुञ्चस्व, मुञ्चेथाम्, मुञ्चध्वम्। मुञ्चै, मुञ्चावहै, मुञ्चामहै। **लङ्, परस्मैपद में**- अमुञ्चत्, अमुञ्चताम्, अमुञ्चन्। अमुञ्चः, अमुञ्चतम्, अमुञ्चत, अमुञ्चम्, अमुञ्चाव, अमुञ्चाम। **आत्मनेपद में**- अमुञ्चत, अमुञ्चेताम्, अमुञ्चन्त। अमुञ्चथाः, अमुञ्चेथाम्, अमुञ्चध्वम्। अमुञ्चे, अमुञ्चावहि, अमुञ्चामहि। **विधिलिङ्, परस्मैपद में**- मुञ्चेत्, मुञ्चेताम्, मुञ्चेयुः। मुञ्चेः, मुञ्चेतम्, मुञ्चेत। मुञ्चेयम्, मुञ्चेव, मुञ्चेम। **आत्मनेपद में**- मुञ्चेत, मुञ्चेयाताम्, मुञ्चेरन्। मुञ्चेथाः, मुञ्चेयाथाम्, मुञ्चेध्वम्। मुञ्चेय, मुञ्चेवहि, मुञ्चेमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद में**- मुच्यात्, मुच्यास्ताम्, मुच्यासुः। मुच्याः, मुच्यास्तम्, मुच्यास्त। मुच्यासम्, मुच्यास्व, मुच्यास्म। **आत्मनेपद में**- कुत्व, सीयुट् के सकार को षत्व और क्ष्-संयोग में क्षत्व करके बनाइये- मुक्षीष्ट, मुक्षीयास्ताम्, मुक्षीरन्। मुक्षीष्ठाः, मुक्षीयास्थाम्, मुक्षीध्वम्। मुक्षीय, मुक्षीवहि, मुक्षीमहि।

लुङ्, परस्मैपद में- तिप्, अट्, च्लि, उसके स्थान पर **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् होकर **अमुच्+अ+त्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अमुचत्। अमुचत्, अमुचताम्, अमुचन्। अमुचः, अमुचतम्, अमुचत। अमुचम्, अमुचाव, अमुचाम।** आत्मनेपद में- अङ् नहीं होता है किन्तु सिच् हो जाता है, क्योंकि **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** यह सूत्र परस्मैपद में ही करता है। **अमुच्+स्+त** में **झलो झलि** से सकार का लोप और चकार को कुत्व होकर **अमुक्त** बनता है। जहाँ झल् परे न मिलने के कारण सकार का लोप नहीं हो पाता, वहाँ कुत्व होकर सकार को षत्व और क्षत्व होकर **अमुक्षाताम्** आदि बनते हैं। इस तरह रूप बनते हैं- अमुक्त, अमुक्षाताम्, अमुक्षत। अमुक्थाः, अमुक्षाथाम्, अमुग्ध्वम्। अमुक्षि, अमुक्ष्वहि, अमुक्ष्महि।

लृङ्, परस्मैपद में- अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यताम्, अमोक्ष्यन्। अमोक्ष्यः, अमोक्ष्यतम्, अमोक्ष्यत। अमोक्ष्यम्, अमोक्ष्याव, अमोक्ष्याम। **आत्मनेपद में**- अमोक्ष्यत, अमोक्ष्येताम्, अमोक्ष्यन्त। अमोक्ष्यथाः, अमोक्ष्येथाम्, अमोक्ष्यध्वम्। अमोक्ष्ये, अमोक्ष्यावहि, अमोक्ष्यामहि।

लुप्लृ छेदने। लुप्लृ धातु **काटना** अर्थ में है। स्वरित लृकार की इत्संज्ञा होती है और **लुप्** शेष रहता है। अनिट् होने पर भी लिट् में क्रादिनियम से इट् हो जाता है। इसकी प्रक्रिया मुच् धातु की तरह ही है किन्तु जहाँ श परे मिलता है, वहाँ **शे मुचादीनाम्** से नुम् होकर नकार को अनुस्वार परसवर्ण होकर **लुम्प्** बन जाता है।

लुप्यति, लुम्पते। लुलोप, लुलुपे। लोप्ता, लोप्तासि, लोप्तासे। लोप्स्यति, लोप्स्यते। लुम्पतु, लुम्पताम्। अलुम्पत्, अलुम्पत। लुम्पेत्, लुम्पेत। लुप्यात्, लुप्सीष्ट। अलुपत्, अलुप्त। अलोप्स्यत्, अलोप्स्यत।

विद्लृ लाभे। विद्लृ धातु प्राप्त करना अर्थ में है। इसके लृ की इत्संज्ञा होती है, विद् शेष रहता है। उभयपदी है। इसके अनिट् होने में मतभेद है। व्याघ्रभूति आचार्य इसे सेट् मानते हैं और भाष्यकार के मत में यह अनिट् है।

विन्दति। विद् से लट्, तिप्, श, **शे मुचादीनाम्** से नुम् करके **विन्द्+अति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **विन्दति।**

लट्, परस्मैपद में- विन्दति, विन्दतः, विन्दन्ति। विन्दसि, विन्दथः, विन्दथ। विन्दामि, विन्दावः, विन्दामः। **आत्मनेपद में-** विन्दते, विन्देते, विन्दन्ते। विन्दसे, विन्देथे, विन्दध्वे। विन्दे, विन्दावहे, विन्दाम हे। **लिट्, परस्मैपद में-** विवेद, विविदतुः, विविदुः। विवेदिथ, विविदथुः, विविद। विवेद, विविदिव, विविदिम। **आत्मनेपद में-** विविदे, विविदाते, विविदिरे। विविदिषे, विविदाथे, विविदिध्वे। विविदे, विविदिवहे, विविदिमहे। **लुट्, परस्मैपद में-**(भाष्यमत में अनिट्) वेत्ता, वेत्तारौ, वेत्तारः। वेत्तासि, वेत्तास्थः, वेत्तास्थ। वेत्तास्मि, वेत्तास्वः, वेत्तास्मः। **आत्मनेपद में-** वेत्ता, वेत्तारौ, वेत्तारः। वेत्तासे, वेत्तासाथे, वेत्ताध्वे। वेत्ताहे, वेत्तास्वहे, वेत्तास्महे। व्याघ्रभूति के मत में- सेट् होने से **वेदिता, वेदितारौ** आदि भी हो सकते हैं। **लृट्, परस्मैपद में-** वेत्स्यति, वेत्स्यतः, वेत्स्यन्ति। वेत्स्यसि, वेत्स्यथः, वेत्स्यथ। वेत्स्यामि, वेत्स्यावः, वेत्स्यामः। **आत्मनेपद में-** वेत्स्यते, वेत्स्येते, वेत्स्यन्ते। वेत्स्यसे, वेत्स्येथे, वेत्स्यध्वे। वेत्स्ये, वेत्स्यावहे, वेत्स्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में-** विन्दतु-विन्दतात्, विन्दताम्, विन्दन्तु। विन्द-विन्दतात्, विन्दतम्, विन्दत। विन्दानि, विन्दाव, विन्दाम। **आत्मनेपद में-** विन्दताम्, विन्देताम्, विन्दन्ताम्। विन्दस्व, विन्देथाम्, विन्दध्वम्। विन्दै, विन्दावहै, विन्दामहै। **लङ्, परस्मैपद में-** अविन्दत्, अविन्दताम्, अविन्दन्। अविन्दः, अविन्दतम्, अविन्दत। अविन्दम्, अविन्दाव, अविन्दाम। **आत्मनेपद में-** अविन्दत, अविन्देताम्, अविन्दन्त। अविन्दथाः, अविन्देथाम्, अविन्दध्वम्। अविन्दे, अविन्दावहि, अविन्दामहि। **विधिलिङ्, परस्मैपद में-** विन्देत्, विन्देताम्, विन्देयुः। विन्देः, विन्देतम्, विन्देत। विन्देयम्, विन्देव, विन्देम। **आत्मनेपद में-** विन्देत, विन्देयाताम्, विन्देरन्। विन्देथाः, विन्देयाथाम्, विन्देध्वम्। विन्देय, विन्देवहि, विन्देमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद में-** विद्यात्, विद्यास्ताम्, विद्यासुः। विद्याः, विद्यास्तम्, विद्यास्त। विद्यासम्, विद्यास्व, विद्यास्म। **आत्मनेपद में-** वित्सीष्ट, वित्सीयास्ताम्, वित्सीरन्। वित्सीष्ठाः, वित्सीयास्थाम्, वित्सीध्वम्। वित्सीय, वित्सीवहि, वित्सीमहि। **लुङ्, परस्मैपद में-** अविदत्, अविदताम्, अविदन्। अविदः, अविदतम्, अविदत। अविदम्, अविदाव, अविदाम। **आत्मनेपद में-** अवित्त, अवित्साताम्, अवित्सत। अवित्थाः, अवित्साथाम्, अविद्ध्वम्। अवित्सि, अवित्स्वहि, अवित्स्महि। **लृङ्, परस्मैपद में-** अवेत्स्यत्, अवेत्स्यताम्, अवेत्स्यन्। अवेत्स्यः, अवेत्स्यतम्, अवेत्स्यत। अवेत्स्यम्, अवेत्स्याव, अवेत्स्याम। **आत्मनेपद में-** अवेत्स्यत, अवेत्स्येताम्, अवेत्स्यन्त। अवेत्स्यथाः, अवेत्स्येथाम्, अवेत्स्यध्वम्। अवेत्स्ये, अवेत्स्यावहि, अवेत्स्यामहि।

परिवेत्ता। परिपूर्वक विद् धातु से तृच् प्रत्यय होकर अनिट् की स्थिति में **परिवेत्ता** बनता है। बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए जब छोटा भाई विवाह कर ले, उसे **परिवेत्ता** कहते हैं।

अङ्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६५६. लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५३॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। असिचत्।

वैकल्पिकाङ्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६५७. आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४॥

लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा। असिचत, असिक्त।

लिप उपदेहे॥१०॥ उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति, लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्। अलिपत, अलिप्त।

इत्युभयपदिनः।

....

षिच क्षरणे। षिच धातु **सींचना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है और चकारोत्तरवर्ती स्वरित अकार इत्संज्ञक है। अतः यह उभयपदी है और अनुदात्तों में परिगणित होने के कारण अनिट् है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से इट् हो जाता है। **मुचादि** में आने के कारण **शे मुचादीनाम्** से श के परे रहते नुम् आगम होता है। **लट्**- सिञ्चति, सिञ्चते। **लिट्**- सिषेच, सिषिचे। **लुट्**- सेक्ता, सेक्तासि, सेक्तासे। **लृट्**- सेक्ष्यति, सेक्ष्यते। **लोट्**- सिञ्चतु-सिञ्चतात्, सिञ्चताम्। **लङ्**- असिञ्चत्, असिञ्चत। **विधिलिङ्**- सिञ्चेत्, सिञ्चेत। **आशीर्लिङ्**- सिच्यात्, सिक्षीष्ट।

६५६- **लिपिसिचिह्वश्च।** लिपिश्च सिचिश्च ह्वाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो लिपिसिचिह्वाः (पुंस्त्वं सौत्रम्)। तस्माद् लिपिसिचिह्वः। लिपिसिचिह्वः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से च्लेः और **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** और **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

लिप्, सिच् और ह्वे इन धातुओं से परे च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है।

इन धातुओं से परे च्लि के स्थान पर अङ् प्राप्त नहीं था, अतः औत्सर्गिक सिच् आदेश प्राप्त हो रहा था, उसे बाध कर के इस सूत्र से अङ् आदेश किया गया है। परस्मैपद में इस सूत्र से नित्य से होता है और आत्मनेपद में अग्रिम सूत्र से विकल्प से होता है।

असिचत्। सिच् से लुङ्, तिप्, अट्, च्लि, **लिपिसिचिह्वश्च** से अङ् आदेश होकर **असिचत्** बन जाता है। असिचत्, असिचताम्, असिचन् आदि।

६५७- **आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्।** आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से च्लेः, **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** की **लिपिसिचिह्वश्च** से **लिपिसिचिह्वः** और **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ् आदेश होता है आत्मनेपद के परे होने पर।

असिचत, असिक्त। आत्मनेपद के लुङ् में **च्लि** के स्थान पर **आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्** से अङ् होने के पक्ष में **असिचत** बनता है। अङ् न होने के पक्ष में **झलो झलि** से सकार का लोप करके चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर **असिक्त** बनता है। जहाँ झल् परे नहीं मिलता वहाँ सकार का लोप भी नहीं होता और कुत्व भी नहीं होता।

कृती छेदने॥११॥ कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। अकर्तीत्॥
खिद परिघाते॥१२॥ खिन्दति। चिखेद। खेत्ता॥
पिश अवयवे॥ १३॥ पिंशति। पेशिता॥
ओव्रश्चू छेदने॥१४॥ वृश्चति। वव्रश्च। वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ। व्रश्चिता, व्रष्टा। व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत्। अव्राक्षीत्॥
व्यच व्याजीकरणे॥१५॥ विचति। विव्याच। विविचतुः व्यचिता। व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्याचीत्, अव्यचीत्।
व्यचेःकुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते, अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्॥
उछि उञ्छे॥१६॥ उञ्छति।
'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्'। इति यादवः॥
ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु॥१७॥
ऋच्छति। **ऋच्छत्यृतामिति** गुणः। द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्। आनर्च्छ। आनर्च्छतुः। ऋच्छिता॥ **उज्झ उत्सर्गे**॥१८। उज्झति॥
लुभ विमोहन॥१९॥ लुभति।

....

लुङ् के आत्मनेपद में रूप, अङ् होने पर- असिचत, असिचेताम्, असिचन्त। **अङ् न होने पर**- असिक्त, असिक्षाताम्, असिक्षत। **लृङ्**- असेक्ष्यत्, असेक्ष्यत।

लिप उपदेहे। लिप् धातु **उपदेह** अर्थात् **लेप आदि से बढ़ाना, लीपना** आदि अर्थों में है। पकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है। **मुचादि** होने के कारण नुम् आगम होता है। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया **सिच्** की तरह ही होती है।
लट्- लिम्पति, लिम्पते। **लिट्**- लिलेप, लिलिपे। **लुट्**- लेप्ता, लेप्तासि, लेप्तासे। **लृट्**- लेप्स्यति, लेप्स्यते। **लोट्**- लिम्पतु-लिम्पतात्, लिम्पताम्। **लङ्**- अलिम्पत्, अलिम्पत। **विधिलिङ्**- लिम्पेत्, लिम्पेत। **आशीर्लिङ्**- लिप्यात्, लिप्सीष्ट। **लुङ्**- अलिपत्, अलिपत-अलिप्त।

यहाँ तक तुदादि के उभयपदी धातुओं का विवेचन पूर्ण हो गया। इसके पहले के प्रकरण में पहले परस्मैपदी धातुओं का विवेचन होता था, उसके बाद आत्मनेपदी और उसके बाद उभयपदी धातुओं का, किन्तु तुदादिगण का प्रथम धातु **तुद्** है और वह स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। अतः पहले उभयपदियों का विवेचन प्रारम्भ किया। अब परस्मैपदी धातुओं का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

कृती छेदने। कृती धातु **काटना, छेदन करना** अर्थ में है। अन्त्य ईकार उदात्त और अनुनासिक है। ईकार की इत्संज्ञा के बाद केवल **कृत्** शेष रहता है। **ईदित्** होने का फल कृदन्त में **श्वीदितो निष्ठायाम्** से इट् का निषेध आदि है। मुचादि होने के कारण इससे भी नुम् आगम होता है। अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है। इस धातु में सिच्भिन्न सकारादि आर्धधातुक स्य के परे होने पर **सेऽसिचिकृतचृतच्छृततृदनृतः(६३१)** से इट् विकल्प से किया जाता है।

रूप- कृन्तति। चकर्त, चकृततुः, चकृतुः। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। कृन्ततु। अकृन्तत्। कृन्तेत्। कृत्यात्। अकर्तीत्, अकर्तिष्टाम्, अकर्तिषुः। अकर्तिष्यत्-अकर्त्स्यत्।

खिद परिघाते। खिद धातु **प्रहार करना, सताना, दुःख देना** अर्थ में है। अन्त्य अकार उदात्त और अनुनासिक है। अकार की इत्संज्ञा के बाद केवल **खिद्** शेष रहता है। मुचादि होने के कारण इससे भी नुम् आगम होता है। अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है।

रूप- खिन्दति। चिखेद, चिखिदतुः, चिखिदुः। खेत्ता। खेत्स्यति। खिन्दतु। अखिन्दत्। खिन्देत्। खिद्यात्। अखैत्सीत्। अखेत्स्यत्।

पिश अवयवे। पिश धातु **अवयव करना, पीसना** अर्थ में है किन्तु ऐसे अर्थ का प्रयोग नहीं मिलता। कहीं कहीं **विभाग करना, देना, प्रकाशित करना** आदि अर्थों में यह धातु प्रयुक्त हुआ है। अन्त्य अकार उदात्त और अनुनासिक है। अकार की इत्संज्ञा के बाद केवल **पिश्** शेष रहता है। मुचादि होने के कारण इससे भी नुम् का आगम होता है। अन्त्य अच् पि के इकार के बाद नुम् का नकार बैठता है और उसका अनुस्वार होकर **पिंश्** बन जाता है। अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है।

रूप- पिंशति। पिपेश। पेशिता। पेशिष्यति। पिंशतु। अपिंशत्। पिंशेत्। पिश्यात्। अपेशीत्। अपेशिष्यत्।

यहाँ तक ही मुचादि माने गये हैं। अतः अब आगे नुम् नहीं होगा।

ओव्रश्चू छेदने। ओव्रश्चू धातु **छेदन करना, काटना** अर्थ में है। आदि ओकार और अन्त्य ऊकार की इत्संज्ञा होती है, केवल **व्रश्च्** शेष रहता है। ऊदित् होने के कारण **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से आर्धधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है।

वृश्चति। व्रश्च् से लट्, तिप्, श करके **सार्वधातुकमपित्** से श के अकार को ङित् हो जाने से **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से **व्र** में विद्यमान रेफ के स्थान पर सम्प्रसारण होकर ऋकार हो जाता है। **वृश्च्+अति=वृश्चति।**

वव्रश्च। लिट्, तिप्, णल् होने के बाद व्रश्च् को द्वित्व करके **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण करके **वृश्च व्रश्च**, हलादि शेष, उरत् से **अर्** करके पुनः हलादिशेष करके **वव्रश्च्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, **वव्रश्च।** थल्, वस् मस् में इट् विकल्प से होता है।

रूपः- वव्रश्च, वव्रश्चतुः, वव्रश्चुः, वव्रश्चिथ-वव्रष्ठ, वव्रश्चथुः, वव्रश्च, वव्रश्च, वव्रश्चिव-वव्रश्च्व, वव्रश्चिम-वव्रश्च्म। **लुट्**-इट्पक्षे- **व्रश्चिता**, इट् के अभाव में- **व्रष्टा। लृट्**- व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति। **लोट्**- वृश्चतु। **लङ्**- अवृश्चत्। **विधिलिङ्**- वृश्चेत्। **आशीर्लिङ्**- वृश्च्यात्। **लुङ्**- इट् होने के पक्ष में **नेटि** से वृद्धि का निषेध होकर **अव्रश्चीत्, अव्रश्चिष्टाम्, अव्रश्चिषुः** आदि रूप बनते हैं और इट् न होने के पक्ष में वृद्धि होकर **अव्राक्षीत्, अव्राष्टाम्, अव्राक्षुः** आदि रूप बनते हैं। **लृङ्**- अव्रश्चिष्यत्, अव्रक्ष्यत्।

व्यच व्याजीकरणे। व्यच धातु **छलना, ठगना, धोखा देना** अर्थ में है। अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। यह परस्मैपदी और सेट् है। सम्प्रसारणी अर्थात् इस धातु को कित् ङित् के परे होने पर सम्प्रसारण होता है। श के परे रहते **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से तथा लिट् में **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारण में **व्यच्** के यकार को इकार हो जाता है।

विचति। विव्याच। व्यचिता। व्यचिष्यति। विचतु। अविचत्। विचेत्। विच्यात्। लुङ् में **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि होकर **अव्याचीत्** और **अव्यचीत्** ये दो रूप बनते हैं। **अव्यचिष्यत्।**

व्यचेः कुटादित्वमनसि। यह **महाभाष्य** का वार्तिक है। अस् से भिन्न अन्य प्रत्ययों के परे व्यच् को कुटादिगणीय मानना चाहिए। स्मरण रहे कि कुटादि को **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङिद्वत् किया जाता है। अस् प्रत्यय कृत्प्रकरण में होता है। **अनसि** यहाँ पर **पर्युदास** है। पर्युदास का तात्पर्य है निषेध। **पर्युदास** के रूप में जो निषेध होता है वह तद्भिन्न तत्सदृश का ग्रहण कराता है। **अस् से भिन्न किन्तु अस् के सदृश के परे रहने पर।** अस् जिस तरह कृत् है उसी तरह अस्-भिन्न अन्य कृत् के परे तो हो सकता है किन्तु अस् परे नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि वह अनस् कृत् होना चाहिए। यहाँ तिङन्तप्रकरण में कृत् परे होने का प्रसंग नहीं है। अतः व्यच् धातु को सर्वत्र कुटादिगणीय नहीं माना जा सकता। फलतः इससे परे सिच् आदि भी ङित् नहीं होते।

उछि उञ्छे। उछि धातु **अनाज के एक-एक दाने को चुनना** अर्थ में है। अन्त्य इकार की इत्संज्ञा होती है। इदित् होने के कारण **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होता है। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर ञकार बनाया जाता है। यह धातु सेट् है। लिट् में गुरुमान् और इजादि दोनों होने के कारण आम् हो जाता है जिससे आम से परे का लुक् और कृ,भू, अस् का अनुप्रयोग करके **गोपायाञ्चकार** की तरह रूप बनते हैं।

खेत में फसल के कट जाने के बाद किसान जब अपना अनाज उठा लेता था तब मुनिजन उस खेत में जाकर इधर-उधर बिखरे अनाज के दाने या बालियों को बटोर कर उससे अपना जीवन-निर्वाह करते थे। इसीको मुनिवृत्ति कहते हैं। जैसा कि मूलकार ने **वैजयन्तीकोषकार यादव** को उद्धृत करते हुए लिखा है- **उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।** अर्थात् अनाज के दानों को बीनना **उञ्छ** है और अनाज के बालियों का बीनना **शिल** है।

उञ्छति। उञ्छाञ्चकार, उञ्छाम्बभूव, उञ्छामास। उञ्छिता। उञ्छिष्यति। उञ्छतु। औञ्छत्। उञ्छेत्। उञ्छ्यात्। औञ्छीत्। औञ्छिष्यत्।

ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु। ऋच्छ धातु **गति, इन्द्रियों का बल नष्ट होना, कठिन या दृढ़ होना** अर्थों में है। अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होकर **ऋच्छ्** शेष रहता है। यह परस्मैपदी और सेट् है। इसका वास्तविक मूल रूप तो ऋछ है किन्तु **छे च** से तुक् का आगम और छकार के योग में तकार को श्चुत्व होकर **ऋच्छ्** बन जाता है।

लट् में **ऋच्छति** बनता है।

लिट् में चकार और छकार के संयोग से गुरुमान् होते हुए भी **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम् नहीं होता क्योंकि **अनृच्छः** यह पढ़कर ऋच्छ धातु में निषेध किया गया है। द्वित्व, अर्, हलादिशेष होकर **अ+ऋच्छ्+अ** बनने के बाद **अत आदेः** से अभ्यास के अकार को दीर्घ करके अनभ्यास ऋकार को **ऋच्छत्यृताम्** से गुण होकर **आ+अर्+च्छ्+अ** बना। अब **तस्मान्नुड्द्विहलः** से नुट् का आगम करके **आ+न्+अर्+च्छ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आनर्च्छ।** अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि **तस्मान्नुड् द्विहलः** में द्विहल् धातु को नुट् आगम करने का विधान है और यहाँ पर **र्च्छ्** ये तीन हलों के संयोग में यह सूत्र कैसे लगेगा? इसका उत्तर मूलकार इस तरह देते हैं- **द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणान्नुट्।** अर्थात् यह द्विहल् अनेक हलों का भी उपलक्षण है। **उपलक्षण** की परिभाषा है कि **स्वप्रतिपादकत्वे सति स्वेतरप्रतिपादकत्वमुपलक्षणत्वम्।** अर्थात् जिसके द्वारा अपना ग्रहण कर के अपने से अन्यों का ग्रहण हो जाय उसे **उपलक्षण** कहते हैं। एक उदाहरण प्रसिद्ध

इटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

६५८. तीषसहलुभरुषरिषः ७।२।४८॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्। लोभिता, लोब्धा। लोभिष्यति। **तृप, तृम्फ तृप्तौ॥२०-२१॥** तृपति। ततर्प तर्पिता। अतर्पीत्। तृम्फति।

वार्तिकम्- **शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः।**

आदिशब्दः प्रकारे, तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। ततृम्फ। तृफ्यात्।। **मृड, पृड, सुखने॥२२-२३॥** मृडति। पृडति। **शुन गतौ॥ २४॥** शुनति।। **इषु इच्छायाम्॥ २५॥** इच्छति। एषिता, एष्टा। एषिष्यति। इष्यात्। ऐषीत्।। **कुट कौटिल्ये॥ २६॥**
गाङ्कुटादीति ङित्वम्॥ चुकुटिथ। चुकोट, चुकुट। कुटिता।।
पुट संश्लेषणे॥२७॥ पुटति। पुटिता।
स्फुट विकसने॥२८॥ स्फुटति। स्फुटिता।
स्फुर, स्फुल संचलने॥ २९-३०॥ स्फुरति। स्फुलति।।

....

है- जैसे **काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्** अर्थात् कौओं से दही को बचाओ। इसका तात्पर्य यह है कि न केवल कौओं से अपितु दही के विनाशक कुत्ते, बिल्ली आदि से भी बचाना है। इसी तरह यहाँ उक्त सूत्र पर द्विहल् शब्द अनेक हल् का भी उपलक्षण है। अतः यहाँ पर नुट् होने में कोई आपत्ति नहीं है।

रूप- ऋच्छति। आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः आदि। ऋच्छिता। ऋच्छिष्यति। ऋच्छतु। आर्च्छत्। ऋच्छेत्। ऋच्छ्यात्। आर्च्छीत्। आर्च्छिष्यत्।

उज्झ उत्सर्गे। उज्झ धातु **उत्सर्ग** अर्थात् **छोड़ना** अर्थ में है। यह परस्मैपदी और सेट् है। उज्झति। उज्झाञ्चकार, उज्झाम्बभूव, उज्झामास। उज्झिता। उज्झिष्यति। उज्झतु। औज्झत्। उज्झेत्। उज्झ्यात्। औज्झीत्। औज्झिष्यत्।

लुभ विमोहने। लुभ धातु **लुभाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है, **लुभ्** शेष रहता है। वलादि आर्धधातुक को नित्य से इट् और तकारादि आर्धधातुक तासि के तकार के परे रहते अग्रिम सूत्र **तीषसहलुभरुषरिषः** से वेट् हो जाता है। **लट्** में **लुभति** और **लिट्** में **लुलोभ, लुलुभतुः।**

६५८- तीषसहलुभरुषरिषः। इषश्च सहश्च लुभश्च रुषश्च रिट् च तेषां समाहारद्वन्द्वः इषहसलुभरुषरिट्, तस्मात् इषसहलुभरुषरिषः। ति सप्तम्यन्तम्, इषसहलुभरुषरिषः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **आर्धधातुकस्य इट्** और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

इष्, सह्, लुभ्, रुष् और रिष् धातुओं से परे तकारादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् आगम होता है।

नित्य से प्राप्त इट् का यह सूत्र बाधक है।

लोभिता, लोब्धा। तास्-प्रत्यय तकारादि आर्धधातुक है। अत **तीषसहलुभरुषरिषः** से विकल्प से इट् हुआ। इट् होने के पक्ष में **लोभिता** और इट् न होने के पक्ष में **लोभ्+ता** इस स्थिति में **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धकार और भकार को **झलां जश् झशि** से जश्त्व बकार होकर **लोब्धा** बन जाता है। **रूप-** लोभिता, लोभितारौ, लोभितारः। इसी तरह लोब्धा, लोब्धारौ, लोब्धारः। आगे- लोभिष्यति। लुभतु। अलुभत्। लुभेत्। लुभ्यात्। अलोभीत्। अलोभिष्यत्।

तृप, तृम्फ तृप्तौ। तृप और तृम्फ धातु **तृप्त करना** अर्थ में है। दोनों परस्मैपदी और सेट् हैं। दिवादिगणीय तृप् क **तृप्यति** आदि रूप होते हैं। उससे यह भिन्न है।

तृप् के रूप- तृपति। ततर्प। तर्पिता। तर्पिष्यति। तृपतु। अतृपत्। तृपेत्। तृप्यात्। अतर्पीत्। अतर्पिष्यत्।

शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः। यह वार्तिक है। **श के परे होने पर तृम्फ आदि धातुओं को नुम् हो ऐसा कहना चाहिए।** यहाँ पर **तृम्फादि** का **आदिशब्द** प्रकार वाचक है अर्थात् तृम्फ आदि अर्थ न होकर तृम्फ जैसे धातुएँ गृहीत हैं। जिस तरह **तृम्फ** नकारोपध (मकारोपध) है, उसी तरह तुदादि प्रकरण में नकार उपधा वाली(मकारोपध) धातुएँ **तृम्फादि** कहलाती हैं। इसी लिए **शुम्भ, उम्भ** आदि धातुओं में इस वार्तिक स नुम् हो जाता है। एक शंका यह हो सकती है कि **तृम्फ्** में तो स्वतः मकार है, इसमें नुम् की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि **तुदादिभ्यः शः** से श होने के बाद उसके अकार को अपित् सार्वधातुक मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से नकार का लोप होने पर **तृफ्** ही बच जाता है। अतः नुम् की आवश्यकता होती है। नुम् होने के बाद नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण मकार होकर पुनः **तृम्फ** ही बन जाता है। जहाँ श नहीं होता, वहाँ ङित् न होने के कारण नकार का लोप भी नहीं होता और नुम् भी नहीं होता। उपधा में लघु वर्ण न होने के कारण लिट् में गुण नहीं होता है।

रूप- तृम्फति। ततृम्फ। तृम्फिता। तृम्फिष्यति। तृम्फतु। अतृम्फत्। तृम्फेत्। तृफ्यात्। अतृम्फीत्। अतृम्फिष्यत्।

मृड पृड सुखने। मृड और पृड धातु **सुख देना** अर्थ में है। अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। ये दोनों परस्मैपदी और सेट् हैं।

मृड् के रूप- मृडति, ममर्ड। मर्डिता। मर्डिष्यति। मृडतु। अमृडत्। मृडेत्। मृड्यात्। अमर्डीत्। अमर्डिष्यत्।

पृड् के रूप- पृडति, पपर्ड। पर्डिता। पर्डिष्यति। पृडतु। अपृडत्। पृडेत्। पृड्यात्। अपर्डीत्। अपर्डिष्यत्।

शुन गतौ। शुन धातु **जाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है और शुन् शेष रहता है। यह परस्मैपदी और सेट् है। **रूप-** शुनति। शुशोन। शोनिता। शोनिष्यति। शुनतु। अशुनत्। शुनेत्। शुन्यात्। अशोनीत्। अशोनिष्यत्।

इषु इच्छायाम्। इष् धातु इच्छा अर्थ में है। उकार इत्संज्ञक है। शित् के परे होने पर **इषुगमियमां छः** से षकार के स्थान पर छकार आदेश और छकार के परे रहते इकार को **छे च** से तुक् का आगम होकर तकार को श्चुत्व होकर **इच्छ्** हो जाता है। तकारादि आर्धधातुक के परे होने पर **तीषसहलुभरुषरिषः** से वेट् होता है। लिट् में सवर्ण अच् के परे होने पर **अभ्यासस्यासवर्णे** से इयङ् आदेश होकर **इयेष** आदि रूप बनते हैं।

वैकल्पिकषत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६५९. **स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८।३।७६॥**

षत्वं वा स्यात्। निःष्फुरति, निःस्फुरति।

णू स्तवने॥ ३१॥ परिणूतगुणोदयः। नुवति। नुनाव। नुविता।

टुमस्जो शुद्धौ॥३२॥ मज्जति। ममज्ज। ममज्जिथ। **मस्जिनशोरिरि**ति नुम्।

वार्तिकम्- **मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः।** संयोगादिलोपः। ममङ्क्थ।

मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत्। अमाङ्क्ताम्। अमाङ्क्षुः।

रुजो भङ्गे॥३३॥ रुजति। रोक्ता। रोक्ष्यति। अरौक्षीत्।

भुजो कौटिल्ये॥३४॥ रुजिवत्। **विश प्रवेशने॥ ३५॥** विशति।

मृश आमर्शने॥३६॥ आमर्शनं स्पर्शः।

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्। अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत्।

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु॥३७॥ सीदतीत्यादि॥

शद्लृ शातने॥**३८**॥

....

लट्- इच्छति, इच्छतः, इच्छन्ति।

लिट् में इष् लिट्, तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष करके **इ+इष्+अ** बना। लघूपधगुण करके **इ+एष्+अ, अभ्यासस्यासवर्णे** से इयङ्, वर्णसम्मेलन करके **इयेष** बना। आगे- ईषतुः, ईषुः, इयेषिथ, ईषथुः, ईष। इयेष, ईषिव, ईषिम।

एषिता-एष्टा। एषिष्यति। इच्छतु। ऐच्छत्। इच्छेत्। इष्यात्। ऐषीत्। ऐषिष्यत्।

कुट कौटिल्ये। कुट धातु **टेंढ़ा होना, टेंढ़ा करना, धोखा देना** आदि अर्थों में है। अन्त्य अकार इत्संज्ञक है। **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से णित् भिन्न जगहों पर ङिद्वत् हो जाने के कारण गुण का निषेध होगा। **श** के परे होने पर तो वैसे भी गुणनिषेध है। यहाँ पर कुटादि का फल श न होने पर ही होता है।

रूप- कुटति। चुकोट, चुकुटतुः, चुकुटुः, चुकुटिथ, चुकुटथुः, चुकुट, चुकोट-चुकुट, चुकुटिव, चुकुटिम। कुटिता। कुटिष्यति। कुटतु। अकुटत्। कुटेत्। कुट्यात्। अकुटीत्। अकुटिष्यत्।

पुट संश्लेषणे। पुट धातु **मिलाना या आलिंगन करना** अर्थ में है। अकार इत्संज्ञक है। यह भी परस्मैपदी, सेट् तथा कुटादिगण के अन्तर्गत आता है। अतः ङिद्वत् हो जाने के कारण गुण आदि नहीं होंगे। **रूप**- पुटति। पुपोट। पुटिता। पुटिष्यति। पुटतु। अपुटत्। पुटेत्। पुट्यात्। अपुटीत्। अपुटिष्यत्।

स्फुट विकसने। स्फुट धातु **खिलना, विकसित होना** अर्थ में है। यह भी अकारेत्संज्ञक, परस्मैपदी, सेट् और कुटादि है। अतः इसके रूप भी कुटधातु की तरह ही होते हैं। स्फुटति। पुस्फोट। स्फुटिता। स्फुटिष्यति। स्फुटतु। अस्फुटत्। स्फुटेत्। स्फुट्यात्। अस्फुटीत्। अस्फुटिष्यत्।

स्फुर, स्फुल सञ्चलने। स्फुर और स्फुल ये दो धातुएँ **संचलन** अर्थात् **हिलना, स्पन्दित होना, नेत्र आदि अंगों का फड़कना, चेष्टा करना, प्रकाशित होना, भासित**

होना, कांपना आदि अर्थों में है। ये दोनों पूर्ववत् अकारेत्संज्ञक, परस्मैपदी, सेट् और कुटादि हैं। अतः इनके रूप कुट् की तरह होते हैं।

स्फुर् के रूप- स्फुरति। **शर्पूर्वाः खयः**। पुस्फोर। स्फुरिता। स्फुरिष्यति। स्फुरतु। अस्फुरत्। स्फुरेत्। **हलि च** से दीर्घ होकर- स्फूर्यात्। अस्फुरीत्। अस्फुरिष्यत्।

स्फुल् के रूप- स्फुलति। पुस्फोल। स्फुलिता। स्फुलिष्यति। स्फुलतु। अस्फुलत्। स्फुलेत्। रेफान्त न होने से **हलि च** से दीर्घ भी नहीं होगा- स्फुल्यात्। अस्फुलीत्। अस्फुलिष्यत्।

६५९- स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः। स्फुरतिश्च स्फुलतिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्फुरतिस्फुलती, तयोः स्फुरतिस्फुलत्योः। निर् च निश्च विश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो निर्निवयः, तेभ्यो निर्निविभ्यः। स्फुरतिस्फुलत्योः षष्ठ्यन्तं, निर्निविभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सहेः षाढः सः** से **सः**, **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** और **सिवादीनां वाड्व्यवायेऽपि** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

निर्, नि और वि उपसर्ग से परे स्फुर् और स्फुल् धातुओं के सकार को विकल्प से षकार आदेश होता है।

निःष्फुरति, निःस्फुरति। यहाँ पर **निर्** उपसर्ग के रेफ को विसर्ग करने के बाद **शर्परे खरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः** वार्तिक से वैकल्पिक विसर्गलोप और षत्व होकर **निष्फुरति** एवं विसर्गलोप के अभावपक्ष में **वा शरि** से विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही होने पर **निःष्फुरति** तथा उसके भी अभावपक्ष में **विसर्जनीयस्य सः** से सकार और उसके स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** ष्टुत्व होकर **निष्ष्फुरति** ये तीन रूप होते हैं। इससे षत्व न होने के पक्ष में **निःस्फुरति** भी बनता है।

णू स्तवने। णू धातु **स्तुति करना** या **प्रशंसा करना** अर्थ में है। **णो नः** से धातु के आदि में विद्यमान णकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **नू** बन जाता है। इस धातु के **परिणूत-गुणोदयः** आदि प्रयोग मिलते हैं। अतः यह धातु ऊदन्त है न कि उदन्त। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती है। यह धातु परस्मैपदी, सेट् और कुटादि है। अतः णित् और णित् से भिन्न में **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङिद्वद्भाव होता है। अजादि प्रत्यय के परे **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होता है।

नुवति। नू से लट्, तिप्, श, अपित् शित् होने के कारण ङिद्वद्भाव होकर गुण का निषेध, **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** आदेश, **न्+उव्+अ+ति**, वर्णसम्मेलन, **नुवति**। **नुवतः**, **नुवन्ति** आदि।

लिट् में- नुनाव, नुनुवतुः, नुनुवुः, नुनुविथः, नुनुवथुः, नुनुव, नुनाव-नुनव, नुनुविव, नुनुविम। **आगे- नुविता। नुविष्यति। नुवतु। अनुवत्। नुवेत्। नूयात्। अनुवीत्। अनुविष्यत्।**

टुमस्जो शुद्धौ। टुमस्जो धातु **शुद्ध होना** अर्थ में है। **आदिर्ञिटुडवः** से **टु** की इत्संज्ञा होती है और अन्त्य ओकार भी इत्संज्ञक है। इस तरह केवल **मस्ज्** शेष रहता है। **टु** की इत्संज्ञा का फल कृदन्त में **ट्वितोऽथुच्** की प्रवृत्ति और ओकार की इत्संज्ञा का फल **ओदितश्च** की प्रवृत्ति है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी और जकारान्त अनुदात्त होने से अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् और थल् में भारद्वाज के मत में विकल्प से इट् होता है।

मज्जति। मस्ज् से लट्, तिप्, श के बाद **मस्ज्+अ+ति** बना। सकार को **स्तोः**

श्चुना श्चुः से शकार होकर **मश्ज्** बना। शकार को **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर जकार हो गया। **मज्ज्+अति,** वर्णसम्मेलन होकर **मज्जति** सिद्ध हुआ। **मज्जतः। मज्जन्ति।**

मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः। यह वार्तिक है। **मस्ज् धातु में अन्त्य से पूर्व को नुम् हो ऐसा कहना चाहिए।** नुम् में उकार और मकार की इत्संज्ञा होती है। **मस्जिनशोर्झलि** से हुए नुम् के मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अत्य अच् मकारोत्तरवर्ती अकार के बाद होना चाहिए था किन्तु इस वार्तिक से अन्त्य वर्ण से पूर्व को विहित होने के कारण अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व होगा।

ममङ्क्थ-ममज्जिथ। ममस्ज्+थ में भारद्वाज नियम से इट् होने के पक्ष में झल् परे न होने के कारण नुम् नहीं होता। अतः **ममज्जिथ** बन जाता है किन्तु इट् न होने के पक्ष में झल् परे मिलता है, अतः **मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः** की सहायता से **मस्जिनशोर्झलि** से अन्त्य वर्ण जकार से पहले नुम् आगम होकर **ममस्न्ज्+थ** बना। **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **सन्ज्** इस संयोग के आदि में विद्यमान सकार का लोप हो जाता है और जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार होता है। इस तरह **ममन्ग्+थ** बना। गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार होकर **ममन्क्+थ** बना। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ङ्कार** हुआ। **ममङ्क्+थ, ममङ्क्थ** सिद्ध हुआ।

लिट् के रूप- ममज्ज, ममज्जतुः, ममज्जुः, ममङ्क्थ-ममज्जिथ, ममज्जथुः, ममज्ज, ममज्ज, ममज्जिव, ममज्जिम।

लुट् में- मस्ज्+ति, मस्ज्+तास्+ति, मस्ज्+तास्+डा, मस्ज्+ता बनने के बाद अन्त्य वर्ण से पहले नुम् का आगम, संयोगादि सकार का लोप, नुम् के नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **मङ्क्ता** बनता है। आगे- मङ्क्तारौ, मङ्क्तारः, मङ्क्तासि आदि बनते जाते हैं।

लृट् में- मस्ज्+ति, मस्ज्+स्य+ति बनने के बाद अन्त्य वर्ण से पहले नुम् का आगम, संयोगादि सकार का लोप, नुम् के नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **मङ्क्+स्यति** बनता है। ककार से परे सकार को षत्व और ककार और षकार के योग में क्षत्व होकर **मङ्क्ष्यति** बन जाता है। आगे **मङ्क्ष्यतः, मङ्क्ष्यन्ति** आदि बनते हैं।

अन्य लकारों में- मज्जतु। अमज्जत्। मज्जेत्। मज्ज्यात्।

लुङ्- तिप्, अट्, च्लि, सिच्, ईट्, नुम् करके **वदव्रजहलन्तस्याचः** से हलन्तलक्षणा वृद्धि होकर **अमास्नज्+स्+ईत्** बना। संयोगादि सकार का लोप, कुत्व, षत्व, चर्त्व, क्षत्व, नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण करके **अमाङ्क्षीत्** बनता है। ताम् में **झलो झलि** से सकार का लोप करके शेष कार्य पूर्व तरह करने पर **अमाङ्क्ताम्** बनता है। अन्यत्र यथायोग्य प्रक्रिया करके रूप बनाइये।

लुङ् के रूप- अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्ताम्, अमाङ्क्षुः, अमाङ्क्षीः, अमाङ्क्तम्, अमाङ्क्त, अमाङ्क्षम्, अमाङ्क्ष्व, अमाङ्क्ष्म। **लृङ्**- अमङ्क्ष्यत्।

रुजो भङ्गे। रुजो धातु **तोड़ना** अर्थ में है। अनुनासिक ओकार इत्संज्ञक है। उदात्तेत् होने के कारण परस्मैपदी और जकारान्त अनुदात्तों में पठित होने से अनिट् है।

रूप- रुजति। रुरोज। रोक्ता। रोक्ष्यति। रुजतु। अरुजत्। रुजेत्। रुज्यात्। अरौक्षीत्। अरोक्ष्यत्।

भुजो कौटिल्ये। रुजिवत्। **भुजो** यह धातु **टेढ़ा करना** अर्थ में है। ओदित्, परस्मैपदी और अनिट् है। इसके रूप **रुज्** धातु की तरह ही होते हैं।

रूप- भुजति। बुभोज। भोक्ता। भोक्ष्यति। भुजतु। अभुजत्। भुजेत्। भुज्यात्। अभौक्षीत्। अभोक्ष्यत्।

विश प्रवेशने। विश धातु **प्रवेश करना** अर्थ में है। इसमें अकार इत्संज्ञक है। परस्मैपदी है और अनुदात्त धातुओं में परिगणित होने से अनिट् है। इस धातु से लुट् में **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से शकार के स्थान पर षकार आदेश होने पर ता के तकार ष्टुत्व होकर टकार होकर **वेष्टा** बनता है लृट् में षकार के स्थान पर **षढोः कः सि** से ककारादेश होने पर **वेक्+ष्यति** बनता है और **क्** और **ष्** के योग में **क्ष** हो जाता है, जिससे **वेक्ष्यति** यह रूप बन जाता है। लुङ् में **शल इगुपधादनिटः क्सः** से क्स आदेश होकर **अविक्षत्** बनता है।

रूप- विशति, विशतः, विशन्ति। विवेश, विविशतुः, विविशुः। वेष्टा, वेष्टारौ, वेष्टारः। वेक्ष्यति, वेक्ष्यतः, वेक्ष्यन्ति। विशतु-विशतात्, विशताम्, विशन्तु। अविशत्, अविशताम्, अविशन् । विशेत्, विशेताम्, विशेयुः। विश्यात्, विश्यास्ताम्, विश्यासुः। अविक्षत्, अविक्षताम्, अविक्षन्। अवेक्ष्यत्, अवेक्ष्यताम्, अवेक्ष्यन्।

मृश आमर्शने। आमर्शनं स्पर्शः। मृश धातु आमर्शन अर्थात् **स्पर्श करना, छूना** अर्थ में है। शकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है। अनिट् है।

लट्- मृशति, मृशतः, मृशन्ति।

लिट्- ममर्श, ममृशतुः, ममृशुः, ममर्शिथ ममृशथुः, ममृश, ममर्श, ममृशिव, ममृशिम।

लुट् में- यह धातु अनिट् है। **मृश्+ता** बनने के बाद **अनुदात्तस्य चर्दुपध स्यान्यतरस्याम्** से विकल्प से अम् का आगम होकर **मृ+अश्+ता** बना। **मृ+अश्** में **इको यणचि** से यण् होकर **म्रश्+ता** बना। शकार को **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षत्व और षकार के योग में ता के तकार को ष्टुत्व होकर **म्रष्टा** बन जाता है। **अम्** न होने के पक्ष में **गुण** होकर **मर्ष्टा** बनता है। इस तरह दो-दो रूप बनते हैं। **म्रष्टा, म्रष्टारौ, म्रष्टारः** और **मर्ष्टा, मर्ष्टारौ, मर्ष्टारः** आदि।

लृट् में भी वैकल्पिक अम् आगम, यण् तथा अम् के अभाव में गुण होकर शकार को षत्व, षकार को **षढोः कः सि** से कत्व, ककार से परे सकार को षत्व और ककार-षकार के संयोग से क्षत्व होकर दो-दो रूप बनते हैं। **म्रक्ष्यति, म्रक्ष्यतः, म्रक्ष्यन्ति** और **मर्क्ष्यति, मर्क्ष्यतः, मर्क्ष्यन्ति** आदि।

आगे- मृशतु। अमृशत्। मृशेत्, मृश्यात् आदि।

अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत्। लुङ् में **अमृश्+त्** बनने के बाद **च्लि**, उसके स्थान पर **क्स** प्राप्त, उसे बाधकर **स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः** से विकल्प से **सिच्** होने पर उसकी विद्यमानता में ईट् होकर **अमृश्+स्+ईत्** बना। **अनुदात्तस्य चर्दुपध स्यान्यतरस्याम्** से विकल्प से अम् का आगम होने पर **अमृ+अश्+स्+ईत्** बना। **अमृ+अश्** में यण् होकर **अम्+र्+अश्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अम्रश्+स्+ईत्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर **अम्राश्+स्+ईत्** बना। **श्** को षत्व, सकार के परे होने पर षकार को **षढोः कः सि** से कत्व होने पर ककार से पर सकार को षत्व होकर **अम्राक्+ष्+ईत्** बना।

क्षसंयोगे क्षः, **अम्राक्ष्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अम्राक्षीत्** सिद्ध हुआ। अम् का आगम वैकल्पिक है। उसके न होने के पक्ष में वृद्धि होकर **अमार्क्षीत्** बना। **सिच्** भी वैकल्पिक है। उसके अभाव में **शल इगुपधादनिटः क्सः** से **च्लि** के स्थान पर **क्स** आदेश हुआ। **क्स** कित् है, अतः अम् आगम नहीं हुआ और लघूपधगुण भी नहीं हुआ। सिच् के अभाव में ईट् भी नहीं होता। इस तरह **अमृश्+सत्** में षत्व, कत्व, षत्व और क्षत्व होकर वर्णसम्मेलन होकर **अमृक्षत्** सिद्ध हुआ। इस तरह तीन रूप सिद्ध हुए।

लुङ् के रूप- **अमागम के पक्ष में**- अम्राक्षीत्, अम्राष्टाम्, अम्राक्षुः, अम्राक्षीः, अम्राष्टम्, अम्राष्ट, अम्राक्षम्, अम्राक्ष्व, अम्राक्ष्म। **अम् के अभाव में**- अमार्क्षीत्, अमार्ष्टाम्, अमार्क्षुः, अमार्क्षीः, अमार्ष्टम्, अमार्ष्ट, अमार्क्षम्, अमार्क्ष्व, अमार्क्ष्म। **क्स के पक्ष में**- अमृक्षत्, अमृक्षाताम्, अमृक्षन्, अमृक्षः, अमृक्षतम्, अमृक्षत, अमृक्षम्, अमृक्षाव, अमृक्षाम।

लृङ्- अम्रक्ष्यत्, अमर्क्ष्यत्।

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु। षद्लृ धातु **विशीर्ण होना(फटना), गति** और **दुखी होना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है। लृकार की इत्संज्ञा होती है, **सद्** शेष रहता है। उदात्त होने से परस्मैपदी और अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। लृकार की इत्संज्ञा होने से लृदित् हुआ। इसका फल लुङ् में च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होना है। अनिट् होने पर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् और थल् में भारद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। इत्संज्ञक शकारादि प्रत्ययों के परे अर्थात् श के परे होने पर **पाघ्राध्मास्थाम्ना-दाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से सद् के स्थान पर **सीद्** आदेश होता है। इस तरह **लट्** में **सीदति, सीदतः** आदि रूप बनते हैं।

लिट् में- इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय के अभाव में **सीद्** आदेश नहीं होता। अतः **सद्** को ही द्वित्व होकर **ससद्+अ** बनने के बाद उपधावृद्धि होकर **ससाद** बन जाता है। अतुस आदि में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्व और अभ्यास लोप होकर **सेदतुः सेदुः** आदि रूप बनते हैं। थल् में इट् के पक्ष में **थलि च सेटि** से एत्वाभ्यास लोप होकर **सेदिथः** बनता है। इट् न होने के पक्ष में दकार को चर्त्व होकर **ससत्थ** बनता है। इस तरह **लिट्** के रूप होते हैं- **ससाद, सेदतुः, सेदुः, सेदिथ-ससत्थ, सेदथुः, सेद, ससाद-ससद, सेदिव, सेदिम।**

आगे- **सत्ता। सत्स्यति। सीदतु। असीदत्। सीदेत्। सद्यात्।**

लुङ्- लृदित् होने के कारण **पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु** से च्लि के स्थान पर अङ् होकर **असदत्, असदताम्** आदि रूप बनते हैं।

शद्लृ शातने। शद्लृ धातु बरबाद होना, मुरझाना आदि अर्थ में है। उदात्त **लृ** की इत्संज्ञा होती है। शद् शेष रहता है। **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से शित् के परे रहने पर शद् के स्थान पर **शीय** आदेश होता है। यह परस्मैपदी और अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् और थल् में भरद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। जहाँ पर **श** होने वाला होता है, वहाँ पर **शदेः शितः** यह अग्रिम सूत्र आत्मनेपद का विधान करता है।

तङानयोर्विधायकं विधिसूत्रम्

६६०. शदेः शितः १।३।६०॥

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते। शीयताम्। अशीयत। शीयेत। शशाद। शत्ता। शत्स्यति। अशदत्। अशत्स्यत्॥ **कॄ विक्षेपे॥३९॥**

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६६१. ॠत इद्धातोः ७।१।१००॥

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत् स्यात्।

किरति। चकार। चकरतुः। चकरुः। करीता, करिता। कीर्यात्॥

....

६६०- **शदेः शितः**। श् इत् यस्य स शित्, तस्य शितः। शदेः पञ्चम्यन्तं, शितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

शिद्भावी अर्थात् यदि शित् प्रत्यय होने वाला हो तो शद् धातु से आत्मनेपद (तङ् और आन) होता है।

तुदादिगण में शप् के स्थान पर **श** होता है। जहाँ धातु से शित् प्रत्यय हो सकता है, ऐसे लकार हैं- लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्। इनमें आत्मनेपद का विधान होगा और शेष लकारों में परस्मैपद ही रहेगा।

शीयते। शद् धातु से लट्, **श** की विवक्षा में **शदेः शितः** से आत्मनेपद तङ् के विधान से त आया, **शद्+त** बना। **श** होकर **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से **शीय** आदेश होकर **शीय+अत** बना। पररूप और एत्व होकर **शीयते** सिद्ध हुआ।

लट्- शीयते, शीयेते, शीयन्ते, शीयसे, शीयेथे, शीयध्वे, शीये, शीयावहे, शीयामहे।

लिट्- शशाद, शेदतुः, शेदुः, शेदिथ-शशत्थ, शेदथुः, शेद आदि।

लुट्- शत्ता, शत्तारौ, शत्तारः। **लृट्**- शत्स्यति, शत्स्यतः, शत्स्यन्ति। **लोट्**- शीयताम्, शीयेताम्, शीयन्ताम्। **लङ्**- अशीयत, अशीयेताम्, अशीयन्त। **विधिलिङ्**- शीयेत, शीयेयाताम्, शीयेरन्। **आशीर्लिङ्**- शद्यात्, शद्यास्ताम्, शद्यासुः। **लुङ्**- अशदत्, अशदताम्, अशदन्। **लृङ्**- अशत्स्यत्, अशत्स्यताम्, अशत्स्यन्।

कॄ विक्षेपे। कॄ धातु **विक्षेप** अर्थात् **बिखेरना, फेंकना** आदि अर्थों में है। दीर्घ ॠकारान्त है। परस्मैपदी और ॠकारान्त होने से सेट् भी है।

६६१- **ॠत इद्धातोः**। ॠतः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ॠदन्त धातुरूप अङ्ग को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा के बल पर अन्त्य वर्ण ॠकार के स्थान पर ही **उरण् रपरः** की सहायता से **इर्** आदेश हो जाता है।

किरति। विक्षेपार्थक **कॄ** से लट्, तिप्, श, अनुबन्धलोप करके **कॄ+अति** बना। **ॠत इद्धातोः** से ॠकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश प्राप्त था तो रपर होकर **इर्** हुआ। **क्+इर्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **किरति** सिद्ध हुआ। इस तरह **लट्** में- **किरति, किरतः किरन्ति** आदि रूप बन जाते हैं।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६६२. किरतौ लवने ६।१।१४०॥

उपात्किरतेः सुट् छेदने। उपस्किरति।

वार्तिकम्- **अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्।**

उपास्किरत्। उपचस्कार॥

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६६३. हिंसायां प्रतेश्च ६।१।१४१॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम्।

उपस्किरति। प्रतिस्किरति॥ **गॄ** निगरणे॥४०॥

चकार। लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, उरत्, हलादिशेष आदि करके **ककॄ+अ** बना। **कुहोश्चुः** से चुत्व, **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण करके उपधावृद्धि होने पर **चकार** सिद्ध होता है। आगे- **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण होकर- चकरतुः, चकरु, चकरिथ, चकरथुः, चकर, चकार-चकर, चकरिव, चकरिम।

लुट् में **कॄ+इ+ता** में गुण होकर **वॄतो वा** से इट् को वैकल्पिक दीर्घ होकर **करीता-करिता** दो रूप बनते हैं। इसी तरह **लृट्** में भी **करीष्यति-करिष्यति** ये दो रूप बनते हैं। **लोट्** में- **किरतु-किरतात्, किरताम्, किरन्तु** आदि। **लङ्** में- अकिरत्। **विधिलिङ्** में- किरेत्। **आशीर्लिङ्** में **कॄ+यात्** होने पर **ॠत इद्धातोः** से इत्व, रपर और **हलि च** से दीर्घ होकर **कीर्यात्, कीर्यास्ताम्, कीर्यासुः** आदि रूप बनते हैं। **लुङ्** में- **अकॄ+इस्+ईत्** में सकार का लोप, सवर्णदीर्घ, **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर **अकार्+ईत्**, वर्णसम्मेलन, **अकारीत्** बन जाता है। **अकारीत्, अकारिष्टाम्, अकारिषुः** आदि। लृङ् में **वॄतो वा** से वैकल्पिक दीर्घ होकर **अकरीष्यत्-अकरिष्यत्।**

६६२- **किरतौ लवने**। किरतौ सप्तम्यन्तं, लवने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु** से **उपात्** की और **सुट् कात्पूर्वः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

उप उपसर्ग से परे कॄ धातु को सुट् का आगम होता है यदि काटने का विषय हो तो।

सुट् में उकार और टकार की इत्संज्ञा के बाद सकार शेष रहता है। टित् होने के कारण धातु के आदि में बैठता है।

उपस्किरति। काटता है। काटना अर्थ होने के कारण **उप+किरति** में **किरतौ लवने** से सुट् होकर **उपस्किरति** सिद्ध हो जाता है।

अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **अट् या अभ्यास के व्यवधान होने पर भी ककार से पूर्व यथाविहित सुट् का आगम हो ऐसा कहना चाहिए।** लङ् में अट् आगम होने पर **उप+अकिरत्** बना है। **उप** और **धातु** के बीच में अट् का व्यवधान है। **उपात्** इस पञ्चमी के कारण **तस्मादित्युत्तरस्य** के नियम से **उप** से अव्यवहित ककार को सुट् का विधान है। यहाँ पर **अट्** के व्यवधान होने के कारण प्राप्त

वैकल्पिकलत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६६४. अचि विभाषा ८।२।२१।।

गिरते रेफस्य लो वाऽजादौ प्रत्यये।

गिरति, गिलति। जगार, जगाल। जगरिथ, जगलिथ। गरीता, गरिता, गलीता, गलिता।। **प्रच्छ ज्ञीप्सायायाम्।।४१।।**

ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। पृच्छति। पप्रच्छ। पप्रच्छतुः। पप्रच्छुः। प्रष्टा। प्रक्ष्यति। अप्राक्षीत्। **मृङ्** प्राणत्यागे।।४२।।

....

नहीं था। अतः **वार्तिककार** ने यह वार्तिक बनाया। **लङ्** में **उप+अकिरत्** में अकार के व्यवधान में और **उप+चकार** में अभ्यास के व्यवधान में भी सुट् होकर **उपास्किरत्** और **उपचस्कार** ये दो रूप सिद्ध हो सके।

६६३- हिंसायां प्रतेश्च। हिसायां सप्तम्यन्तं, प्रतेः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु** से **उपात्** की, **किरतौ लवने** से **लवने** की और **सुट् कात्पूर्वः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

उप या प्रति उपसर्ग से परे कृ धातु को सुट् का आगम होता है यदि हिंसा का विषये हो तो।

उपस्किरति। प्रतिस्किरति। हिंसा करता है। **उप+किरति, प्रति+किरति** में हिंसा अर्थ होने के कारण **हिंसायां प्रतेश्च** से सुट् होकर **उपस्किरति, प्रतिस्किरति** बन जाते हैं। इसी तरह पूर्ववार्तिक के सहयोग से **उपचस्कार, प्रतिचस्कार** बन जाते हैं।

गृ निगरणे। गृ धातु **निगलना** अर्थ में है। इसके रूप **कृ** धातु की तरह ही होते हैं। अन्तर इतना ही है कि अजादि प्रत्ययों के परे होने पर अग्रिम सूत्र **अचि विभाषा** से लकारादेश होता है।

६६४- अचि विभाषा। अचि सप्तम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ग्रो यङि** से **ग्रः** एवं **कृपो रो लः** से **लः** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि प्रत्यय के परे रहते गृ धातु के रेफ के स्थान पर विकल्प से ल आदेश होता है।

गिरति, गिलति। गृ धातु से लट्, तिप्, श करके **ॠत इद्धातोः** से रपरसहित इत्त्व होने के बाद **गिर्+अति** बना। **अचि विभाषा** से श वाले अकाररूप अच् के परे रहते **गिर्** के रेफ के स्थान पर विकल्प से **लकार** आदेश होने पर **गिलति** बना। न होने के पक्ष में **गिरति** ही रह जाता है।

लिट् में तिप्, णल्, द्वित्व, उरत्व, हलादिशेष, चुत्व, **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करके **जगार** बनता है। आगे **अचि विभाषा** से विकल्प से रेफ के स्थान पर लकार आदेश होने पर **जगाल** बनता है। इस तरह लत्व पक्ष में **जगलतुः, जगलुः** आदि और लत्वाभाव में **जगरतुः-जगरुः** आदि रूप बनते हैं। लिट् लकार को छोड़कर अन्यत्र के इट् को विकल्प से **वृतो वा** से दीर्घ होने के कारण **लुट्** में- **गरीता-गलीता, गरिता-गलिता** और **लृट्** में **गरीष्यति-गलीष्यति, गरिष्यति-गलिष्यति** आदि रूप बनते हैं। अन्य लकारों में क्रमशः **गिरतु-गिलतु। अगिरत्-अगिलत्। गिरेत्-गिलेत्।** आशीर्लिङ् में अजादि परे न मिलने के

कारण लत्व नहीं होगा- **गीर्यात्**। अब लुङ् लकार में **अगारीत्-अगालीत्**। लृङ् में **अगरीष्यत्-अगलीष्यत्, अगरिष्यत्, अगलिष्यत्**।

प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्। प्रच्छ धातु **जानने की इच्छा** अर्थ में है। छकारोत्तरवर्ती उदात्त अकार की इत्संज्ञा होने से **प्रच्छ्** यह उदात्तेत् है, अतः परस्मैपदी है। छकार के पहले वाला चकार छकार के परे होने पर **छे च** से तुक् और उसको चुत्व होकर बना है। यह धातु अनुदात्तों में परिगणित होने के कारण नित्य अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् के वलादि आर्धधातुक को नित्य से इट् और भारद्वाज नियम से थल् में विकल्प से इट् होता है। **ङित्** अर्थात् श वाले अकार के परे होने पर **प्र** के रेफ को सम्प्रसारण होकर ऋकार हो जाता है।

पृच्छति। प्रच्छ् से लट्, तिप्, श करने के बाद **प्रच्छ्+अति** बना है। श वाले अकार के अपित् सार्वधातुक होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् हो गया है। अतः **ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च** से रेफ को सम्प्रसारण होकर ऋकार हुआ, **प्+ऋ+अ+च्छ्+अति** बना। **ऋ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **ऋकार** ही बना। इस तरह **पृच्छ्+अति=पृच्छति** सिद्ध हुआ। पृच्छति, पृच्छतः, पृच्छन्ति आदि।

लिट् में- **प्रच्छ्** से तिप्, णल्, द्वित्व, हलादिशेष करके **पप्रच्छ** बनता है। पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः, पप्रच्छिथ-पप्रष्ठ, पप्रच्छथुः, पप्रच्छ, पप्रच्छ, पप्रच्छिव, पप्रच्छिम।

लुट् में- **प्रच्छ्+ता** में छकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकारादेश हुआ और अब छ् के न रहने से उसको हुआ च् भी चला जाता है। षकार से परे ता को टुत्व होकर **प्रष्टा** बनता है। प्रष्टा, प्रष्टारौ, प्रष्टारः।

लृट् में- **प्रच्छ्+स्यति** में षत्व हुआ। छकार के स्थान पर षकार हो जाने से छकार को मानकर हुआ तुक् भी स्वतः चला गया अतः **प्रष्+स्यति** बना। उसके बाद **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर ककारादेश और ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** करके ककार और षकार के संयोग में **क्ष्** बन जाता है, जिससे **प्रक्ष्यति, प्रक्ष्यतः, प्रक्ष्यन्ति** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

आगे- **पृच्छतु-पृच्छतात्। अपृच्छत्। पृच्छेत्। पृच्छ्यात्।**

अप्राक्षीत्। लुङ् में **अप्रच्छ्+स्+ईत्** बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर **अप्राच्छ्+स्+ईत्** बना। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से **छ्** के स्थान पर षत्व करके **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर ककार आदेश और सकार के स्थान पर षत्व होने के बाद क्षत्व होकर **अप्राक्ष्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अप्राक्षीत्** सिद्ध हुआ। **तस्** में **झलो झलि** से सिच् के सकार का लोप होता है और षत्व, ष्टुत्व होने पर **अप्राष्टाम्** बनता है। आगे- **अप्राक्षुः, अप्राक्षीः, अप्राष्टम्, अप्राष्ट, अप्राक्षम्, अप्राक्ष्व, अप्राक्ष्म। लृङ्** में- **अप्रक्ष्यत्** आदि।

मृङ् प्राणत्यागे। मृङ् धातु **प्राण त्यागना** अर्थात् **मरना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने के कारण **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपदी हो जाता है। अनुदात्तेत् होने के कारण अनिट् है। **शविकरण, लुङ्** और **लिङ्** लकारों में ही अग्रिम सूत्र से आत्मनेदपद और शेष लकारों में परस्मैपद होता है। तात्पर्य यह है कि लट्, लोट्, लङ्, लिङ्, और लुङ् में आत्मनेपदी तथा लिट्, लुट्, लृट् और लृङ् में परस्मैपदी होता है।

तङ्विधायकं नियमसूत्रम्

६६५. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १। ३। ६१॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र। रिङ्। इयङ्। म्रियते। ममार। मर्ता। मरिष्यति। मृषीष्ट। अमृत॥

पृङ् व्यायामे॥४३॥ प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः॥ व्याप्रियते। व्यापप्रे। व्यापप्राते। व्यापरिष्यते। व्यापृत। व्यापृषाताम्॥

जुषी प्रीतिसेवनयोः॥४४॥ जुषते। जुजुषे॥

ओविजी भयचलनयोः॥४५॥ प्रायेणायमुत्पूर्वः। उद्विजते॥

....

६६५- म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च। म्रियतेः पञ्चम्यन्तं, लुङ्लिङोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **शदेः शितः** से **शितः**, **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

मृङ् धातु से लुङ्, लिङ् अथवा शित्-प्रकृतिभूत अर्थात् शित् प्रत्यय होने वाले लकार के स्थान पर आत्मनेपद होता है, अन्य लकारों में नहीं।

यह सूत्र नियमार्थ माना जाता है, क्योंकि **मृङ्** धातु के **ङित्** होने के कारण सभी लकारों में आत्मनेपद स्वतः सिद्ध था, फिर इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान **सिद्धे सति आरम्भ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** के अनुसार इस धातु से आत्मनेपद हो तो केवल लुङ्, लिङ् और शित् प्रत्यय होने वाले लकारों के स्थान पर ही हो, अन्य लकारों में परस्मैपद ही हो, यह नियम बनाता है।

म्रियते। मृ से लट्, त, श करने के बाद **मृ+अत** बना। **रिङ्शयग्लिङ्क्षु** से ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश होकर **म्रि+अत** बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इकार के स्थान पर इयङ् आदेश होने पर **म्रिय्+अत** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व और वर्णसम्मेलन होने पर **मियते** बना। आगे- **म्रियेते, म्रियन्ते** आदि। **लिट्** में तो उपर्युक्त नियम से परस्मैपद ही होगा। अतः **मृ** से तिप्, णल्, द्वित्व, उरत्व, हलादिशेष, वृद्धि होकर वर्णसम्मेलन होने पर **ममार** बन जाता है। आगे- **मम्रतुः, मम्रुः, ममर्थ, मम्रथुः, मम्र, ममार-ममर, मम्रिव, मम्रिम।**

लुट् में मर्ता। **लृट्** में- **ऋद्धनोः स्ये** से **इट्** आगम होकर **मरिष्यति**। आगे- **म्रियताम्। अम्रियत। म्रियेत। मृषीष्ट। अमृत। अमरिष्यत्।**

पृङ् व्यायामे। पृङ् धातु **व्यायाम करना** अर्थ में है। इस धातु का प्रयोग प्रायः वि और आङुपसर्गपूर्वक ही होता है। इस धातु में ङकार की इत्संज्ञा होने के कारण ङित् होने से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपदी बन जाता है और **ऊद्दृदन्तै०** में न आते हुए अजन्त और एकाच् होने से अनुदात्त भी है। अनुदात्त होने से यह धातु नित्य अनिट् है परन्तु क्रादिनियम से लिट् में नित्य से इट् होता है।

लट् में- **व्यापृ** से लिट्, त, श होने पर **व्यापृ+अत** बना। **रिङ्शयग्लिङ्क्षु** से ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश होकर **व्याप्रि+अत** बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इकार के स्थान पर इयङ् आदेश होने पर **व्याप्रिय्+अत** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व तथा वर्णसम्मेलन होने पर **व्याप्रियते** बना। इसी प्रकार आगे- **व्याप्रियेते, व्याप्रियन्ते**

ङिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

६६६. विज इट् १।२।२।

विजेः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्। उद्विजिता।।

।इति तुदादयः।।१७।।

....

आदि रूप बनते हैं। **लिट्** में- **व्यापृ** से लिट्, त, एश्, द्वित्व, उरत्व, हलादिशेष करने पर **व्यापपृ+ए** बना। यण् तथा वर्णसम्मेलन होने पर **व्यापप्रे** बना। **लुट्** में- **व्यापर्ता। लृट्** में **ऋद्धनोः स्ये** से इडागम होने पर **व्यापरिष्यते। व्याप्रियताम्।** जहां अट् का आगम होता है, वहां अडागम होने के बाद **आ** और **अ** में सवर्णदीर्घ होकर **आ** ही बनता है। अतः **लङ्** में **व्याप्रियत** बनता है। **व्याप्रियेत। व्यापृषीष्ट। लुङ्** में- ह्रस्व से परे सकार मिलने से सिच् के सकार का **ह्रस्वादङ्गात्** से लोप होने पर **व्यापृत** बना। **लृङ्** में- **व्यापरिष्यत।**

जुषी प्रीतिसेवनयोः। जुषी धातु **प्रीति** अर्थात् **प्रसन्न होने** तथा **सेवन करने** अर्थ में है। अनुबन्धलोप होने पर यह धातु हलन्त कहलाती है। **जुषी** धातु में विद्यमान ईकार अनुदात्त है। अतः उसकी इत्संज्ञा होने पर यह धातु अनुदात्तेत् कहलाती है। फलतः **अनुदात्तङित आत्मनेपदम् से** आत्मनेपदी बन जाता है। इस धातु का हलन्त अनुदात्तों में पठन न होने से यह उदात्त है फलतः यह धातु सेट् है।

लट् में- **जुष्** धातु से लट्, त, श होने के बाद **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व तथा वर्णसम्मेलन होने पर **जुषते** बना। **लिट्** में- जुष् से लिट्, त, एश्, द्वित्व, हलादिशेष तथा वर्णसम्मेलन होकर **जुजुषे** बना। इसी प्रकार आगे- **जोषिता। जोषिष्यते। जुषताम्। अजुषत। जुषेत। जोषिषीष्ट। अजोषिष्ट। अजोषिष्यत।**

ओविजी भयचलनयोः। ओविजी धातु **डरना** और **डर से काँपना** अर्थ में है। इस धातु का प्रयोग प्रायः उत् उपसर्गपूर्वक ही किया जाता है। **ओविजी** में ओ और जी में ईकार की इत्संज्ञा होने पर **विज्** बचता है और उत् उपसर्गपूर्वक होने के कारण **उद्विज्** धातु बनता है। **ओविजी** में ईकार अनुदात्त होने से उसकी इत्संज्ञा होने पर यह धातु अनुदात्तेत् बन जाता है, फलतः यह आत्मनेपदी होता है। अनुदात्तों में गणना नहीं है, अतः सेट् है।

लट्- उद्विजते। **लिट्**- उद्विविजे, उद्विविजाते, उद्विविजिरे।

६६६- विज इट्। विजः पञ्चम्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से **ङित्** की अनुवृत्ति आती है।

विज् धातु से परे इट् आदि वाला प्रत्यय ङिद्वद्भाव को प्राप्त होता है।

लुट् में **उद्विज्+इता** होने के बाद **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण प्राप्त था, उसे निषेध करने के लिए **इट् सहित ता** को ङिद्वत् हुआ, फलतः **क्ङिति च** से गुण का निषेध होकर **उद्विजिता** ही रह गया। इसी तरह **उद्विजिष्यति** आदि में भी समझना चाहिए। आगे के लकारों में क्रमशः देखें- **उद्विजताम्। उदविजत** (उपसर्ग के बाद ही अट् बैठता है।) **उद्विजेत। उद्विजिषीष्ट। उदविजिष्ट। उदविजिष्यत।**

इस तरह से तुदादि में इतने ही धातुओं का समावेश **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में किया गया है। अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि की अपेक्षा इस गण के धातुओं के रूप सरल होते हैं फिर भी प्रक्रिया सामान्य जानकारी तक ही सीमित रखकर विशेष ज्ञान

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के बाद ही हो सकता है। उन ग्रन्थों के लिए पूर्वाधार तैयार करना या सामान्य जानकारी रखना इस ग्रन्थ का कार्य है।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।

१-	अपनी पुस्तिका में तुद् और नुद् धातु के सारे रूप लिखें।	१०
२-	मुच्लृ धातु के सभी लकारों में मध्यमपुरुष एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्रों को लगाकर करें।	१५
३-	विन्द् धातु के लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये	१५
४-	स्वादि-प्रकरण और तुदादि-प्रकरण की तुलना करें।	१०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तुदादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ रुधादिप्रकरणम्

रुधिर् आवरणे॥१॥

श्नम्-विधायकं विधिसूत्रम्

६६७. रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८॥

शपोऽपवादः। रुणद्धि। **श्नसोरल्लोपः**- रुन्धः। रुन्धन्ति। रुणत्सि। रुन्धः। रुन्ध। रुणध्मि। रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुन्धे। रुन्धाते। रुन्धते। रुन्त्से। रुन्धाथे। रुन्ध्वे। रुन्धे। रुन्ध्वहे। रुन्ध्महे। रुरोध-रुरुधे। रोद्धासि-रोद्धासे। रोत्स्यति-रोत्स्यते। रुणद्धु-रुन्धात्। रुन्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि। रुणधानि। रुणधाव। रुणधाम। रुन्धाम्। रुन्धाताम्। रुन्धताम्। रुन्त्स्व। रुणधै। रुणधावहै। रुणधामहै। अरुणत्-अरुणद्। अरुन्धाम्। अरुन्धन्। अरुणः। अरुणत्-अरुणद्। अरुन्ध। अरुन्धाताम्। अरुन्धत। अरुन्धाः। रुन्ध्यात्। रुन्धीत। रुध्यात्। रुत्सीष्ट। अरुधत्, अरौत्सीत्। अरुद्ध। अरुत्साताम्। अरुत्सत। अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **रुधादिप्रकरण** सातवाँ है। रुधिर् धातु आदि में होने के कारण यह रुधादिप्रकरण कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु और तुदादि में श हुए, उसी प्रकार रुधादि में शप् को बाधकर **श्नम्** होता है। श्नम् में मकार की **हलन्त्यम्** से तथा शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **न** बचता है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् के बाद बैठेगा। रुध् में रु के बाद और ध् के पहले बैठेगा। न शित् है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है। सार्वधातुक होते हुए भी अपित् है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके पूर्व को प्राप्त गुण और वृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए न के परे होने पर पूर्व को गुण और वृद्धि दोनों ही नहीं होते। श्नम् करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **रुधादिभ्यः श्नम्** से श्नम् और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं और **श्नम्** के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य **श्नम्** ही होता है।

भिदिर् विदारणे॥२॥ छिदिर द्वैधीकरणे॥३॥ युजिर् योगे॥४॥ रिचिर् विरेचने॥५॥ रिणक्ति, रिङ्क्ते। रिरेच। रेक्ता। रेक्ष्यति। अरिणक्। अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त। **विचिर् पृथग्भावे॥६॥** विनक्ति, विङ्क्ते। **क्षुदिर् सम्पेषणे॥७॥** क्षुणत्ति, क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्। अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त। **उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः॥८॥** छृणत्ति, छृन्ते। चच्छर्द। **सेऽसिचीति वेट्।** चच्छृदिषे, चच्छृत्से। छर्दिता। छर्दिष्यति, छत्स्र्यति। अच्छृदत्, अच्छर्दीत्, अच्छर्दिष्ट॥ **उतृदिर् हिंसानादरयोः॥९॥** तृणत्ति, तृन्ते॥ **कृती वेष्टने॥१०॥** कृणत्ति॥ **तृह, हिसि हिंसायाम्॥११-१२॥**

....

रुधिर् आवरणे। रुधिर् धातु **रोकने** अर्थ में है। इसमें इर् की **इर इत्संज्ञा वाच्या** इस वार्तिक से इत्संज्ञा होती है, रुध् शेष रहता है। स्वरित इ की इत्संज्ञा होने के कारण यह धातु स्वरितेत् है, अतः उभयपदी है। अनिट् होते हुए भी लिट् में इट् होता है।

६६७- **रुधादिभ्यः श्नम्।** रुधादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्नम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर रुधादिगणपठित धातुओं से शप् का बाधक श्नम् प्रत्यय होता है।

रुणद्धि। रुधिर् धातु है। **इर इत्संज्ञा वाच्या** से इर् की इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर रुध् बचा। रुध् से लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **रुधादिभ्यः श्नम्** से श्नम्, अनुबन्धलोप करके अन्त्य अच् रु में जो उकार, उसके बाद **न** बैठा, **रुनध् ति** बना। रेफ से परे नकार के स्थान पर **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ और **झषस्तथोर्धोऽधः** से झष् है रुध् में धकार, उससे परे प्रत्यय के तकार के स्थान पर धकार आदेश हुआ- **रुणध्+धि** बना। **रुणध्+धि** में प्रथम धकार के स्थान पर **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर द् आदेश हुआ, **रुणद्+धि** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **रुणद्धि।**

रुन्धः। रुध् से तस्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् तस्** बना। **सार्वधातुकमपित्** से तस् ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध् तस्** बना। **झषस्तथोर्धोऽधः** से तस् के तकार को धकार आदेश हुआ, प्रथम धकार का **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक लोप हुआ- **रुन्+धस्** बना। नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व और **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार प्राप्त है। दोनों त्रिपादी हैं, किन्तु णत्वविधायक सूत्र के परत्रिपादी होने के कारण पूर्वत्रिपादी अनुस्वारविधायक सूत्र के प्रति णत्वविधान असिद्ध होने के कारण अनुस्वार ही हुआ और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से अनुस्वार को परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग होने पर **रुन्धः** सिद्ध हुआ। धकार के लोप न होने के पक्ष में प्रथम धकार को जश्त्व करके दकार बनने पर **रुन्द्धः** सिद्ध होता है।

रुन्धन्ति। रुध् से झि, अन्त् आदेश, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध्+अन्ति** बना। **सार्वधातुकमपित्** से **अन्ति** ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध्+अन्ति** बना। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया, वर्णसम्मेलन हुआ- **रुन्धन्ति।**

रुणत्सि। रुध् से सिप्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् सि** बना। पित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से सि ङित् न हो सका, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप भी नहीं हुआ, **रुनध्+सि** है। नकार को णत्व और धकार को जश्त्व करके दकार हुआ, **रुणद्+सि** बना। सकार के परे होने पर दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार आदेश हुआ, **रुणत्+सि** बना, वर्णसम्मेलन होकर **रुणत्सि** सिद्ध हुआ।

रुन्धः। रुन्ध। रुध् से थस्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् थस्** बना। **सार्वधातुकमपित्** से थस् ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध् थस्** बना। **झषस्तथोर्धोऽधः** से थस् के थकार को धकार आदेश हुआ, प्रथम धकार का **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक लोप हुआ- **रुन्+धस्** बना, नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **रुन्धः**। धकार के लोप न होने के पक्ष में प्रथम धकार को जश्त्व करके दकार बनने पर **रुन्द्धः** सिद्ध होता है। इसी प्रकार बहुवचन में **रुन्ध, रुन्द्ध** भी बनाइये।

रुणध्मि। रुध् से मिप्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् मि** बना। पित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से मि ङित् न हो सका, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप भी नहीं हुआ, **रुनध्+मि** है। नकार को णत्व और धकार को जश्त्व करके दकार हुआ, **रुणद्+मि** बना, वर्णसम्मेलन होकर **रुणध्मि** सिद्ध हुआ।

रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुध् से वस्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् वस्** बना। **सार्वधातुकमपित्** से वस् ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध् वस्** बना। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग- **रुन्ध्वः**। इसी तरह **रुन्ध्मः** भी बनाइये। इस तरह से रुध् धातु के परस्मैपद लट् में रूप सिद्ध हुए- **रुणद्धि, रुन्धः-रुन्द्धः, रुन्धन्ति। रुणत्सि, रुन्धः-रुन्द्धः, रुन्ध-रुन्द्ध। रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः।**

आत्मनेपद में पित् न होने के कारण सभी नौ प्रत्यय **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हैं। इसलिए सभी रूपों में **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप होता है। तस्, थस् और थ के तकार, थकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश, अनुस्वार, परसवर्ण, एत्व **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक धकार का लोप करके रूप बनाइये- रुन्धे-रुन्द्धे, रुन्धाते, रुन्धते (**आत्मनेपदेष्वनतः**)। रुन्त्से, रुन्धाथे, रुन्ध्वे-रुन्द्ध्वे। रुन्धे, रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे।

लिट्-लकार में तिप्, णल्, द्वित्व आदि करके रूप बनाइये- रुरोध, रुरुधतुः, रुरुधुः। रुरोधिथ, रुरुधथुः, रुरुध। रुरोध, रुरुधिव, रुरुधिम। आत्मनेपद में- रुरुधे, रुरुधाते, रुरुधिरे। रुरुधिषे, रुरुधाथे, रुरुधिध्वे। रुरुधे, रुरुधिवहे, रुरुधिमहे।

लुट्-लकार में लघूपधगुण, तास् के तकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश, जश्त्व आदि करके रूप बनते हैं- **परस्मैदपद-** रोद्धा, रोद्धारौ, रोद्धारः। रोद्धासि, रोद्धास्थः, रोद्धास्थ। रोद्धास्मि, रोद्धास्वः, रोद्धास्मः। **आत्मनेपद-** रोद्धा, रोद्धारौ, रोद्धारः। रोद्धासे, रोद्धासाथे, रोद्धाध्वे। रोद्धाहे, रोद्धास्वहे, रोद्धास्महे।

लोट् परस्मैपद में **एरुः** से उत्व, धत्व, जश्त्व आदि करके- रुणद्धु, रुन्धात्-रुन्द्धात्, रुन्धाम्-रुन्द्धाम्, रुन्धन्तु। सिप् में- **सेर्ह्यपिच्च** से हि आदेश और हि के स्थान पर **हुझल्भ्यो**

हेर्धिः से धि आदेश करके **रुन्धि-रुन्द्धि** तातङ् के पक्ष में **रुन्धात्-रुन्द्धात्** बनते हैं। आगे- **रुन्धम्-रुन्द्धम्, रुन्ध-रुन्द्ध,** आट् आगम- **आडुत्तमस्य पिच्च** से- पित् होने से ङित् नहीं है, अतः अकार का लोप भी नहीं हुआ- रुणधानि, रुणधाव, रुणधाम। आत्मनेपद में- रुन्धाम्-रुन्द्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम्। रुन्त्स्व, रुन्धाथाम्, रुन्ध्वम्-रुन्द्ध्वम्। रुणधै, रुणधावहै, रुणधामहै।

लङ्-लकार परस्मैपद में- प्रथमपुरुष एकवचन में **अरुनध्+ति** इस स्थिति में **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से अपृक्त तकार का लोप होकर पदान्त में विद्यमान धकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके दकार और उसके स्थान पर **वावसाने** से चर्त्व करके तकार करने पर दो रूप **अरुणत्** और **अरुणद्** बनते हैं। इसी प्रकार सिप् में भी बनते हैं पर यहाँ **दश्च** से रुत्व होकर **अरुणः** भी बनता है।

लङ्-लकार परस्मैपद में- अरुणत्-अरुणद्, अरुन्धाम्-अरुन्द्धाम्, अरुन्धन्। अरुणः-अरुणत्-अरुणद्, अरुन्धम्-अरुन्द्धम्, अरुन्ध-अरुन्द्ध। अरुणधम्, अरुन्ध्व, अरुन्ध्म। **आत्मनेपद में-** अरुन्ध-अरुन्द्ध, अरुन्धाताम्, अरुन्धत। अरुन्धाः-अरुन्द्धाः, अरुन्धाथाम्, अरुन्ध्वम्-अरुन्द्ध्वम्। अरुन्धि, अरुन्ध्वहि, अरुन्ध्महि। **विधिलिङ् परस्मैपद में-** रुन्ध्यात्, रुन्ध्याताम्, रुन्ध्युः। रुन्ध्याः, रुन्ध्यातम्, रुन्ध्यात। रुन्ध्याम्, रुन्ध्याव, रुन्ध्याम। **आत्मनेपद में-** रुन्धीत, रुन्धीयाताम्, रुन्धीरन्। रुन्धीथाः, रुन्धीयाथाम्, रुन्धीध्वम्। रुन्धीय, रुन्धीवहि, रुन्धीमहि। **आशीर्लिङ् परस्मैपद में-** रुध्यात्, रुध्यास्ताम्, रुध्यासुः। रुध्याः, रुध्यास्तम्, रुध्यास्त। रुध्यासम्, रुध्यास्व, रुध्यास्म। **आत्मनेपद में-** रुत्सीष्ट, रुत्सीयास्ताम्, रुत्सीरन्। रुत्सीष्ठाः, रुत्सीयास्थाम्, रुत्सीध्वम्। रुत्सीय, रुत्सीवहि, रुत्सीमहि।

लुङ् परस्मैपद में- **इरितो वा** से च्लि को विकल्प से अङ् आदेश होने के कारण बनते हैं- अरुधत्, अरुधताम्, अरुधन्, अरुधः, अरुधतम्, अरुधत, अरुधम्, अरुधाव, अरुधाम। **अङ्** न होने के पक्ष में **च्लि** के स्थान पर सिच् होकर **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर धकार को चर्त्व करके बनते हैं- अरौत्सीत्, अरौद्धाम्, अरौत्सुः। अरौत्सीः, अरौद्धम्, अरौद्ध। अरौत्सम्, अरौत्स्व, अरौत्स्म। **आत्मनेपद में-** अरुद्ध, अरुत्साताम्, अरुत्सत। अरुद्धाः, अरुत्साथाम्, अरुध्वम्-अरुद्ध्वम्। अरुत्सि, अरुत्स्वहि, अरुत्स्महि।

लृङ् परस्मैपद में- अरोत्स्यत्, अरोत्स्यताम्, अरोत्स्यन्। अरोत्स्यः, अरोत्स्यतम्, अरोत्स्यत। अरोत्स्यम्, अरोत्स्याव, अरोत्स्याम। **आत्मनेपद में-** अरोत्स्यत, अरोत्स्येताम्, अरोत्स्यन्त। अरोत्स्यथाः, अरोत्स्येथाम्, अरोत्स्यध्वम्। अरोत्स्ये, अरोत्स्यावहि, अरोत्स्यामहि।

भिदिर् विदारणे। भिदिर् धातु **तोड़ना, फाड़ना, चीरना** अर्थ में है। इसमें भी **इर्** की इत्संज्ञा होती है, भिद् अवशिष्ट रहता है। इसके रूप भी रुध् की तरह ही बनते हैं। यहाँ पर **झरो झरि सवर्णे** से जहाँ-जहाँ झर् का लोप हो सकता है, वहाँ के लोपपक्ष के रूप दे रहे हैं। लोप न होने के पक्ष के रूप आप अपने आप समझ सकते हैं।

लट् परस्मैपद- भिनत्ति, भिन्तः, भिन्दन्ति। भिनत्सि, भिन्थः, भिन्थ। भिनद्मि, भिन्द्वः, भिन्द्मः। **आत्मनेपद-** भिन्ते, भिन्दाते, भिन्दते। भिन्त्से, भिन्दाथे, भिन्ध्वे। भिन्दे, भिन्द्वहे, भिन्द्महे।

लिट् परस्मैपद- बिभेद, बिभिदतुः, बिभिदुः। बिभेदिथ, बिभिदथुः, बिभिद। बिभेद, बिभिदिव, बिभिदिम। **आत्मनेपद-** बिभिदे, बिभिदाते, बिभिदिरे। बिभिदिषे, बिभिदाथे, बिभिदिध्वे। बिभिदे, बिभिदिवहे, बिभिदिमहे।

लुट् परस्मैपद- भेत्ता, भेत्तारौ, भेत्तार:। भेत्तासि, भेत्तास्थ:, भेत्तास्थ। भेत्तास्मि, भेत्तास्व:, भेत्तास्म:। **आत्मनेपद**-भेत्ता, भेत्तारौ, भेत्तार:। भेत्तासे, भेत्तासाथे, भेत्ताध्वे। भेत्ताहे, भेत्तास्वहे, भेत्तास्महे।

लृट् परस्मैपद- भेत्स्यति, भेत्स्यत:, भेत्स्यन्ति। भेत्स्यसि, भेत्स्यथ:, भेत्स्यथ। भेत्स्यामि, भेत्स्याव:, भेत्स्याम:। **आत्मनेपद**- भेत्स्यते, भेत्स्येते, भेत्स्यन्ते। भेत्स्यसे, भेत्स्येथे, भेत्स्यध्वे। भेत्स्ये, भेत्स्यावहे, भेत्स्यामहे। **लोट् परस्मैपद**- भिनत्तु-भिन्तात्, भिन्ताम्, भिन्दन्तु। **हुझल्भ्यो हेर्धि:**- भिन्धि-भिन्तात्, भिन्तम्, भिन्त। भिनदानि, भिनदाव, भिनदाम। **आत्मनेपद**- भिन्ताम्, भिन्दाताम्, भिन्दताम्। भिन्त्स्व, भिन्दाथाम्, भिन्ध्वम्। भिनदै, भिनदावहै, भिनदामहै। **लङ्परस्मैपद**- अभिनत्-अभिनद्,अभिन्ताम्,अभिन्दन्। अभिन:- अभिनत्-अभिनद्, अभिन्तम्, अभिन्त। अभिनदम्, अभिन्द्व, अभिन्द्म। **आत्मनेपद**- अभिन्द, अभिन्दाताम्, अभिन्दत। अभिन्था:, अभिन्दाथाम्, अभिन्ध्वम्। अभिन्दि, अभिन्द्वहि, अभिन्द्महि। **विधिलिङ् परस्मैपद**- भिन्द्यात्, भिन्द्याताम्, भिन्द्यु:। भिन्द्या:, भिन्द्यातम्, भिन्द्यात। भिन्द्याम्, भिन्द्याव, भिन्द्याम। **आत्मनेपद**- भिन्दीत, भिन्दीयाताम्, भिन्दीरन्। भिन्दीथा:, भिन्दीयाथाम्, भिन्दीध्वम्। भिन्दीय, भिन्दीवहि, भिन्दीमहि। **आशीर्लिङ् परस्मैपद**- भिद्यात्, भिद्यास्ताम्, भिद्यासु:। भिद्या:, भिद्यास्तम्, भिद्यास्त। भिद्यासम्, भिद्यास्व, भिद्यास्म। **आत्मनेपद**- भित्सीष्ट, भित्सीयास्ताम्, भित्सीरन्। भित्सीष्ठा:, भित्सीयास्थाम्, भित्सीध्वम्। भित्सीय, भित्सीवहि, भित्सोमहि। **लुङ्- अङ् के पक्ष में**- अभिदत्, अभिदताम्, अभिदन्, अभिद:, अभिदतम्, अभिदत, अभिदम्, अभिदाव, अभिदाम। **सिच् के पक्ष में**- अभैत्सीत्, अभैत्ताम्, अभैत्सु:। अभैत्सी:, अभैत्तम्, अभैत्त। अभैत्सम्, अभैत्स्व, अभैत्स्म। **आत्मनेपद**- अभित्त, अभित्साताम्, अभित्सत। अभित्था:, अभित्साथाम्, अभिध्वम्। अभित्सि, अभित्स्वहि, अभित्स्महि। **लृङ् परस्मैपद**- अभेत्स्यत्, अभेत्स्यताम्, अभेत्स्यन्। अभेत्स्य:, अभेत्स्यतम्, अभेत्स्यत। अभेत्स्यम्, अभेत्स्याव, अभेत्स्याम। **आत्मनेपद**- अभेत्स्यत, अभेत्स्येताम्, अभेत्स्यन्त। अभेत्स्यथा:, अभेत्स्येथाम्, अभेत्स्यध्वम्। अभेत्स्ये, अभेत्स्यावहि, अभेत्स्यामहि।

छिदिर् द्वैधीकरणे। छिदिर् धातु **दो टुकड़े करने** अर्थ में है। इसमें भी **इर्** की इत्संज्ञा होकर छिद् बचता है और इसके रूप भी भिद् की तरह ही चलते हैं। सभी लकारों के दोनों पदों के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप मात्र दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

छिनत्ति-छिन्ते। लिट् में **छे च** से तुक् आगम और तकार को **स्तो: श्चुना श्चु:** से चुत्व होकर **चिच्छेद-चिच्छिदे** बनते हैं। **छेत्तासि-छेत्तासे। छेत्स्यति-छेत्स्यते। छिनत्तु-छिन्ताम्। अच्छिनत्-अच्छिन्त। छिन्द्यात्-छिन्दीत। छिद्यात्-छित्सीष्ट। अच्छिदत्-अच्छैत्सीत्-अच्छित्त। अच्छेत्स्यत्-अच्छेत्स्यत।**

युजिर् योगे। युजिर् धातु **जोड़ने, मिलाने** आदि अर्थ में है। इसमें भी इर् की इत्संज्ञा होती है, युज् बचता है और इसके रूप भी भिद् की तरह ही चलते हैं। **चो: कु:** से कुत्व होकर जब **अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण:** से परसवर्ण होता है तो ककार के परे रहते अनुस्वार के स्थान पर ङकार आदेश और जकार के परे रहने पर ञकार आदेश होकर **युङ्क्त:, युञ्जन्ति** जैसे रूप बनते हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

लृट् और लृङ् में कुत्व करके जकार के स्थान पर गकार आदेश और **खरि च** से चर्त्व करके गकार के स्थान पर ककार आदेश करना चाहिए। इसके बाद ककार से परे

सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व कर के ककार-षकार के संयोग से क्ष् बनता है जिससे **योक्ष्यति-योक्ष्यते** आदि रूप बनते हैं। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए।

अन्य धातुओं की तरह युज् धातु के एक-एक रूप सिद्ध करने के लिए आप बैठ जायें तो समस्त रूपों की सिद्धि कर सकेंगे। यहाँ पर युज् धातु के सभी लकारों के दोनों पदों के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप मात्र दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

युनक्ति-युङ्क्ते। युयोज-युयुजे। योक्तासि-योक्तासे। योक्ष्यति-योक्ष्यते। युनक्तु-युङ्क्ताम्। अयुनक्-अयुङ्क्त। युञ्ज्यात्-युञ्जीत। युज्यात्-युक्षीष्ट। अयुजत्-अयौक्षीत्-अयुक्त। अयोक्ष्यत्-अयोक्ष्यत।

रिचिर् विरेचने। रिचिर् धातु **विरेचन** अर्थात् **निकालना, खाली करना** अर्थों में है। इर् की इत्संज्ञा के बाद **रिच्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और चकारान्त अनुदात्त होने के कारण अनिट् है फिर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है। इसकी प्रक्रिया युज् धातु की तरह ही होती है। अन्तर यह है कि **रिच्** में रेफ होने के कारण श्नम् के नकार को णत्व होता है।

रिणक्ति-रिङ्क्ते। रिरेच-रिरिचे। रेक्ता, रेक्तासि-रेक्तासे। रेक्ष्यति-रेक्ष्यते। रिणक्तु-रिङ्क्तात्, रिङ्क्ताम्, रिञ्चन्तु। रिङ्क्ताम्, रिञ्चाताम्, रिञ्चताम्। अरिणक्-अरिणग्, अरिङ्क्ताम्, अरिञ्चन्। अरिङ्क्त, अरिञ्चाताम्, अरिञ्चत। रिञ्च्यात्-रिञ्चीत। रिच्यात्-रिक्षीष्ट। अरिचत्-अरैक्षीत्-अरिक्त। अरेक्ष्यत्-अरेक्ष्यत।

विचिर् पृथग्भावे। विचिर् धातु **पृथग्भाव** अर्थात् **अलग करना** अर्थ में है। इर् की इत्संज्ञा के बाद **विच्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और चकारान्त अनुदात्त होने के कारण अनिट् है फिर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य इट् होता है। इसकी प्रक्रिया **रिचिर्** धातु की तरह ही होती है। अन्तर यह है कि **विच्** में रेफ न होने के कारण श्नम् के नकार को णत्व नहीं होता है।

विनक्ति-विङ्क्ते। विवेच-विविचे। वेक्तासि-वेक्तासे। वेक्ष्यति-वेक्ष्यते। विनक्तु-विङ्क्ताम्। अविनक्-अविङ्क्त। विञ्च्यात्-विञ्चीत। विच्यात्-विक्षीष्ट। अविचत्-अवैक्षीत्-अविक्त। अवेक्ष्यत्-अवेक्ष्यत।

क्षुदिर् सम्पेषणे। क्षुदिर् धातु **सम्पेषण** अर्थात् **पीसना, मसलना, चूर्ण करना** आदि अर्थों में है। इर् की इत्संज्ञा के बाद **क्षुद्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और अनुदात्त होने के कारण अनिट् है फिर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है। इसकी प्रक्रिया **छिदिर्** धातु की तरह ही होती है। अन्तर यह है कि **क्षुदिर्** में ष् होने के कारण श्नम् के नकार को णत्व होता है।

क्षुणत्ति-क्षुन्ते। चुक्षोद-चुक्षुदे। क्षोत्ता, क्षोत्तासि-क्षोत्तासे। क्षोत्स्यति-क्षोत्स्यते। क्षुणत्तु-क्षुन्ताम्। अक्षुणत्-अक्षुन्त। क्षुन्द्यात्-क्षुन्दीत। क्षुद्यात्-क्षुत्सीष्ट। अक्षुदत्-अक्षौत्सीत्-अक्षुत्त। अक्षोत्स्यत्-अक्षोत्स्यत।

उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः। उच्छृदिर् धातु **चमकना** और **खेलना** अर्थों में है। आदि उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। छकार के परे उसी उकार को तुक् का आगम हुआ था। उकार के जाने के बाद तुक् वाले चकार की भी स्वतः निवृत्ति हो गई। इसके बाद इर् की इत्संज्ञा होकर **छृद्** बचता है। उदित् का फल **उदितो वा** से **क्त्वा** के परे

इमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६६८. तृणह इम् ७।३।९२।।

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति सार्वधातुके।

तृणेढि। तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। अतृणेट्।।

विकल्प से इट् का आगम करना है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और सेट् है किन्तु सिच् से भिन्न सकारादि प्रत्ययों के परे होनें पर **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से विकल्प से इट् होता है। यहाँ **ऋ** होने के कारण उससे परे **श्नम्** मे नकार को णत्व होता है।

छृणत्ति-छृन्ते। चच्छर्द-चच्छृदे। छर्दितासि-छर्दितासे। छर्दिष्यति-छर्त्स्यति, छर्दिष्यते-छर्त्स्यते। छृणत्तु-छृन्ताम्। अच्छृणत्-अछृन्त। छृन्द्यात्-छृन्दीत। छृद्यात्-छर्दिषीष्ट-छृत्सीष्ट। अच्छृदत्-अच्छर्दीत्-अच्छर्दिष्ट। अच्छर्दिष्यत्-अच्छर्त्स्यत्-अच्छर्दिष्यत-अच्छर्त्स्यत।

उतृदिर् हिंसानादरयोः। उतृदिर् धातु **हिंसा करना** और **अनादर करना** अर्थों में है। आदि उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। इर् की इत्संज्ञा होकर **तृद्** बचता है। उदित् का फल **उदितो वा** से **क्त्वा** के परे विकल्प से इट् का आगम करना है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और सेट् है किन्तु सिच् से भिन्न सकारादि प्रत्ययों के परे होने पर **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से विकल्प से इट् होता है। यहाँ **ऋ** होने के कारण उससे परे **श्नम्** मे नकार को णत्व होता है।

तृणत्ति-तृन्ते। ततर्द-ततृदे। तर्दितासि-तर्दितासे। तर्दिष्यति-तर्त्स्यति, तर्दिष्यते-तर्त्स्यते। तृणत्तु-तृन्ताम्। अतृणत्-अतृन्त। तृन्द्यात्-तृन्दीत। तृद्यात्-तर्दिषीष्ट-तृत्सीष्ट। अतृदत-अतर्दीत्-अतर्दिष्ट। अतर्दिष्यत्-अतर्त्स्यत्- अतर्दिष्यत-अतर्त्स्यत।

क्रम यह है कि पहले परस्मैपदी उसके बाद आत्मनेपदी तब उभयपदी धातुओं का विवचन हो किन्तु **रुधादिभ्यः श्नम्** इस सूत्र को देखते हुए पहले उभयपदी **रुधिर्** का कथन करके अब परस्मैपदी धातुओं का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं।

कृती वेष्टने। कृती धातु **लपेटना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है, **कृत्** शेष रहता है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी है। अनुदात्त नहीं है, अतः सेट् है किन्तु सिच् से भिन्न सकारादि प्रत्ययों के परे होने पर **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से विकल्प से इट् होता है।

कृणत्ति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति-कर्त्स्यति। कृणत्तु। अकृणत्। कृन्त्यात। कृत्यात्। अकर्तीत्। अकर्तिष्यत्-अकर्त्स्यत्।

तृह हिसि हिंसायाम्। तृह और हिसि धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **तृह** में अन्त्य अकार और **हिसि** में अन्त्य इकार की इत्संज्ञा होती है। **हिस्** में इदित् होने के कारण **इदितो नुम् धातोः** से नुमागम होकर **हिंस्** हो जाता है।

६६८- तृणह इम्। तृणहः षष्ठ्यन्तम्, इम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **श्नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति** और **सार्वधातुके** की तथा **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर श्नम् होने के बाद तृह धातु को इम् का आगम होता है।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६६९. श्नान्नलोपः ६।४।२३।।

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात्। हिनस्ति। जिहिंस। हिंसिता।।

....

तृणहः में श्नम् युक्त रूप पठित होने के कारण श्नम् करने के बाद इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, यह सूचित होता है। **इम्** में मकार की इत्संज्ञा होती है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** से अन्त्य अच् के बाद **इ** बैठता है।

तृणेढि। तृह् से लट्, तिप्, श्नम् करने के बाद **तृनह्+ति** बना। **तृणह इम्** से इम् होकर नकारोत्तरवर्ती अकार के बाद बैठा, **तृन+इह+ति** बना। **तृन+इह** में गुण होकर **तृनेह्+ति** बना। ऋकार से परे नकार को **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** वार्तिक से णत्व हुआ। **हो ढः** से हकार को ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** से ति के तकार को धत्व, ढकार के योग में धकार को ष्टुत्व होकर ढकार हो जाने के बाद **तृणेढ्+ढि** बना। पूर्व ढकार का **ढो ढे लोपः** से लोप होकर **तृणेढि** सिद्ध हुआ। तस् के परे रहते **श्नसोरल्लोपः** से नकारोत्तरवर्ती अकार के लोप होने पर **तृन्ह्+तस्** बना। ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढलोप करके नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **तृण्ढः** बन जाता है। **झि** के परे होने पर अकार का लोप, नकार को अनुस्वार करने पर **तृंहन्ति** बनता है। **सिप्** में ढत्व होने के बाद **तृणेढ्+सि** इस स्थिति में **षढोः कः सि** से कत्व, षत्व करके क् और ष् के संयोग में क्ष बनता है, जिससे **तृणेक्षि** सिद्ध हो जाता है। आगे **तृण्ढः, तृण्ढ, तृणेह्मि(तृणेह्मि) तृंह्वः, तृंह्मः** ये रूप बनते हैं। ततर्ह, ततृहतुः, ततृहुः, ततर्हिथ, ततृहथुः, ततृह, ततर्ह, ततृहिव, ततृहिम। **लिट्**- तर्हिता। **लृट्**- तर्हिष्यति। **लोट्**- तृणेढु-तृण्ढात्, तृण्ढाम्, तृंहन्तु, तृण्ढि-तृण्ढात्, तृण्ढम्, तृण्ढ, तृणहानि, तृणहाव, तृणहाम।

लङ् में- **अतृनह्+त्** बनने के बाद **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से त् का लोप, इम् का आगम, गुण, हकार का ढत्व, जश्त्व, णत्व, **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करने पर **अतृणेट्-अतृणेड्** ये दो रूप बनते हैं। अतृणेट्-अतृणेड्, अतृण्ढाम्, अतृंहन्, अतृणेट्-अतृणेड्, अतृण्ढम्, अतृण्ढ, अतृणहम्, अतृह्व, अतृंह्म। आगे के लकारों में- **तृंह्यात्। तृह्यात्। अतर्हीत्। अतर्हिष्यत्** आदि बन रूप बन जाते हैं।

हिसि हिंसायाम्। हिंसार्थक **हिसि** धातु में इकार के लोप होने के बाद **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होकर **हिन्स्** बना हुआ है।

६६९- श्नान्नलोपः। नस्य लोपो नलोपः। श्नात् पञ्चम्यन्तं, नलोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

श्नम् से परे नकार का लोप होता है।

हिनस्ति। हिंसार्थक **हिस्** धातु से नुम्, लट्, तिप् के बाद **हिन्स्+ति** बना है। शप् को बाधकर **रुधादिभ्यः श्नम्** से **श्नम्** हुआ, मित् होने के कारण अन्त्य अच् हि के इकार के बाद बैठा- **हिनन्स्+ति** बना। **श्नम्** वाले न से परे **नुम्** के नकार का **श्नान्नलोपः** से लोप हो गया, **हिनस्+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **हिनस्ति** सिद्ध हुआ। आगे- हिंस्तः, हिंसन्ति, हिनस्सि, हिंस्थः, हिंस्थ, हिनस्मि, हिंस्वः, हिंस्मः। **लिट्**- जिहिंस, जिहिंसतुः, जिहिंसुः। **लुट्**- हिंसिता। **लृट्**- हिंसिष्यति। **लोट्**- हिनस्तु-हिंस्तात्, हिंस्ताम्, हिंसन्तु, हिन्धि-हिंस्तात्, हिंस्तम्, हिंस्त, हिनसानि, हिनसाव, हिनसाम।

दत्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७०. तिप्यनस्तेः ८।२।७३॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः। ससजुषोरुरित्यस्यापवादः। अहिनत्, अहिनद्। अहिंस्ताम्। अहिंसन्॥

वैकल्पिकरुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७१. सिपि धातो रुर्वा ८।२।७४॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद्वा, पक्षे दः।
अहिनः, अहिनत्, अहिनद्। **उन्दी क्लेदने॥१३॥** उनत्ति। उन्तः। उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार। औनत्, औनद्। औन्ताम्। औन्दन्। औनः, औनत्, औनद्। औनदम्। **अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु॥१४॥** अनक्ति। अङ्क्तः। अञ्जन्ति। अङ्क्ता। आनञ्ज। आनञ्जिथ, आनङ्क्थ। अञ्जिता, अङ्क्ता। अङ्ग्धि। अनजानि। आनक्॥

....

६७०-**तिप्यनस्तेः**। न अस्तिः अनस्ति, तस्य अनस्तेः। तिपि सप्तम्यन्तम्, अनस्तेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** का अधिकार आ रहा है। **ससजुषोः रुः** से **सः** की तथा **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से दः की अनुवृत्ति आ रही है।

तिप् परे होने पर पदान्त सकार को दकार आदेश होता है किन्तु अस् धातु के सकार को नहीं होता।

यह सूत्र **ससजुषो रुः** का अपवाद है।

अहिनत्-अहिनद्। लङ् लकार में नुम्, तिप्, अट्, श्नम् करने के बाद नुम् वाले नकार का लोप करके **अहिन+स्त्** बना है। तकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **अहिन+स्** बना। सकार के स्थान पर **तिप्यनस्तेः** से दकार आदेश करके **अहिनद्** बना। दकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **अहिनत्, अहिनद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् **श्नसोरल्लोपः** से अकार का लोप होकर **अहिंस्ताम्, अहिंसन्** ये रूप बनते हैं।

६७१-**सिपि धातो रुर्वा**। सिपि सप्तम्यन्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, रुः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **ससजुषो रुः** से **सः** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार आ रहा है।

सिप् के परे होने पर धातु के पदान्त सकार को विकल्प से रु आदेश होता है।

रुत्व न होने के पक्ष में **झलां जशोऽन्ते** से दकार ही हो जाता है।

अहिनः, अहिनत्, अहिनद्। सिप् में **अहिनस्+स्** बनने के बाद अपृक्त सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होकर **अहिनस्** बना। सकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से दकार आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **सिपि धातो रुर्वा** से वैकल्पिक रुत्व हुआ। उसके बाद रेफ को विसर्ग करके **अहिनः** यह रूप बना। रुत्व वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **झलां जशोऽन्ते** से दकार आदेश होकर वैकल्पिक चर्त्व करने पर तिप् की

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६७२. **अञ्जेः सिचि ७।२।७१।**

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात्। आञ्जीत्।। **तञ्चू संकोचने।।१५।।** तनक्ति। तञ्चिता, तङ्क्ता।। **ओविजी भयचलनयोः।।१६।।** विनक्ति,विङ्क्तः। विज इडिति ङित्वम्। विविजिथ। विजिता। अविनक्। अविजीत्।। **शिष्लृ विशेषणे।।१७।।** शिनष्टि। शिष्टः। शिषन्ति। शिनक्षि। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। हेर्धिः। शिण्ड्ढि। शिनषाणि। अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। अशिषत्। एवं **पिष्लृ संचूर्णने।। १८।। भञ्जो आमर्दने।।१९।।** श्नान्नलोपः। भनक्ति। बभञ्जिथ, बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्ग्धि। अभाङ्क्षीत्।। **भुज पालनाभ्यवहारयोः।।२०।।** भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक्।

....

तरह सिप् में भी **अहिनत्, अहिनद्** ये दो रूप बन गये। इस तरह सिप् में तीन रूप बने। **लङ् के रूप-** अहिनत्-अहिनद्, अहिंस्ताम्, अहिंसन्, अहिनः-अहिनत्-अहिनद्, अहिंस्तम्, अहिंस्त, अहिनसम्, अहिंस्व, अहिंस्म।

विधिलिङ्- हिंस्यात्, हिंस्याताम्, हिंस्युः। **आशीर्लिङ्-** हिंस्यात्, हिंस्यास्ताम्, हिंस्यासुः आदि। **लुङ्-** अहिंसीत्, अहिंसिष्टाम्, अहिंसिषुः आदि। **लृङ्-** अहिंसिष्यत्।

उन्दी क्लेदने। उन्दी धातु **भींगोना, गीला करना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। यह धातु उदात्त है और उदात्तेत् होने से सेट् व परस्मैपदी भी है। लिट् में इजादि और गुरुमान् होने के कारण **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम् होकर कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि होते हैं।

उनत्ति, उन्तः, उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार, उन्दाम्बभूव, उन्दामास। उन्दिता। उन्दिष्यति। उन्दतु। औनत्-औनद्। उन्द्यात्। उद्यात्। औन्दीत्। औन्दिष्यत्।

अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। अञ्जू धातु **विवेचन करना, स्निग्ध करना, चमकना** और **गति** अर्थों में है। जकारोत्तरवर्ती उदात्त ऊकार की इत्संज्ञा होती है, अतः ऊदित् कहलाता है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी और ऊदित् होने से **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वेट् हो जाता है। जकार के पहले के नकार के स्थान पर चुत्व होकर ञकार बना हुआ है। लोप के प्रसंग में नकार मानकर ही उसका **श्नान्नलोपः** से लोप हो जाता है।

लट् के **तिप्** में- **अनक्ति।** तस् में नकार के लोप और **श्नसोरल्लोपः** से अकार के लोप होने पर **अन्ज्+तस्** बना है। जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार और गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार हो जाता है, फिर नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करने पर ङकार हो जाता है। इस तरह **अङ्क्तस्** इस स्थिति में रुत्वविसर्ग होकर **अङ्क्तः** ऐसा रूप बन जाता है। बहुवचन में कुत्व आदि की प्राप्ति नहीं है। अतः **अञ्जन्ति** बनता है। आगे- अनक्षि, अङ्क्थः, अङ्क्थ, अनज्मि, अञ्ज्वः, अञ्ज्मः। **लिट्** में- तिप्, णल्, द्वित्व, **अत आदेः** से दीर्घ एवं **तस्मान्नुड् द्विहलः** से नुट् का आगम होकर **आनञ्ज** बनता है। आगे- **आनञ्जतुः, आनञ्जुः, आनञ्जिथ-आनङ्क्थ, आनञ्जथुः, आनञ्ज, आनञ्ज,**

आनञ्जिव-आनञ्ज्व, आनञ्जिम-आनञ्ज्म बनते हैं। **लुट्-** अञ्जिता-अङ्क्ता। **लृट्-** अञ्जिष्यति-अङ्क्ष्यति। **लोट्-** अनक्तु। **लङ्-** आनक्-आनग्। **विधिलिङ्-** अञ्ज्यात्। **आशीर्लिङ्-** अज्यात्।

६७२- **अञ्जेः सिचि।** अञ्जेः पञ्चम्यन्तं, सिचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

अञ्जू धातु से परे सिच् को नित्य से इट् का आगम होता है।

स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा से विकल्प से प्राप्त इट् को बाध कर यह नित्य से इट् का आगम करता है।

आञ्जीत्। आ+अञ्ज्+स्+ईत् होने के बाद विकल्प से प्राप्त इट् को बाधकर **अञ्जेः सिचि** से नित्य से इट् आगम हुआ- बीच के सकार का **इट ईटि** से लोप होने पर इ+ई में सवर्णदीर्घ करके आ+अ में **आटश्च** से वृद्धि करके **आञ्जीत्** सिद्ध हो जाता है। **आञ्जीत्, आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः** आदि। **लृङ्-** आञ्जिष्यत्, आङ्क्ष्यत्।

तञ्चू संकोचने। तञ्चू धातु **संकोचन** अर्थात् **संकुचित करना** अर्थ में है। यह भी **अञ्जू** की तरह नकारोपध, परस्मैपदी और ऊदित होने के कारण वेट् है। इसकी सारी प्रक्रिया **अञ्जू** की तरह होती है किन्तु जब **खरि च** से चर्त्व की आवश्यकता नहीं होती और **लुङ्** में **अञ्जेः सिचि** नहीं लगता अर्थात् विकल्प से इट् होता है।

लट् में- तनक्ति, तङ्क्तः, तञ्चन्ति, तनक्षि, तङ्क्थः, तङ्क्थ, तनच्मि, तञ्च्वः, तञ्च्मः। **लिट्** में- तिप्, णल्, द्वित्व, **ततञ्च, ततञ्चतुः, ततञ्चुः।** **लुट्-** तञ्चिता-तङ्क्ता। **लृट्-** तञ्चिष्यति-तङ्क्ष्यति। **लोट्-** तनक्तु। **लङ्-** अतनक्-अतनग्। **विधिलिङ्-** तञ्च्यात्। **आशीर्लिङ्-** तच्यात्। **लुङ्** के **इडभावपक्ष** में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि और **इट्पक्ष** में **नेटि** से निषेध होकर **अतञ्चीत्-अताङ्क्षीत्** बनते हैं। **लृङ्-** अतञ्चिष्यत्-अतङ्क्ष्यत्।

ओविजी भयचलनयोः। ओविजी धातु **डरना** और **चलना** अर्थ में है। ओकार और ईकार इत्संज्ञक हैं, **विज्** बचता है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी है, सेट् है। **विज इट्** से इडादि प्रत्ययों को ङिद्वद्भाव होता है। विनक्ति, विङ्क्तः, विञ्जन्ति। विवेज, विविजतुः। विजिता। विजिष्यति। विनक्तु। अविनक्। विञ्ज्यात्। विज्यात्। अविजीत्। अविजिष्यत्।

शिष्लृ विशेषणे। शिष्लृ धातु **विशेषण** अर्थात् **विशेषित करना, विशेष करके बताना** आदि अर्थों में है। उदात्त लृकार की इत्संज्ञा होकर **शिष्** शेष रहता है। परस्मैपदी है किन्तु अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है। लृदित् का प्रयोजन **पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु** की प्रवृत्ति है। अन्त में षकार होने के कारण इसके योग में प्रत्यय के तकार आदि को ष्टुत्व हो जाता है। स्य आदि के परे षकार को **षढोः कः सि** से ककार होकर उसके योग में आगे के सकार को षत्व और ककार तथा षकार के योग में क्षत्व आदि तो होते ही हैं।

शिनष्टि, शिंष्टः, शिंषन्ति, शिनक्षि, शिंष्ठः, शिंष्ठ, शिनष्मि, शिंष्वः, शिंष्मः। शिशेष, शिशिषतुः, शिशिषुः, शिशेषिथ-शिशिष्ठ, शिशिषथुः, शिशिष, शिशेष, शिशिषिव, शिशिषिम। शेष्टा। शेक्ष्यति। शिनष्टु-शिंष्टात्, शिंष्टाम्, शिंषन्तु, शिण्ढि-शिंष्टात्, शिंष्टम्, शिंष्ट, शिनषाणि, शिनषाव, शिनषाम। अशिनट्-अशिनड्। शिंष्यात्। शिष्यात्। लुङ् में लृदित्त्वादङ् होकर- अशिषत्, अशिषताम्, अशिषन् आदि। अशेक्ष्यत्।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

६७३. भुजोऽनवने १।३।६६॥

तङानौ स्तः। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्? महीं भुनक्ति। **ञिइन्धी दीप्तौ॥२१॥** इन्द्धे। इन्धाते। इन्धते। इन्त्से। इन्ध्वे। इन्धाञ्चक्रे। इन्धिता। इन्धाम्। इन्धाताम्। इनधै। ऐन्ध। ऐन्धाताम्। ऐन्धाः। **विद विचारणे॥२२॥** विन्ते। वेत्ता॥

इति रुधादयः॥१८॥

....

पिष्लृ सञ्चूर्णने। पिष्लृ धातु **संचूर्णन** अर्थात् **पीसना** अर्थ में है। उदात्त लृकार की इत्संज्ञा होकर **पिष्** शेष रहता है। परस्मैपदी है किन्तु अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है। लृदित् का प्रयोजन **पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु** की प्रवृत्ति है। अन्त में षकार होने के कारण इसके योग में प्रत्यय के तकार आदि को ष्टुत्व हो जाता है। स्य आदि के परे षकार को **षढोः कः सि** से ककार होकर उसके योग में आगे के सकार को षत्व, ककार तथा षकार के योग में क्षत्व आदि तो होते ही हैं।

पिनष्टि, पिंष्टः, पिंषन्ति, पिनक्षि, पिंष्ठः, पिंष्ठ, पिनष्मि, पिंष्वः, पिंष्मः। पिपेष, पिपिषतुः। पेष्टा। पेक्ष्यति। पिनष्टु-पिंष्टात्, पिंष्टाम्, पिंषन्तु, पिण्ढि-पिंष्टात्, पिंष्टम्, पिंष्ट, पिनषाणि, पिनषाव, पिनषाम। अपिनट्-अपिनड्। पिंष्यात्। पिष्यात्। **लुङ् में लृदित्त्वादङ् होकर**- अपिषत्, अपिषताम्, अपिषन् आदि। **अपेक्ष्यत्।**

भञ्जो आमर्दने। भञ्जो धातु **आमर्दन** अर्थात् **तोड़ना** अर्थ में है। उदात्त ओकार की इत्संज्ञा होने के कारण ओदित् और परस्मैपदी है। ओदित् होने का फल क्त और क्तवतु प्रत्ययों के तकार को **ओदितश्च** से नकारादेश करना है। अनुदात्तों में परिगणित है, अतः अनिट् है। यह धातु मूल रूप में **भन्ज्** है, जकार के योग में श्चुत्व होकर ञकार बना है। अतः **श्नान्नलोपः** से श्नम् के उत्तरवर्ती ञकार बने नकार का लोप हो जाता है।

भनक्ति। भङ्क्तः, भञ्जन्ति, भनक्षि, भङ्क्थः, भङ्क्थ, भनज्मि, भञ्ज्वः, भञ्ज्मः। बभञ्ज, बभञ्जतुः, बभञ्जुः। भङ्क्ता। भङ्क्ष्यति। भनक्तु। अभनक्-अभनग्। भञ्ज्यात्। भज्यात्। अभाङ्क्षीत्। अभङ्क्ष्यत्।

भुज पालनाभ्यवहारयोः। भुज धातु **पालन** और **भक्षण करना** अर्थों में है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **भुज्** शेष रहता है। यह **पालन करना** अर्थ में परस्मैपदी है और **भक्षण करना** अर्थ में अग्रिम सूत्र **भुजोऽनवने** से आत्मनेपदी हो जाता है। अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् भी है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से इट् हो जाता है।

भुनक्ति। भुङ्क्तः, भुञ्जन्ति, भुनक्षि, भुङ्क्थः, भुङ्क्थ, भुनज्मि, भुञ्ज्वः, भुञ्ज्मः। बुभोज, बुभुजतुः, बुभुजुः। भोक्ता। भोक्ष्यति। भुनक्तु। अभुनक्-अभुनग्। भुञ्ज्यात्। भुज्यात्। अभौक्षीत्। अभोक्ष्यत्।

यहाँ तक परस्मैपद धातुओं का वर्णन हुआ। अब आत्मनेपदी धातुओं का

वर्णन करते हैं। भुज धातु पालन अर्थ में परस्मैपदी था, अब भक्षण अर्थ में आत्मनेपद के लिए सूत्र उपस्थापित करते हैं-

६७३- **भुजोऽनवने**। न अवनम् अनवनं, तस्मिन् अनवने। भुजः पञ्चम्यन्तम्, अनवने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

पालन से भिन्न(भक्षण) अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है।

ओदनं भुङ्क्ते। भक्षण अर्थ में आत्मनेपद होकर **भुङ्क्ते** बना किन्तु रक्षण, पालन अर्थ में तो **महीं भुनक्ति** बनता है।

अनवने किम्? महीं भुनक्ति। यदि इस सूत्र में **अनवने** यह पद नहीं रखा जायेगा तो **पालन** और **भक्षण** दोनों अर्थों में आत्मनेपद होने लगेगा। **भक्षण** अर्थ में आत्मनेपद तो अभीष्ट है किन्तु **पालन** अर्थ में आत्मनेपद अभीष्ट नहीं है, उसे रोकने के लिए इस सूत्र में **अनवने** यह पद देकर **अवन** अर्थात् पालन अर्थ में आत्मनेपद होने से रोका गया।

भुङ्क्ते, भुञ्जाते, भुञ्जते। बुभुजे, बुभुजाते, बुभुजिरे। भोक्ता, भोक्तासि। भोक्तासे। भोक्ष्यते। भुङ्क्ताम्, भुञ्जाताम्, भुञ्जताम्, भुङ्क्ष्व। अभुङ्क्त, अभुञ्जाताम्, अभुञ्जत। भुञ्जीत, भुञ्जीयाताम्, भुञ्जीरन्। भुक्षीष्ट, भुक्षीयास्ताम्, भुक्षीरन्। अभुक्त, अभुक्षाताम्, अभुक्षत। अभोक्ष्यत।

ञिइन्धी दीप्तौ। ञिइन्धी धातु **दीप्ति** अर्थात् **चमकना** अर्थ में है। आदि में विद्यमान **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा होती है। अन्त्य ईकार तो इत्संज्ञक है ही। इस तरह **इन्ध्** शेष रह जाता है। अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी और अनुदात्तों की पंक्ति में न होने से सेट् है। **ञीत्** होने से कृत्प्रकरण में **ञीतः क्तः** से वर्तमानकाल में **क्त** प्रत्यय हो जायेगा और **ईदित्** करने का फल वहीं कृदन्त में **श्वीदितो निष्ठायाम्** से इट् का निषेध है। इस धातु में यथासम्भव **लकार** के स्थान पर हुए तकार आदि के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धत्व, **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व और **झरो झरि सवर्णे** से झर् का वैकल्पिक लोप आदि होंगे। **लिट्** में **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम्, उसके बाद कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि भी होंगे।

इन्धे-इन्द्धे, इन्धाते, इन्धते, इन्त्से, इन्धाथे, इन्ध्वे-इन्द्ध्वे, इन्धे, इन्ध्वहे, इन्ध्महे। इन्धाञ्चक्रे, इन्धाम्बभूव, इन्धामास। इन्धिता। इन्धिष्यते। इन्धाम्-इन्द्धाम्, इन्धाताम्, इन्धताम्, इन्त्स्व। ऐन्ध-ऐन्द्ध। इन्धीत। इन्धिषीष्ट। ऐन्धिष्ट। ऐन्धिष्यत।

विद विचारणे। विद धातु **विचारण** अर्थात् **विचार करना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होकर **विद्** शेष बचता है। धातु अनुदात्तों में परिगणित है, अतः अनिट् भी है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है।

विद् धातु को चार गणों में भिन्न-भिन्न अर्थों में पढ़ा गया है। जैसे- अदादि में **विद ज्ञाने**, दिवादि में **विद सत्तायाम्**, तुदादि में **विद्लृ लाभे** और इस गण मे **विद विचारणे**। सबके अलग अलग रूप बनते हैं।

विन्ते-विन्त्ते, विन्दाते, विन्दते, विन्त्से, विन्दाथे, विन्द्ध्वे, विन्दे, विन्द्वहे, विन्द्महे। विविदे, विविदाते, विविदिरे। वेत्ता, वेत्तासे। वेत्स्यते। विन्ताम्। अविन्त। विन्दीत। वित्सीष्ट। अवित्त। अवेत्स्यत।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।

१- अपनी पुस्तिका में इस गण के सभी धातुओं के सारे रूप लिखें। ५०

२- इस गण के सभी बाईस धातुओं के लङ् लकार प्रथम पुरुष के एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्र लगाकर दिखायें। २०

३- श्नम् में शित् करने का तात्पर्य समझाइये। ५

४- इस गण के ओदित् धातुओं में ओदित् का फल बताइये १०

५- **षढोः कः सि** और **ष्टुना ष्टुः** का प्रयोग करके इस गण के किन्हीं पाँच प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये। १०

६- पूर्वप्रकरण से इस प्रकरण की तुलना में एक पेज का लेख लिखिये-५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का रुधादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तनादयः

तनु विस्तारे॥१॥

उ-विधायकं विधिसूत्रम्

६७४. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥

शपोऽपवादः।

तनोति-तनुते। ततान-तेने। तनितासि-तनितासे। तनिष्यति-तनिष्यते। तनोतु-तनुताम्। अतनोत्-अतनुत। तनुयात्-तन्वीत। तन्यात्-तनिषीष्ट। अतानीत्-अतनीत्।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **तनादिप्रकरण** आठवाँ है। तनु धातु आदि में होने के कारण यह **तनादिप्रकरण** कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु, रुधादि में श्नम् होते हैं, उसी प्रकार **तनादि** में शप् को बाधकर **उ** होता है।

तनु विस्तारे। तनु धातु **विस्तार करना, फैलाना** आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है। उकार स्वरित है, उकार की इत्संज्ञा होती है, **तन्** अवशिष्ट रहता है। **स्वरितेत्** होने के कारण **उभयपदी** है। यह **सेट्** अर्थात् **तासि** आदि में **इट्** होने वाला धातु है।

६७४- **तनादिकृञ्भ्य उः।** तनादिकृञ्भ्यः पञ्चम्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर तनादिगणपठित धातुओं से और कृञ् धातु से शप् का बाधक उ प्रत्यय होता है।

उ यह विकरण न तो शित् है और न ही पित्। अतः इसकी सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है किन्तु आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है।

तनोति। तन् से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **तनादिकृञ्भ्य उः** से उ प्रत्यय, **तन्+उ+ति** बना। **ति** सार्वधातुक है ही, अतः उसके परे होने पर प्रत्यय के उकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **तन्+ओ+ति** हुआ, वर्णसम्मेलन होकर **तनोति** बना॥

तिप्, सिप् और **मिप्** ये पित् हैं, इन्हें छोड़कर अन्य अपित् हैं। अपित् प्रत्ययों को **सार्वधातुकमपित्** से ङित् बना दिये जाने के कारण **क्ङिति च** से गुण निषेध हो जाता है, जिससे **तनुतः** आदि रूप बनते हैं। बहुवचन में **तनु+अन्ति** में **इको यणचि** से यण् होकर

वैकल्पिकसिचो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

६७५. तनादिभ्यस्तथासोः २।४।७९।।

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः।

अतत, अतनिष्ट। अतथाः, अतनिष्ठाः। अतनिष्यत्, अतनिष्यत।

षणु दाने।।२।। सनोति, सनुते।।

....

तन्वन्ति बनता है। वस् और मस् में **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** से नु के उकार का विकल्प से लोप होता है। लोट् सिप् में **नु** से परे हि का **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से लोप होता है।

लट् के रूप- परस्मैपद में- **तनोति, तनुतः, तन्वन्ति। तनोषि, तनुथः, तनुथ। तनोमि, तन्वः-तनुवः, तन्मः-तनुमः।** आत्मनेपद में- **तनुते, तन्वाते, तन्वते। तनुषे, तन्वाथे, तनुध्वे। तन्वे, तन्वहे-तनुवहे, तन्महे-तनुमहे।**

लिट् में तन् धातु से तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष करके **ततन्+अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधावृद्धि होकर **ततान्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ **ततान** सिद्ध हुआ। **तस्, झि, थस्, थ, वस्** और **मस्** में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होकर **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से अभ्याससंज्ञक पूर्व **त** का लोप और **तन्** में तकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर और सिप् में **थलि च सेटि** से एत्वाभ्यासलोप होता है। इस प्रकार से रूप बनते हैं- **ततान, तेनतुः, तेनुः। तेनिथ, तेनथुः, तेन। ततान-ततन, तेनिव, तेनिम।** आत्मनेपद में तो सभी प्रत्ययों में एत्वाभ्यासलोप होता ही है- तेने, तेनाते, तेनिरे। तेनिषे, तेनाथे, तेनिध्वे। तेने, तेनिवहे, तेनिमहे।

लुट् परस्मैपद में- तनिता, तनितारौ, तनितारः। तनितासि, तनितास्थः, तनितास्थ। तनितास्मि, तनितास्वः, तनितास्मः। **आत्मनेपद में-** तनिता, तनितारौ, तनितारः। तनितासे, तनितासाथे, तनिताध्वे। तनिताहे, तनितास्वहे, तनितास्महे।

लृट् परस्मैपद में- तनिष्यति, तनिष्यतः, तनिष्यन्ति। तनिष्यसि, तनिष्यथः, तनिष्यथ। तनिष्यामि, तनिष्यावः, तनिष्यामः। **आत्मनेपद में-** तनिष्यते, तनिष्येते, तनिष्यन्ते। तनिष्यसे, तनिष्येथे, तनिष्यध्वे। तनिष्ये, तनिष्यावहे, तनिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- तनोतु-तनुतात्, तनुताम्, तन्वन्तु। तनुहि-तनुतात्, तनुतम्, तनुत। तनवानि, तनवाव, तनवाम। **आत्मनेपद में-** तनुताम्, तन्वाताम्, तन्वताम्। तनुष्व, तन्वाथाम्, तनुध्वम्। तनवै, तनवावहै, तनवामहै।

लङ् परस्मैपद में- अतनोत्, अतनुताम्, अतन्वन्। अतनोः, अतनुतम्, अतनुत। अतनवम्, अतन्व-अतनुव, अतन्म-अतनुम। **आत्मनेपद में-** अतनुत, अतन्वाताम्, अतन्वत। अतनुथाः, अतन्वाथाम्, अतनुध्वम्। अतन्वि, अतन्वहि-अतनुवहि, अतन्महि-अतनुमहि।

विधिलिङ् परस्मैपद में- तनुयात्, तनुयाताम्, तनुयुः। तनुयाः, तनुयातम्, तनुयात। तनुयाम्, तनुयाव, तनुयाम। **आत्मनेपद में-** तन्वीत, तन्वीयाताम्, तन्वीरन्। तन्वीथाः, तन्वीयाथाम्, तन्वीध्वम्। तन्वीय, तन्वीवहि, तन्वीमहि।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में- तन्यात्, तन्यास्ताम्, तन्यासुः। तन्याः, तन्यास्तम्, तन्यास्त। तन्यासम्, तन्यास्व, तन्यास्म। **आत्मनेपद में-** तनिषीष्ट, तनिषीयास्ताम्, तनिषीरन्। तनिषीष्ठाः, तनिषीयास्थाम्, तनिषीध्वम्। तनिषीय, तनिषीवहि, तनिषीमहि।

वैकल्पिकात्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७६. ये विभाषा ६।४।४३।।

जनसनखनामात्त्वं वा यादौ क्ङिति। सायात्, सन्यात्।।

....

लुङ् परस्मैपद में- **अतानीत्, अतानिष्टाम्, अतानिषुः। अतानीः, अतानिष्टम्, अतानिष्ट। अतानिषम्, अतानिष्व, अतानिष्म।**

६७५- **तनादिभ्यस्तथासोः**। तन् आदिर्येषां ते तनादयः, तेभ्यस्तनादिभ्यः। तश्च थाश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तथासौ, तयोस्तथासोः। तनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, तथासोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से **सिचः**, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** और **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः** से **विभाषा** की अनुवृत्ति आती है।

तनादिगणीय धातुओं से परे सिच् का विकल्प से लुक् होता है त और थास् के परे होने पर।

अतत-अतनिष्ट। तन् से लुङ् के आत्मनेपद में त आने के बाद अट्, सिच् होकर **अतन्+स्+त** बना है। सिच् के सकार का **तनादिभ्यस्तथासोः** से वैकल्पिक लुक् होकर **अतन्+त** बना। नकार का **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से लोप होकर **अतत** सिद्ध हुआ। सिच् के लुक् न होने के पक्ष में इट् का आगम, षत्व और ष्टुत्व होकर **अतनिष्ट** बनता है।

आत्मनेपद में- अतत-अतनिष्ट, अतनिषाताम्, अतनिषत। अतथाः-अतनिष्ठाः, अतनिषाथाम्, अतनिध्वम्। अतनिषि, अतनिष्वहि, अतनिष्महि।

लृङ् परस्मैपद में- अतनिष्यत्, अतनिष्यताम्, अतनिष्यन्। अतनिष्यः, अतनिष्यतम्, अतनिष्यत। अतनिष्यम्, अतनिष्याव, अतनिष्याम। **आत्मनेपद में-** अतनिष्यत, अतनिष्येताम्, अतनिष्यन्त। अतनिष्यथाः, अतनिष्येथाम्, अतनिष्यध्वम्। अतनिष्ये, अतनिष्यावहि, अतनिष्यामहि।

षणु दाने। षणु धातु **देना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से आदि **षकार** के स्थान पर **सकार** आदेश होता है और **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से **णकार** भी **नकार** को प्राप्त होता है। **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **सन्** शेष रहता है। इस तरह यह धातु उदित् और **स्वरितेत्** है। **उदित्** का फल **उदितो वा** से क्त्वा को इट् विकल्प से होना है तो **स्वरितेत्** होने से **उभयपदी** हो जाता है। अनुदात्तों में इसकी गणना नहीं है, अतः सेट् है। आशीर्लिङ् और लुङ् लकारों में अग्रिम सूत्रों से आत्त्व हो जाने के कारण भिन्न रूप बनते हैं और शेष लकारों में इसके रूप **तन्** धातु की तरह ही होते हैं।

सन् से लट्, तिप्, उ करके **सन्+उ+ति** बना है। गुण करके वर्णसम्मेलन करने पर **सनोति** बन जाता है। आत्मनेपद में गुण नहीं होता। अतः **सनुते** बनता है। अन्य लकारों के रूप भी बना लें और विशेष रूप के लिए अग्रिम सूत्रों को समझें।

६७६- **ये विभाषा**। ये सप्तम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तम्। **जनसनखनां सञ्झलोः** से **जनसनखनाम्** तथा **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से **आत्** और **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

जन्, सन् और खन् धातुओं के नकार को विकल्प से आकार आदेश होता है यकारादि कित्, ङित् प्रत्ययों के परे रहने पर।

नित्येनात्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७७. जनसनखनां सञ्झलोः ६।४।४२॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति॥

असात, असनिष्ट। असाथाः, असनिष्ठाः। **क्षणु हिंसायाम्॥३॥** क्षणोति, क्षणुते। **ह्म्यन्तेति न वृद्धिः।** अक्षणीत्, अक्षत, अक्षणिष्ट। अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः। **क्षिणु च॥४॥** उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। क्षेणोति, क्षिणोति। क्षेणिता। अक्षेणीत्, अक्षित, अक्षेणिष्ट।

तृणु अदने॥५॥ तृणोति, तर्णोति, तृणुते, तर्णुते।

डुकृञ् करणे॥६॥ करोति॥

आत्व के लिए अग्रिम सूत्र **जनसनखनां सञ्झलोः** भी है किन्तु वह सन् और झलादि कित्, ङित् के परे नित्य से करता है और यह यकारादि कित् ङित् के परे विकल्प से करता है। यही अन्तर है इन दोनों सूत्रों में।

आशीर्लिङ् में यासुट् होने के बाद **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से सलोप करके **सन्+या+त्** बना है। इसमें यकारादि प्रत्यय मिलता है। अतः नकार के स्थान पर विकल्प से आत्व होकर **स+आ+यात्** बना। दीर्घ आदि करने पर **सायात्** बना। आत्त्व न होने के पक्ष में **सन्यात्** ही रहता है। आत्मनेपद में **सनिषीष्ट** बनता है।

लुङ् के परस्मैपद में इट् होने के कारण झलादि नहीं मिलता, इस लिए आत्व नहीं हुआ। **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि होकर **अतानीत्-अतनीत्** ये दो रूप बनते हैं किन्तु **आत्मनेपद** में अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

६७७- **जनसनखनां सञ्झलोः**। जनश्च सनश्च खन् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो जनसनखनः, तेषां जनसनखनाम्। सन् च झल् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सञ्झलौ, तयोः। जनसनखनां षष्ट्यन्तं, सञ्झलोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से **आत्** और **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

जन्, सन् और खन् धातुओं के नकार को आकार आदेश होता है सन् या झलादि कित्, ङित् प्रत्ययों के परे रहने पर।

यह सूत्र **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** का बाधक है।

लुङ् के आत्मनेपद में **असन्+स्+त** बनने के बाद **सिच्** के सकार का **तनादिभ्यस्तथासोः** से वैकल्पिक लोप होकर **असन्+त** बना है। झलादि ङित् है **त** क्योंकि **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् हुआ है। अतः **जनसनखनां सञ्झलोः** से नकार को आत्व होकर सवर्णदीर्घ हुआ- **असात** बना। सकार के लोप न होने के पक्ष में **इट्** का आगम होता है। अतः **असन्+इस्+त** बनने के बाद षत्व, ष्टुत्व करके **असनिष्ट** बन जाता है। यही प्रक्रिया **थल्** में भी अपनायी जाती है, जिससे **असाथाः, असनिष्ठाः** ये दो रूप बन जाते हैं।

षणु के रूप- लट्- सनोति, सनुतः, सन्वन्ति। सनुते, सन्वाते, सन्वते इत्यादि।
लिट्- ससान, सेनतुः, सेनुः। सेने, सेनाते, सेनिरे इत्यादि।
लुट्- सनिता, सनितारौ, सनितारः। सनितासे। सनितासाथे, सनिताध्वे इत्यादि।
लृट्- सनिष्यति, सनिष्यते। **लुट्-** सनोतु-सनुतात्, सनुताम्, सन्वन्तु। सनुताम्, सन्वाताम्।
लङ्- असनोत्, असनुताम्, असन्वन्। असनुत, असन्वाताम्, असन्वत।
विधिलिङ्- सनुयात्, सनुयाताम्, सनुयुः। सन्वीत, सन्वीयाताम्, सन्वीरन्।
आशीर्लिङ्- सायात्, सायास्ताम्, सायासुः। सन्यात्, सन्यास्ताम्, सन्यासुः। सनिषीष्ट, सनिषीयास्ताम्, सनिषीरन् इत्यादि।
लुङ्- परस्मैपद के वृद्धिपक्ष में- असानीत्, असानिष्टाम्, असानिषुः आदि। **वृद्धि न होने के पक्ष में-** असनीत्, असनिष्टाम्, असनिषुः इत्यादि। **आत्मनेपद में-** असात-असनिष्ट, असनिषाताम्, असनिषत। असाथाः-असनिष्ठाः, असनिषाथाम्, असनिध्वम्। असनिषि, असनिष्वहि, असनिष्महि।
लृङ्- असनिष्यत्, असनिष्यत इत्यादि।

क्षणु हिंसायाम्। क्षणु धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **क्षण्** शेष रहता है। अतः यह धातु उदित् और **स्वरितेत्** है। **उदित्** का फल **उदितो वा** से क्त्वा को इट् विकल्प से होना है तो **स्वरितेत्** होने का फल **उभयपदी** हांना है। अनुदात्तों में इसकी गणना नहीं है, अतः सेट् है। लुङ् लकार में **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** से वृद्धि निषिद्ध हो जाती है। शेष लकारों में इसके रूप **तन्** धातु की तरह ही होते हैं।
क्षणु के रूप- लट्- क्षणोति, क्षणुतः, क्षण्वन्ति। क्षणुते, क्षण्वाते, क्षण्वते इत्यादि।
लिट्- चक्षाण, चक्षणतुः, चक्षणुः। चक्षणे, चक्षणाते, चक्षणिरे इत्यादि।
लुट्- क्षणिता, क्षणितारौ, क्षणितारः। क्षणितासि। क्षणितासे, क्षणितासाथे, क्षणिताध्वे इत्यादि।
लृट्- क्षणिष्यति, क्षणिष्यते। **लोट्-** क्षणोतु-क्षणुतात्, क्षणुताम्, क्षण्वन्तु। क्षणुताम्, क्षण्वाताम्।
लङ्- अक्षणोत्, अक्षणुताम्, अक्षण्वन्। अक्षणुत, अक्षण्वाताम्, अक्षण्वत।
विधिलिङ्- क्षणुयात्, क्षणुयाताम्, क्षणुयुः। क्षण्वीत, क्षण्वीयाताम्, क्षण्वीरन्।
आशीर्लिङ्- क्षण्यात्, क्षण्यास्ताम्, क्षण्यासुः। क्षणिषीष्ट, क्षणिषीयास्ताम्, क्षणिषीरन् इत्यादि।
लुङ्-अक्षणीत्, अक्षणिष्टाम्, अक्षणिषुः इत्यादि। **आत्मनेपद में-** अक्षत-अक्षणिष्ट।
लृङ्- अक्षणिष्यत्, अक्षणिष्यत इत्यादि।

क्षिणु च। क्षिणु धातु भी **हिंसा करना** अर्थ में ही है। **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **क्षिण्** शेष रहता है। यह धातु **क्षण्** की तरह ही है किन्तु **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** की प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि उक्त सूत्र में पढ़ी गई धातुओं में **क्षिण्** धातु नहीं आती।

उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। उ-प्रत्यय के परे होने पर **पुगन्तलघूपधस्य च** से होने वाला लघूपधगुण विकल्प से होता है, यह कथन कौमुदीकार का है। कौमुदीकार का अभिप्राय यह है **संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः** अर्थात् जिस विधि में संज्ञा निमित्त हो, वह विधि अनित्य होती है। इस परिभाषा के अनुसार **पुगन्तलघूपधस्य च** से होने वाली गुणविधि उपधासंज्ञा-निमित्तक होने से अनित्य है। अनित्य का मतलब है- कभी होना और कभी न होना। इसीलिए इसके **क्षेणोति, क्षेणुतः** आदि गुण वाले और **क्षिणोति, क्षिणुतः** आदि गुणाभाव वाले रूप बनते हैं।
क्षणु के रूप- लट्- क्षेणोति, क्षेणुतः, क्षेण्वन्ति। क्षिणोति, क्षिणुतः क्षिण्वन्ति। क्षिणुते, क्षिण्वाते, क्षिण्वते।

उकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६७८. अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उः स्यात् सार्वधातुके क्ङिति। कुरुतः।

....

लिट्- चिक्षेण, चिक्षिणतुः, चिक्षिणुः। चिक्षिणे, चिक्षिणाते, चिक्षिणिरे इत्यादि।
लुट्- क्षेणिता, क्षेणितारौ, क्षेणितारः। क्षेणितासि, क्षेणितास्थः। क्षेणितासे, क्षेणितासाथे, क्षेणिताध्वे।
लृट्- क्षेणिष्यति, क्षेणिष्यते। **लुट्**- क्षेणोतु-क्षेणुतात्, क्षेणुताम्, क्षेण्वन्तु। क्षिणोतु-क्षिणुतात्, क्षिणुताम्, क्षिण्वन्तु। क्षेणुताम्, क्षेण्वाताम्, क्षेण्वताम्। क्षिणुताम्, क्षिण्वाताम्, क्षिण्वताम्।
लङ्- अक्षेणोत्, अक्षेणुताम्, अक्षेण्वन्। अक्षिणोत्, अक्षिणुताम्, अक्षिण्वन्। अक्षेणुत, अक्षेण्वाताम्, अक्षेण्वत। अक्षिणुत, अक्षिण्वाताम्, अक्षिण्वत। **विधिलिङ्**- क्षेणुयात्, क्षेणुयाताम्, क्षेणुयुः। क्षिणुयात्, क्षिणुयाताम्, क्षिणुयुः। क्षेण्वीत, क्षेण्वीयाताम्, क्षेण्वीरन्। क्षिण्वीत, क्षिण्वीयाताम्, क्षिण्वीरन् इत्यादि। **आशीर्लिङ्**- क्षिण्यात्, क्षिण्यास्ताम्, क्षिण्यासुः। क्षिणिषीष्ट, क्षिणिषीयास्ताम्, क्षिणिषीरन्। **लुङ्**-अक्षेणीत्, अक्षेणिष्टाम्, अक्षेणिषुः इत्यादि। **आत्मनेपद में**- अक्षित-अक्षेणिष्ट।
लृङ्- अक्षेणिष्यत्, अक्षेणिष्यत इत्यादि।

तृणु अदने। तृणु धातु **खाना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा करके **तृण्** बचता है। यह उदित्, उभयपदी और सेट् है। उ-प्रत्यय के परे रहने पर विकल्प से लघूपधगुण हो जाता है।
तृणु के रूप- लट्- तर्णोति-तृणोति। तर्णुते-तृणुते।
लिट्- ततर्ण, ततृणतुः, ततृणुः। ततृणे, ततृणाते, ततृणिरे।
लुट्- तर्णिता, तर्णितासि-तर्णितासे। **लृट्**- तर्णिष्यति, तर्णिष्यते।
लुट्- तर्णोतु-तृणोतु। तर्णुताम्-तृणुताम्। **लङ्**- अतर्णोत्, अतृणोत्। अतर्णुत-अतृणुत।
विधिलिङ्- तर्णुयात्-तृणुयात्। तर्ण्वीत, तृण्वीत। **आशीर्लिङ्**- तृण्यात्-तर्णिषीष्ट।
लुङ्- अतर्णीत्, अतर्णिष्टाम्, अतर्णिषुः। अतृत-अतर्णिष्ट, अतर्णिषाताम्, अतर्णिषत।
लृङ्- अतर्णिष्यत्, अतर्णिष्यत।

डुकृञ् करणे। डुकृञ् धातु का अर्थ है- **करना।** इसमें डु की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, **कृ** मात्र बचता है। **ड्वित्** होने का फल **ड्वितः क्त्रिः** से **क्त्रि** आदि प्रत्ययों का विधान होना है। उसके बाद **क्त्रेर्मम् नित्यम्** से मप् प्रत्यय होकर **पक्त्रिमम्** आदि की सिद्धि होती है। ञित् होने के कारण यह धातु **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी बन जाता है। अनिट् है।

करोति। कृ-धातु से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर उ-प्रत्यय, **कृ+उ+ति** बना। उ आर्धधातुक है, उसके परे रहते **कृ** के **ऋकार** के स्थान पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपर-सहित अर्-गुण हुआ- **कर्+उ+ति** बना। पुनः ति सार्वधातुक के परे रहते इसी सूत्र से **उ** को भी **ओ-गुण** हुआ, **कर्+ओ+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **करोति** सिद्ध हुआ।
६७८- **अत उत्सार्वधातुके।** अतः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **प्रत्ययात्, नित्यं करोतेः** से **करोतेः** तथा **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक कित् या ङित् के परे होने पर उप्रत्ययान्त कृ धातु के अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

उपधादीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

६७९. न भकुर्छुराम् ८।२।७९।।

भस्य कुर्छुरोरुपधाया न दीर्घः। कुर्वन्ति।

उकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६८०. नित्यं करोतेः ६।४।१०८।।

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः।

कुर्वः। कुर्मः। कुरुते। चकार, चक्रे। कर्तासि, कर्तासे। करिष्यति, करिष्यते। करोतु। कुरुताम्। अकरोत्, अकुरुत।

तिप्, सिप् और मिप् को छोड़कर अन्यत्र **कृ** को गुण होकर अकार और रपर होकर **अर्** हो जाने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

कुरुतः। कृ-धातु से लट्, तस्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर उ-प्रत्यय, **कृ+उ+तस्** बना। उ आर्धधातुक है, उसके परे रहते कृ के ऋकार के स्थान पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपर-सहित अर्-गुण हुआ- **कर्+उ+तस्** बना। तस् यह **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होने के कारण **सार्वधातुक** होते हुए भी इसके परे रहते **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **उ** को गुण नहीं हुआ, **कर्+उ+तस्** ही रहा। **अत उत्सार्वधातुके** से **कर्** में ककारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **उकार** आदेश हुआ-**कुर्+उ+तस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग करके **कुरुतः** सिद्ध हुआ।

६७९- **न भकुर्छुराम्**। भञ्च कुर्च छुर्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भकुर्छुरः, तेषां भकुर्छुराम्। न अव्ययपदं, भकुर्छुराम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से **उपधायाः** और **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

भसंज्ञक एवं कुर् और छुर् के उपधा को दीर्घ आदेश नहीं होता है।

हलि च से प्राप्त दीर्घ का यह निषेधविधायक सूत्र है।

कुर्वन्ति। लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन में **झि** के **झकार** को **अन्त्** आदेश, गुण, अकार को उकार आदेश तथा प्रत्यय वाले उकार के स्थान पर **इको यणचि** से यण् (वकार)करके **कुर्+व्+अन्ति** बना। **हलि च** से उपधा को दीर्घ प्राप्त था, **न भकुर्छुराम्** से निषेध हो गया। वर्णसम्मेलन होकर **कुर्वन्ति** सिद्ध हुआ। आगे **करोषि, कुरुथः, कुरुथ, करोमि** बनाइये।

६८०- **नित्यं करोतेः**। नित्यं प्रथमान्तं, करोतेः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **प्रत्ययस्य** और **उतः** की विभक्तिविपरिणाम करके तथा **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** से **लोपः** और **म्वोः** की अनुवृत्ति आती है।

मकार और वकार के परे होने पर कृ-धातु से परे प्रत्यय के उकार का नित्य से लोप होता है।

लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः से विकल्प से प्राप्त उकारलोप को बाधकर यह सूत्र नित्य से करता है।

कुर्वः, कुर्मः। कुर्+उ+वस्, कुर्+उ+मस् में वस् और मस् के वकार और मकार को आधार मानकर **नित्यं करोतेः** से उकार का लोप हुआ। **कुर्+वस्, कुर्+मस्** बना,

उलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६८९. ये च ६।४।१०९॥

कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये परे। कुर्यात्-कुर्वीत। क्रियात्, कृषीष्ट। अकार्षीत्, अकृत। अकरिष्यत्, अकरिष्यत।

....

वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग करने पर **कुर्वः** और **कुर्मः** सिद्ध हो गये। इस तरह कृधातु के लट् लकार परस्मैपद में रूप बने- करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति। करोषि, कुरुथः, कुरुथ। करोमि, कुर्वः, कुर्मः। **आत्मनेपद में**- कुरुते, यण् करके कुर्वाते, कुर्वते। कुरुषे, कुर्वाथे, कुरुध्वे। कुर्वे, कुर्वहे, कुर्महे।

चकार। आपने **गोपायाञ्चकार** और **एधाञ्चक्रे** ये रूप उन प्रकरणों में बनाये थे न? उनकी प्रक्रिया में कृ और लिट् की प्रक्रिया का स्मरण करें। कृ से लिट्, तिप्, णल्, अ करके **कृ+अ** बना। द्वित्व, **कृ+कृ अ**। उरत्, रपर, **कर्+कृ+अ,** हलादिशेष, **कुहोश्चुः** से चुत्व, **चकृ+अ, अचो ञ्णिति** से रपर-सहित वृद्धि, **चकार्+अ**, वर्णसम्मेलन- **चकार**। आत्मनेपद में णित् न होने के कारण वृद्धि नहीं होती। अतः **चकृ+ए** में **इको यणचि** से यण् करके **चक्रे** बनता है। इस प्रकार से कृ-धातु के लिट् में रूप बने- **परस्मैपद में**- चकार, चक्रतुः, चक्रुः। चकर्थ, चक्रथुः, चक्र। चकार-चकर, चकृव, चकृम। **आत्मनेपद में**- चक्रे, चक्राते, चक्रिरे। चकृषे, चक्राथे, चकृढ्वे। चक्रे, चकृवहे, चकृमहे।

लुट् लकार के परस्मैपद में- कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तासि, कर्तास्थः, कर्तास्थ। कर्तास्मि, कर्तास्वः, कर्तास्मः। **आत्मनेपद में**- कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तासे, कर्तासाथे, कर्ताध्वे। कर्ताहे, कर्तास्वहे, कर्तास्महे।

करिष्यति। कृ धातु से लृट्, ति, स्य करके **ऋद्धनोः स्ये** से **स्य** को **इट्** आगम हुआ, टित् होने के कारण **स्य** के आदि में बैठा, **कृ+इ+स्यति** बना। **स्य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके कृ के ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपरसहित गुण करके **कर्+इ+स्यति** बना। इकार से परे सकार को षत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **करिष्यति** यह रूप बनता है।

लृट् लकार के परस्मैपद में- करिष्यति, करिष्यतः, करिष्यन्ति। करिष्यसि, करिष्यथः, करिष्यथ। करिष्यामि, करिष्यावः, करिष्यामः। **आत्मनेपद में**- करिष्यते, करिष्येते, करिष्यन्ते। करिष्यसे, करिष्येथे, करिष्यध्वे। करिष्ये, करिष्यावहे, करिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- करोतु-कुरुतात्, कुरुताम्, कुर्वन्तु। कुरु-कुरुतात्, कुरुतम्, कुरुत। करवाणि, करवाव, करवाम। **आत्मनेपद में**- कुरुताम्, कुर्वाताम्, कुर्वताम्। कुरुष्व, कुर्वाथाम्, कुरुध्वम्। करवै, करवावहै, करवामहै।

लङ् परस्मैपद में- अकरोत्, अकुरुताम्, अकुर्वन्। अकरोः, अकुरुतम्, अकुरुत। अकरवम्, अकुर्व, अकुर्म। **आत्मनेपद में**- अकुरुत, अकुर्वाताम्, अकुर्वत। अकुरुथाः, अकुर्वाथाम्, अकुरुध्वम्। अकुर्वि, अकुर्वहि, अकुर्महि।

६८९- **ये च**। ये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नित्यं करोतेः** से **करोतेः, उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **उतः** और **प्रत्ययात्** का विभक्तिविपरिणाम करके तथा **लोपश्चास्यान्यतरस्याम्म्वोः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रद्वयम्

६८२. सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७॥

६८३. समवाये च ६।१।१३८॥

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद् भूषणे संघाते चार्थे।

संस्करोति। अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति। सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्। संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात्।

....

यकारादि प्रत्यय के परे होने पर कृ-धातु से परे प्रत्यय के उकार का लोप होता है।

कुर्यात्। कृ-धातु से विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, गुण, उत्व आदि करके **कुर्+उ+यास्+त्** बना। धातु से परे उकार का **ये च** से लोप हुआ, सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ- **कुर्यात्**। विधिलिङ् परस्मैपद के रूप- **कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः। कुर्याः, कुर्यातम्, कुर्यात। कुर्याम्, कुर्याव, कुर्याम**। आत्मनेपद में सीयुट् होकर सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप होता है, यकारादि प्रत्यय के अभाव में **ये च** नहीं लगता, यण्, वर्णसम्मेलन करके बनते हैं- कुर्वीत, कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन्। कुर्वीथाः, कुर्वीयाथाम्, कुर्वीढ्वम्। कुर्वीय, कुर्वीवहि, कुर्वीमहि।

क्रियात्। कृ-धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, तिप्, यासुट् करके **कृ+यास्+त्** बना है। यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे है यास्, इसलिए **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से कृ के ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **क्+रि+यास्+त्** बना। सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ, **क्रियात्**।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में- क्रियात्, क्रियास्ताम्, क्रियासुः। क्रियाः, क्रियास्तम्, क्रियास्त। क्रियासम्, क्रियास्व, क्रियास्म। **आत्मनेपद में**- कृषीष्ट, कृषीयास्ताम्, कृषीरन्। कृषीष्ठाः, कृषीयास्थाम्, कृषीढ्वम्। कृषीय, कृषीवहि, कृषीमहि।

लुङ् में तिप्, अट् आगम, च्लि, सिच्, अपृक्तहल् को ईट् आगम करके **अकृ+स्+ईत्** बना। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से कृ के ऋकार की वृद्धि करके **अकार्+स्+ईत्** बना, सकार को षत्व और वर्णसम्मेलन करके **अकार्षीत्** बना। **अकार्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकार्षुः। अकार्षीः, अकार्ष्टम्, अकार्ष्ट। अकार्षम्, अकार्ष्व, अकार्ष्म।**

अकृत। कृ धातु से लुङ्-लकार के आत्मनेपद में त, अट् आगम, च्लि, सिच् करके **अकृ+स्+त** बना। झल् के परे होने पर सकार का **ह्रस्वादङ्गात्** से लोप हुआ- **अकृत**। झल् परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ- **अकृषाताम्** बना। **अकृत, अकृषाताम्, अकृषत। अकृथाः, अकृषाथाम्, अकृढ्वम्। अकृषि, अकृष्वहि, अकृष्महि।**

लृङ्, परस्मैपद में- **अकरिष्यत्, अकरिष्यताम्, अकरिष्यन्। अकरिष्यः, अकरिष्यतम्, अकरिष्यत। अकरिष्यम्, अकरिष्याव, अकरिष्याम**। आत्मनेपद में- **अकरिष्यत, अकरिष्येताम्, अकरिष्यन्त। अकरिष्यथाः, अकरिष्येथाम्, अकरिष्यध्वम्। अकरिष्ये, अकरिष्यावहि, अकरिष्यामहि।**

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६८४. उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६।१।१३९॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं विकारः। वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता कन्या। उपस्कृता ब्राह्मणाः। एधो दकस्योपस्कुरुते। उपस्कृतं भुङ्क्ते। उपस्कृतं ब्रूते। **वनु याचने॥७॥** वनुते। ववने। **मनु अवबोधने॥८॥** मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत। मनिषीष्ट। अमत, अमनिष्ट। अमनिष्यत॥

इति तनादिप्रकरणम्॥१९॥

....

६८२- **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे।** सम् च परिश्च सम्परी, ताभ्यां सम्परिभ्याम्। सम्परिभ्यां पञ्चम्यन्तं, करोतौ सप्तम्यन्तं, भूषणे सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

६८३- **समवाये च।** समवाये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। कौमुदीकार ने यहाँ पर दोनों सूत्रों को सम्मिलित कर अर्थ किया है। यहाँ पर **सुट् कात्पूर्वः** इस सूत्र का अधि कार आता है।

यदि सजाना या समूह अर्थ हो तो सम् और परि उपसर्ग से परे कृञ् धातु के ककार से पहले ही सुट् आगम होता है।

सुट् में टकार और उकार की इत्संज्ञा होती है।

संस्करोति। सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से **संस्करोति** रूप बनता है। **करोति** तो आप बना ही चुके हैं। सम् और करोति के बीच में अर्थात् ककार से पहले **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे** से सुट् का आगम, अनुबन्धलोप करके **सम्+स्+करोति** बना। मकार के स्थान पर अनुस्वार करके वर्णसम्मेलन करने पर **संस्करोति** रूप बना। **संस्करोति**=संस्कार करता है। **परिष्करोति** भी बनाइये। यहाँ पर सकार को षत्व होता है। सुट् होने से **सम्+कृ** से **संस्कृत** भी बनता है।

संस्कुर्वन्ति। सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से लट्, प्रथमपुरुष बहुवचन में **संस्कुर्वन्ति** रूप बनता है। **कुर्वन्ति** तो आप बना ही चुके हैं। सम् और कुर्वन्ति के बीच में अर्थात् ककार से पहले **समवाये च** से सुट् का आगम, अनुबन्धलोप करके **सम्+स्+कुर्वन्ति** बना। मकार के स्थान पर अनुस्वार करके वर्णसम्मेलन करने पर **संस्कुर्वन्ति** रूप बना। इसका अर्थ हुआ **संघीभूत होते हैं या एकत्र होते हैं।**

सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्। संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात्। सम्-पूर्वक **कृ** धातु से कहीं-कहीं संस्कारभिन्न, भूषणभिन्न अर्थ में भी सुट् होता है, इसका प्रमाण है पाणिनि जी का सूत्र **संस्कृतं भक्षाः।** यह सूत्र भक्ष्यविषयों को एक से दूसरे के मिलाने, सानने के अर्थ में प्रत्यय का विधान करता है। वहाँ पर भक्ष्य अर्थ में **संस्कृतम्** का प्रयोग हुआ है अर्थात् भक्ष्य वस्तुओं के सम्बन्ध में **सुट्** करके **संस्कृत** शब्द का प्रयोग किया गया है।

६८४- **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च।** प्रतियत्नश्च वैकृतश्च वाक्याध्याहारश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहाराः, तेषु। उपात् पञ्चम्यन्तं, प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं त्रिपदं सूत्रम्। **सम्परिभ्यां करोतौ**

भूषणे से **करोतौ** और **भूषणे** की **समवाये च** से **समवाये** की अनुवृत्ति तथा **सुट् कात्पूर्वः** का अधिकार है।

उप उपसर्ग से परे कृ धातु को सुट् का आगम होता है, यदि प्रतियत्न, वैकृत और वाक्याध्याहार गम्यमान हो तो।

सूत्र में **च** पढ़ा गया है, अतः पूर्व के सूत्रों से **भूषणे, समवाये** का अनुवर्तन किया गया है। **प्रतियत्नो गुणाधानम्।** किसी वस्तु में नये गुणों का आधान अर्थात् उनको उत्पन्न करना **प्रतियत्न** है। **विकृतमेव विकारः।** विकार को ही **वैकृत** कहा गया है। **वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्।** आकांक्षित वाक्य के एकदेश अर्थात् पदों के अध्याहार को **वाक्याध्याहार** कहा जाता है। ये तीनों और भूषण तथा समवाय अर्थ में भी **उप** इस उपसर्ग परे **कृ** धातु को सुट् आगम का विधान किया गया।

प्रतियत्न का उदाहरण- **एधो दकस्योपस्कुरुते। एधः**=लकड़ी, **दकस्य**=जल को **उपस्कुरुते**=उपस्कृत अर्थात् गुणयुक्त करती है। आयुर्वेद में विभिन्न लकड़ियों का गुण जल में उतारने का प्रयोग मिलता है। इस तरह यहाँ पर प्रतियत्न अर्थात् गुणाधान अर्थ बन रहा है। अतः **उप+कुरुते** में **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से **सुट्** होकर **उपस्कुरुते** बन गया। **कृ** धातु यद्यपि उभयपदी है तथापि **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः** से **प्रतियत्न** अर्थ में केवल आत्मनेपद ही हुआ है।

वैकृत का उदाहरण- **उपस्कृतं भुङ्क्ते।** विकृत ढंग से खाता है। **उप+कृतम्** में **वैकृत** अर्थ के आधार पर **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से **सुट्** आगम होकर **उपस्कृतम्** बना है।

वाक्याध्याहार का उदाहरण- **उपस्कृतं ब्रूते।** वाक्यगत पदों का अध्याहार करते हुए बोलता है। यहाँ पर भी **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से सुट् आगम हुआ है।

भूषण अर्थात् **सजाना** अर्थ का उदाहरण- **उपस्कृता कन्या।** सजी हुई कन्या। यहाँ पर भी **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से सुट् का आगम हुआ है।

समवाय अर्थात् **इकट्ठा होना** अर्थ का उदाहरण- **उपस्कृता ब्राह्मणाः।** इकठ्ठे हुए ब्राह्मण। **धातूनामनेकार्थाः** अथवा **शब्दानामनेकार्थाः** अर्थात् शब्दों के अनेकार्थ होते हैं, इस नियम के अनुसार **उपस्कृत** एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

यहाँ तक उभयपदी धातुओं का विवेचन करके अब आत्मनेपदी धातुओं का विवेचन करते हैं।

वनु याचने। वनु धातु **याचने** अर्थात् **मांगने** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा करके **वन्** बचता है। यह उदित् होते हुए स्वरितेत् है, अतः आत्मनेपदी है और अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है। **तन्** धातु के आत्मनेपद के रूपों की तरह इसके रूप होते हैं किन्तु **लिट्** में **न शसददवादिगुणानाम्** से निषेध हो जाने के कारण एत्वाभ्यासलोप नहीं होता है।

वनु के रूप- लट्- वनुते, वन्वाते, वन्वते। **लिट्**- ववने, ववनाते, ववनिरे।
लुट्- वनिता, वनितारौ, वनितारः, वनितासे। **लृट्**- वनिष्यते, वनिष्येते, वनिष्यन्ते।
लुट्- वनुताम्, वन्वाताम्, वन्वताम्। **लङ्**- अवनुत, अवन्वाताम्, अवन्वत।
विधिलिङ्- वन्वीत, वन्वीयाताम्, वन्वीरन्। **आशीर्लिङ्**- वनिषीष्ट, वनिषीयास्ताम्, वनिषीरन्।
लुङ्- अवत-अवनिष्ट, अवनिषाताम्, अवनिषत, अवथाः-अवनिष्ठाः, अवनिषाथाम्, अवनिढ्वम्, अवनिषि, अवनिष्वहि, अवनिष्महि। **लृङ्**- अवनिष्यत, अवनिष्येताम्, अवनिष्यन्त।

मनु अवबोधने। **मनु** धातु **अवबोधने** अर्थात् **जानना-मानना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा करके **मन्** बचता है। यह उदित् होते हुए स्वरितेत् है, अतः आत्मनेपदी है और अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है। इसकी प्रक्रिया लगभग **वन्** धातु की तरह ही है किन्तु **लिट्** में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्वाभ्यासलोप हो जाता है।

वनु के रूप- लट्- मनुते, मन्वाते, मन्वते। **लिट्-** मेने, मेनाते, मेनिरे।
लुट्- मनिता, मनितारौ, मनितारः, मनितासे। **लृट्-** मनिष्यते, मनिष्येते, मनिष्यन्ते।
लुट्- मनुताम्, मन्वाताम्, मन्वताम्। **लङ्-** अमनुत, अमन्वाताम्, अमन्वत।
विधिलिङ्- मन्वीत, मन्वीयाताम्, मन्वीरन्। **आशीर्लिङ्-** मनिषीष्ट, मनिषीयास्ताम्, मनिषीरन्।
लुङ्- अमत-अमनिष्ट, अमनिषाताम्, अमनिषत, अमथाः-अमनिष्ठाः, अमनिषाथाम्, अमनिढ्वम्, अमनिषि, अमनिष्वहि, अमनिष्महि। **लृङ्-** अमनिष्यत, अमनिष्येताम्, अमनिष्यन्त।

धातु-प्रकरण में आप आठवाँ प्रकरण पूर्ण कर चुके हैं। धातु और धातु के रूपों का आपको अवश्य ज्ञान हो गया होगा। जितने धातु अभी तक बताये गये हैं, उनकी सिद्धि आप अच्छी तरह से कर सकें और सारे रूप मुखाग्र हों तो आगे बढ़ने में सुविधा होगी। आप **पाणिनीयाष्टाध्यायी** का मासिक पारायण कर ही रहे होंगे। प्रतिमाह एक अध्याय के नियम से पाठ करने पर आठ अध्याय आठ महीने में पूर्ण हो जाते हैं। इतने में ही सारे सूत्र मुखाग्र हो सकते हैं। यदि नहीं हो सके तो दुबारा आवृत्ति करने पर सोलह महीने में तो अवश्य ही कण्ठस्थ हो जायेंगे। आप प्रयास जारी रखें।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।

१- अपनी पुस्तिका में तन् और कृ धातु के सारे रूप लिखें। २५

३- तन्, कृ, और मन् धातुओं के लिट्, लोट्, लङ् और लुङ् लकार के मध्यमपुरुष में सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये। २५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तनादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ क्र्यादयः

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये॥१॥

श्ना-विधायकं विधिसूत्रम्

६८५. क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१॥

शपोऽपवादः। क्रीणाति। **ई हल्यघोः।** क्रीणीतः। श्नाभ्यस्तयोरातः। क्रीणन्ति। क्रीणासि। क्रीणीथः। क्रीणीथ। क्रीणामि। क्रीणीवः। क्रीणीमः। क्रीणीते। क्रीणाते। क्रीणते। क्रीणीषे। क्रीणाथे। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे। क्रीणीमहे। चिक्राय। चिक्रियतुः। चिक्रियुः। चिक्रयिथ-चिक्रेथ। चिक्रिय। चिक्रिये। क्रेता। क्रेष्यति-क्रेष्यते। क्रीणातु-क्रीणीतात्। क्रीणीताम्। अक्रीणात्-अक्रीणीत। क्रीणीयात्-क्रीणीत। क्रीयात्-क्रेषीष्ट। अक्रैषीत्-अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्-अक्रेष्यत। **प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च॥२॥** प्रीणाति, प्रीणीते। **श्रीञ् पाके॥३॥** श्रीणाति, श्रीणीते। **मीञ् हिंसायाम्॥४॥**

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **क्र्यादिप्रकरण** का नवम स्थान है। **क्री** धातु आदि में होने के कारण **क्र्याादिप्रकरण** कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु, तुदादि में श, रुधादि में श्नम् और तनादि में उ होते हैं, उसी प्रकार **क्र्यादि** में **शप्** को बाधकर **श्ना** होता है।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये। डुक्रीञ् धातु **द्रव्यों का परिवर्तन करना** अर्थात् **खरीदना** अर्थ में है। **डु** की **आदिर्ञिटुडवः** से और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। केवल **क्री** ही शेष रहता है। **ञित्** होने के कारण यह **उभयपदी** हो जाता है। यह अनिट् अर्थात् तासि आदि में इट् न होने वाला धातु है।

६८५- क्र्यादिभ्यः श्ना। क्र्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, श्ना लुप्तप्रथमाकं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर क्र्यादिगणपठित धातुओं से श्ना प्रत्यय होता है।

शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। शित् होने से सार्वधातुक है और अपित् होने से **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हो जाता है। अतः इसके परे होने पर **क्ङिति च** से निषेध होने के कारण गुण और वृद्धि नहीं होते। यह **शप्** का बाधक है।

क्रीणाति। क्री धातु से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर श्ना, अनुबन्धलोप, **क्री+ना+ति** बना। **क्री** के रेफ से परे **ना** के **नकार** को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से **णत्व** होकर **क्रीणाति** रूप सिद्ध हो जाता है।

क्रीणीतः। क्री से द्विवचन तस्, श्ना करके **क्री+ना+तस्** बना। तस् ङित् है, अतः उसके परे होने पर ना के आकार के स्थान पर **ई हल्यघोः** से ईकार आदेश हुआ, **क्री+नी+तस्** बना, णत्व और रुत्वविसर्ग करके **क्रीणीतः** सिद्ध हुआ।

क्रीणन्ति। बहुवचन में **क्री+ना+अन्ति** बनने के बाद **श्नाभ्यस्तयोरातः** से **ना** के आकार का लोप हुआ, नकार का णत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **क्रीणन्ति** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार आगे भी हलादि ङित् सार्वधातुक के परे ईत्व और अजादि ङित् सार्वधातुक के परे होने पर आकार का लोप करने पर सभी रूप बन जायेंगे। **लट् के रूप परस्मैपद में**- क्रीणाति, क्रीणीतः, क्रीणन्ति। क्रीणासि, क्रीणीथः, क्रीणीथ। क्रीणामि, क्रीणीवः, क्रीणीमः। **आत्मनेपद में**- क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते। क्रीणीषे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे। क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे।

लिट् परस्मैपद में तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होकर **क्री+अ** होने के बाद **क्री** को द्वित्व, हलादिशेष करके **कीक्री अ** बना। **ह्रस्वः** से प्रथम क्री के ईकार को ह्रस्व इकार आदेश हुआ, **किक्री+अ** में **कुहोश्चुः** से चुत्व, **चिक्री**, **अचो ञ्णिति** से वृद्धि, **चिक्रै+अ**, आय् आदेश, वर्णसम्मेलन करने पर **चिक्राय** रूप सिद्ध हुआ। अतुस् आदि में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होकर गुण का निषेध होता है और **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश होकर **चिक्रियतुः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

लिट् परस्मैपद के रूप- चिक्राय, चिक्रियतुः, चिक्रियुः। चिक्रयिथ-चिक्रेथ, चिक्रियथुः, चिक्रिय। चिक्राय-चिक्रय, चिक्रियिव, चिक्रियिम। **आत्मनेपद में**- चिक्रिये, चिक्रियाते, चिक्रियिरे। चिक्रियिषे, चिक्रियाथे, चिक्रियिढ्वे-चिक्रियिध्वे। चिक्रिये, चिक्रियिवहे, चिक्रियिमहे।

लुट् परस्मैपद में- क्रेता, क्रेतारौ, क्रेतारः। क्रेतासि, क्रेतास्थः, क्रेतास्थ। क्रेतास्मि, क्रेतास्वः, क्रेतास्मः। **आत्मनेपद में**- क्रेता, क्रेतारौ, क्रेतारः। क्रेतासे, क्रेतासाथे, क्रेताध्वे। क्रेताहे, क्रेतास्वहे, क्रेतास्महे।

लृट् परस्मैपद में- क्रेष्यति, क्रेष्यतः, क्रेष्यन्ति। क्रेष्यसि, क्रेष्यथः, क्रेष्यथ। क्रेष्यामि, क्रेष्यावः, क्रेष्यामः। **आत्मनेपद में**- क्रेष्यते, क्रेष्येते, क्रेष्यन्ते। क्रेष्यसे, क्रेष्येथे, क्रेष्यध्वे। क्रेष्ये, क्रेष्यावहे, क्रेष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- क्रीणातु-क्रीणीतात्, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु। क्रीणीहि-क्रीणीतात्, क्रीणीतम्, क्रीणीत। क्रीणानि। लोट् लकार के **वस्** और **मस्** में **आडुत्तमस्य पिच्च** से पित् आट्-आगम होने के कारण आकार का व्यवधान है। अतः हल् परे नहीं मिलता है जिससे

ईत्व नहीं होता और पित् होने के कारण आकार का लोप भी नहीं होता। अत: सवर्णदीर्घ होकर- क्रीणाव, क्रीणाम। **आत्मनेपद में-** क्रीणीताम्, क्रीणाताम्, क्रीणताम्। क्रीणीष्व, क्रीणाथाम्, क्रीणीध्वम्। क्रीणै, क्रीणावहै, क्रीणामहै।

लङ् परस्मैपद में- अक्रीणात्, अक्रीणीताम्, अक्रीणन्। अक्रीणा:, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत। अक्रीणाम्, अक्रीणीव, अक्रीणीम। **आत्मनेपद में-** अक्रीणीत, अक्रीणाताम्, अक्रीणत। अक्रीणीथा:, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम्। अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि।

विधिलिङ् परस्मैपद में- क्रीणीयात्, क्रीणीयाताम्, क्रीणीयु:। क्रीणीया:, क्रीणीयातम्, क्रीणीयात। क्रीणीयाम्, क्रीणीयाव, क्रीणीयाम। **आत्मनेपद में-** क्रीणीत, क्रीणीयाताम्, क्रीणीरन्। क्रीणीथा:, क्रीणीयाथाम्, क्रीणीध्वम्। क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि।

आशीर्लिङ् में- क्रीयात्, क्रीयास्ताम्, क्रीयासु:। क्रीया:, क्रीयास्तम्, क्रीयास्त। क्रीयासम्, क्रीयास्व, क्रीयास्म। **आत्मनेपद में-** क्रेषीष्ट, क्रेषीयास्ताम्, क्रेषीरन्। क्रेषीष्ठा:, क्रेषीयास्थाम्, क्रेषीढ्वम्। क्रेषीय, क्रेषीवहि, क्रेषीमहि।

लुङ् परस्मैपद में- सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु से वृद्धि। अक्रैषीत्, अक्रैष्टाम्, अक्रैषु:। अक्रैषी:, अक्रैष्टम्, अक्रैष्ट। अक्रैषम्, अक्रैष्व, अक्रैष्म। **आत्मनेपद में- सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण। अक्रेष्ट, अक्रेषाताम्, अक्रेषत। अक्रेष्ठा:, अक्रेषाथाम्, अक्रेढ्वम्, अक्रेषि, अक्रेष्वहि, अक्रेष्महि।

लृङ् परस्मैपद में- अक्रेष्यत्, अक्रेष्यताम्, अक्रेष्यन्। अक्रेष्य:, अक्रेष्यतम्, अक्रेष्यत। अक्रेष्यम्, अक्रेष्याव, अक्रेष्याम। **आत्मनेपद में-** अक्रेष्यत, अक्रेष्येताम्, अक्रेष्यन्त। अक्रेष्यथा:, अक्रेष्येथाम्, अक्रेष्यध्वम्। अक्रेष्ये, अक्रेष्यावहि, अक्रेष्यामहि!

प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। प्रीञ् धातु **तृप्त करना, तृप्त होना, चमकना** अर्थों में है। यह भी क्रीञ् धातु की तरह ञित् होने से उभयपदी है। इसके भी रूप क्रीञ् की तरह ही चलते हैं। यहाँ पर लट् लकार के पूरे रूप और शेष लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूप आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

लट् परस्मैपद में- प्रीणाति, प्रीणीत:, प्रीणन्ति। प्रीणासि, प्रीणीथ:, प्रीणीथ। प्रीणामि, प्रीणीव:, प्रीणीम:। **आत्मनेपद में-** प्रीणीते, प्रीणाते, प्रीणते। प्रीणीषे, प्रीणाथे, प्रीणीध्वे। प्रीणे, प्रीणीवहे, प्रीणीमहे।

लिट्- **पिप्राय-पिप्रिये।** लुट्- **प्रेता, प्रेतासि-प्रेतासे।** लृट्- **प्रेष्यति-प्रेष्यते।** लोट्- **प्रीणातु-प्रीणीताम्।** लङ्- **अप्रीणात्-अप्रीणीत।** विधिलिङ्- **प्रीणीयात्-प्रीणीत।** आशीर्लिङ्- **प्रीयात्-प्रेषीष्ट।** लुङ्- **अप्रैषीत्-अप्रेष्ट।** लृङ्- **अप्रेष्यत्-अप्रेष्यत।**

श्रीञ् पाके। श्रीञ् धातु **पकाना** अर्थ में है। यह भी प्रीञ् धातु की तरह ञित् होने से उभयपदी है। इसके भी रूप क्रीञ् की तरह ही चलते हैं। यहाँ पर लट् लकार के पूरे रूप और शेष लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूप आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

लट् परस्मैपद में- श्रीणाति, श्रीणीत:, श्रीणन्ति। श्रीणासि, श्रीणीथ:, श्रीणीथ। श्रीणामि, श्रीणीव:, श्रीणीम:। **आत्मनेपद में-** श्रीणीते, श्रीणाते, श्रीणते। श्रीणीषे, श्रीणाथे, श्रीणीध्वे। श्रीणे, श्रीणीवहे, श्रीणीमहे।

लिट्- **शिश्राय-शिश्रिये।** लुट्- **श्रेता, श्रेतासि-श्रेतासे।** लृट्- **श्रेष्यति-श्रेष्यते।**

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६८६. हिनुमीना ८।४।१५॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात्।

प्रमीणाति, प्रमीणीते। मिनातीत्यात्त्वम्। ममौ। मिम्यतुः। ममिथ, ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मीयात्, मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। **षिञ् बन्धने॥५॥** सिनाति, सिनीते। सिषाय, सिष्ये। सेता। **स्कुञ् आप्लवने॥६॥**

....

लोट्- **श्रीणातु-श्रीणीताम्।** लङ्- **अश्रीणात्-अश्रीणीत।** विधिलिङ्- **श्रीणीयात्-श्रीणीत।** आशीर्लिङ्- **श्रीयात्-श्रेषीष्ट।** लुङ्- **अश्रैषीत्-अश्रेष्ट।** लृङ्- **अश्रेष्यत्-अश्रेष्यत।**

मीञ् हिंसायाम्। यह धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। **मी** शेष रह जाता है। **ञित्** होने से उभयपदी तथा उदात्तों में न पढ़े जाने के कारण अनुदात्त है, अतः **तासि** आदि के परे अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है साथ ही **थल्** में भारद्वाज के नियम से विकल्प से इट् होता है।

लट् में **मीनाति, ई हल्यघोः** से **ईत्त्व** होकर **मीनीतः, श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप- **मिनन्ति, मिनीते, मीनाते, मीनते** आदि रूप बनते हैं। **लिट्** में **मिनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** से **मी** के ईकार को **आत्त्व** होकर **मा** बन जाता है। उसके बाद **पपौ** की तरह **आत औ णलः** से **णल्** के स्थान पर **औकार** आदेश, वृद्धि आदि होकर **ममौ** बनता है। **अतुस्** में कित्व होने से एज्निमित्त परे न मिलने के कारण आत्त्व नहीं होता। अतः **मिमी+अतुस्** में **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से **यण्** होकर **मिम्यतुः** बन जाता है।

लिट् में इसके रूप- ममौ, मिम्यतुः, मिम्युः, ममिथ-ममाथ, मिम्यथुः, मिम्य, ममौ, मिम्यिव, मिम्यिम। मिम्ये, मिम्याते, मिम्यिरे, मिम्यिषे, मिम्याथे, मिम्यिढ्वे-मिम्यिध्वे, मिम्ये, मिम्यिवहे, मिम्यिमहे बनते हैं। **लुट्** में एज्निमित्त मिल जाने से **मिनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** से आत्त्व होकर- माता, मातारौ, मातारः, मातासि, मातासे। **लृट्** में- मास्यति, मास्यते। **लोट्** में- मीनातु-मीनीतात्, मीनीताम्, मीनन्तु, मीनीहि। **आत्मनेपद में-** मीनीताम्, मीनाताम् मीनताम्। **लङ्** में- अमीनात्, अमीनीताम्, अमीनन्। **आत्मनेपद में-** अमीनीत, अमीनीताम्, अमीनत। **परस्मैपद विधिलिङ्** में- मीनीयात्, मीनीयाताम्, मीनीयुः। **आत्मनेपद में-** मीनीत, मीनीयाताम्, मीनीरन्। **आशीर्लिङ्** में- मीयात्, मीयास्ताम्, मीयासुः। **आत्मनेपद में-** मासीष्ट, मासीयास्ताम्, मासीरन्। **लुङ्** में आत्त्व हो जाने के बाद **यमरमनमातां सक् च** से **सक्** और उसको **इट्** का आगम होकर- अमासीत्, अमासिष्टाम्, अमासिषुः **आत्मनेपद** में अमास्त, अमासाताम्, अमासत आदि रूप बनते हैं। **लृङ्** में- अमास्यत्, अमास्यत।

६८६- हिनुमीना। हिनुश्च मीनाश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो हीनुमीनौ, तयोर्हीनुमीना इति लुप्तषष्ठीकं पदम्। यहाँ पर आचार्य ने विभक्ति के विना ही पढ़ा है। **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** और **रषाभ्यां नो णः समानपदे** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु और मीना के नकार को णकार आदेश होता है।

स्वादिगणीय **हि** धातु से **श्नु** और इस गण के **मी** धातु से **श्ना** करके **हिनु** और

श्नुविधायकं विधिसूत्रम्

६८७. स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ३।१।८२।।

चात् श्ना। स्कुनोति, स्कुनाति। स्कुनुते, स्कुनीते। चुस्काव, चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्, अस्कोष्ट।

स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः। सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः।

....

मीना बन जाने के बाद उपसर्ग में यदि **रेफ** और **षकार** हो तो प्रत्यय वाले **नकार** को इससे **णकार** आदेश हो जाता है। स्मरण रहे कि सूत्रार्थ में **उपसर्गस्थान्निमित्तात्** का तात्पर्य **रेफ** और **षकार** ही है। स्वादि में **प्र+हिनोति** में **प्रहिणोति** रूप बन जाता है।

प्रमीणाति। **प्र+मीनाति** में उक्त सूत्र **हिनुमीना** से णत्व होकर **प्रमीणाति** बन जाता है। इसी तरह **प्र+मीनीते** से भी **प्रमीणीते** बनता है।

षिञ् बन्धने। यह धातु **बाँधना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। **धात्वादेः षः सः** से सकार आदेश होता है। **सि** शेष रह जाता है। **षोपदेश** होने से **सिषाय** में **आदेशावयव** द्वितीय **सकार** को **षत्व** हो जायेगा। ञित् होने से उभयपदी तथा उदात्तों में न पढ़े जाने के कारण अनुदात्त है, अतः **तासि** आदि के परे अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है साथ ही **थल्** में भारद्वाज के नियम से विकल्प से इट् होता है। इस धातु में **आत्त्व** का प्रसंग नहीं है, किन्तु **ई हल्यघोः** की प्रवृत्ति तो यथास्थान पर होती ही है।

रूपमाला-

लट्- सिनाति, सिनीतः, सिनन्ति, सिनीते, सिनाते, सिनते। **लिट्**- सिषाय, सिष्यतुः, सिष्युः। सिष्ये, सिष्याते, सिष्यिरे। **लुट्**- सेता, सेतारौ, सेतारः, सेतासि, सेतासे। **लृट्**- सेष्यति, सेष्यते।

लोट्- सिनातु-सिनीतात्, सिनीताम्, सिनन्तु। सिनीताम्, सिनाताम्, सिनताम्,

लङ्- असिनात्, असिनीताम्, असिनन्। असिनीत, असिनीताम्, असिनत।

विधिलिङ्- सिनीयात्, सिनीयाताम्, सिनीयुः। सिनीत, सिनीयाताम्, सिनीरन्।

आशीर्लिङ्- सीयात्, सीयास्ताम्, सीयासुः। सेषीष्ट, सेषीयास्ताम्, सेषीरन्।

लुङ्- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु।** असैषीत्, असैष्टाम्, असैषुः। असेष्ट, असेषाताम्, असेषत।

लृङ्- असेष्यत्। असेष्यत।

स्कुञ् आप्रवणे। यह धातु **कूदना, ऊपर उठाना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। **स्कु** शेष रह जाता है। ञित् होने से उभयपदी तथा उदात्तों में न पढ़े जाने के कारण अनुदात्त है, अतः **तासि** आदि के परे अनिट् होता है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में नित्य से इट् हो जाता है साथ ही **थल्** में भारद्वाज के नियम से विकल्प से इट् होता है। इस धातु से अग्रिम सूत्र के द्वारा **श्ना** और **श्नु** दोनों का विधान किया गया है।

६८७- स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च। स्तन्भुश्च स्तुन्भुश्च स्कन्भुश्च स्कुन्भुश्च स्कुञ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञस्तेभ्यः। स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः पञ्चम्यन्तं, श्नुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **क्र्यादिभ्यः श्ना** से **श्ना**, **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे होने पर स्तन्भु, स्तुन्भु, स्कन्भु, स्कुन्भु एवं स्कुञ् धातुओं से श्नु प्रत्यय होता है और पक्ष में श्ना भी होता है।

शानजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६८८. हलः श्नः शानज्झौ ३।१।८३॥

हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे। स्तभान।

....

स्तन्भु आदि चार धातुएँ धातुपाठ में पठित नहीं है किन्तु पाणिनि जी ने सूत्र में पढ़ा है, अतः ये **सौत्र धातु** कहलाते हैं। इन सभी धातुओं का **रोकना** अर्थ है। यहाँ पर **स्कुञ्** धातु का प्रसंग है। **श्ना** होने के पक्ष में **स्कुनाति** और **श्नु** होने के पक्ष में **स्कुनोति** रूप बनते हैं।

रूपमाला-

लट्- परस्मैपद श्नुपक्ष- स्कुनोति, स्कुनुतः, स्कुन्वन्ति। **परस्मैपद श्नापक्ष**-स्कुनाति, स्कुनीतः, स्कुनन्ति। **आत्मनेपद श्नुपक्ष-** स्कुनुते, स्कुन्वाते, स्कुन्वते। **आत्मनेपद श्नापक्ष-** स्कुनीते, स्कुनाते, स्कुनते। **लिट्- शर्पूर्वाः खयः**। चुस्काव, चुस्कुवतुः, चुस्कुवुः, चुस्कविथ-चुस्कोथ। चुस्कुवे, चुस्कुवाते, चुस्कुविरे। **लुट्-** स्कोता, स्कोतारौ, स्कोतारः, स्कोतासि, स्कोतासे। **लृट्-** स्कोष्यति, स्कोष्यते। **लोट्- परस्मैपद श्नुपक्ष-** स्कुनोतु-स्कुनुतात्, स्कुनुताम्, स्कुन्वन्तु। **परस्मैपद श्नापक्ष-** स्कुनातु-स्कुनीतात्, स्कुनीताम्, स्कुनन्तु। **आत्मनेपद श्नुपक्ष-** स्कुनुताम्, स्कुन्वाताम्, स्कुन्वताम्। **आत्मनेपद श्नापक्ष-** स्कुनीताम्, स्कुनाताम्, स्कुनताम्। **लङ्- परस्मैपद श्नुपक्ष-** अस्कुनोत्, अस्कुनुताम्, अस्कुन्वन्। **परस्मैपद श्नापक्ष-** अस्कुनात्, अस्कुनीताम्, अस्कुनन्। **आत्मनेपद श्नुपक्ष-** अस्कुनुत, अस्कुन्वाताम्, अस्कुन्वत। **आत्मनेपद श्नापक्ष-** अस्कुनीत, अस्कुनाताम्, अस्कुनत। **परस्मैपद विधिलिङ्-** स्कुनुयात्, स्कुनीयात्। **आत्मनेपद-** स्कुनीत, स्कुन्वीत। **परस्मैपद आशीर्लिङ्-** स्कूयात्। **आशीर्लिङ्** में आर्धधातुक लकार होने के कारण **श्ना, श्नु** दोनों नहीं होते। अतः एक ही रूप बनता है। आत्मनेपद में भी और परस्मैपद में भी। **स्कोषीष्ट**। **लुङ्- सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि- अस्कौषीत्, अस्कौष्टाम्, अस्कौषुः। सार्वधातुकगुण- अस्कोष्ट, अस्कोषाताम्, अस्कोषत। **लृङ्-** अस्कोष्यत्, अस्कोष्यत।

अब **स्तन्भु** आदि चार धातु के विषय में बताते हैं। ये चारो **रोकने** अर्थ में सूत्र में पठित सौत्र धातुएँ हैं। **उकार** की इत्संज्ञा होती है। **स्तन्भ्, स्तुन्भ्, स्कन्भ्** और **स्कुन्भ्** शेष रह जाते हैं। ये चारो **उदित्** और **सेट्** हैं। अतः परस्मैपदी हैं। **स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च** से **श्ना** और **श्नु** दोनों विकरण आते हैं और इनके अपित् शित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से धातुएँ ङित् हो जाती हैं। अतः उपधाभूत नकार का **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से लोप हो जाता है। आर्धधातुक के परे रहते ङित्त्वाभाव होने से लोप न हो पाने के कारण उपधाभूत नकार को **अनुस्वार** और **परसवर्ण** होकर **स्तम्भ्, स्तुम्भ्, स्कम्भ्** और **स्कुम्भ्** हो जाते हैं। लिट् में द्वित्व के बाद **शर्पूर्वाः खयः** से दो धातुओं में तकार और दो धातुओं में ककार शेष रह जाते हैं।

लट्-श्नुपक्ष- स्तभ्नोति, स्तभ्नुतः, स्तभ्नुवन्ति। यहाँ पर पूर्व में संयोग होने से **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से यण् नहीं होता किन्तु **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् हो जाता है। **श्नापक्ष** में स्तभ्नाति, स्तभ्नीतः। स्तभ्नन्ति। **लिट्-** तस्तम्भ, तस्तम्भतुः, तस्तम्भुः। तस्तम्भिथ। **लुट्-** स्तम्भिता। **लृट्-** स्तम्भिष्यति। **लोट्** के **श्नु** पक्ष में- स्तभ्नोतु-स्तभ्नुतात्,

वैकल्पिकाङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६८९. जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ३।१।५८॥

च्लेरङ् वा स्यात्।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६९०. स्तन्भेः ८।३।६७॥

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। व्यष्टभत्। अस्तम्भीत्।

युञ् बन्धने॥७॥ युनाति, युनीते। योता। **क्नूञ् शब्दे॥८॥** क्नूनाति, क्नूनीते। क्नविता। **द्रूञ् हिंसायाम्॥९॥** द्रूणाति, द्रूणीते। **पूञ् पवने॥१०॥**

....

स्तभ्नुताम्, स्तभ्नुवन्तु। **श्ना** के पक्ष में भी **स्तभ्नातु-स्तभ्नीतात्, स्तभ्नीताम्, स्तम्भ्नुवन्तु** बन जाने के बाद **सिप्** में कुछ विशेषता के लिए निम्नलिखित सूत्र प्रवृत्त होता है।

६८८-हलः श्नः शानज्झौ। हलः पञ्चम्यन्तं, श्नः षष्ठ्यन्तं, शानच् प्रथमान्तं, हौ सप्तम्यन्तमनेकपदं सूत्रम्।

हल् से परे श्ना के स्थान पर शानच् आदेश होता है।

शानच् में **शकार** और **चकार** की इत्संज्ञा के बाद **आन** शेष रहता है। अनेकाच् होने के कारण सर्वादेश हुआ है।

स्तभान। स्तन्भ् से **लोट्** में **सिप्** के स्थान पर **हि** आदेश हो जाने के बाद **स्तभ्+ना+हि** बना है। श्ना वाले **ना** के स्थान पर **हलः श्नः शानज्झौ** से **शानच्** आदेश होकर अनुबन्धलोप के बाद **स्तभ्+आन+हि** बना। **अतो हेः** से **हि** का लोप हो जाता है, जिससे **स्तभान** बन जाता है।

लोट्- श्ना के पक्ष में- स्तभ्नातु-स्तभ्नीतात्, स्तभ्नीताम्, स्तभ्नन्तु, स्तभान-स्तभ्नीतात्, स्तभ्नीतम्, स्तभ्नीत, स्तभ्नानि, स्तभ्नाव, स्तभ्नाम। **लङ्- श्नुपक्ष-** अस्तभ्नोत्, अस्तभ्नुताम्, अस्तभ्नुवन्। **श्नापक्ष-** अस्तभ्नात्, अस्तभ्नीताम्, अस्तभ्नन्। **विधिलिङ्-श्नुपक्ष-** स्तभ्नुयात्। **श्नापक्ष-** स्तभ्नीयात्। **आशीर्लिङ्** में यासुट् के कित् होने के कारण **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से मकार-रूप नकार का लोप करके **स्तभ्यात्, स्तभ्याताम्, स्तभ्यासुः।**

६८९- जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च। जृश्च, स्तन्भुश्च, म्रुचुश्च, म्लुचुश्च, ग्रुचुश्च, ग्लुचुश्च, ग्लुञ्चुश्च, श्विश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्वयः, तेभ्यः। जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः**, **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** और **इरितो वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

जृ, स्तन्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ्-आदेश होता है।

अङ् में ङकार की इत्संज्ञा होकर **अ** शेष रह जाता है।

अस्तभत्, अस्तम्भीत्। लुङ् में **स्तम्भ्** से तिप्, इकार का लोप, अट् का आगम, च्लि, उसके स्थान पर **जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च** से विकल्प से **अङ्** आदेश करके **अस्तम्भ्+अत्** बना है। **अङ्** के ङित् होने के कारण उपधाभूत मकार स्थानीय नकार का **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से लोप होकर **अस्तभ्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन

होकर **अस्तभत्** सिद्ध हुआ। **अङ्** न होने के पक्ष में **च्लि** के स्थान पर **सिच्** होकर **इट्** और **ईट्** आगम होने के बाद सकार का **इट ईटि** से लोप और सवर्णदीर्घ करके **अस्तम्भीत्** सिद्ध हो जाता है। इस तरह **अङ्** के पक्ष में **अस्तभत्, अस्तभताम्, अस्तभन्** और **सिच्** के पक्ष में **अस्तम्भीत्, अस्तम्भिष्टाम्, अस्तम्भिषुः** आदि रूप बनते हैं। **लृङ्** में **अस्तम्भिष्यत्।**

६९०- **स्तन्भेः।** षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **उपसर्गात् सुनोति०** से **उपसर्गात्** तथा **सहेः साडः सः** से **सः** की अनुवृत्ति और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** एवं **इण्कोः** का अधिकार है।

उपसर्गस्थ निमित्त से परे सौत्र धातु स्तन्भ् के सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है।

व्यष्टभत्। **वि+अस्तभत्** में षत्व के लिए उपसर्ग में स्थित निमित्त है **इकार,** उससे परे धातु के सकार को षत्व हो जाता है। **प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि** सूत्र होने के कारण अट् के व्यवधान होने पर भी षत्व होता। **षकार** के योग में तकार को **ष्टुना ष्टुः** से टवर्ग आदेश होकर **वि+अष्टभत्** बना। यण् होकर **व्यष्टभत्** बन जाता है।

स्तुन्भ् धातु के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप- **स्तुभ्नोति, स्तुभ्नाति। तुस्तुम्भ। स्तुम्भिता। स्तुम्भिष्यति। स्तुभ्नोतु, स्तुभ्नातु। अस्तुभ्नोत्, अस्तुभ्नात्। स्तुभ्नुयात्, स्तुभ्नीयात्। स्तुभ्यात्। अस्तुम्भीत्। अस्तुम्भिष्यत्।**

स्कन्भ् धातु के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप- **स्कभ्नोति, स्कभ्नाति। चस्कम्भ। स्कम्भिता। स्कम्भिष्यति। स्कभ्नोतु, स्कभ्नातु। अस्कभ्नोत्, अस्कभ्नात्। स्कभ्नुयात्, स्कभ्नीयात्। स्कभ्यात्। अस्कम्भीत्। अस्कम्भिष्यत्।**

स्कुन्भ् धातु के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप- **स्कुभ्नोति, स्कुभ्नाति। चुस्कुम्भ। स्कुम्भिता। स्कुम्भिष्यति। स्कुभ्नोतु, स्कुभ्नातु। अस्कुभ्नोत्, अस्कुभ्नात्। स्कुभ्नुयात्, स्कुभ्नीयात्। स्कुभ्यात्। अस्कुम्भीत्। अस्कुम्भिष्यत्।**

युञ् बन्धने। युञ् धातु **बाँधने** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **यु** शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और **ऊदृदन्तै०** इस कारिका में परिगणित न होने से **अनिट्** है लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है परन्तु थल् में भारद्वाजनियम से विकल्प से हो जाता है।

लट्- युनाति। युनीते। **लिट्**- युयाव, युयुवतुः, युयुवुः, युयविथ-युयोथ। युयुवे, युयुवाते, युयुविरे। **लुट्**- योता, योतासि। योतासे। **लृट्**- योष्यति, योष्यते। **लोट्**- युनातु, युनीताम्। **लङ्**- अयुनात्, अयुनीत। **विधिलिङ्**- युनीयात्, युनीत। **आशीर्लिङ्**- यूयात्, योषीष्ट। **लुङ्**- अयौषीत्, अयोष्ट। **लृङ्**- अयोष्यत्, अयोष्यत।

क्नूञ् शब्दे। यह धातु **शब्द करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **क्नू** शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और **ऊदन्त** होने से **सेट्** है।

लट्- क्नूनाति। क्नूनीते। **लिट्**- चुक्नाव, चुक्नुवतुः, चुक्नुवुः, चुक्नविथ। चुक्नुवे, चुक्नुवाते, चुक्नुविरे। **लुट्**- क्नविता, क्नवितासि, क्नवितासे। **लृट्**- क्नविष्यति, क्नविष्यते। **लोट्**- क्नूनातु, क्नूनीताम्। **लङ्**- अक्नूनात्, अक्नूनीत। **विधिलिङ्**- क्नूनीयात्, क्नूनीत। **आशीर्लिङ्**- क्नूयात्, क्नविषीष्ट। **लुङ्**- अक्नावीत्, अक्नविष्ट। **लृङ्**- अक्नविष्यत्, अक्नविष्यत।

द्रूञ् हिंसायाम्। यह धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है,

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

६९१. प्वादीनां ह्रस्वः ७।३।८०॥

पूञ्-लूञ्-स्तृञ्-कृञ्-वृञ्-धूञ्-शॄ-पॄ-वॄ-भॄ-मॄ-दॄ-जॄ-झॄ-धॄ-नॄ-कॄ-ॠ-गॄ-ज्या-री-ली-व्ली-प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः। पुनाति, पुनीते। पविता। **लूञ् छेदने॥११॥** लुनाति, लुनीते। **स्तृञ् आच्छादने॥१२॥** स्तृणाति। **शर्पूर्वाः खयः।** तस्तार, तस्तरतुः। तस्तरे। स्तरीता, स्तरिता। स्तृणीयात्, स्तृणीत। स्तीर्यात्॥

....

क्नू शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और **ऊदन्त** होने से **सेट्** है। **श्ना** में रेफ से परे नकार मिलने के कारण णत्व हो जाता है।

लट्- द्रूणाति। द्रूणीते। **लिट्**- दुद्राव, दुद्रुवतुः दुद्रुवुः, दुद्रविथ। दुद्रुवे, दुद्रुवाते, दुद्रुविरे। **लुट्**- द्रविता, द्रवितासि, द्रवितासे। **लृट्**- द्रविष्यति, द्रविष्यते। **लोट्**- द्रुणातु, द्रुणीताम्। **लङ्**- अद्रूणात्, अद्रूणीत। **विधिलिङ्**- द्रूणीयात्, द्रूणीत। **आशीर्लिङ्**- द्रूयात्, द्रविषीष्ट। **लुङ्**- अद्रावीत्, अद्रविष्ट। **लृङ्**- अद्रविष्यत्, अद्रविष्यत।

पूञ् पवने। पूञ् धातु **पवित्र करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **पू** शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और वलादि आर्धधातुक को इट् होता है। **श्ना** के परे रहते अग्रिम सूत्र **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व हो जाता है।

६९१- **प्वादीनां ह्रस्वः**। प्वादीनां षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

शित् परे होने पर पूञ्, लूञ्, स्तृञ्, कृञ्, वृञ्, धूञ्, शॄ, पॄ, वॄ, भॄ, मॄ, दॄ, जॄ, झॄ, धॄ, नॄ, कॄ, ॠ, गॄ, ज्या, री, ली, व्ली और प्ली धातुओं को ह्रस्व होता है।

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्ना के शित्व के कारण ह्रस्व करने के लिए यह लगेगा, शेष लकारों में नहीं लगेगा।

पुनाति। पू-धातु से लट्, तिप्, श्ना करके **पू+नाति** बना। **प्वादीनां ह्रस्वः** से पू के ऊकार को ह्रस्व होने पर- **पुनाति**। इस प्रकार से परस्मैपद में रूप बनते हैं- **पुनाति, पुनीतः, पुनन्ति। पुनासि, पुनीथः, पुनीथ। पुनामि, पुनीवः, पुनीमः**। आत्मनेपद में- **पुनीते, पुनाते, पुनते। पुनीषे, पुनाथे, पुनीध्वे। पुने, पुनीवहे, पुनीमहे।** शेष लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

लिट्- **पुपाव-पुपुवे**। लुट्- **पविता, पवितासि-पवितासे**। लृट्- **पविष्यति-पविष्यते।** लोट्- **पुनातु-पुनीताम्**। लङ्- **अपुनात्-अपुनीत**। विधिलिङ्- **पुनीयात्-पुनीत**। आशीर्लिङ्- **पूयात्-पविषीष्ट**। लुङ्- **अपावीत्-अपविष्ट**। लृङ्- **अपविष्यत्-अपविष्यत।**

लूञ् छेदने। लूञ् धातु **काटना** अर्थ में है। यह भी **पूञ्** की तरह ही **उभयपदी** है और सेट् है। इसकी ह्रस्व आदि सम्पूर्ण प्रक्रिया पूञ् की तरह ही होती है अर्थात् पूञ् की तरह ही इसके रूप बनते हैं। इसके सभी लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

वैकल्पिकेड्विधायकं विधिसूत्रम्

६९२. लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७।२।४२॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि।

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

६९३. न लिङि ७।२।३९॥

वृत इटो लिङि न दीर्घः। स्तरिषीष्ट। उश्चेति कित्त्वम्। स्तीर्षीष्ट। सिचि च परस्मैपदेषु। अस्तारीत्। अस्तारिष्टाम्। अस्तारिषुः। अस्तरीष्ट, अस्तरिष्ट। अस्तीर्ष्ट। **कॄञ् हिंसायाम्॥१३॥** कृणाति, कृणीते। चकार, चकरे। **वॄञ् वरणे॥१४॥** वृणाति, वृणीते। ववार, ववरे। वरिता, वरीता। उदोष्ठ्येत्युत्त्वम्। वूर्यात्। वरिषीष्ट। वूर्षीष्ट। अवारीत्। अवारिष्टाम्। अवरिष्ट, अवरीष्ट। अवूर्ष्ट। **धूञ् कम्पने॥१५॥** धुनाति, धुनीते। धविता, धोता। अधावीत्। अधविष्ट, अधोष्ट। **ग्रह उपादाने॥१६॥** गृह्णाति, गृह्णीते। जग्राह, जगृहे।

....

लट्- **लुनाति-लुनीते**। लिट्- **लुलाव-लुलुवे**। लुट्- **लविता, लवितासि-लवितासे**। लृट्- **लविष्यति-लविष्यते**। लोट्- **लुनातु-लुनीताम्**। लङ्- **अलुनात्-अलुनीत**। विधि लिङ्- **लुनीयात्-लुनीत**। आशीर्लिङ्- **लूयात्-लविषीष्ट**। लुङ्- **अलावीत्-अलविष्ट**। लृङ्- **अलविष्यत्-अलविष्यत**।

स्तॄञ् आच्छादने। स्तॄञ् धातु **ढकना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ॠदन्त होने के कारण सेट् है। शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व होता है। **लिट्** में **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण हो जाता है। **आशीर्लिङ्** में **ॠत इद् धातोः** से **इत्त्व, रपर** आदि भी होते हैं। इट् में **वॄतो वा** से विकल्प से इट् को दीर्घ होता है।

लट्- स्तृणाति। स्तृणीते। **लिट्**- तस्तार, तस्तरे। **लुट्**- स्तरीता-स्तरिता, स्तरीतासि-स्तरितासि, स्तरीतासे, स्तरितासे। **लृट्**- स्तरीष्यति-स्तरिष्यति, स्तरीष्यते-स्तरिष्यते। **लोट्**- स्तृणातु, स्तृणीताम्। **लङ्**- अस्तृणात्, अस्तृणीत। **विधिलिङ्**- स्तृणीयात्, स्तृणीत। **आशीर्लिङ्** के आत्मनेपद में वैकल्पिक इट् आगम के लिए अग्रिम सूत्र है।

६९२- लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु। लिङ् च सिच्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लिङ्सिचौ, तयोः। लिङ्सिचोः षष्ठ्यन्तम्, आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **वॄतो वा** से **वॄतः** और **इट् वा सनि** से **इट्** और **वा** की अनुवृत्ति आती है।

वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् का आगम होता है तङ् के परे रहने पर।

वॄतः का पदच्छेद है- **वृ+ॠतः**। अतः दीर्घ ॠकारान्त धातु का भी ग्रहण किया जाता है।

६९३- न लिङि। न अव्ययं, लिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **वॄतो वा** से **वॄतः**, **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से **इट्** तथा **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ नहीं होता है लिङ् परे रहते।

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु से इट् होने के पक्ष में **वॄतो वा** से प्राप्त वैकल्पिक इट् के दीर्घ का इससे निषेध किया जाता है।

स्तरिषीष्ट, स्तीर्षीष्ट। आशीर्लिङ् में **स्तॄ+सीय्+स्+त** बन जाने के बाद **लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु** से विकल्प से **इट्** का आगम करके आर्धधातुक गुण करके **स्तरि+सीय्+स्+त** बना। **वॄतो वा** से **इट्** को दीर्घ प्राप्त था, उसका **न लिङि** से निषेध किया गया। सकार का लोप, षत्व, ष्टुत्व करके **स्तरिषीष्ट** बना। इट् न होने के पक्ष में **उश्च** से झलादि लिङ् को किद्वद्भाव करके गुणनिषेध हुआ और **ॠत इद्धातोः** से **रपर-इत्त्व** करके **हलि च** से दीर्घ होने पर **स्तीर्षीष्ट** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार आशीर्लिङ् में दो-दो रूप सिद्ध होंगे।

अस्तारीत्। लुङ् में सिच् का **इट ईटि** से लुक्, सवर्णदीर्घ आदि करके **अस्तृ+ईत्** बन जाने के बाद **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर **अस्तारीत्** बन जाता है। **अस्तारीत्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषुः** आदि। आत्मनेपद में **लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु** से विकल्प से इट् होता है। इट् के पक्ष में **वॄतो वा** से इट् को विकल्प से दीर्घ करने पर **अस्तरीष्ट, अस्तरिष्ट** दो रूप बन जाते हैं। इट् के अभाव में **उश्च** से सिच् को किद्वद्भाव हो जाने से गुण का निषेध हो जाता है। तव इत्त्व, रपर और **हलि च** से दीर्घ करके **अस्तीर्ष्ट** बनता है। इस तरह इट्पक्ष और इडभाव में दो-दो रूप बन जाते हैं। इट् हो कर दीर्घ होने के पक्ष में-**अस्तरीष्ट, अस्तरीषाताम्, अस्तरीषत** और **अस्तरिष्ट, अस्तरिषाताम्, अस्तरिषत।** इट् न होने के पक्ष में **अस्तीर्ष्ट, अस्तीर्षाताम्, अस्तीर्षत** आदि।

लृङ् में- **अस्तरीष्यत्-अस्तरिष्यत्, अस्तरीष्यत-अस्तरिष्यत** आदि।

कॄञ् हिंसायाम्। कॄञ् धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ॠदन्त होने के कारण सेट् है। **प्वादि** के अन्तर्गत आता है, अतः शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्व.** से ह्रस्व होता है। **लिट्** में **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण हो जाता है। **आशीर्लिङ्** में **ॠत इद् धातोः** से **इत्त्व, रपर** आदि भी होते हैं। **वॄतो वा** से विकल्प से इट् को दीर्घ होता है।

लट्- कृणाति। कृणीते। **लिट्-** चकार, चकरे। **लुट्-** करीता-करिता, करीतासि-करितासि, करीतासे, करितासे। **लृट्-** करीष्यति-करिष्यति, करीष्यते-करिष्यते। **लोट्-** कृणातु, कृणीताम्। **लङ्-** अकृणात्, अकृणीत। **विधिलिङ्-** कृणीयात्, कृणीत। **आशीर्लिङ्-** कीर्यात्, करिषीष्ट-कीर्षीष्ट। **लिङ्-** अकारीत्, अकरीष्ट-अकरिष्ट, अकीर्ष्ट। लृङ्- अकरीष्यत्-अकरिष्यत्, अकरीष्यत-अकरिष्यत।

वॄञ् वरणे। वॄञ् धातु **वरण करना, स्वीकार करना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ॠदन्त होने के कारण सेट् है। **प्वादि** के अन्तर्गत आता है, अतः शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व होता है। इस तरह इसके सम्पूर्ण रूप **कॄञ** की तरह ही होते हैं किन्तु ओष्ठ्यपूर्व होने के कारण ॠकार को **ॠत इद्धातोः** से इत्त्व न होकर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्त्व हो जाता है। **लिट्** में **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण हो जाता है। इट् को **वॄतो वा** से विकल्प से दीर्घ होता है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

६९४. ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७।२।३७॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि। ग्रहीता। गृह्णातु। **हलः श्नः शानज्झाविति** श्नः शानजादेशः। गृहाण। गृह्यात्। ग्रहीषीष्ट। ह्यन्तेति न वृद्धिः। अग्रहीत्। अग्रहीष्टाम्। अग्रहीष्ट। अग्रहीषाताम्।

कुष निष्कर्षे॥१७॥ कुष्णाति। कोषिता। **अश भोजने॥१८॥** अश्नाति। आश। अशिता। अशिष्यति। अश्नातु। अशान। **मुष स्तेये॥१९॥** मोषिता। मुषाण। **ज्ञा अवबोधने॥२०॥** जज्ञौ। **वृङ् सम्भक्तौ॥२१॥** वृणीते। ववृषे। ववृढ्वे। वरिता, वरीता। अवरीष्ट, अवरिष्ट। अवृत।

इति क्र्यादयः॥२०॥

....

लट्- वृणाति। वृणीते। **लिट्-** ववार, ववरे। **लुट्-** वरीता-वरिता, वरीतासि-वरितासि, वरीतासे, वरितासे। **लृट्-** वरीष्यति-वरिष्यति, वरीष्यते-वरिष्यते। **लोट्-** वृणातु, वृणीताम्। **लङ्-** अवृणात्, अवृणीत। **विधिलिङ्-** वृणीयात्, वृणीत। **आशीर्लिङ्-** वूर्यात्, वरिषीष्ट-वूर्षीष्ट। **लिङ्-** अवारीत्, अवरीष्ट-अवरिष्ट, अवूर्ष्ट। **लृङ्-** अवरीष्यत्-अवरिष्यत्, अवरीष्यत-अवरिष्यत।

धूञ् कम्पने। धूञ् धातु **कँपाना, हिलाना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ऊदन्त होने के कारण सेट् है किन्तु **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** इस सूत्र में पढ़े जाने से **वेट्** अर्थात् विकल्प से इट् होने वाला है। **प्वादि** के अन्तर्गत आता है, अतः शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व होता है। सार्वधातुक लकारों में **पूञ्** धातु की तरह और आर्धधातुक लकारों में **स्वादिगण** के **धूञ्** की तरह ही रूप होते हैं।

लट्- धुनाति। धुनीते। **लिट्-** दुधाव, दुधुवतुः, दुधुवुः। दुधुवे, दुधुवाते, दुधुविरे। **लुट्-** धविता-धोता, धवितासि-धोतासि, धवितासे-धोतासे। **लृट्-** धविष्यति-धोष्यति, धविष्यते-धोष्यते। **लोट्-** धुनातु, धुनीताम्। **लङ्-** अधुनात्, अधुनीत। **विधिलिङ्-** धुनीयात्, धुनीत। **आशीर्लिङ्-** धविषीष्ट-धोषीष्ट। **लिङ्-** यहाँ पर **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से नित्य से इट् होता है- अधावीत्। अधविष्ट-अधोष्ट। **लृङ्-** अधविष्यत्-अधोष्यत्, अधविष्यत-अधोष्यत।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में **प्वादि** यहीं पर समाप्त हो जाते हैं। अतः आगे के धातुओं में ह्रस्व का प्रसंग नहीं रहेगा।

ग्रह उपादाने। ग्रह धातु **ग्रहण करना** अर्थ में है। अन्त्य अकार स्वरित है। स्वरितेत् होने से उभयपदी है। हकारान्त अनुदात्तों में परिगणित न होने से यह सेट् है। **श्ना** को **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् हो जाने के कारण उसके परे रहते **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टि-विचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से **ग्रह्** के **ग्+र्+अह्** में रेफ को सम्प्रसारण होकर **ऋकार** हो जाता है जिससे **गृ+अह्** हो जाता है। उसके बाद **सम्प्रसारणाच्च** से **ऋकार** और **अकार** में पूर्वरूप होकर **ऋकार** ही बन जाता है। इस तरह **ग्रह्** धातु **गृह्** में बदल जाता है। **श्ना** के नकार को णत्व करके **गृह्णा** बन जाता है जिससे **गृह्णाति** आदि रूप बनते हैं। आर्धधातुक के परे अर्थात् **श्ना** न होने के स्थलों पर तो **ग्रह्** ही रह जाता है। **रूप- गृह्णाति, गृह्णीतः, गृह्णन्ति, गृह्णासि** आदि।

लिट् के णल् में **ग्रह्** को द्वित्व, चुत्व, उपधा की **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **जग्राह** बनता है किन्तु पित्-भिन्न अतुस् आदि को **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टि-विचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से सम्प्रसारण होता है जिससे **जगृहतुः, जगृहुः** आदि रूप बनते हैं। आत्मनेपद में सर्वत्र कित्त्व के विद्यमान रहने के कारण सम्प्रसारण होगा ही।

ग्रह् से विहित **इट्** को अग्रिम सूत्र **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से सर्वत्र दीर्घ हो जाता है किन्तु **लिट्** के **इट्** को नहीं। यह बात ध्यान में रखना चाहिए।

६९४- **ग्रहोऽलिटि दीर्घः**। ग्रहः पञ्चम्यन्तम्, अलिटि सप्तम्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से विभक्तिविपरिणाम करके **इटः** और **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से **एकाचः** की अनुवृत्ति आती है। **विहितस्य** का अध्याहार है।

एक अच् वाली ग्रह धातु से परे विधान किये गये इट् को दीर्घ होता है किन्तु लिट् के परे नहीं।

ग्रहीता, ग्रहीष्यति, ग्रहीषीष्ट और **अग्रहीत्** में **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से दीर्घ हो जाता है।

अग्रहीत्। लुङ् लकार में **अग्रह्+इस्+ईत्** बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि प्राप्त थी, उसका **नेटि** निषेध करता है। पुनः **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त होती है, उसका भी **ह्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** से निषेध हो जाता है। तब **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **इट्** को दीर्घ होकर **अग्रह्+ईस्+ईत्** बना। **एकदेशविकृतन्यायेन** पूर्व **ईकार** को **इट्** ही मानकर **इट ईटि** से सकार का लोप, दीर्घ करके **अग्रहीत्** बनता है। शेष रूपों को आप स्वयं बनायें। स्मरण रहे कि **लोट्** के **सिप्** में **हलः श्नः शानज्झौ** से **शानच्** आदेश होकर **गृहाण** बनता है।

इस धातु का उपयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। इस लिए सारे रूप अवश्य याद करें। छात्रों के सुविधार्थ **ग्रह धातु** के रूप दिये जा रहे हैं।

लट्(परस्मैपद) गृह्णाति, गृह्णीतः, गृह्णन्ति, गृह्णासि, गृह्णीथः, गृह्णीथ, गृह्णामि, गृह्णीवः, गृह्णीमः। **आत्मनेपद-** गृह्णीते, गृह्णाते, गृह्णते, गृह्णीषे, गृह्णाथे, गृह्णीध्वे, गृह्णे, गृह्णीवहे, गृह्णीमहे।

लिट्-(परस्मैपद) जग्राह, जगृहतुः, जगृहुः, जग्रहिथ, जगृहथुः, जगृह, जग्राह-जग्रह, जगृहिव, जगृहिम। **(आत्मनेपद)** जगृहे, जगृहाते, जगृहिरे, जगृहिषे, जगृहाथे, जगृहिढ्वे-जगृहिध्वे, जगृहे, जगृहिवहे, जगृहिमहे।

लुट्(परस्मैपद) ग्रहीता, ग्रहीतारौ, ग्रहीतारः, ग्रहीतासि, ग्रहीतास्थः, ग्रहीतास्थ, ग्रहीतास्मि, ग्रहीतास्वः, ग्रहीतास्मः। **(आत्मनेपद)** ग्रहीता, ग्रहीतारौ, ग्रहीतारः, ग्रहीतासे, ग्रहीतासाथे, ग्रहीताध्वे, ग्रहीताहे, ग्रहीतास्वहे, ग्रहीतास्महे।

लृट्(परस्मैपद) ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यतः, ग्रहीष्यन्ति, ग्रहीष्यसि, ग्रहीष्यथः, ग्रहीष्यथ, ग्रहीष्यामि, ग्रहीष्यावः, ग्रहीष्यामः। **(आत्मनेपद)** ग्रहीष्यते, ग्रहीष्येते, ग्रहीष्यन्ते, ग्रहीष्यसे, ग्रहीष्येथे, ग्रहीष्यध्वे, ग्रहीष्ये, ग्रहीष्यावहे, ग्रहीष्यामहे।

लोट्(परस्मैपद) गृह्णातु-गृह्णीतात्, गृह्णीताम्, गृह्णन्तु, गृहाण-गृह्णीतात्, गृह्णीतम्, गृह्णीत, गृह्णानि, गृह्णाव, गृह्णाम। **(आत्मनेपद)** गृह्णीताम्, गृह्णाताम्, गृह्णताम्, गृह्णीष्व, गृह्णाथाम्, गृह्णीध्वम्, गृह्णै, गृह्णावहै, गृह्णामहै।

लङ्(परस्मैपद) अगृह्णात्, अगृह्णीताम्, अगृह्णन्, अगृह्णः, अगृह्णीतम्, अगृह्णीत, अगृह्णम्, अगृह्णीव, अगृह्णीम। **(आत्मनेपद)** अगृह्णीत, अगृह्णाताम्, अगृह्णत, अगृह्णीथाः, अगृह्णाथाम्, अगृह्णीध्वम्, अगृह्णि, अगृह्णीवहि, अगृह्णीमहि।

विधिलिङ्(परस्मैपद) गृह्णीयात्, गृह्णीयाताम्, गृह्णीयुः, गृह्णीयाः, गृह्णीयातम्, गृह्णीयात, गृह्णीयाम्, गृह्णीयाव, गृह्णीयाम। **(आत्मनेपद)** गृह्णीत, गृह्णीयाताम्, गृह्णीरन्, गृह्णीथाः, गृह्णीयाथाम्, गृह्णीध्वम्, गृह्णीय, गृह्णीवहि, गृह्णीमहि।

आशीर्लिङ्(परस्मैपद) गृह्यात्, गृह्यास्ताम्, गृह्यासुः, गृह्याः, गृह्यास्तम्, गृह्यास्त, गृह्यासम्, गृह्यास्व, गृह्यास्म। **(आत्मनेपद)** ग्रहीषीष्ट, ग्रहीषीयास्ताम्, ग्रहीषीरन्, ग्रहीषीष्ठाः, ग्रहीषीयास्थाम्, ग्रहीषीढ्वम्-ग्रहीषीध्वम्, ग्रहीषीय, ग्रहीषीवहि, ग्रहीषीमहि।

लुङ्(परस्मैपद) अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, अग्रहीषुः, अग्रहीः, अग्रहीष्टम्, अग्रहीष्ट, अग्रहीषम्, अग्रहीष्व, अग्रहीष्म। **(आत्मनेपद)** अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्, अग्रहीषत, अग्रहीष्ठाः, अग्रहीषाथाम्, अग्रहीढ्वम्-अग्रहीध्वम्, अग्रहीषि, अग्रहीष्वहि, अग्रहीष्महि।

लृङ्(परस्मैपद) अग्रहीष्यत्, अग्रहीष्यताम्, अग्रहीष्यन्, अग्रहीष्यः, अग्रहीष्यतम्, अग्रहीष्यत, अग्रहीष्यम्, अग्रहीष्याव, अग्रहीष्याम। **(आत्मनेपद)** अग्रहीष्यत, अग्रहीष्येताम्, अग्रहीष्यन्त, अग्रहीष्यथाः, अग्रहीष्येथाम्, अग्रहीष्यधवम्, अग्रहीष्ये, अग्रहीष्यावहि, अग्रहीष्यामहि। उभयपदी धातुओं का विवेचन पूर्ण हुआ। अब परस्मैपदी धातुओं का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

कुष निष्कर्षे। कुष धातु **निष्कर्ष** अर्थात् **बाहर निकालना** अर्थ में प्रयुक्त है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **कुष्** शेष रह जाता है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से परस्मैपद का विधान होता है। यह धातु अनुदात्तों में परिगणित नहीं है, अतः सेट् है। इसके रूप सरल हैं। यह धातु हलन्त है, अतः लोट्, परस्मैपद के सि में **हलः श्नः शानज्झौ** से शानच् होकर **कुषाण** बनता है।

लट्- कुष्णाति, कुष्णीतः, कुष्णन्ति। **लिट्**- चुकोष, चुकुषतुः, चुकुषुः, चुकोषिथ। **लुट्**- कोषिता, कोषितासि। **लृट्**- कोषिष्यति। **लोट्**- कुष्णातु-कुष्णीतात्। **लङ्**- अकुष्णात्। **विधिलिङ्**- कुष्णीयात्। **आशीर्लिङ्**- कुष्यात्। **लुङ्**- अकोषीत्। **लृङ्**- अकोषिष्यत्।

अश भोजने। अश धातु **भोजन करना** अर्थ में प्रयुक्त है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **अश्** शेष रह जाता है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से परस्मैपद का विधान होता है। यह धातु अनुदात्तों में परिगणित नहीं है, अतः सेट् है। इसके भी रूप सरल ही हैं। यह धातु हलन्त है, अतः लोट्, परस्मैपद के सि में **हलः श्नः शानज्झौ** से शानच् होकर **अशान** बनता है।

लट्- अश्नाति, अश्नीतः, अश्नन्ति। **लिट्**- आश, आशतुः, आशुः, आशिथ। **लुट्**- अशिता, अशितासि। **लृट्**- अशिष्यति। **लोट्**- अश्नातु-अश्नीतात्, अशान। **लङ्**- आश्नात्, आश्नीताम्। **विधिलिङ्**- अश्नीयात्। **आशीर्लिङ्**- अश्यात्। **लुङ्**- आशीत्। **लृङ्**- आशिष्यत्।

मुष स्तेये। मुष धातु **स्तेये** अर्थात् **चुराना** अर्थ में है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **मुष्** शेष रह जाता है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण परस्मैपदी है। यह धातु षकारान्त अनुदात्तों में परिगणित नहीं है, अतः सेट् है। इसके भी रूप सरल हैं। यह

धातु हलन्त है, अतः लोट्, परस्मैपद के सि में **हलः श्नः शानज्झौ** से शानच् होकर **मुषाण** बनता है।

लट्- मुष्णाति, मुष्णीतः, मुष्णन्ति। **लिट्**- मुमोष, मुमुषतुः, मुमुषुः, मुमोषिथ। **लुट्**- मोषिता, मोषितासि। **लृट्**- मोषिष्यति। **लोट्**- मुष्णातु-मुष्णीतात्। **लङ्**- अमुष्णात्। **विधिलिङ्**- मुष्णीयात्। **आशीर्लिङ्**- मुष्यात्। **लुङ्**- अमोषीत्। **लृङ्**- अमोषिष्यत्।

ज्ञा अवबोधने। ज्ञा धातु **जानना** अर्थ में है। **भू** की तरह यहाँ भी किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण परस्मैपदी है। यह धातु **ऊदृदन्तै०** इस कारिका में परिगणित नहीं है, अतः अनुदात्त है। फलतः इट् नहीं होगा किन्तु लिट् में **क्रादिनियम** से नित्य से इट् और **थल्** में **भारद्वाजनियम** से विकल्प से इट् होता है। **श्ना** इस शित् प्रत्यय के परे **ज्ञाजनोर्जा** से **ज्ञा** के स्थान पर **जा** आदेश होता है। लिट् में **पपौ** की तरह **जज्ञौ** बनता है। हलादि शेष होते समय **ज्ञ** का आदि वर्ण **ज्** ही शेष रहता है। यह धातु **अनुपसर्गाज्ज्ञः** के अनुसार कर्तृगामि क्रियाफल में आत्मनेपदी भी हो जाती है। **लट्**- जानाति, जानीतः, जानन्ति। जानीते, जानाते, जानते। **लिट्**- जज्ञौ, जज्ञतुः, जज्ञुः, जज्ञिथ-जज्ञाथ। जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे। **लुट्**- ज्ञाता, ज्ञातासि, ज्ञास्यते। **लृट्**- ज्ञास्यति, ज्ञास्यते। **लोट्**- जानातु-जानीतात्, जानीताम्, जानन्तु। जानीताम्, जानाताम्, जानताम्। **लङ्**- अजानात्, अजानीताम्, अजानन्। अजानीत, अजानीताम्, अजानत। **विधिलिङ्**- जानीयात्, जानीयात। **आशीर्लिङ्** में **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एत्त्व होकर ज्ञेयात्-ज्ञायात्। ज्ञासीष्ट। **लुङ्**-में **यमरमनमातां सक् च** से सक् एवम् इट् होकर अज्ञासीत्, अज्ञासिष्टाम्, अज्ञासिषुः आदि। आज्ञास्त। **लृङ्**- अज्ञास्यत्, अज्ञास्यत।

वृङ् सम्भक्तौ। यह धातु **पूजा करना, सेवा करना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने से आत्मनेपदी बन जाता है। सेट् है। लिट् में कित्त्व के कारण **श्र्युकः किति** से इडागम का निषेध होता है।

लट्- वृणीते, वृणाते, वृणते। **लिट्**- वव्रे, वव्राते, वव्रिरे। **लुट्**- वरीता-वरिता। **लृट्**- वरीष्यते-वरिष्यते। **लोट्**- वृणीताम्, वृणाताम्, वृणताम्। वृणीष्व। **लङ्**- अवृणीत। **विधिलिङ्**- वृणीत। **आशीर्लिङ्**- अवरीष्ट-अवरिष्ट। **लुङ्**- अवरिष्ट-अवृत। **लृङ्**- अवरीष्यत-अवरिष्यत।

परीक्षा

१-	अपनी पुस्तिका में **क्री** धातु के सभी रूप लिखें।	१०
२-	**क्री** के लिट् तथा लुङ् के सभी रूपों की सिद्धि करें।	२०
३-	**जॄस्तम्भुम्रुचुः०** इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या करें।	२०

श्री वरदाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का क्र्यादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ चुरादयः

चुर स्तेये॥१॥

णिच्-विधायकं विधिसूत्रम्

६९५. सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५॥

एभ्यो णिच् स्यात्। **चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ** इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। **चुरादिभ्यस्तु** स्वार्थे। **पुगन्तेति** गुणः। **सनाद्यन्ता** इति धातुत्वम्। तिप्शबादि। गुणायादेशौ। चोरयति।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **चुरादिप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। तिङन्त-प्रकरण अथवा धातु-प्रकरण में यह **दसवाँ** प्रकरण है। किन्तु अन्य प्रकरणों से यह नितान्त भिन्न है। अन्य प्रकरणों में धातु और लकार के बीच में शप् आदि विकरण होते हैं किन्तु इस प्रकरण में मूलधातु से कोई विकरण नहीं होता। जब धातु से लकार आने के पहले ही स्वार्थ में **णिच्** प्रत्यय होता है, उस ण्यन्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होनेपर लकार आते हैं, तब शप् होता है। णिच् किसी अर्थ को लेकर नहीं होता। जिस प्रत्यय में किसी अर्थ विशेष की अपेक्षा नहीं रखी जाती, वह प्रत्यय स्वार्थ में विहित होता है अर्थात् प्रकृति के अर्थ को ही परिपुष्ट करने के लिए ही होता है, अन्य किसी विशेष अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। कहा भी गया है- **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।** इस प्रकरण में होने वाला णिच् लकार के पहले आता है और णिजन्त होने के बाद **सनाद्यन्ता धातवः** से पुनः धातुसंज्ञक बन जाता है। उसके बाद ही लट्, तिप्, शप् आदि होते हैं।

चुर स्तेये। चुर् धातु **चोरी करना** अर्थ में है। अन्त्य अकार इत्संज्ञक नहीं है, उच्चारणार्थ लगा हुआ है अर्थात् उभयपद के विधान के लिए नहीं है क्योंकि उभयपद के विधान के लिए आगे **णिचश्च** कहा जा रहा है।

६९५- सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्। चुर् आदिर्येषां ते चुरादयः। सत्यापश्च, पाशश्च, रूपञ्च, वीणा च, तूलञ्च, श्लोकश्च, सेना च, लोम च, त्वचश्च वर्म च वर्णञ्च, चूर्णञ्च, चुरादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः

सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादयस्तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भो द्वन्द्वः। सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, णिच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रत्ययः** और **परश्च** इन दोनों सूत्रों का अधिकार है।

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण आदि नामधातुओं और चुर् आदि गणपठित धातुओं से परे स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है।

णिच् में चकार की **हलन्त्यम्** से तथा णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। केवल **इ** बचता है। णित् होने के कारण **अत उपधायाः, अचो ञ्णिति** आदि से वृद्धि या **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण आदि होते हैं। इसके बाद प्रकृति-प्रत्ययरूप समुदाय की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हो जाती है।

चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे। कौमुदीकार यहाँ पर कह रहे हैं कि इस सूत्र में **सत्याप, पाश** आदि शब्दों को पढ़ना आवश्यक नहीं है, केवल **चुरादिभ्यो णिच्** कहने से काम चल जाता, क्योंकि इनमें **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** इस गणसूत्र से ही काम चल सकता है। **प्रातिपदिकों से धातु के अर्थ में बहुल से णिच्च हो और उस णिच् को प्रत्यय की की तरह मान कर के सभी कार्य हों।** इस तरह **सत्याप से चूर्ण पर्यन्त के धातुओं से णिच् हो सकता है।** फिर **सत्याप** से लेकर **चूर्ण** पर्यन्त की इतनी धातुओं का यहाँ पर कथन करना केवल विस्तार मात्र अर्थात् स्पष्टतया ज्ञान कराना ही लक्ष्य है। यहाँ पर **चुरादिभ्यो णिच्** इतना ही सूत्र करने से काम चल सकता है।

चुरादि धातुओं से तो स्वार्थ में ही णिच् होता है अर्थात् इस प्रत्यय के लगने के बाद भी धातु के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता।

जिस तरह से आगे **चुर्** से णिच् करके **चोरयति** बनाया जा रहा है उसी तरह **सत्याप** से **सत्यापयति**(सत्य को करता या कहता है), **विपाशयति**(पाश को छुड़ाता है), **रूपयति**(रूप देता है), **वीणयति**(वीणा के साथ गाता है), **तूलयति**(तोलता है), **श्लोकयति**(श्लोकों से स्तुति करता है) आदि बनाये जाते हैं।

चोरयति। चुर्-धातु से लट् लकार के आने के पहले ही स्वार्थ में **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से णिच् प्रत्यय हुआ। णिच् में णकार की **चुटू** से और चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हुई तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ, **इ** बचा। **चुर्+इ** बना। णिच् वाले **इकार** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** हुई और **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत **चुर्** के **उकार** को गुण होकर **चोर्+इ** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ तो **चोरि** बना। चुर् प्रकृति और णिच् प्रत्यय का समुदाय **चोरि** है, उसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। धातु होने के कारण वर्तमान काल में **वर्तमाने लट्** से लट् लकार और उसके स्थान पर तिप्, उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, उसको शप्, अनुबन्धलोप करके **चोरि+अ+ति** बना। शप् वाला अकार सार्वधातुक है, उसके परे रहते **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **चोरि** के **इकार** को गुण करके **चोरे+अति** बना। **अय्** आदेश होने पर **चोर्+अय्+अति** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **चोरयति**

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

६९६. **णिचश्च १।३।७४॥**

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात्, चोरयिषीष्ट। **णिश्रीति** चङ्। **णौ चङीति** ह्रस्वः। **चङीति** द्वित्वम्। हलादिशेषः। **दीर्घो लघोरि**त्यभ्यासस्य दीर्घः। अचूचुरत्, अचूचुरत। अचोरयत्-अचोरयत। **कथ वाक्यप्रबन्धे॥२॥** अल्लोपः। **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ।** अल्विध्यर्थमिदम्। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्यात् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः। कथयति। अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न। अचकथत्। **गण संख्याने॥३॥** गणयति।

....

सिद्ध हुआ। इस प्रकार से लट्-लकार के परस्मैपद में रूप बनते हैं- **चोरयति, चोरयतः, चोरयन्ति। चोरयसि, चोरयथः, चोरयथ। चोरयामि, चोरयावः, चोरयामः।**

६९६- **णिचश्च।** णिचः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** और **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से **कर्त्रभिप्राये** और **क्रियाफले** की अनुवृत्ति आती है।

णिजन्त धातुओं से आत्मनेपद का विधान होता है, यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो रहा हो तो।

जिस प्रकार से **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** यह उभयपद का विधान करता है, उसी प्रकार यह सूत्र भी क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो तो णिजन्त धातु से आत्मनेपद का विधान करता है और क्रिया का फल कर्ता को नहीं मिल रहा हो तो परस्मैपद भी हो जाता है।

चोरयते। चुर् धातु से णिच् आदि करके **चोरि** बनाने के बाद लट् के स्थान पर **णिचश्च** से आत्मनेपद का विधान हुआ, त आया, उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, उसको शप्, अनुबन्धलोप करके **चोरि+अ+त** बना। शप् वाला अकार सार्वधातुक है, उसके परे रहते **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **चोरि** के **इकार** को गुण करके **चोरे+अत** बना। **अय्** आदेश होने पर **चोर्+अय्+अत** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **चोरयत** बना। **त** में **अकार** को **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व हुआ- **चोरयते** सिद्ध हुआ। इस प्रकार से लट्-लकार के आत्मनेपद के रूप बनते हैं- **चोरयते, चोरयेते, चोरयन्ते। चोरयसे, चोरयेथे, चोरयध्वे। चोरये, चोरयावहे, चोरयामहे।**

चुरादिगण में णिच् के आ जाने से सब धातु **अनेकाच्** बन जाते हैं। अतः सभी धातुओं से लिट् में आम्-प्रत्यय आदि वलादि आर्धधातुक को इट् भी हो जाते हैं।

कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि। इस वार्तिक का स्मरण करें। यह अनेकाच् धातुओं से भी आम् का विधान करता है। आम् होने के बाद तो **आमः** से लिट् का लुक् और **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को पर लेकर कृ, भू और अस् का अनुप्रयोग होता है। आप **गोपायाञ्चकार** की प्रक्रिया का स्मरण करें।

चोरयाञ्चकार। चुर्-धातु से लिट् लकार की प्राप्ति थी, उसे बाधकर स्वार्थ में **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से णिच् प्रत्यय हुआ। णिच् में णकार की **चुटू** से और चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हुई तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ, **इ** बचा। **चुर्+इ** बना। **णिच्** वाले **इकार** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत चुर् के उकार को गुण होकर **चोर्+इ** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ तो **चोरि** बना। चुर् प्रकृति और णिच् प्रत्यय का समुदाय चोरि है, उसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। धातु होने के कारण परोक्षभूत काल में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार और उसके स्थान पर तिप्, उसके स्थान पर णल् करके **चोरि+अ** बना। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** वार्तिक से धातु के बाद आम् हुआ। **चोरि+आम्+अ** बना। **चोरि** के **इकार** के स्थान पर **अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु** से **अय्** आदेश हुआ, **चोर्+अय्+आम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **चोरयाम्+अ** बना। **आमः** से लिट् के **अ** का लोप हुआ। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर पहले **कृ** का अनुप्रयोग हुआ। **चोरयाम्+कृ+लिट्** बना। लिट् के स्थान पर तिप्, उसके स्थान पर णल्, अनुबन्धलोप, कृ को **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, **उरत्** से अर्, हलादिशेष, **कुहोश्चुः** से चुत्व आदि करके **चोरयाम्+चकृ+अ** बना। कृ के ऋकार की **अचो ञ्णिति** से आर्-वृद्धि हुई **चोरयाम्+चक्+आर्+अ=चोरयाम्+चकार** बना। मकार का अनुस्वार और अनुस्वार का परसवर्ण करके ञकार बना। इस तरह **चोरयाञ्चकार** सिद्ध हुआ। आगे के रूप आप स्वयं बनायें।

चुरादिगणीय सभी धातु णिच् के कारण अनेकाच् हो जाते हैं, अत: सभी धातुओं से लिट् में आम्, कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि होता ही है। आम् प्रत्यय की प्रकृति बनी हुई ण्यन्त **चोरि** धातु के उभयपदी होने से अनुप्रयुज्यमान कृ-धातु भी उभयपदी हो जाती है।

लिट् परस्मैपद में- चोरयाञ्चकार, चोरयाञ्चक्रतुः, चोरयाञ्चक्रुः। चोरयाञ्चकर्थ, चोरयाञ्चक्रथुः, चोरयाञ्चक्र। चोरयाञ्चकार-चोरयाञ्चकर, चोरयाञ्चकृव, चोरयाञ्चकृम। **आत्मनेपद में**- चोरयाञ्चक्रे, चोरयाञ्चक्राते, चोरयाञ्चक्रिरे। चोरयाञ्चकृषे, चोरयाञ्चक्राथे, चोरयाञ्चकृढ्वे। चोरयाञ्चक्रे, चोरयाञ्चकृवहे, चोरयाञ्चकृमहे।

भू और **अस्** के अनुप्रयोग होने पर केवल परस्मैपद ही होगा, क्योंकि **भू** और **अस्** धातु केवल परस्मैपदी हैं- चोरयाम्बभूव, चोरयाम्बभूवतुः, चोरयाम्बभूवुः। चोरयाम्बभूविथ, चोरयाम्बभूवथुः, चोरयाम्बभूव। चोरयाम्बभूव, चोरयाम्बभूविव, चोरयाम्बभूविम। इसी प्रकार चोरयामास, चोरयामासतुः, चोरयामासुः। चोरयामासिथ, चोरयामासथुः, चोरयामास। चोरयामास, चोरयामासिव, चोरयामासिम।

लुट् में **णिच्** आदि करके **चोरि** बनाने के बाद तिप्, तासि, इट् आदि करके **चोरि+इ+तास्+ति** बना है। इकार को गुण अयादेश, डा आदेश, टिलोप, वर्णसम्मेलन करके **चोरयिता** सिद्ध होता है। **परस्मैपद में**- चोरयिता, चोरयितारौ, चोरयितारः। चोरयितासि, चोरयितास्थः, चोरयितास्थ। चोरयितास्मि, चोरयितास्वः, चोरयितास्मः। **आत्मनेपद में**- चोरयिता, चोरयितारौ, चोरयितारः। चोरयितासे, चोरयितासाथे, चोरयिताध्वे। चोरयिताहे, चोरयितास्वहे, चोरयितास्महे।

लृट् परस्मैपद- चोरयिष्यति, चोरयिष्यतः, चोरयिष्यन्ति। चोरयिष्यसि,

चोरयिष्यथः, चोरयिष्यथ। चोरयिष्यामि, चोरयिष्यावः, चोरयिष्यामः। **आत्मनेपद में**- चोरयिष्यते, चोरयिष्येते, चोरयिष्यन्ते। चोरयिष्यसे, चोरयिष्येथे, चोरयिष्यध्वे। चोरयिष्ये, चोरयिष्यावहे, चोरयिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद- चोरयतु-चोरयतात्, चोरयताम्, चोरयन्तु। चोरय-चोरयतात्, चोरयतम्, चोरयत। चोरयाणि, चोरयाव, चोरयाम। आत्मनेपद में- चोरयताम्, चोरयेताम्, चोरयन्ताम्। चोरयस्व, चोरयेथाम्, चोरयध्वम्। चोरयै, चोरयावहै, चोरयामहै।

लङ् परस्मैपद- अचोरयत्, अचोरयताम्, अचोरयन्। अचोरयः, अचोरयतम्, अचोरयत। अचोरयम्, अचोरयाव, अचोरयाम। **आत्मनेपद**- अचोरयत, अचोरयेताम्, अचोरयन्त। अचोरयथाः, अचोरयेथाम्, अचोरयध्वम्। अचोरये, अचोरयावहि, अचोरयामहि।

विधिलिङ् परस्मैपद- चोरयेत्, चोरयेताम्, चोरयेयुः। चोरयेः, चोरयेतम्, चोरयेत। चोरयेयम्, चोरयेव, चोरयेम। **आत्मनेपद**- चोरयेत, चोरयेयाताम्, चोरयेरन्। चोरयेथाः, चोरयेयाथाम्, चोरयेध्वम्। चोरयेय, चोरयेवहि, चोरयेमहि।

चोर्यात्। चोरि बनने के बाद आशीर्लिङ्, ति, यासुट् करके **चोरि+यास्+त्** बना। यास् आर्धधातुक तो है, परन्तु वलादि न होने के कारण उससे इट् नहीं हुआ। **णि** है **चोरि** का **इकार**, अतः **णेरनिटि** से **चोरि** के **इकार** का लोप हुआ- **चोर्+यास्+त्** बना, सकार का लोप करके **चोर्यात्** यह रूप सिद्ध हुआ। शेष रूप आप स्वयं सिद्ध करें।

परस्मैपद में- चोर्यात्, चोर्यास्ताम्, चोर्यासुः। चोर्याः, चोर्यास्तम्, चोर्यास्त। चोर्यासम्, चोर्यास्व, चोर्यास्म।

आत्मनेपद में- चोरयिषीष्ट, चोरयिषीयास्ताम्, चोरयिषीरन्। चोरयिषीष्ठाः, चोरयिषीयास्थाम्, चोरयिषीढ्वम्-चोरयिषीध्वम्। चोरयिषीय, चोरयिषीवहि, चोरयिषीमहि।

अचूचुरत्। चोरि से लुङ्, तिप् अट् आगम करके **अचोरि+त्** बना। **च्लि** करके उसके स्थान पर **सिच्** आदेश प्राप्त था, उसको बाधकर **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से ण्यन्त-धातु मानकर **च्लि** के स्थान पर **चङ्** आदेश हुआ। **चकार** और **ङकार** की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद **अ** बचा। **अचोरि+अ+त्** बना। अब **णेरनिटि** से **णि** के **इकार** का लोप करने पर **अचोर्+अ+त्** बना। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से उपधाभूत **चो** के **ओकार** को **ह्रस्व** हुआ तो **उकार** हुआ। **अचुर्+अत्** बना। **चङि** से **चुर्** को **द्वित्व** हुआ, उसकी अभ्याससंज्ञा और हलादि शेष कर **अचुचुर्+अत्** बना। **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** इसने अभ्यास **चु** के लिए **सन्वद्भाव** अर्थात् **सन्** के परे होने पर जो कार्य हो सकते हैं, वे कार्य हो जायें ऐसा अतिदेश कर दिया। **सन्वद्भाव** होने के बाद अभ्यास **चु** को **दीर्घो लघोः** से **दीर्घ** हुआ, **अचूचुर्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **अचूचुरत्**। यही प्रक्रिया अन्य परस्मैपद तस्, झि आदि और आत्मपेपद त, आताम् आदि में भी समझनी चाहिए।

चुरादिगण में विशेष ध्यान लुङ् लकार में देना होता है क्योंकि अन्य लकारों में तो **णिच्** के बाद सरल ही रूप बनते हैं। **लुङ्** में **चङ्, द्वित्व, सन्वद्भाव** आदि कार्य विशेष होते हैं।

चुर्-चोरि के लुङ् के रूप, परस्मैपद में- अचूचुरत्, अचूचुरताम्, अचूचुरन्। अचूचुरः, अचूचुरतम्, अचूचुरत। अचूचुरम्, अचूचुराव, अचूचुराम। **आत्मनेपद में**- अचूचुरत, अचूचुरेताम्, अचूचुरन्त। अचूचुरथाः, अचूचुरेथाम्, अचूचुरध्वम्। अचूचुरे, अचूचुरावहि, अचूचुरामहि।

लृङ् परस्मैपद में- अचोरयिष्यत्, अचोरयिष्यताम्, अचोरयिष्यन्। अचोरयिष्य:, अचोरयिष्यतम्, अचोरयिष्यत। अचोरयिष्यम्, अचोरयिष्याव, अचोरयिष्याम। **आत्मनेपद में**- अचोरयिष्यत, अचोरयिष्येताम्, अचोरयिष्यन्त। अचोरयिष्यथा:, अचोरयिष्येथाम्, अचोरयिष्यध्वम्। अचोरयिष्ये, अचोरयिष्यावहि, अचोरयिष्यामहि।

कथ वाक्यप्रबन्धे। कथ धातु **वाक्यप्रबन्ध** अर्थात् **वाक्यों का उच्चारण करना, बोलना** आदि अर्थों में है। यह धातु **अदन्त** ही है अर्थात् अन्त्य अकार की इत्संज्ञा नहीं होती। पाणिनि जी ने इसमें **अनुनासिकत्व** की प्रतिज्ञा नहीं की है। इसी तरह के अनेक धातु हैं।

कथ इस अदन्त धातु से ही **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से **णिच्** प्रत्यय करके **कथ+इ** बन जाता है। **णिच्** को आर्धधातुक मानकर **अतो लोप:** से थकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ। **कथ्+इ** में **अत उपधाया:** ककारोत्तरवर्ती उपधाभूत अकार की वृद्धि करने के लिए प्रवृत्त था किन्तु **अच: परस्मिन् पूर्वविधौ** से अकार के लोप को स्थानिवद्भाव करके वृद्धि को रोका जाता है। स्थानिवद्भावविधायक सूत्र का अर्थ है- **पर को निमित्त मानकर हुआ अजादेश स्थानिवत् हो, यदि उस स्थानिभूत अच् से पूर्व देखे गये के स्थान पर कार्य करना हो तो।** यहाँ पर **अच् के** स्थान पर हुआ **आदेश** है **अतो लोप:** से किया गया **अकार** का लोप, उस अकार से पूर्व में विद्यमान अकार की वृद्धि करनी है। इस तरह यह सूत्र पूरा का पूरा घट गया। फलत: लोप का स्थानिवद्भाव हुआ अर्थात् अकार के लोप होने पर भी स्थानिवत्त्वेन बीच में अकार मान लिया गया, जिससे **कथ** में उपधा अकार न बन कर थकार बन गया। थकार की वृद्धि का प्रसंग नहीं हो सकता। अत: **अत उपधाया:** से वृद्धि नहीं हो सकी, **कथि** ही बन गया। उपधावृद्धि हो जाती तो **काथि** बन जाता। अब **कथि** की **सनाद्यन्ता धातव:** से धातुसंज्ञा करके **णिचश्च** से कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद होता है, अन्यथा परस्मैपद का विधान होता है। परस्मैपद में लट्, तिप्, शप् करके **कथि+अति** बना। इकार को सार्वधातुकगुण, अयादेश करके **कथयति** सिद्ध हो जाता है। आत्मनेपद में **कथयते।** शेष रूप सरल ही हैं।

यदि धातु से णिच् करने के पहले ही **चुर्** की तरह अकार की इत्संज्ञा करके लोप किया जाता तो **स्थानिवद्भाव** का प्रसंग न आता, फलत: वृद्धि होकर **काथि** हो जाता और उससे **काथयति** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **चुर्** में तो **अत्** न होने के कारण वृद्धि प्राप्त ही नहीं होती किन्तु उपधागुण होकर **चोरि** बनता है। णिच् आने के बाद अकार का लोप करने से धातु **अग्लोपी** बन जाता है, जिससे **लुङ्** में **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव नहीं होगा। फलत: दीर्घ आदि कार्य भी नहीं होंगे। अक्=प्रत्याहार है। जहाँ उसका लोप होता है, उसे **अग्लोपी** कहा जाता है।

चुरादिगण में धातुओं को **अदन्त** मानने के दो फल हैं- १- गुण, वृद्धि का निषेध, और २- अग्लोपी हो जाने से सन्वद्भाव का न होना।

यहाँ पर सभी लकारों के प्रथमपुरुष एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं। आप सभी पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बना लें, क्योंकि सरल ही हैं।

लट्- कथयति, कथयते। **लिट्**- कथयाञ्चकार, कथयाम्बभूव, कथयामास। **लुट्**- कथयिता, कथयितासि, कथयितासे। **लृट्**- कथयिष्यति, कथयिष्यते। **लोट्**- कथयतु-कथयतात्, कथयताम्। **लङ्**- अकथयत्, अकथयत। **विधिलिङ्**- कथयेत्, कथयेत।

ईकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६९७. ई च गणः ७।४।९७॥

गणयतेरभ्यासस्य ई स्याच्चङ् परे णौ चादत्। अजीगणत्, अजगणत्।

इति चुरादयः॥२१॥

....

आशीर्लिङ्- **अतो लोपः** से अकार का और **णेरनिटि** से **णि** का लोप करके **कथ्यात्।** **आत्मनेपद** में **कथयिषीष्ट** बनता है। **लुङ्** में **णि** को मानकर अकार का लोप हुआ है। अतः यह धातु **अग्लोपी** है। फलतः **सन्वल्लघूनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव नहीं हुआ और दीर्घ भी नहीं हुआ। चङ् तो होगा ही, जिससे **अचकथत्, अचकथत** आदि रूप बन जाते हैं। **लृङ्-** अकथयिष्यत्, अकथयिष्यत।

गण संख्याने। **गण** धातु **गिनना** अर्थ में है। यह भी **कथ** की तरह ही अदन्त है। स्वार्थ में णिच्, **अतो लोपः** से अन्त्य अकार का लोप, वृद्धि की प्राप्ति, स्थानिवद्भाव करके वृद्धि का अभाव, **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा करके **कथयति** की ही तरह **गणयति** बन जाता है। **लट्** से **आशीर्लिङ्** तक तथा **लृङ्** में **कथ** की तरह ही रूप होते हैं। **लुङ्** में अग्रिम सूत्र **ई च गणः** से एक पक्ष में **ईकार** आदेश और एक पक्ष में **अकार** ही रह जाने से **अजीगणत्, अजगणत्** ऐसे दो-दो रूप बन जाते हैं।

६९७- ई च गणः। ई लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, गणः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **सन्वल्लघूनि चङ्परेऽनग्लोपे** से **चङ्परे** की अनुवृत्ति आती है। **चङ् परे हो** ऐसा **णि** ही मिल सकता है, अतः **णौ** का अध्याहार किया जाता है।

चङ् परे हो ऐसे णि के परे होने पर गण धातु के अभ्यास को ईकार आदेश होता है, सूत्र में चकार पढ़ा गया है, इससे अत् आदेश भी हो सकता है अथवा अकार ही रह जाता है।

इस तरह से इस सूत्र से एक पक्ष में **ईकार** और एक पक्ष में **अकार** हो जाते हैं।

अजीगणत्, अजगणत्। **गणि** से लुङ्, तिप्, अडागम, च्लि, उसके स्थान पर प्राप्त सिच् को बाधकर ण्यन्त मानकर **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से चङ्, णिलोप, द्वित्व तथा अभ्यास को चुत्व करके **अजगण्+अत्** बना है। **ई च गणः** से अभ्याससंज्ञक जकारोत्तरवर्ती अकार को **ईकार** आदेश करने पर **अजीगण्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन करके **अजीगणत्** सिद्ध हुआ। **अकार** होने के पक्ष में **अजगण्+अत्** है। वर्णसम्मेलन, **अजगणत्।** इसी तरह आत्मनेपद में भी **अजीगणत, अजगणत** ऐसे रूप हो जाते हैं।

यहाँ पर सभी लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं। आप सभी पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बना लें, क्योंकि सरल ही हैं।

लट्- गणयति, गणयते। **लिट्-** गणयाञ्चकार, गणयाम्बभूव, गणयामास। **लुट्-** गणयिता, गणयितासि, गणयितासे। **लृट्-** गणयिष्यति, गणयिष्यते। **लोट्-** गणयतु-गणयतात्, गणयताम्। **लङ्-** अगणयत्, अगणयत। **विधिलिङ्-** गणयेत्, गणयेत। **आशीर्लिङ्-** **अतो लोपः** से अकार का और **णेरनिटि** से णि का लोप करके **गण्यात्।** **आत्मनेपद** में **गणयिषीष्ट** बनता है। **लुङ्** में **णि** को मान कर अकार का लोप हुआ है। अतः **अग्लोपी**

है। फलतः **सन्वल्लघूनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव और दीर्घ नहीं हुए। चङ् तो होगा ही, जिससे **अजगणत्, अजगणत** आदि रूप बन जाते हैं। **लृङ्**- अगणयिष्यत्, अगणयिष्यत।

चुरादि में ऐसे बहुत से धातु हैं, जिनके रूप आप स्वयं बना सकते हैं। कुछ धातुओं के अर्थ एवं लट्, लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को बनाना आपका काम है। कुछ धातु ऐसे हैं जिनके अकार के स्थान पर **सन्यतः** से इत्व होकर **दीर्घो लघोः** से दीर्घ होता है।

धातु	अर्थ	लट्	लुङ्
भक्ष अदने	भक्षण करना	भक्षयति-भक्षयते	अबभक्षयत्-अबभक्षयत
तड आघाते	पीटना	ताडयति-ताडयते	अतीतडत्-अतीतडत
तुल उन्माने	तोलना	तोलयति-तोलयते	अतूतुलत्-अतूतुलत
पूज पूजायाम्	पूजा करना	पूजयति-पूजयते	अपूपुजत्-अपूपुजत
क्षल शौचकर्मणि	धोना	क्षालयति-क्षालयते	अचिक्षलत्-अचिक्षलत
चिति स्मृत्याम्	चिन्तन करना	चिन्तयति-चिन्तयते	अचिचिन्तत्-अचिचिन्तत
पाल रक्षणे	पालन करना	पालयति-पालयते	अपीपलत्-अपीपलत
वृजी वर्जने	छोड़ना	वर्जयति-वर्जयते	अवीवृजत्-अवीवृजत
लक्ष दर्शनाङ्कनयोः,	देखना, चिह्नित करना	लक्षयति-लक्षयते	अललक्षत्-अललक्षत
रच प्रतियत्ने	रचना करना	रचयति-रचयते	अररचत्- अररचत
स्पृह ईप्सायाम्	चाहना	स्पृहयति-स्पृहयते	अपस्पृहत्-अपस्पृहत
दण्ड दण्डनिपातने	दण्ड देना	दण्डयति-दण्डयते	अददण्डत्-अददण्डत
वर्ण वर्णने	वर्णन करना	वर्णयति-वर्णयते	अववर्णत्-अववर्णत

परीक्षा

१- अपनी पुस्तिका में चुर्, गण और कथ धातु के सारे रूप लिखें और लुङ् के दोनों पदों के सभी रूपों की सिद्धि करें। ३०

२- सन्वद्भाव एवं उसको मानकर होने वाले कार्यों के सम्बन्ध में एक लेख लिखिये। १०

२- अन्य धातुप्रकरणों की अपेक्षा चुरादिप्रकरण की विशेषता बताइये १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का चुरादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

कर्तृसंज्ञा-विधायकं संज्ञासूत्रम्

६९८. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

हेतु-कर्तृसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

६९९. तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तिङन्त में णिजन्त अर्थात् **ण्यन्तप्रकरण** आरम्भ होता है। इस प्रकरण में अलग से कोई धातु नहीं हैं। भ्वादि से लेकर चुरादि तक के दशगणीय धातुओं से ही इस प्रकरण में **णिच्** होता है। उन धातुओं से **प्रेरणा** अर्थात् **कराना** अर्थ में णिच् किया जाता है। जैसे हिन्दी आदि भाषा में पढ़ने से पढ़ाना, करने से कराना, लिखने से लिखाना, खाने से खिलाना, देखने से दिखाना आदि क्रियाएँ बनती हैं, उसी प्रकार से संस्कृत के धातुओं से भी ऐसी ही अर्थों के लिए **णिच्** प्रत्यय करके क्रमशः पठति से **पाठयति**, करोति से **कारयति**, लिखति से **लेखयति**, खादति से **खादयति**, पश्यति से **दर्शयति** आदि बना लिया जाता है। जैसे **पठ्** धातु का अर्थ **पढ़ना** है, **णिच्** करके **पाठि** बनाने के बाद इसका अर्थ **पढ़ाना** हो जाता है। आइये, प्रेरणार्थक ण्यन्त अर्थात् णिजन्त प्रकरण को समझते हैं।

६९८- **स्वतन्त्रः कर्ता**। स्वतन्त्रः प्रथमान्तं, कर्ता प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कारके** का अधिकार चल रहा है।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित कारक कर्तृ(कर्ता)संज्ञक होता है।

वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। वाक्य में जो प्रधान होता है या क्रिया की सिद्धि के लिए जिसकी नितान्त अनिवार्यता होती है, जो वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके विना क्रिया हो ही नहीं पाती है, ऐसे कारक की **कर्तृसंज्ञा**(कर्ता-संज्ञा) इस सूत्र से की जाती है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार ही क्रिया में लिङ्ग, संख्या आदि का निर्धारण होता है। **जैसे राम पढ़ता है** इस वाक्य में क्रिया है- **पढ़ता है**, इस क्रिया की सिद्धि में **राम** की अनिवार्य भूमिका है, उसके विना क्रिया की सिद्धि हो ही नहीं सकती। अतः **राम** को कर्ता माना गया।

णिच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७००. हेतुमति च ३।१।२६॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्।

भवन्तं प्रेरयति भावयति।

....

६९९- तत्प्रयोजको हेतुश्च। तस्य (कर्तुः) प्रयोजकः(प्रवर्तयिता) तत्प्रयोजकः। तत्प्रयोजकः प्रथमान्तं, हेतुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वतन्त्रः कर्ता** से **कर्ता** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता के प्रयोजक की हेतुसंज्ञा और कर्तृसंज्ञा होती हैं।

प्रेरक की दोनों संज्ञाएँ होती हैं। जैसे **राम पढ़ता है** यह सामान्य वाक्य है। इसको प्रेरणार्थक में बनाया जाय तो **श्याम राम को पढ़ाता है,** ऐसा वाक्य बनेगा। **राम** जो पहले के वाक्य में **कर्ता** है, वह इस वाक्य में **कर्म** बना हुआ है। पढ़ने का कार्य **राम** कर रहा है और **पढ़ाने** का कार्य **श्याम** कर रहा है। अतः **श्याम** प्रेरक होने से **कर्ता** भी बन गया अर्थात् कर्तृसंज्ञक हो गया। श्याम राम को पढ़ाने में हेतु भी है, अतः वह **हेतुसंज्ञक** भी हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ **प्रेरणार्थक-ण्यन्त** धातु होती है वहाँ दो कर्ता होते हैं- **प्रयोज्य कर्ता** और **प्रयोजक कर्ता**। प्रयोज्य कर्ता वह है जो प्रेरक के द्वारा किसी क्रिया के करने में प्रेरित होता हो। जैसे- **रामः पठति** में पठन-क्रिया करने वाला राम है। अतः वह पठन-क्रिया में स्वतन्त्ररूप से विवक्षित होने से **कर्ता** है और जब ऐसे पढ़ते हुए राम को पढ़ने के लिए (ज्ञान बढ़ाने के लिए) जो सहायता करता है, वह **प्रयोजक (प्रेरक) कर्ता** कहलाता है। जैसे- **पठन्तं रामं (पठितुम्) प्रेरयति, पाठयति श्यामः**। पढ़ते हुए राम को पढ़ने के लिए प्रेरणा देता है श्याम। इस वाक्य में प्रेरक, सहायक हुआ **श्याम**। अतः इस इस **प्रयोजक, प्रेरक, सहायक श्याम** की **कर्तृसंज्ञा** और **हेतुसंज्ञा** दोनों ही होती हैं। इसलिए **श्याम प्रयोजक कर्ता** कहलाता है और प्रयोजक की प्रेरणा से पढ़ने वाला राम **प्रयोज्य कर्ता** कहलाता है।

७००- हेतुमति च। हेतुमति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** और **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से **णिच्** की अनुवृत्ति आती है।

प्रयोजक-प्रेरक कर्ता के व्यापार(प्रेषण-प्रेरण आदि) वाच्य होने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है।

जहाँ पर भी होने से होवाना, पढ़ने से पढ़ाना आदि अर्थ की अपेक्षा होती हैं, वहाँ पर इस सूत्र से णिच् हो जाता है। णिच् होने के बाद चुरादिगण की तरह प्रक्रिया चलती है। जैसे- **भवन्तं प्रेरयति भावयति।** जैसे- **देवदत्तः भवति-** देवदत्त होता है, होने वाले देवदत्त को यज्ञदत्त होवाता है अर्थात् होने की प्रेरणा देता है। ऐसी परिस्थिति में **भू** से **हेतुमति च** सूत्र के द्वारा **णिच्** प्रत्यय हो जाता है। **णिच्** में **णकार** और **चकार** की इत्संज्ञा होकर **इ** बचता है। **भू+इ** में **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होने पर **भौ+इ** बना, **आव्** आदेश होकर **भावि** बना। **भावि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है। **णिजन्त** होने के बाद **णिचश्च** से दोनों **परस्मैपद** और **आत्मनेपद** हो जाते हैं।

इत्वविधायकं विधिसूत्रम्

७०१. ओः पुयण्ज्यपरे ७।४।८०॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत् स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः। अबीभवत्। **ष्ठा गतिनिवृत्तौ॥१॥**

....

भावयति। भू धातु से **भावि** बनने के बाद लट्-लकार, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप, **भावि+अंति** बना। **इकार** को गुण और उसको अय् आदेश, **भाव्+अय्+अति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **भावयति** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से दोनों पदों में रूप बनाइये।

लट् परस्मैपद में- भावयति, भावयतः, भावयन्ति। भावयसि, भावयथः, भावयथ। भावयामि, भावयावः, भावयामः। **आत्मनेपद में-** भावयते, भावयेते, भावयन्ते। भावयसे, भावयेथे, भावयध्वे। भावये, भावयावहे, भावयामहे।

लिट् परस्मैपद में कृ का अनुप्रयोग होने पर- भावयाञ्चकार, भावयाञ्चक्रतुः, भावयाञ्चक्रुः। भावयाञ्चकर्थ, भावयाञ्चक्रथुः, भावयाञ्चक्र। भावयाञ्चकार- भावयाञ्चकर, भावयाञ्चकृव, भावयाञ्चकृम। **आत्मनेपद में-** भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चक्राते, भावयाञ्चक्रिरे। भावयाञ्चकृषे, भावयाञ्चक्राथे, भावयाञ्चकृढ्वे। भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चकृवहे, भावयाञ्चकृमहे। **भू का अनुप्रयोग होने पर-** भावयाम्बभूव, भावयाम्बभूवतुः, भावयाम्बभूवुः। भावयाम्बभूविथ, भावयाम्बभूवथुः, भावयाम्बभूव। भावयाम्बभूव, भावयाम्बभूविव, भावयाम्बभूविम। **अस् का अनुप्रयोग होने पर-** भावयामास, भावयामासतुः भावयामासुः। भावयामासिथ, भावयामासथुः भावयामास। भावयामास, भावयामासिव, भावयामासिम।

लुट् परस्मैपद में- भावयिता, भावयितारौ, भावयितारः। भावयितासि, भावयितास्थः, भावयितास्थ। भावयितास्मि, भावयितास्वः, भावयितास्मः। **आत्मनेपद में-** भावयिता, भावयितारौ, भावयितारः। भावयितासे, भावयितासाथे, भावयिताध्वे। भावयिताहे, भावयितास्वहे, भावयितास्महे।

लृट् परस्मैपद में- भावयिष्यति, भावयिष्यतः, भावयिष्यन्ति। भावयिष्यसि, भावयिष्यथः, भावयिष्यथ। भावयिष्यामि, भावयिष्यावः, भावयिष्यामः। **आत्मनेपद में-** भावयिष्यते, भावयिष्येते, भावयिष्यन्ते। भावयिष्यसे, भावयिष्येथे, भावयिष्यध्वे। भावयिष्ये, भावयिष्यावहे, भावयिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- भावयतु-भावयतात्, भावयताम्, भावयन्तु। भावय-भावयतात्, भावयतम्, भावयत। भावयानि, भावयाव, भावयाम। **आत्मनेपद में-** भावयताम्, भावयेताम्, भावयन्ताम्। भावयस्व, भावयेथाम्, भावयध्वम्। भावयै, भावयावहै, भावयामहै।

लङ् परस्मैपद में- अभावयत्, अभावयताम्, अभावयन्। अभावयः, अभावयतम्, अभावयत। अभावयम्, अभावयाव, अभावयाम। **आत्मनेपद में-** अभावयत, अभावयेताम्, अभावयन्त। अभावयथाः, अभावयेथाम्, अभावयध्वम्। अभावये, अभावयावहि, अभावयामहि।

विधिलिङ् परस्मैपद में- भावयेत्, भावयेताम्, भावयेयुः। भावयेः, भावयेतम्, भावयेत। भावयेयम्, भावयेव, भावयेम। **आत्मनेपद में-** भावयेत, भावयेयाताम्, भावयेरन्। भावयेथाः, भावयेयाथाम्, भावयेध्वम्। भावयेय, भावयेवहि, भावयेमहि।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में- णेरनिटि से इकार का लोप होता है- भाव्यात्,

भाव्यास्ताम्, भाव्यासुः। भाव्याः, भाव्यास्तम्, भाव्यास्त। भाव्यासम्, भाव्यास्व, भाव्यास्म। **आत्मनेपद में**- भावयिषीष्ट, भावयिषीयास्ताम्,, भावयिषीरन्। भावयिषीष्ठाः, भावयिषीयास्थाम्, भावयिषीढ्वम्-भावयिषीध्वम्। भावयिषीय, भावयिषीवहि, भाविषीमहि।

५११- ओः पुयण्ज्यपरे। पुश्च, यण्च, ज् च तेषां समाहारद्वन्द्वः पुयण्ज्, तस्मिन् पुयण्जि। अः परो यस्मात्, स अपरस्तस्मिन् अपरे। ओः षष्ठ्यन्तं, पुयण्जि सप्तम्यन्तम्, अपरे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य**, **भृञामित्** से **इत्** और **सन्यतः** से **सनि** की अनुवृत्ति आती है।

सन् परे होने पर जो अङ्ग, उसके अवयव अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार आदेश होता है, यदि पवर्ग, यण्, जकार में से कोई परे हो किन्तु इनसे भी परे अकार होना चाहिए।

परिभाषा- णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये। द्वित्व करना हो तो **णिच्** को मानकर अच् के स्थान पर आदेश नहीं करना चाहिए। इस परिभाषा के बल पर **भू** से **हेतुमति च** द्वारा **णिच्** होने के बाद लुङ्-लकार में द्वित्व की कर्तव्यता में **भू** के स्थान पर वृद्धिरूपी अचादेश नहीं होता। अत' **भू+इ** इसी अवस्था में **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लुङ्, च्लि, चङ् आदि होने पर **चङि** से द्वित्व हो जाता है।

अबीभवत्। **भू+इ** से लुङ्, अट् आगम, तिप्, करके **अभू+इ+त्** बना। च्लि करके उसके स्थान पर **सिच्** आदेश प्राप्त था, उसको बाधकर **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से ण्यन्त-धातु मानकर च्लि के स्थान पर **चङ्** आदेश हुआ। **चकार** और **ङकार** की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद **अ** बचा। **अभू+इ+अ+त्** बना। **णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये** इस परिभाषा की सहायता से पहले **चङि** सूत्र से **भू** को द्वित्व हुआ, उसकी अभ्याससंज्ञा **ह्रस्वः** से प्रथम भू को ह्रस्व हुआ और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बु** हुआ, **अबु+भू+इ+अत्** बना। दीर्घ आदि के होने के बाद पहले निषिद्ध **भू** की **अचो ञ्णिति** से **वृद्धि** हो गई तो **भू** के स्थान पर **भौ** बन गया। **आव्** आदेश होकर **अबु+भाव्+इ+अत्** बना। अब **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से उपधाभूत **भाव्** के **आकार** को ह्रस्व हुआ। **अबु+भव्+इ+अत्** बना। **णेरनिटि** से णिच् वाले **इकार** का लोप हुआ। **अबु+भव्+अत्** बना। **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से अभ्यास **बु** के लिए **सन्वद्भाव** अर्थात् सन् के परे होने पर जो कार्य हो सकते हैं, वे कार्य हो जायें ऐसा **अतिदेश** कर दिया। **सन्वद्भाव** होने के बाद अभ्यास **बु** को **ओः पुयण्ज्यपरे** से **इत्** अर्थात् **ह्रस्व इकार** आदेश हुआ- **अबि+भव्+अत्** बना। **दीर्घो लघोः** से **बि** के **इकार** को दीर्घ हुआ, **अबी+भव्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **अबीभवत्।** यही प्रक्रिया परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों जगह समझनी चाहिए।

लुङ् परस्मैपद में- अबीभवत्, अबीभवताम्, अबीभवन्। अबीभवः, अबीभवतम्, अबीभवत। अबीभवम्, अबीभवाव, अबीभवाम। **आत्मनेपद में**- अबीभवत, अबीभवेताम्, अबीभवन्त। अबीभवथाः, अबीभवेथाम्, अबीभवध्वम्। अबीभवे, अबीभवावहि, अबीभवामहि।

लृङ् परस्मैपद में- अभावयिष्यत्, अभावयिष्यताम्, अभावयिष्यन्। अभावयिष्यः, अभावयिष्यतम्, अभावयिष्यत। अभावयिष्यम्, अभावयिष्याव, अभावयिष्याम। **आत्मनेपद में**- अभावयिष्यत, अभावयिष्येताम्, अभावयिष्यन्त। अभावयिष्यथाः, अभावयिष्येथाम्, अभावयिष्यध्वम्। अभावयिष्ये, अभावयिष्यावहि, अभावयिष्यामहि।

पुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७०२. अर्तिह्रीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ ७।३।३६॥

स्थापयति।

....

ष्ठा गतिनिवृत्तौ आदि धातुओं से भी णिजन्त में रूप बनाते हैं। ष्ठा धातु गति की निवृत्ति अर्थात् **ठहरने** अर्थ में है। यह भ्वादिगण का **परस्मैपदी** धातु है। **धात्वादेः षः सः** से **षकार** के स्थान पर **सकार** आदेश हुआ। **षकार** के कारण ही थकार जो है, वह **ठकार** बन गया था, जब **षकार** ही **सकार** में आ गया तो **ठकार** भी अपने पुराने रूप **थकार** में आ जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः**। इस तरह **ष्ठा** धातु **स्था** में बदल गया। भ्वादि में **पाघ्राध्मास्थाम्ना०** से **तिष्ठ** आदेश होकर **तिष्ठति** आदि रूप बनते हैं। अब **णिजन्तप्रकरण** में **हेतुमति च** से णिच् होने के बाद अग्रिम सूत्र **अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ** से **पुक्** का आगम होकर **स्थापयति** बनता है। **तिष्ठति**=ठहरता है और **स्थापयति**= ठहरवाता है, रूकवाता है।

७०२-**अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ**। अतिश्च ह्रीश्च व्लीश्च रीश्च क्नूयीश्च क्ष्मायीश्च आच्च तेषामितरेतरद्वन्द्व अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातस्तेषाम्। इस सूत्र में **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं को पुक् का आगम होता है णि के परे होने पर।

पुक् में उकार और ककार कि इत्संज्ञा होती है। प् शेष रहता है। कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से धातु के अन्त में बैठता है जिससे **ऋ+इ** से **अर्पि**, **ह्री+इ** से **ह्रेपि**, **व्ली+इ** से **व्लेपि**, **री+इ** से **रेपि**, **क्नू+इ** से **क्नोपि**, **क्ष्मा+इ** से **क्ष्मापि** और आकारान्त **स्था+इ** से **स्थापि**, **दा+इ** से **दापि**, **धा+इ** से **धापि**, **ज्ञा+इ** से **ज्ञापि** बन जाते हैं। आगे लकार आदि करके **अर्पयति, ह्रेपयति, व्लेपयति, रेपयति, क्नोपयति, क्ष्मापयति, स्थापयति, दापयति, धापयति और ज्ञापयति** बना लिए जाते हैं।

स्थापयति। ष्ठा से स्था बन जाने के बाद **हेतुमचि च** से प्रेरणार्थ में णिच् होकर अनुबन्धलोप होने के बाद **स्था+इ** बना। **अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ** से स्था को **पुक्** का आगम हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **प्** बचा। कित् होने के कारण **स्था** के अन्त में बैठा। **स्थाप्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **स्थापि** बना। **स्थापि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लट् लकार, तिप्, शप् करके **स्थापि+अ+ति** बना। इकार को गुण, अय् आदेश करके **स्थाप्+अय्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **स्थापयति** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार दोनों पदों के सभी लकारों में रूप बनाना चाहिए।

लट् परस्मैपद में- स्थापयति, स्थापयतः, स्थापयन्ति। स्थापयसि, स्थापयथः, स्थापयथ। स्थापयामि, स्थापयावः, स्थापयामः। **आत्मनेपद में**- स्थापयते, स्थापयेते, स्थापयन्ते। स्थापयसे, स्थापयेथे, स्थापयध्वे। स्थापये, स्थापयावहे, स्थापयामहे।

अब आगे के लकारों के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूपों को आप स्वयं जानने की चेष्टा करें।

लिट्- स्थापयाञ्चकार-स्थापयाञ्चक्रे, स्थापयाम्बभूव, स्थापयामास। **लुट्**- स्थापयिता,

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७०३. तिष्ठतेरित् ७।४।५॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ। अतिष्ठिपत्।

घट चेष्टायाम्॥२॥

....

स्थापयितासि-स्थापयितासे। **लृट्**- स्थापयिष्यति-स्थापयिष्यते। **लोट्**- स्थापयतु-स्थापयताम्। **लङ्**- अस्थापयत्-अस्थापयत। **विधिलिङ्**- स्थापयेत्-स्थापयेत। **आशीर्लिङ्**- स्थाप्यात्-स्थापयिषीष्ट।

७०३-**तिष्ठतेरित्**। तिष्ठतेः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से **णौ, चङि** और **उपधायाः** की अनुवृत्ति आती है।

चङ्-परक णि परे हो तो स्था-धातु की उपधा के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है।

अतिष्ठिपत्। स्थापि इस णिजन्त धातु से लुङ्, तिप्, अट्, च्लि, चङ् तथा णि का लोप करने पर **अस्थाप्+अत्** बना। अब यहाँ चङ्-परक णि के परे होने से **स्थाप्** के उपधाभूत **आकार** के स्थान पर **तिष्ठतेरित्** से ह्रस्व इकार आदेश हुआ, **अस्थिप्+अत्** बना। **चङि** से **स्थिप्** को द्वित्व, **स्थिप् स्थिप्** में हलादिशेष होने पर **शर्पूर्वाः खयः** (यह सूत्र हलादि शेष में यदि शर् पहले हो तो खय् को शेष और अन्य हलों का लोप करता है। यह **हलादि शेषः** बाधक है।) से सकार और पकार का लोप हुआ, थि बचा। **थिस्थिप्** बना। **अभ्यासे चर्च** से चर्त्व होकर **ति** हुआ, **अतिस्थिप्+अत्** बना। **ति** के इकार से परे सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** हुआ और षकार से परे **थकार** को **ष्टुना ष्टुः** से **ष्टुत्व** हुआ- **अतिष्ठिप्+अत्** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ- **अतिष्ठिपत्** सिद्ध हुआ।

परस्मैपद- अतिष्ठिपत्, अतिष्ठिपताम्, अतिष्ठिपन्। अतिष्ठिपः, अतिष्ठिपतम्, अतिष्ठिपत। अतिष्ठिपम्, अतिष्ठिपाव, अतिष्ठिपाम। **आत्मनेपद**- अतिष्ठिपत, अतिष्ठिपेताम्, अतिष्ठिपन्त। अतिष्ठिपथाः, अतिष्ठिपेथाम्, अतिष्ठिपध्वम्। अतिष्ठिपे, अतिष्ठिपावहि, अतिष्ठिपामहि।

लृङ्- परस्मैपद- अस्थापयिष्यत्, अस्थापयिष्यताम्, अस्थापयिष्यन्। अस्थापयिष्यः, अस्थापयिष्यतम्, अस्थापयिष्यत। अस्थापयिष्यम्, अस्थापयिष्याव, अस्थापयिष्याम। **आत्मनेपद में**- अस्थापयिष्यत, अस्थापयिष्येताम्, अस्थापयिष्यन्त। अस्थापयिष्यथाः, अस्थापयिष्येथाम्, अस्थापयिष्यध्वम्। अस्थापयिष्ये, अस्थापयिष्यावहि, अस्थापयिष्यामहि।

घट चेष्टायाम्। **घट** धातु **चेष्टा करना, प्रयत्न करना** अर्थ में है। यह धातु भ्वादिगण में अनुदात्तेत् के रूप में पठित होने से आत्मनेपदी है। वहाँ **घटते, जघटे** आदि रूप बनते हैं। यहाँ पर णिच् होने के बाद **णिचश्च** की प्रवृत्ति के कारण उभयपदी बन जाता है। इस प्रकरण में प्रयोजक व्यापार, प्रेरणा आदि अर्थ के लिए **हेतुमति च** से **णिच्** होकर **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **घाट्+इ** बनता है। इस स्थिति में ह्रस्व करने के लिए अग्रिम सूत्र है।

७०४- **मितां ह्रस्वः**। मितां षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ऊदुपधाया गोहः** से **उपधायाः** और **दोषो णौ** से **णौ** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

७०४. मितां ह्रस्वः ६।४।९२॥

घटादीनां ज्ञपादीनां चोपधाया ह्रस्वः स्याण्णौ। घटयति।

ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च॥३॥ ज्ञपयति। अजिज्ञपत्॥

इति ण्यन्तप्रक्रिया॥२२॥

....

णि के परे होने पर मित् अर्थात् घटादि धातुओं और ज्ञपादि धातुओं के उपधा को ह्रस्व होता है।

धातुपाठ में कुछ निसर्गतः **अमित्** धातुओं को **मित् अतिदेश** किया गया है। ऐसे धातु हैं **घटादि धातु** और **चुरादि के ज्ञप् आदि धातु**। इनमें स्वतः **मित्** नहीं हुआ है किन्तु **मितां ह्रस्वः** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति के लिए **मिद्वद्भाव** किया गया है।

घाट्+इ में इस सूत्र से उपधाभूत आकार को ह्रस्व होकर **घट्+इ** बन जाता है जिससे **घटयति** आदि रूप बनते हैं।

लट्- घटयति, घटयते। **लिट्**- घटयाञ्चकार, घटयाञ्चक्रे, घटयाम्बभूव, घटयामास। **लुट्**- घटयिता, घटयितासि, घटयितासे। **लृट्**- घटयिष्यति, घटयिष्यते। **लोट्**- घटयतु-घटयतात्, घटयताम्। **लङ्**- अघटयत्, अघटयत। **विधिर्लिङ्**- घटयेत्, घटयेत। **आशीर्लिङ्**- घट्यात्, घटयिषीष्ट। **लुङ्**- अजीघटत्, अजीघटत। **लृङ्**- अघटयिष्यत्, अघटयिष्यत।

ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च। यह धातु **जानना** और **जनाना** अर्थ में है। अकार का लोप होता है, णिच् के बाद उपधा की वृद्धि होती है और मित् मान करके **मितां ह्रस्वः** से ह्रस्व होकर **ज्ञपि** की धातुसंज्ञा होती है जिससे **ज्ञपयति, ज्ञपयते** आदि रूप बनते हैं। **लुङ्** में **च्लि** को **चङ्**, द्वित्व, णिलोप, सन्वद्भाव होकर **सन्यतः** से इत्त्व करके **अजिज्ञपत्** सिद्ध होता है। स्मरण रहे कि अभ्यास में लघु न होने से **दीर्घो लघोः** से दीर्घ नहीं होता।

लट्- ज्ञपयति, ज्ञपयते। **लिट्**- ज्ञपयाञ्चकार, ज्ञपयाञ्चक्रे, ज्ञपयाम्बभूव, ज्ञपयामास। **लुट्**- ज्ञपयिता, ज्ञपयितासि, ज्ञपयितासे। **लृट्**- ज्ञपयिष्यति, ज्ञपयिष्यते। **लोट्**- ज्ञपयतु-ज्ञपयतात्, ज्ञपयताम्। **लङ्**- अज्ञपयत्, अज्ञपयत। **विधिलिङ्**- ज्ञपयेत्, ज्ञपयेत। **आशीर्लिङ्**- ज्ञप्यात्, ज्ञपयिषीष्ट। **लुङ्**- अजिज्ञपत्, अजिज्ञपत। **लृङ्**- अज्ञपयिष्यत्, अज्ञपयिष्यत।

अब एक प्रश्न उठता है कि **चुरादि** में णिच् होने के बाद उस धातु से प्रेरणा आदि अर्थ के लिए **ण्यन्तप्रक्रिया** का णिच् करना पड़ेगा ही। ऐसी स्थिति में दोनों णिचों का श्रवण किस तरह से होगा या क्या रूप बनेंगे? चुरादिगणीय धातुओं से जब **हेतुमति च** से णिच् करते हैं तो तब वहाँ पर दो णिच् उपस्थित होते ही हैं, एक स्वार्थ णिच् और एक प्रयोजकव्यापार वाला णिच्। यहाँ पर स्वार्थ णिच् का **णेरनिटि** से लोप करके एक ही णिच् रह जाता है और रूप चुरादिगण जैसा ही बनता है अर्थात् हेतुमण्णिच् के रहने पर भी इसकी रूपमाला और प्रक्रिया चुरादिगण की तरह ही होती है, कुछ भी अन्तर नहीं होता।

णिजन्त में ऐसे बहुत से धातुओं के रूप आप स्वयं बना सकते हैं। कुछ धातुएँ, उनके अर्थ एवं लट् तथा लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को बनाना आपका काम है। कुछ धातु ऐसे हैं जिनके अकार के स्थान पर **सन्यतः** से इत्व होकर **दीर्घो लघोः** से दीर्घ होता है। जहाँ धातु में पहले से ही दीर्घ है, वहाँ पर

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः से ह्रस्व होकर तब इत्व, उसके बाद फिर दीर्घ होता है। आकारान्त धातुओं से तो णिच् के परे होने पर पुक् आगम होता ही है। णिच् होने के बाद धातुओं का अर्थ बदल जाता है। जैसे **पढ़ना** अर्थ है तो यहाँ पर **पढ़ाना** अर्थ हो जायेगा। पुनश्च आपको स्मरण कराते हैं कि जो धातुएँ चुरादि आदि में णिजन्त हुए हैं उनके णिजन्त प्रकरण में लगभग समान ही रूप होते हैं। जैसे चुरादि में **चोरयति** तो णिजन्त में भी **चोरयति**। क्योंकि दोनों प्रकरणों में णिच् ही हो रहा है।

धातु	ण्यन्तार्थ	सामान्य-रूप	णिजन्त-लट्	णिजन्त लुङ्
अद्	खिलाना	अत्ति	आदयति	आदिदत्
कुप्	कुपित करना	कुप्यति	कोपयति	अचूकुपत्
कृ	कराना	करोति	कारयति	अचीकरत्
क्री	खरीदवाना	क्रीणाति	क्रापयति	अचीक्रपत्
क्रीड्	खेलाना	क्रीडति	क्रीडयति	अचिक्रीडत्
खाद्	खिलाना	खादति	खादयति	अचखादत्
गम्	भिजवाना	गच्छति	गमयति	अजीगमत्
ग्रह्	ग्रहण करवाना	गृह्णाति	ग्राहयति	अजिग्रहत्
चल्	चलाना	चलति	चालयति	अचीचलत्
जन्	पैदा करना	जायते	जनयति	अजिज्ञपत्
जप्	जप कराना	जपति	जापयति	अजीजपत्
जागृ	जगाना	जागर्ति	जागरयति	अजजागरत्
जि	जीताना	जयते	जाययति	अजीजयत्
जीव्	जिलाना	जीवति	जीवयति	अजिजीवत्
ज्ञा	बोध कराना	जानाति	ज्ञापयति	अजिज्ञपत्
तप्	तपाना	तपति	तापयति	अतीतपत्
तुष्	प्रसन्न करना	तुष्यति	तोषयति	अतूतुषत्
त्यज्	छुड़ाना	त्यजति	त्याजयति	अतित्यजत्
दह्	जलाना	दहति	दाहयति	अदीदहत्
दा	दिलवाना	ददाति	दापयति	अदीदपत्
दृश्	दिखाना	पश्यति	दर्शयति	अदीदृशत्
ध्यै	ध्यान करवाना	ध्यायति	ध्यापयति	अदिध्यपत्
नम्	झुकाना	नमति	नामयति	अनीनमत्
नश्	नष्ट करना	नश्यति	नाशयति	अनीनशत्
पच्	पकवाना	पचति	पाचयति	अपीपचत्
पठ्	पढ़ाना	पठति	पाठयति	अपीपठत्
पा	पिलाना	पिबति	पाययति	अपीपिबत्
पुष्	पुष्ट करना	पुष्यति	पोषयति	अपूपुषत्
बुध्	बोध कराना	बुध्यति	बोधयति	अबूबुधत्
भाष्	बुलवाना	भाषते	भाषयति	अबीभषत्
भुज्	खिलाना	भुनक्ति	भोजयति	अबूभुजत्

मिल्	मिलाना	मिलति	मेलयति	अमीमिलत्
मुद्	प्रसन्न करना	मोदते	मोदयति	अमूमुदत्
मुह्	मुग्ध करना	मोहते	मोहयति	अमूमुहत्
यज्	यज्ञ करवाना	यजति	याजयति	अयीयजत्
युज्	मिलवाना	योजते	योजयति	अयूयुजत्
युध्	युद्ध कराना	युध्यति	योधयति	अयूयुधत्
रक्ष्	रक्षा कराना	रक्षति	रक्षयति	अरीरक्षत्
रम्	रमण कराना	रमते	रमयति	अरीरमत्
रुच्	पसन्द कराना	रोचते	रोचयति	अरूरुचत्
रुद्	रुलाना	रोदिति	रोदयति	अरूरुदत्
लभ्	प्राप्त कराना	लभते	लम्भयति	अललम्भत
लस्ज्	लज्जित करना	लज्जते	लज्जयति	अललज्जत्
लिख्	लिखाना	लिखति	लेखयति	अलीलिखत्
लुभ्	लुभाना	लोभते	लोभयति	अलूलुभत्
वच्	कहलवाना	वक्ति	वाचयति	अवीवचत्
वस्	वास कराना	वसति	वासयति	अवीवसत्
वृध्	बढ़ाना	वर्धते	वर्धयति	अवीवृधत्
शी	सुलाना	शेते	शाययति	अशीशयत्
शुच्	शोक कराना	शोचति	शोचयति	अशूशुचत्
शुध्	शुद्ध कराना	शोधयति	शोधयति	अशूशुधत्
शुष्	सूखाना	शुष्यति	शोषयति	अशूशुषत्
श्रु	सुनाना	श्रृणोति	श्रावयति	अशुश्रवत्
सिच्	सिचवाना	सिञ्चति	सेचयति	असीषिचत्
स्ना	स्नान कराना	स्नाति	स्नापयति	असिस्नपत्
स्मृ	स्मरण करना	स्मरति	स्मारयति	असिस्मरत्
स्वप्	सुलाना	स्वपिति	स्वापयति	असूषुपत्
हन्	मरवाना	हन्ति	घातयति	अजीघतत्
हस्	हसना	हसति	हासयति	अजीहसत्
हृ	हरण कराना	हरति	हारयति	अजीहरत्

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में भू और स्था धातु के णिजन्त के सारे रूप लिखें २०

२- भू-धातु के णिजन्त लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये १५

३- अन्य धातुप्रकरणों की अपेक्षा णिजन्तप्रकरण की विशेषता बताइये १५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का ण्यन्त-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

सन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७०५. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम्।

पठ व्यक्तायां वाचि॥१॥

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **सन्नन्तप्रकरण** का आरम्भ होता है। **सन्+अन्त=सन्नन्त,** सन् अन्त में हो ऐसी धातुओं का प्रकरण। इस प्रकरण में अलग से कोई धातुएँ नहीं होती हैं किन्तु भ्वादि से चुरादि तक की धातुओं से इस प्रकरण में सन् आदि करके कार्य किया जाता है। **सन्** प्रत्यय करने के बाद उस सन्नन्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा की जाती है। उसके बाद लट् आदि लकार होते हैं। यह सन् प्रत्यय **इच्छा अर्थ** में होता है। जैसे पढ़ने की इच्छा करता है- **पिपठिषति**। जाने की इच्छा करता है- **जिगमिषति**। करने की इच्छा करता है- **चिकीर्षति**।

७०५- धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा। समानः कर्ता यस्य स समानकर्तृकस्तस्मात्। धातोः पञ्चम्यन्तं, कर्मणः पञ्चम्यन्तं, समानकर्तृकाद् पञ्चम्यन्तम्, इच्छायां सप्तम्यन्तं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **गुप्तिज्किद्भ्यः सन्** से **सन्** की अनुवृत्ति आती है।

जो इच्छार्थक इष्-धातु का कर्म हो और इष्-धातु के साथ समानकर्तृक भी हो उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प से सन् प्रत्यय होता है।

किसी भी धातु से सन् प्रत्यय तब होता है, जब यदि वह धातु दो शर्तों को पूरा करता हो तो। जैसे इष्-धातु (चाहना) का कर्म हो, और इष् धातु का जो कर्ता, उस क्रिया का भी वही कर्ता हो। जैसे- **रामः पठितुमिच्छति इति पिपठिषति**। राम पढ़ना चाहता है। यहाँ पठ् धातु से इच्छा अर्थ में सन्-प्रत्यय हुआ है। **पठ्** धातु यहाँ अर्थरूप से **इष्** का ही कर्म है तथा **इष्** के साथ समानकर्तृक भी है अर्थात् **इष्** का जो कर्ता है, वही कर्ता **पठ्** का है।

सन् में **नकार** की इत्संज्ञा होती है, **स** अवशिष्ट रहता है। इस **स** की **आर्धधातुकसंज्ञा** होती है और यदि धातु सेट् है तो इसको इट् आगम होता है, अनिट् हो तो नहीं। ऐसी सन्नन्त धातुओं से परे आर्धधातुक प्रत्यय हो तो **स** के अकार का **अतो लोपः** से लोप हो जाता है। शप् आदि के परे होने पर तो **अतो गुणे** से पररूप हो जाता है।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

७०६. **सन्यङोः ६।१।९॥**

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च धातोरनभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य। **सन्यतः।** पठितुमिच्छति पिपठिषति। कर्मणः किम्? गमनेन इच्छति। समानकर्तृकात् किम्? शिष्याः पठन्तु इतीच्छति गुरुः। **वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। लुङ्सनोर्घस्लृ।**

....

सन्नन्त का विग्रह तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ इच्छति लगाकर किया जाता है। जैसे- **पठितुम् इच्छति- पिपठिषति। भवितुम् इच्छति- बुभूषति।**

पठ व्यक्तायां वाचि। पठ्-धातु व्यक्त वाणी बोलना अर्थात् पढ़ना, इस अर्थ में है। यह भ्वादिगणीय धातु है। केवल **परस्मैपदी** है। **सन्नन्त** होने के बाद भी पूर्वधातु यदि आत्मनेपदी है तो सन्नन्त से भी आत्मनेपद ही होगा और यदि पूर्व अवस्था में परस्मैपदी है तो सन्नन्त से भी परस्मैपद ही होगा। इसके लिए पाणिनीय सूत्र है- **पूर्ववत्सनः।**

७०६- **सन्यङोः।** सन् च यङ् च तयोरितरतरयोगद्वन्द्वः सन्यङौ, तयोः सन्यङोः। सन्यङोः षष्ठ्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो द्वे प्रथमस्य** और **अजादेर्द्वितीयस्य** का अधिकार आ रहा है।

सन्नन्त और यङन्त धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है, यदि वे अजादि हों तो उनके द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

ज्यादातर धातु एकाच् ही मिलते हैं, अतः पूरे धातु को द्वित्व होता है। अनेकाच् धातु मिले और वह हलादि हो तो दो अचों में प्रथम एकाच् को द्वित्व, यदि धातु अजादि है तो द्वितीय एकाच् का द्वित्व होगा।

पठ् से **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **सन्,** अनुबन्धलोप करके **स** बचा। **पठ्+स** बना। **स** की आर्धधातुकसंज्ञा और इट् का आगम करके **पठ्+इस** बना। **सन्यङोः** से **पठ्** को द्वित्व करके **पठ्+पठ्+इस** बना। अभ्याससंज्ञा और हलादिशेष करके **पपठ्+इस** बना। **पपठ्+इस्** में **सन्यतः** से अभ्याससंज्ञक प्रथम **प** के **अकार** के स्थान पर **इकार** आदेश करके **पिपठ्+इस** बन जाता है। **इ** से परे **सकार** के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **पिपठ्+इष** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **पिपठिष** बना। पिपठिष की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं।

पिपठिषति। पठ् धातु से सन्, इट्, द्वित्व, इत्व, षत्व करके **पिपठिष** की धातुसंज्ञा की गई। उसके बाद लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप करके **पिपठिष+अति** बना है। **अतो गुणे** से **पिपठिष** के षकारोत्तरवर्ती अकार और शप् के अकार के स्थान पर पररूप होकर एक ही अकार बना- **पिपठिषति।** अब इसी प्रकार से आगे के रूपों की सिद्धि आप स्वयं करें। सभी लकारों के रूप दिये जा रहे हैं।

लट्- पिपठिषति, पिपठिषतः, पिपठिषन्ति। पिपठिषसि, पिपठिषथः, पिपठिषथ। पिपठिषामि, पिपठिषावः, पिपठिषामः।

लिट् में **पिपठिष**-धातु के अनेकाच् होने से **कास्यनेकाच आम्वक्तव्यो लिटि** इस वार्तिक से आम् प्रत्यय करके **अतो लोपः** से षकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करें। इसके

बाद की प्रक्रिया **भावयाञ्चकार** की तरह ही होती है। पिपठिषाञ्चकार, पिपठिषाञ्चक्रतुः, पिपठिषाञ्चक्रुः। पिपठिषाञ्चकर्थ, पिपठिषाञ्चक्रथुः, पिपठिषाञ्चक्र। पिपठिषाञ्चकार-पिपठिषाञ्चकर, पिपठिषाञ्चकृव, पिपठिषाञ्चकृम।

लुट्- **अतो लोपः** से अलोप करके- पिपठिषिता, पिपठिषितारौ, पिपठिषितारः। पिपठिषितासि, पिपठिषितास्थः, पिपठिषितास्थ। पिपठिषितास्मि, पिपठिषितास्वः, पिपठिषितास्मः।

लृट्- पिपठिषिष्यति, पिपठिषिष्यतः, पिपठिषिष्यन्ति। पिपठिषिष्यसि, पिपठिषिष्यथः, पिपठिषिष्यथ। पिपठिषिष्यामि, पिपठिषिष्यावः, पिपठिषिष्यामः।

लोट्- पिपठिषतु-पिपठिषतात्, पिपठिषताम्, पिपठिषन्तु। पिपठिष-पिपठिषतात्, पिपठिषतम्, पिपठिषत। पिपठिषाणि, पिपठिषाव, पिपठिषाम।

लङ्- अपिपठिषत्, अपिपठिषताम्, अपिपठिषन्। अपिपठिषः, अपिपठिषतम्, अपिपठिषत। अपिपठिषम्, अपिपठिषाव, अपिपठिषाम।

विधिलिङ्- पिपठिषेत्, पिपठिषेताम्, पिपठिषेयुः। पिपठिषेः, पिपठिषेतम्, पिपठिषेत। पिपठिषेयम्, पिपठिषेव, पिपठिषेम।

आशीर्लिङ्- पिपठिष्यात्, पिपठिष्यास्ताम्, पिपठिष्यासुः। पिपठिष्याः, पिपठिष्यास्तम्, पिपठिष्यास्त। पिपठिष्यासम्, पिपठिष्यास्व, पिपठिष्यास्म।

लुङ्- अपिपठिषीत्, अपिपठिषिष्टाम्, अपिपठिषिषुः। अपिपठिषीः, अपिपठिषिष्टम्, अपिपठिषिष्ट। अपिपठिषम्, अपिपठिषिषाव, अपिपठिषिषाम।

लृङ्- अपिपठिष्यत्, अपिपठिष्यताम्, अपिपठिष्यन्। अपिपठिष्यः, अपिपठिष्यतम्, अपिपठिष्यत। अपिपठिष्यम्, अपिपठिष्याव, अपिपठिष्याम।

कर्मणः किम्? गमनेन इच्छति। अब प्रश्न करते हैं कि **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** इस सूत्र में **कर्मणः** क्यों कहा? उत्तर दिया **गमनेन इच्छति** अर्थात् जाने से वस्तु आदि की इच्छा करता है। इस वाक्य में **गम्** धातु **इष्** धातु का कर्म नहीं है, अपितु करण है। अतः समानकर्ता होते हुए भी **पठ्** धातु से **सन्** नहीं हुआ।

समानकर्तृकात् किम्? शिष्याः पठन्तु इतीच्छति गुरुः। अब दूसरा प्रश्न करते है कि इस सूत्र में **समानकर्तृकात्** यह शब्द क्यों पढ़ा जाय? उत्तर दिया- **शिष्याः पठन्तु इतीच्छति गुरुः** अर्थात् शिष्य पढ़ें, ऐसा चाहते हैं गुरु। यहाँ पर **पठ्** धातु के **कर्ता** है **शिष्य** और **इष्** धातु के कर्ता हैं **गुरु**। इस लिए भिन्न-भिन्न कर्ता होने अर्थात् समानकर्ता न होने के कारण **पठ्** से **सन्** नहीं हुआ।

वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा इस सूत्र में **वा** शब्द का कथन है तो एक पक्ष में वाक्य ही रहेगा अर्थात् **पिपठिषति** यह सन्-प्रत्ययान्त रूप तो होता ही है साथ ही **पठितुमिच्छति** यह वाक्य भी बनता है।

अब आगे **अद भक्षणे** धातु से **सन्** प्रत्यय की प्रक्रिया बता रहे हैं। **अद्** से **अत्तुमिच्छति** विग्रह से **सन्** होकर **जिघत्सति** बनता है। **सन्** होने के बाद **लुङ्सनोर्घस्लृ** से **अद्** के स्थान पर **घस्लृ** आदेश होकर **घस्+स** बनने के बाद **स** की आर्धधातुकसंज्ञा करके इट् प्राप्त हुआ किन्तु **घस्** धातु के अनुदात्त होने के कारण **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध हो जाता है और सकार के स्थान पर तकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

तकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७०७. सः स्यार्धधातुके ७।४।४९॥

सस्य तः स्यात् सादावार्धधातुके। अत्तुमिच्छति जिघत्सति।

एकाच इति नेट्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

७०८. अज्झनगमां सनि ६।४।१६॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि।

....

७०७- **सः स्यार्धधातुके।** सः षष्ठ्यन्तं, सि सप्तम्यन्तम्, आर्धधातुके सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अच उपसर्गात्तः** से **तः** की अनुवृत्ति आती है।

सकारादि आर्धधातुक के परे होने पर सकार के स्थान पर तकार आदेश होता है।

यह सूत्र वहीं लगता है जहाँ पर पूर्व में सकार ही हो और पर में भी सकार ही हो किन्तु पर सकार आर्धधातुकसंज्ञक हो अर्थात् सकार आदि में स्थित आर्धधातुक परे हो। **घस्+स** में ऐसी स्थिति में इससे **तकार** आदेश होता है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी यह सूत्र प्रवृत्त होता है। जैसे- **वस्** धातु के लृट् के **वस्+स्यति** में भी पूर्व सकार को तकार आदेश होकर **वत्स्यति** बनता है।

जिघत्सति। अत्तुमिच्छति। **अद्** से सन् करके **धातु** के स्थान पर **लुङ्सनोर्घस्लृ** से **घस्लृ** आदेश होकर **घस्+स** बना है। **सन्** वाला **स** आर्धधातुक है। **घस्** यह धातु अनुदात्त एकाच् है। अतः इट् का आगम नहीं होता। अतः **सः स्यार्धधातुके** से पूर्व सकार के स्थान पर **तकार** आदेश होकर **घत्+स** बना। **सन्** के परे **घत्** को द्वित्व, हलादिशेष, **कुहोश्चुः** से कुत्व और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होने पर **जघत्+स** बना। **सन्यतः** से प्रथम अकार को इत्व होकर **जिघत्स** बना। इसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। लट्, तिप्, शप् करके **जिघत्स+अति** बना। **अतो गुणे** से पररूप होकर **जिघत्सति** सिद्ध हुआ। **जिघत्सति, जिघत्सतः, जिघत्सन्ति** आदि।

लट्- जिघत्सति। **लिट्**- जिघत्साञ्चकार, जिघत्साम्बभूव, जिघत्सामास। **लुट्**- जिघत्सिता। **लृट्**- जिघत्सिस्यति। **लोट्**- जिघत्सतु। **लङ्**- अजिघत्सत्। **विधिलिङ्**- जिघत्सेत्। **आशीर्लिङ्**- जिघत्स्यात्। **लुङ्**- अजिघत्सीत्। **लृङ्**- अजिघत्स्यत्।

७०८- **अज्झनगमां सनि।** अच्च हन् च गम् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- अज्झनगमस्तेषाम्। अज्झनगमां षष्ठ्यन्तं, सनि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **झलि** और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अजन्त धातु और हन् तथा अच् के स्थान पर आदेश होने वाली गम् धातु को भी दीर्घ होता है झलादि सन् के परे होने पर।

महाभाष्य के अनुसार यहाँ पर **गम्लृ** धातु का ग्रहण नहीं है अपितु **इण्, इक्** आदि के स्थान पर आदेश के रूप में होने वाले **गम्** को लिया जाता है।

किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

७०९. इको झल् १।२।९॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। **ऋृत इद्धातोः**। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति।

....

७०९- इको झल्। इकः पञ्चम्यन्तं, झल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रुदविदमुष०** से **सन्** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

इगन्त से परे झलादि सन् कित् होता है।

सामान्यतया **सन्** कित् नहीं होता किन्तु **इगन्त** से परे सन् यदि झलादि हो तो उसे इस सूत्र से कित् मान लिया जाता है। यहाँ पर कित् का फल है- **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध करना। सन् का सकार तो स्वतः झल् है, पुनः झलादि कहने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर है- **सन्** प्रत्यय को सेट् धातुओं से इट् आगम होता है और अनिट् धातुओं से नहीं। जब इट् आगम होता है तो **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते** परिभाषा के अनुसार **सन्** प्रत्यय अजादि बन जाता है और जब इट् आगम नहीं होता तो **सन्** प्रत्यय झलादि होता है। यह सूत्र जहाँ इट् नहीं होता वहाँ पर झलादि मानकर किद्वद्भाव करता है।

चिकीर्षति। कर्तुमिच्छति। करने की इच्छा करता है। **डुकृञ् करणे** धातु है। अनुबन्धलोप हो जाने के बाद केवल **कृ** बचता है। उससे सन् प्रत्यय करने पर **कृ+स** बना। **सन्** के **आर्धधातुक** होने के कारण **इट्** प्राप्त था किन्तु **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हुआ। **अज्झनगमां सनि** से **कृ** को दीर्घ हुआ- **कॄ+स** बना। सन् को आर्धधातुक मान कर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था किन्तु **इको झल्** से सन् को किद्वद्भाव कर दिए जाने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हुआ। दीर्घ हुए **कॄ** के दीर्घ ॠकार को **ॠत इद्धातोः** से इत्त्व, रपर करके **किर्+स** बना। **हलि च** से उपधाभूत इकार को दीर्घ हुआ- **कीर्+स** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से सकार को षत्व हुआ, **कीर्+ष** बना। **सन्यङोः** से धातु के एकाच् **कीर्** को द्वित्व होकर हलादिशेष और ह्रस्व करके चुत्व **कुहोश्चुः** से चुत्व करने पर **चिकीर्+ष** बना। **चिकीर्ष** की धातुसंज्ञा करके लट्, तिप्, शप्, पररूप करने पर **चिकीर्षति** सिद्ध हो जाता है। अब आगे सभी पुरुष और सभी वचनों में रूप बना सकते हैं। ध्यान रहे कि **कृ** धातु उभयपदी है। अतः **पूर्ववत्सनः** के नियम से आत्मनेपद में भी इसके रूप बनते हैं।

पूर्ववत्सनः इस सूत्र के अनुसार **सन्** की **प्रकृति** धातु आत्मनेपदी हो तो आत्मनेपद और परस्मैपदी हो तो परस्मैपद होता है। **कृ** धातु के उभयपदी होने के कारण सन्नन्त से भी उभयपद होता है।

लट्- चिकीर्षति, चिकीर्षते। **लिट्**- चिकीर्षाञ्चकार, चिकीर्षाम्बभूव, चिकीर्षामास, चिकीर्षाञ्चक्रे। **लुट्**- चिकीर्षिता, चिकीर्षितासि, चिकीर्षितासे। **लृट्**- चिकीर्षिष्यति, चिकीर्षिष्यते। **लोट्**- चिकीर्षतु, चिकीर्षताम्। **लङ्**- अचिकीर्षत्, अचिकीर्षत। **विधिलिङ्**- चिकीर्षेत्, चिकीर्षेत। **आशीर्लिङ्**- चिकीर्ष्यात्, चिकीर्षीष्ट। **लुङ्**- अचिकीर्षीत्, अचिकीर्षिष्ट। **लृङ्**- अचिकीर्षिष्यत्, अचिकीर्षिष्यत।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

७१०. सनि ग्रहगुहोश्च ७।२।१२॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात्। बुभूषति।

इति सन्नन्तप्रक्रिया॥२३॥

....

७१०-**सनि ग्रहगुहोश्च**। ग्रहश्च गुह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो ग्रहगुहौ, तयोः। सनि सप्तम्यन्तं, ग्रहगुहोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **नेड् वशि कृति** से **नेट्** और **श्र्युकः किति** से **उकः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ग्रह्, गुह् और उगन्त धातुओं से परे सन् को इट् का आगम नहीं होता।

बुभूषति। भवितुमिच्छति। होना चाहता है। **भू सत्तायाम्** धातु है। उससे सन् करने के बाद **ऊदन्त** धातु होने से इट् प्राप्त था, उसका **सनि ग्रहगुहोश्च** से निषेध कर दिया गया। आर्धधातुक गुण प्राप्त था, उसका भी **इको झल्** से किद्वद्भाव करके निषेध हुआ। **सन्यङोः** से धातु को द्वित्व करके हलादिशेष, ह्रस्व, जश्त्व करने पर **बुभूष** ऐसा सन्नन्त रूप बना। इसकी धातुसंज्ञा करके लट्, तिप्, शप्, पररूप करने पर **बुभूषति**। **भू** धातु केवल परस्मैपदी है, अतः **पूर्ववत्सनः** के नियम से सन्नन्त में भी **बुभूषति** सिद्ध हुआ।

लट्- बुभूषति। **लिट्**- बुभूषाञ्चकार, बुभूषाम्बभूव, बुभूषामास। **लुट्**- बुभूषिता। **लृट्**- बुभूषिष्यति। **लोट्**- बुभूषतु। **लङ्**- अबुभूषत्। **विधिलिङ्**- बुभूषेत्। **आशीर्लिङ्**- बुभूष्यात्। **लुङ्**- अबुभूषीत्। **लृङ्**- अबुभूष्यत्।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में चार ही धातुओं की प्रक्रिया दिखाई गई है। इस प्रकरण बहुत से धातुओं के रूप आप स्वयं बना सकते हैं। सन्नन्त प्रक्रिया जटिल है, इसमें अनेक प्रकार के उत्सर्ग और अपवाद तथा विशिष्ट कार्य होते हैं। इसलिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में उन्हें नहीं दिखाया गया है। छात्रों को जानकारी मिले इसलिए कुछ-कुछ धातुओं का अर्थ एवं लट्-लकार के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप यहाँ व्याख्या में दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को बनाना आपका काम है एवं विशेष जिज्ञासा को शान्त करने के लिए तो इसके बाद तो **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** पढ़नी ही है।

सन् होने के बाद धातु का अर्थ बदल जाता है। जैसे **पढ़ना** अर्थ है तो यहाँ पर पढ़ने की इच्छा करना अर्थ हो जायेगा। याद रहे कि सन्नन्त में पदव्यवस्था मूल धातु के समान ही होती है। यदि मूल धातु **परस्मैपदी** है तो सन्नन्त होने के बाद भी **परस्मैपदी** ही रहेगा, यदि **आत्मनेपदी** है तो सन्नन्त में भी **आत्मनेपेदी** ही रहेगा।

धातु	**अर्थ**	**सामान्य-रूप**	**सन्नन्त लट्**
अर्च्	पूजने की इच्छा करना	अर्चति	अर्चिचिषति
आप्	पाने की इच्छा करना	आप्नोति	ईप्सति
अधि+इङ्	पढ़ने की इच्छा करना	अधीते	अधिजिगांसते
कथ्	कहने की इच्छा करना	कथयति	चिकथयिषति-ते
कुप्	कोप करने की इच्छा करना	कुप्यति	चुकोपिषति
कृ	करने की इच्छा करना	करोति	चिकीर्षति
क्रीड्	खेलने की इच्छा करना	क्रीडति	चिक्रीडिषति
खन्	खोदने की इच्छा करना	खनति	चिखनिषति

खाद्	खाने की इच्छा करना	खादति	चिखादिषति
गण्	गिनने की इच्छा करना	गणयति	जिगणयिषति-ते
गद्	कहने की इच्छा करना	गदति	जिगदिषति
गम्	जाने की इच्छा करना	गच्छति	जिगमिषति
गृ	निगलने की इच्छा करना	गिरति, गिलति	जिगरिषति, जिगलिषति
ग्रह्	ग्रहण करने की इच्छा करना	गृह्णाति	जिघृक्षति-ते
घ्रा	सूँघने की इच्छा करना	जिघ्रति	जिघ्रासति
चर्	चरने की इच्छा करना	चरति	चिचरिषति
चल्	चलने की इच्छा करना	चलति	चिचलिषति
चि	चयन करने की इच्छा करना	चिनोति	चिचीषति
छिद्	काटने की इच्छा करना	छिनत्ति	चिच्छित्सति-ते
चुर्	चुराने की इच्छा करना	चोरयति	चुचोरयिषति-ते
जन्	पैदा होने की इच्छा करना	जायते	जिजनिषते
जि	जीतने की इच्छा करना	जयति	जिगीषति
ज्ञा	जानने की इच्छा करना	जानाति	जिज्ञासते
तृ	तरने की इच्छा करना	तरति	तितीर्षति
दिव्	चमकने की इच्छा करना	दीव्यति	दिदेविषति
दृश्	देखने की इच्छा करना	पश्यति	दिदृक्षते
जीव	जीने की इच्छा करना	जीवति	जिजीविषति
पच्	पकाने की इच्छा करना	पचति	पिपक्षति-ते
पा	पीने की इच्छा करना	पिबति	पिपासति
बुध्	जानने की इच्छा करना	बुध्यते	बुभुत्सते
भुज्	खाने की इच्छा करना	भुञ्जते	बुभुक्षते
भू	होने की इच्छा करना	भवति	बूभूषति
मुच्	छूटने की इच्छा करना	मुच्यते	मुमुक्षते
मृ	मरने की इच्छा करना	म्रियते	मुमूर्षते
लभ्	पाने की इच्छा करना	लभते	लिप्सते

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१-	अपनी पुस्तिका में पठ् धातु के सन्नन्त के सारे रूप लिखें	१०
२-	पठ्-धातु के सन्नन्त लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये	१५
३-	णिजन्तप्रकरण की अपेक्षा सन्नन्तप्रकरण की विशेषता बताइये	१०
४-	अपने प्रयत्न से **गम्** धातु के सन्नन्त के सभी रूप लिखें	१०
५-	**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** की व्याख्या करें।	५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का सन्नन्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ यङन्तप्रक्रिया

यङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७११. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात्।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

७१२. गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च परतः। ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्। पुनःपुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **यङन्तप्रक्रिया** का प्रारम्भ होता है। **क्रिया के बार-बार करने या अतिशय क्रिया का होना अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है। यङ्** प्रत्यय के अन्त में होने के कारण धातुओं को **यङन्त** और इस प्रकरण को **यङन्तप्रक्रिया** कहा जाता है। इस प्रकरण के लिए अलग से कोई धातु पठित नहीं है किन्तु **भू** आदि धातुओं से ही यह प्रत्यय किया जाता है।

७११- **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्।** क्रियायाः समभिहारः क्रियासमभिहारः, तस्मिन्। धातोः पञ्चम्यन्तम्, एकाचः पञ्चम्यन्तं, हलादेः पञ्चम्यन्तं, क्रियासमभिहारे सप्तम्यन्तं, यङ् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्रिया का बार-बार होना अथवा अतिशय होना अर्थ द्योत्य होने पर एक् अच् वाले हलादि धातुओं से परे यङ् प्रत्यय होता है।

इस प्रत्यय के लिए आवश्यक तीन बातें हैं- **एकाच् धातु, हलादि** और **क्रियासमभिहार**। क्रिया का बार-बार होना या अतिशय होना ही **क्रियासमभिहार** है।

यङ् में केवल ङकार ही इत्संज्ञक है, अतः **य** पूरा शेष रहता है। ङित् होने के कारण **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपद हो जाता है। यङ् करने के बाद **सन्यङोः** से द्वित्व होता है, उसके बाद अग्रिमसूत्र **गुणो यङ्लुकोः** से गुण हो जाता है। उसके बाद यङ् के सनादिगण में आने के कारण यङन्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा की जाती है। उसके बाद लट् आदि लकार होते हैं।

७१२- **गुणो यङ्लुकोः**। यङ् च लुक् च यङ्लुकौ तयोः यङ्लुकोः। गुणः प्रथमान्तं, यङ्लुकोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

यङ् या यङ् के लुक् परे होने पर अभ्यास को गुण होता है।

बोभूयते। बार बार या अतिशय होता है। **भू सत्तायाम्** धातु है। इससे **पुनःपुनरतिशयेन वा भवति** अर्थ में **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **यङ्** हुआ। ङकार की इत्संज्ञा के बाद लोप करके **भू+य** बना। धातु से विहित होने के कारण **आर्धधातुकं शेषः** से **य** की **आर्धधातुकसंज्ञा** हो गई तो **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **भू** के **ऊकार** को गुण प्राप्त हुआ। **य** के **ङित्** होने के कारण **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ। अब **सन्यङोः** से एङन्त के प्रथम एकाच् **भू** का द्वित्व हो गया- **भूभू+य** बना। द्वित्व के बाद **ह्रस्वः** से प्रथम **भू** के ऊकार को **ह्रस्व** करके **भुभू+य** बना। **भकार** के स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश् आदेश करके **बुभूय** बना। **बु** इसकी **अभ्याससंज्ञा** करके **गुणो यङ्लुकोः** से अभ्यास के ऊकार को गुण हुआ- **बोभूय** बना। इसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से **धातुसंज्ञा** हो गई। उसके बाद वर्तमान काल में **लट्** लकार, उसके स्थान पर **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** का विधान हुआ। **त** आया। **बोभूय+त** बना। शप् होकर **बोभूय+अ+त** बना। **बोभूय+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर दोनों अकार के स्थान पर एक **अकार** हुआ- **बोभूय+त** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरे**: से एत्व होकर **बोभूयते** बना।

लट् के रूप- बोभूयते, बोभूयेते, बोभूयन्ते। बोभूयसे, बोभूयेथे, बोभूयध्वे। बोभूये, बोभूयावहे, बोभूयामहे।

बोभूयाञ्चक्रे। बोभूय से लिट्, अनेकाच् होने के कारण आम्, आम् को आर्धधातुक मानकर **अतो लोपः** से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **बोभूयाम्+लिट्** बना। आम् के परे लिट् का लुक्, लिट् को परे लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, उससे भी आत्मनेपद का ही विधान करके **बोभूयाम्+कृ त** बना। अब **एधाञ्चक्रे** की तरह त को एश् आदेश कृ को द्वित्व, उरत्, हलादिशेष, यण् आदि करके **बोभूयाञ्चक्रे** बन जाता है। इसके लिए पहले की प्रक्रिया याद रहनी चाहिए।

लिट् के रूप- बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयाञ्चक्राते, बोभूयाञ्चक्रिरे, बोभूयाञ्चकृषे, बोभूयाञ्चक्राथे, बोभूयाञ्चकृढ्वे, बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयाञ्चकृवहे, बोभूयाञ्चकृमहे। बोभूयाम्बभूव। बोभूयामास।

बोभूयिता। लुट् में **बोभूय** से लुट्, त, तासि, इट् का आगम, डा आदेश **अतो लोपः** का अकार लोप करके, **तास्** के **टि** का लोप करने पर **बोभूयिता** बनता है।

लुट् के रूप- बोभूयिता, बोभूयितारौ, बोभूयितारः, बोभूयितासे, बोभूयितासाथे, बोभूयिताध्वे, बोभूयिताहे, बोभूयितास्वहे, बोभूयितास्महे।

लृट् के रूप- बोभूयिष्यते, बोभूयिष्येते, बोभूयिष्यन्ते, बोभूयिष्यसे, बोभूयिष्येथे, बोभूयिष्यध्वे, बोभूयिष्ये, बोभूयिष्यावहे, बोभूयिष्यामहे।

लोट् के रूप- बोभूयताम्, बोभूयेताम्, बोभूयन्ताम्, बोभूयस्व, बोभूयेथाम्, बोभूयध्वम्, बोभूयै, बोभूयावहै, बोभूयामहै।

लङ् के रूप- अबोभूयत, अबोभूयेताम्, अबोभूयन्त, अबोभूयथाः, अबोभूयेथाम्, अबोभूयध्वम्, अबोभूये, अबोभूयावहि, अबोभूयामहि।

विधिलिङ् के रूप- बोभूयेत, बोभूयेताम्, बोभूयेरन्, बोभूयेथाः, बोभूयेथाम्, बोभूयेध्वम्, बोभूयेय, बोभूयेवहि, बोभूयेमहि।

यङ्विधानार्थं नियमसूत्रम्

७१३. नित्यं कौटिल्ये गतौ ३।१।२३॥

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिहारे।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

७१४. दीर्घोऽकितः ७।४।८३॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्यङ्लुकोः। कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते।

य-शब्दस्य लोपविधायकं विधिसूत्रम्

७१५. यस्य हलः ६।४।४९॥

यस्येति संघातग्रहणम्। हलः परस्य यशब्दस्य लोप आर्धधातुके। **आदेः परस्य। अतो लोपः।** वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता।

....

आशीर्लिङ् के रूप- बोभूयिषीष्ट, बोभूयिषीयास्ताम्, बोभूयिषीरन्, बोभूयिषीष्ठाः, बोभूयिषीष्ठाम्, बोभूयिषीढ्वम्-बोभूयिषीध्वम्, बोभूयिषीय, बोभूयिषीवहि, बोभूयिषीमहि।

लुङ् के रूप- अबोभूयिष्ट, अबोभूयिषाताम्, अबोभूयिषत, अबोभूयिष्ठाः, अबोभूयिषाथाम्, अबोभूयिढ्वम्-अबोभूयिध्वम्, अबोभूयिषि, अबोभूयिष्वहि, अबोभूयिष्महि।

लृङ् के रूप- अबोभूयिष्यत, अबोभूयिष्येताम्, अबोभूयिष्यन्त, अबोभूयिष्यथाः, अबोभूयिष्येथाम्, अबोभूयिष्यध्वम्, अबोभूयिष्ये, बोभूयिष्यावहि, अबोभूयिष्यामहि।

७१३- नित्यं कौटिल्ये गतौ। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। कौटिल्ये सप्तम्यन्तं, गतौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** और **यङ्** की अनुवृत्ति आती है।

गत्यर्थक धातु से कुटिलगमन (टेढ़ा चलना) अर्थ द्योतित होने पर ही धातु से यङ् होता है अर्थात् क्रियासमभिहार अर्थ में नहीं होता।

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् से **क्रियासमभिहार** अर्थ में सभी हलादि धातुओं से प्राप्त यङ् को गत्यर्थक धातु से **कुटिलता से जाना** अर्थ होने ही हो, इसके लिए यह सूत्र बनाया गया है। अतः **पुनःपुनः अतिशयेन गच्छति** इस अर्थ में यङ् नहीं होगा।

७१४- दीर्घोऽकितः। न कित् यस्य स अकित्, तस्य। दीर्घः प्रथमान्तम्, अकितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **गुणो यङ्लुकोः** से **यङ्लुकोः** की अनुवृत्ति आती है।

अकित् अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् या यङ्लुक् परे होने पर।

वाव्रज्यते। कुटिलं व्रजति। टेढ़ा चलता है। **व्रज गतौ** धातु है। उससे **नित्यं कौटिल्ये गतौ** के नियम से **यङ्** होकर **सन्यङोः** से धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य, हलादिशेष करने पर **व+व्रज्+य** बना। **दीर्घोऽकितः** से अभ्यास के अकार को दीर्घ होकर **वाव्रज्य** बना। लट्, आत्मनेपद का त, शप्, पररूप, एत्व करके **वाव्रज्यते** बनता है। **वाव्रज्यते, वाव्रज्येते, वाव्रज्यन्ते।**

रीगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७१६. रीगृदुपधस्य च ७।४।९०॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्यङ्लुकोः।
वरीवृत्यते। वरीवृताञ्चक्रे। वरीवृतिता।

....

७१५- **यस्य हलः**। यस्य षष्ठ्यन्तं, हलः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अतो लोपः** से लोपः की अनुवृत्ति आती है। इस सूत्र में **यस्य** का अर्थ है **अकार सहित यकार का**। य्+अ=**य** ऐसा पूरा समूह।

हल् से परे य का लोप होता है आर्धधातुक परे होने पर।

इस सूत्र से अकार सहित पूरे **य** के लोप प्राप्त होने पर **आदेः परस्य** की सहायता से केवल **य्** का लोप होता है। अकार का लोप तो **अतो लोपः** से होता है। **बोभूयाञ्चक्रे** में हल् से परे न मिलने के कारण और **बोभूयते** में आर्धधातुक न मिलने के कारण **य** का लोप नहीं होता।

वाव्रजाञ्चक्रे। यङ्, द्वित्व आदि होने के बाद **वाव्रज्य** धातु बना है। उससे लिट् में **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** से **आम्**, उसका लुक्, **लिट्** सहित **कृ** का अनुप्रयोग करके **वाव्रज्य+कृ+लिट्** बना है। **यकार** का **यस्य हलः** से लोप तथा अकार का **अतो लोपः** से लोप करने पर **वाव्रज्** बना। आगे **चक्रे** बनाने की प्रक्रिया पूर्ववत् है। इस तरह लिट् में **वाव्रजाञ्चक्रे** बन जाता है। आर्धधातुक के परे सर्वत्र यकार और अकार का लोप किया जाता है।

लट्- वाव्रज्यते। **लिट्**- वाव्रजाञ्चक्रे। **लुट्**- वाव्रजिता। **लृट्**- वाव्रजिष्यते। **लोट्**- वाव्रज्यताम्। **लङ्**- अवाव्रज्यत। **विधिलिङ्**- वाव्रज्येत। **आशीर्लिङ्**- वाव्रजिषीष्ट। **लुङ्**- अवाव्रजिष्ट। **लृङ्**- अवाव्रजिष्यत।

७१६- **रीगृदुपधस्य च**। ऋत् उपधा यस्य, स ऋदुपधस्तस्य। रीक् प्रथमान्तम्, ऋदुपधस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **गुणो यङ्लुकोः** से **यङ्लुकोः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

उपधा में ह्रस्व ऋकार वाली धातु के अभ्यास को रीक् का आगम होता है, यङ् या यङ्लुक् परे होने पर।

रीक् में ककार इत्संज्ञक है, कित् होने के कारण अभ्यास के अन्त में बैठता है।

वरीवृत्यते। पुनःपुनः अतिशयेन वर्तते। **वृतु वर्तने** धातु है। **वृत्** से **यङ्**, द्वित्व, अभ्यासकार्य, हलादिशेष करके **व+वृत्य** बना है। **रीगृदुपधस्य च** से अभ्यास **व** को **रीक्** का आगम, अनुबन्धलोप, अन्त्यावयव होकर **वरीवृत्य** बना। इसकी धातुसंज्ञा करके लट्, त, शप्, पररूप आदि होकर **वरीवृत्यते, वरीवृत्येते, वरीवृत्यन्ते** आदि बन जाते हैं। लिट् में **यस्य हलः, अतो लोपः** की प्रवृत्ति होती है जिससे **वरीवृताञ्चक्रे** बन जाता है।

लट्- वरीवृत्यते। **लिट्**- वरीवृताञ्चक्रे। **लुट्**- वरीवृतिता। **लृट्**- वरीवृतिष्यते। **लोट्**- वरीवृत्यताम्। **लङ्**- अवरीवृत्यत। **विधिलिङ्**- वरीवृत्येत। **आशीर्लिङ्**- वरीवृतिषीष्ट। **लुङ्**- अवरीवृतिष्ट। **लृङ्**- अवरीवृतिष्यत।

णत्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

७१७. क्षुभ्नादिषु च ८।४।३९॥

णत्वं न। नरीनृत्यते। जरीगृह्यते।

इति यङन्तप्रक्रिया॥२४॥

....

७१७- **क्षुभ्नादिषु च**। क्षुभ्ना आदिर्येषां ते क्षुभ्नादयस्तेषु। क्षुभ्नादिषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **नः** और **णः** तथा **न भाभूपू०** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

क्षुभ्ना आदि गण में पठित शब्दों में नकार को णत्व नहीं होता है।

क्षुभ्नादिगण में होने के कारण **क्षुभ संचलने** इस क्र्यादिगणीय धातु से **क्षुभ्नाति** में णत्व नहीं होता तो **नरीनृत्य** के भी क्षुभ्नादि में होने के कारण णत्व नहीं होता।

नरीनृत्यते। जिस तरह से **वृत्** से **वरीवृत्यते** बना, उसी तरह **नृती गात्रविक्षेपे** के नृत् से **नरीनृत्यते** बनता है। यहाँ पर रेफ से परे द्वितीय नकार को **अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व प्राप्त था, उसका **क्षुभ्नादिषु च** से निषेध किया गया। अतः **नरीनृत्यते** ही रह गया।

लट्- नरीनृत्यते। **लिट्**- नरीनृताञ्चक्रे। **लुट्**- नरीनृतिता। **लृट्**- नरीनृतिष्यते। **लोट्**- नरीनृत्यताम्। **लङ्**- अनरीनृत्यत। **विधिलिङ्**- नरीनृत्येत। **आशीर्लिङ्**- नरीनृतिषीष्ट। **लुङ्**- अनरीनृतिष्ट। **लृङ्**- अनरीनृतिष्यत।

जरीगृह्यते। पुनःपुनः अतिशयेन गृह्णाति। बार बार अथवा अतिशय ग्रहण करता है। **ग्रह उपादाने** धातु है। **ग्रह्** से क्रियासमभिहार अर्थ में **यङ्** करके उसके ङित् होने के कारण **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति** से **ग्+र्+अ+ह्=ग्रह्** में विद्यमान रेफ को सम्प्रसारण होता है। रेफ को सम्प्रसारण करने पर ऋकार हो जाता है। **गृ+अह्** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **गृह्** बन जाता है। **गृह्+य** में धातु को द्वित्व, उरत्, हलादिशेष, चुत्व करके **जगृह्+य** बना। **ऋत्** धातु है, अतः **रीगृदुपधस्य च** से **रीक्** का आगम करके **जरीगृह्य** बना। इसकी धातुसंज्ञा करके **नरीनृत्यते** की तरह **जरीगृह्यते** बन जाता है।

लट्- जरीगृह्यते। **लिट्**- जरीगृहाञ्चक्रे। **लुट्**- जरीगृहिता। **लृट्**- जरीगृहिष्यते। **लोट्**- जरीगृह्यताम्। **लङ्**- अजरीगृह्यत। **विधिलिङ्**- जरीगृह्येत। **आशीर्लिङ्**- जरीगृहिषीष्ट। **लुङ्**- अजरीगृहिष्ट। **लृङ्**- अजरीगृहिष्यत।

इसके बाद अनेक धातुओं से यङ् करके रूप बनाये जाते हैं। कहीं अभ्यास को दीर्घ, कहीं य का लोप, कहीं इत्व, कहीं रीक् का आगम आदि का विधान मिलता है। कहीं कहीं पौनःपुन्य अर्थ में न हो कर अन्य अर्थों में भी यह प्रत्यय होता हैं। यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में छात्रों के सारल्यार्थ केवल भू आदि कुछ ही धातुओं की प्रक्रिया दिखाई गई है। जिज्ञासु छात्रों के लिए कुछ धातुओं के यङन्त रूप यहाँ दिये जा रहे हैं। स्मरण रहे कि अजादि धातुओं और अनेकाच् धातुओं से यङ् नहीं होता है।

धातु	**यङन्तार्थ**	**सामान्य-रूप**	**यङन्त- लट्**
कम्प	बार-बार काँपना	कम्पते	चाकम्प्यते
काङ्क्ष्	बार-बार चाहना	काङ्क्षते	चाकाङ्क्षते

क्रन्द्	बार-बार रोना	क्रन्दते	चाक्रन्द्यते
क्रम्	बार-बार क्रमण करना	क्रमते	चङ्क्रम्यते
कृ	बार-बार करना	करोति	चेक्रीयते
क्री	बार-बार खरीदना	क्रीणाति	चेक्रीयते
क्रीड्	बार-बार खेलना	क्रीडति	चेक्रीड्यते
क्षि	बार-बार नष्ट होना	क्षयति	चेक्षीयते
खाद्	बार-बार खाना	खादति	चाखाद्यते
गम्	बार-बार जाना	गच्छति	जङ्गम्यते
गै	बार-बार गाना	गायति	जेगीयते
ग्रह्	बार-बार ग्रहण करना	गृह्णाति	जरीगृह्यते
घुष्	बार-बार घोषणा करना	घोषते	जोघुष्यते
घ्रा	बार-बार सूँघना	जिघ्रति	जेघ्रीयते
चर्	बार-बार बुरी तरह से चरना	चरति	चञ्चूर्यते
चल्	कुटिलता से चलना	चलति	चाचल्यते
जन्	बार-बार पैदा होना	जायते	जाजन्यते
जप्	निन्दित जप करना	जपति	जञ्जप्यते
जि	बार-बार जीताना	जयते	जेजीयते
जीव्	बार-बार जीना	जीवति	जेजीव्यते
ज्ञा	बार-बार जानना	जानाति	जाज्ञायते
तप्	बार-बार तपना	तपति	तातप्यते
त्यज्	बार-बार छोड़ना	त्यजति	तात्यज्यते
दह्	बुरी तरह जलना	दहति	दन्दह्यते
दा	बार-बार देना	ददाति	देदीयते
दृश्	बार-बार देखना	पश्यति	दरीदृश्यते
ध्यै	बार-बार ध्यान करना	ध्यायति	दाध्यायते
नम्	बार-बार झुकना	नमति	नंनम्यते
पच्	बार-बार पकना	पचति	पापच्यते
पठ्	बार-बार पढ़ना	पठति	पापठ्यते
पा	बार-बार पीना	पिबति	पेपीयते
बुध्	बार-बार जानना	बुध्यति	बोबुध्यते
भुज्	बार-बार खाना	भुनक्ति	बोभुज्यते
मिल्	बार-बार मिलना	मिलति	मेमिल्यते
मुद्	बार-बार प्रसन्न होना	मोदते	मोमुद्यते
यज्	बार-बार यज्ञ करना	यजति	याज्यज्यते
युज्	बार-बार मिलना	योजते	योयुज्यते
युध्	बार-बार युद्ध काना	युध्यति	योयुध्यते
रक्ष्	बार-बार रक्षा करना	रक्षति	रारक्ष्यते
रम्	बार-बार रमण करना	रमते	रंरम्यते

रुच्	बार-बार पसन्द करना	रोचते	रोरुच्यते
रुद्	बार-बार रोना	रोदिति	रोरुद्यते
लभ्	बार-बार प्राप्त करना	लभते	लालभ्यते
लिख्	बार-बार लिखना	लिखति	लेलिख्यते
वच्	बार-बार कहना	वक्ति	वावच्यते
वद्	बार-बार बोलना	वदति	वावद्यते
वन्द्	बार-बार बन्दना करना	वन्दते	वावन्द्यते
वस्	बार-बार वास कराना	वसति	वावस्यते
वृध्	बार-बार बढ़ना	वर्धते	वावर्ध्यते
शी	बार-बार सोना	शेते	शाशय्यते
शुच्	बार-बार शोक करना	शोचति	शोशुच्यते
शुध्	बार-बार शुद्ध करना	शोधयति	शोशुध्यते
श्रु	बार-बार सुनना	श्रृणोति	शोश्रूयते
सिच्	बार-बार सींचना	सिञ्चति	सेसिच्यते
स्मृ	बार-बार स्मरण करना	स्मरति	सास्मार्यते
स्वप्	बार-बार सोना	स्वपिति	सोषुप्यते
हन्	बार-बार मारना	हन्ति	जेघ्नीयते
हस्	बार-बार हँसना	हसति	जाहस्यते

परीक्षा

यङन्त प्रक्रिया पर पूर्णतया प्रकाश डालते हुए तीन पृष्ठ का लेख लिखें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की यङन्त-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ यङ्लुक्प्रक्रिया

यङो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

७१८. यङोऽचि च २।४।७४।।

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनापि क्वचित्।
अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति।
ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्त्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्।
धातुत्वाल्लडादयः। **शेषात्कर्तरी**ति परस्मैपदम्।
चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **यङ्लुक्प्रक्रिया** प्रारम्भ होती है। इस प्रकरण में **क्रिया के बार-बार करने या अतिशय होने पर हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होकर उसका लुक् होता है। यङ्** प्रत्यय होने के बाद उसका लुक् किया जाता है। अतः ऐसे धातुओं को **यङ्लुगन्त** और इस प्रकरण को **यङ्लुक्प्रक्रिया** या **यङ्लुगन्तप्रक्रिया** कहा जाता है। **यङन्त** में जो अर्थ बताया गया, वही अर्थ **यङलुगन्त** में भी विद्यमान रहता है। **यङन्तप्रक्रिया** और **यङ्लुक्प्रक्रिया** में अन्तर यही है कि उसमें **यङ्** प्रत्यय विद्यमान रहता है और इसमें उसका लुक् किया जाता है। अर्थ मे कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकरण के लिए अलग से कोई ध ातु पठित नहीं है किन्तु **भू** आदि धातुओं से ही **यङ्** प्रत्यय करके लुक् किया जाता है।

यङ्लुगन्त के प्रयोग के सम्बन्ध में वैयाकरणों में मतभेद है। कुछ आचार्य कहते हैं कि यह केवल वेद का विषय है, लौकिक प्रयोग का नहीं किन्तु कुछ आचार्य यह कहते हैं कि लोक में भी **यङलुगन्त** के प्रयोग उपलब्ध होते हैं। **लघुकौमुदीकार वरदराजाचार्य** ने मध्यममार्ग अपना कर **यङलुगन्त** का क्वचित् अर्थात् कहीं कहीं ही प्रयोग को स्वीकार किया है। इसीलिए उन्होंने **यङोऽचि च** में **क्वचित्** शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि इस प्रकरण में उन्होंने केवल **भू** धातु से प्रक्रिया दिखाई है तथापि अन्य विविध धातुओं से भी यह प्रत्यय किया जा सकता है।

७१८- **यङोऽचि च**। यङः षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञोः** से **लुक्** और **बहुलं छन्दसि** से **बहुलम्** की अनुवृत्ति आती है।

अच् प्रत्यय के परे होने पर यङ् का लुक् हो जाता है, चकारात् अच् के विना भी कहीं कहीं इसका लुक् होता है।

ध्यान रहे कि यहाँ पर **अच्** प्रत्याहार नहीं है अपितु **अच्विधिः सर्वधातुभ्यः** से होने वाला **कृत्संज्ञक अच् प्रत्यय** है। इस सूत्र में **च** पढ़ा गया है। उसके बल पर **बहुलम्** की अनुवृत्ति मान ली जाती है। **बहुल** का अर्थ है- **कहीं प्रवृत्त होना, कहीं प्रवृत्त न होना, कहीं विकल्प से होना और कहीं कुछ विचित्र ही कार्य होना।** इसी **बहुल** का आश्रय लेकर इस सूत्र से **अच् प्रत्यय** के विना और किसी के परे होने या न होने पर भी **यङ्** का लुक् किया जाता है।

ध्यान रहे कि यह **यङ्लुक्** सर्वत्र नहीं होता। कहीं कहीं अर्थात् जहाँ जहाँ शिष्टों के प्रयोग मिलते हैं, वहाँ ही लुक् करना चाहिए।

अब प्रश्न होता है कि अच् प्रत्यय के अभाव में **यङ्** का लुक् कब होगा? उत्तर है- **अनैत्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति।** अर्थात् यह लुक् अनैमित्तिक है, क्योंकि अच् प्रत्यय न होने की स्थिति में किसी प्रत्यय, धातु या किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं करता। अतः यह **अन्तरङ्ग** है। **अल्पापेक्षमन्तरङ्गम्** अथवा **अनिमित्तमन्तरङ्गम्।** जो कार्य किसी का आश्रय नहीं करता या अपेक्षाकृत कम करता है, वह कार्य **अन्तरङ्ग** होता है। **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे।** यह परिभाषा है। **अन्तरङ्ग** कार्य करना हो तो **बहिरङ्ग** कार्य असिद्ध होता है। **यङ्लुक्** किसी की अपेक्षा नहीं करता, अतः **अन्तरङ्ग** है और द्वित्व, गुण आदि किसी को निमित्त मान कर के होते हैं, अतः वे **बहिरङ्ग** हैं। अन्तरङ्ग की कर्तव्यता में बहिरङ्ग असिद्ध होते हैं। इस लिए पहले अन्तरङ्ग कार्य **यङ्लुक्** ही होगा।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि पहले **यङ्** का लुक् कर दिया जायेगा तो **यङ्** के परे न होने से **सन्यङोः** से द्वित्व कैसे हो सकेगा? ग्रन्थकार ने उत्तर दिया-**ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्वम्।** अर्थात् **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** इस सूत्र के द्वारा **प्रत्ययलक्षण** अर्थात् **प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय को मान कर होने वाले कार्य हो सकते हैं,** इस नियम के आधार पर द्वित्व आदि कार्य हो सकते हैं। अब यहाँ पर यह शंका नहीं करनी चाहिए कि **लुक्** होने पर **न लुमताङ्गस्य** से **प्रत्ययलक्षण** का निषेध होना चाहिए, क्योंकि वह सूत्र अङ्गसम्बन्धी कार्यों में ही प्रत्ययलक्षण का निषेध करता है। यहाँ पर **प्रत्ययलक्षण** से **अङ्गकार्य** नहीं करना है किन्तु पूरे **यङन्त** को द्वित्व करना है, और वह अङ्गकार्य नहीं है। अतः यहाँ पर **प्रत्ययलक्षण** से द्वित्व आदि कार्य हो सकते हैं।

ण्यन्त, सन्नन्त और **यङन्त** की तरह **यङ्लुगन्त** की भी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है जिससे **लट्** आदि लकार आते हैं। अथवा यूँ कहा जा सकता है कि **यङ्** प्रत्यय करने के बाद उसे यङन्त मान कर के पहले धातुसंज्ञा की गई और बाद में **एकदेशविकृतन्यायेन** अर्थात् **एकदेश में कुछ विकार, आगम, आदेश, लोप आदि हो जाने के बाद भी उसकी संज्ञात्व में कुछ भी कमी नहीं आती है,** इस नियम का आश्रय लेकर **यङ्लुगन्त** को **धातु** ही मान लिया जाता है।

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् से परस्मैपद का विधान किया जाता है। यहाँ पर **प्रत्ययलक्षण** से **यङ्** को **ङित्** मान कर **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** नहीं किया जा सकता। क्योंकि **प्रत्ययलक्षण** से केवल प्रत्यय को निमित्त मानकर होने वाले कार्य हो सकते हैं। आत्मनेपद यह प्रत्यय-निमित्तक कार्य नहीं है। अतः **यङ्लुगन्त धातुओं** से केवल **परस्मैपद** ही होता है, **आत्मनेपद** नहीं।

चर्करीतं च यह गण सूत्र है। इसका पाठ **अदादि** में किया जा चुका है। प्राचीन

ईटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

७१९. यङो वा ७।३।९४॥

यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्।

भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न, बोभोतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात्। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः। **अदभ्यस्तात्।** बोभुवति। बोभवाञ्चकार, बोभवामास। बोभविता। बोभविष्यति। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्। बोभूताम्। बोभुवतु। बोभूहि। बोभवानि। अबोभवीत्, अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्, बोभूयुः। बोभूयात्। बोभूयास्ताम्। बोभूयासुः। **गातिस्थे**ति सिचो लुक्।

यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक्। अबोभूवीत्, अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभूवुः। अबोभविष्यत्।

इति यङ्लुक्प्रक्रिया॥२५॥

आचार्यों ने **चर्करीत** को **यङ्लुगन्त** की संज्ञा स्वीकार किया है अर्थात् **यङ्लुगन्त** को **चर्करीत** कहते हैं। **चर्करीत** को अदादि मान लेने के कारण **यङ्लुगन्त** से **अदादिगण** में होने वाले वाला कार्य **अदःप्रभृतिभ्यः शपः** से **शप्** का लुक् किया जाता है।

७१९- यङो वा। यङः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि, नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **ब्रुव ईट्** से **ईट्** की अनुवृत्ति आती है।

यङ्लुगन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक को विकल्प से ईट् का आगम होता है।

टित् होने से **सार्वधातुक** के आदि में बैठेगा। **पित्** को विधान किये जाने के कारण यह वैकल्पिक **ईट्** केवल **सार्वधातुक तिप्, सिप्, मिप्** को ही हो सकता है।

बोभवीति, बोभोति। पुनःपुनः अतिशयेन भवति। **भू** धातु से **बारम्बार अथवा अतिशय होता है** इस अर्थ में **धातोरेकाचो क्रियासमभिहारे यङ्** से **यङ्** होने के बाद उसका **यङोऽचि च** से लुक् हो गया। पुनः **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के नियम से उसे मानकर के **सन्यङोः** से **भू** को द्वित्व हुआ, **भूभू** बना। अभ्याससंज्ञा, ह्रस्व और जश्त्व करके **बुभू** बना। **गुणो यङ्लुकोः** से **अभ्यास** को **गुण** होकर **बोभू** बना। इसे **एकदेशविकृतन्यायेन** मानें या **चर्करीत(यङ्लुगन्त)** का **अदादिगण** में मानकर के **भूवादयो धातवः** से धातुसंज्ञा होती है। अतः **लट्** लकार आया, परस्मैपद **ति** प्रत्यय हुआ। उसकी सार्वधातुकसंज्ञा करके **कर्तरि शप्** से **शप्** हुआ। उसका **अदःप्रभृतिभ्यः शपः** से लुक् हुआ। इस तरह **बोभू+ति** बना। **यङो वा** से **ति** को **ईट्** का आगम हुआ- **बोभू+ईति** बना। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **भू** को गुण होकर **बोभो+ईति** बना। अव् आदेश होकर **बोभ्+अव्+ईति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बोभवीति** सिद्ध हुआ। **ईट्** न होने के पक्ष में **बोभोति** बनता है। इसी तरह **सिप्** और **मिप्** में भी प्रक्रिया होती है जिससे **बोभवीषि-बोभोषि, बोभवीमि-बोभोमि** बनते हैं।

बोभूतः। पित् वाले **तिप्, सिप्, मिप्** को **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव नहीं होता, अतः गुणनिषेध भी नहीं होगा किन्तु शेष प्रत्यय अपित् हैं, अतः ङिद्वद्भाव होकर गुण का निषेध हो जाता है जिससे **बोभूतः** आदि बनते हैं। इसी तरह **झि, थस्, थ, वस्, मस्** के परे भी यही प्रक्रिया होती है। **झि** में झकार के स्थान पर **अन्त्** आदेश को बाधकर के **अदभ्यस्तात्** से **अत्** आदेश होता है। गुणाभाव में धातु के **ऊकार** को अच् परे मिलने से **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश होकर **बोभुवति** बनता है।

लट्- बोभवीति-बोभोति, बोभूतः, बोभुवति, बोभवीषि-बोभोषि, बोभूथः, बोभूथ, बोभवीमि-बोभोमि, बोभूवः, बोभूमः।

लिट् में **बोभू** को अनेकाच् मान कर **आम्, आर्धधातुकगुण, अवादेश, कृ, भू, अस्** का अनुप्रयोग करके बोभवाञ्चकार, बोभवाम्बभूव, बोभवामास आदि बनाये जाते हैं। इनके रूप सरल ही हैं।

लुट् में **बोभू** से **तासि, इडागम, डा आदेश, टिलोप, आर्धधातुकगुण, अवादेश** आदि करके बोभविता, बोभवितारौ, बोभवितारः आदि सरलता से बनाये जा सकते हैं। इसी तरह **लृट्** में **स्य, इट्, आर्धधातुकगुण, अवादेश, षत्व** करके **बोभविष्यति, बोभविष्यतः, बोभविष्यन्ति** आदि भी आप आसानी से बना सकते हैं।

लोट्- बोभवीतु-बोभोतु-बोभूतात्, बोभूताम्, बोभुवतु, बोभूहि-बोभूतात्, बोभूतम्, बोभूत, बोभवानि, बोभवाव, बोभवाम।

लङ्- अबोभवीत्-अबोभोत्, अबोभूताम्, अबोभवुः, अबोभवीः, अबोभीः, अबोभूतम्, अबोभूत, अबोभवम्, अबोभूव, अबोभूम।

विधिलिङ्- बोभूयात्, बोभूयाताम्, बोभूयुः, बोभूयाः, बोभूयातम्, बोभूयात, बोभूयाम्, बोभूयाव, बोभूयाम।

आशीर्लिङ्- बोभूयात्, बोभूयास्ताम्, बोभूयासुः, बोभूयाः, बोभूयास्तम्, बोभूयास्त, बोभूयासम्, बोभूयास्व, बोभूयास्म।

लुङ् में **बोभू** से **ति, अट् आगम, च्लि**, उसको **सिच्** आदेश करके **अबोभू+स्+त्** बना है। **गातिस्थाभूपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् करके **यङो वा** से वैकल्पिक **ईट्** करके **अबोभू+ईत्** बना। अब **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण और **भुवो वुक् लुङ्लिटोः** से **वुक्** आगम ये दो कार्य एक साथ प्राप्त हुए। पर होने के कारण **गुण** पहले होना चाहिए था किन्तु **परनित्यान्तरङ्गापवादामुत्तरोत्तरं बलीयः** के नियम से पर से भी नित्य के बलवान् होने के कारण पहले **वुक्** ही होगा। **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः** अर्थात् **विरोधी के प्रवृत्त होने पर भी जिसकी प्रवृत्ति हो सकती है, वह नित्य होता है।** यहाँ पर **गुण** होने पर भी **वुक्** हो सकता है और गुण के पहले भी हो सकता है। इस लिए वुक् नित्य हुआ। पर से नित्य बलवान् होने के कारण **वुक्** आगम किया गया। **अबोभूव्+ईत्** बना। अब वकार के व्यवधान के कारण गुण नहीं हो सकता। वर्णसम्मेलन करके **अबोभूवीत्** बना। **ईट्** के न होने पक्ष में **अजादि** परे न होने के कारण वुक् का आगम नहीं हो सकता। अतः सार्वधातुक गुण होकर **अबोभोत्** बनता है।

लुङ् के रूप- अबोभूवीत्-अबोभोत्, अबोभूताम्, अबोभूवुः, अबोभूवीः-अबोभोः, अबोभूतम्, अबोभूत, अवोभूवम्, अबोभूव, अबोभूम।

लृङ्- अबोभविष्यत्, अबोभविष्यताम्, अबोभविष्यन्।

यङ्लुगन्त के रूप प्रायः जटिल होते हैं और इन रूपों का प्रयोग भी प्रायः कम ही होता है। इस लिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** के स्तर के छात्रों को ध्यान में रख कर ही **वरदराजाचार्य जी** ने केवल भू धातु की प्रक्रिया दिखा कर प्रकरण को समाप्त कर दिया है। ध्यान रहे कि **अजादि धातुओं** से **यङ्** होता ही नहीं है तो **यङ्लुक्** होने का भी प्रसंग नहीं है।

यङ्लुक् के कुछ प्रसिद्ध रूप यहाँ पर दिये जा रहे हैं।
गम् से **जङ्गमीति-जङ्गन्ति**, **पूञ्** से **पोपवीति-पोपोति**, **लुञ्** से **लोलवीति-लोलोति**, **ग्रह्** से **जाग्रहीति-जाग्राढि**, **प्रच्छ्** से **पाप्रच्छीति-पाप्रष्टि**, **विश्** से **वेविशीति-वेवेष्टि**, **चल्** से **चाचलीति**, **जि** से **जेजयीति-जेजेति**, **कृ** से **चर्करीति-चरीकरति-चर्कर्ति-चरीकर्ति**, **नृत्** से **नर्नृतीति-नरीनृतीति-नर्नर्ति-नरीनर्ति**, **तृ** से **तातरीति-तातर्ति**, **वृत्** से **वर्वृतीति-वरीवृतीति**, **मुद्** से **मुमुदीति-मोमोत्ति** आदि रूप बनाये जास सकते हैं।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
यङ्लुगन्तप्रक्रिया पूरी हुई।

अथ नामधातवः

क्यच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७२०. सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८॥

इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच्-प्रत्ययो वा स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

अब **नामधातुप्रकरण** आरम्भ होता है। इस प्रकरण में धातुपाठ का कोई धातु नहीं होता है अपितु नाम अर्थात् सुबन्त प्रातिपदिक को धातु बनाने की प्रक्रिया बताई जाती है। **नाम** से **धातु** बन जाने के कारण इसे **नामधातुप्रकरण** कहा गया है। शब्द को धातु बनाने की रीति हिन्दी आदि भाषाओं में भी देखने को मिलती है। जैसे कि **अपना** से **अपनाना**, **धिक्कार** से **धिक्कारना**, **हाथ** से **हथियाना**, **चक्कर** से **चक्कराना** आदि प्रयोग होता है। अर्थात् शब्द को धातु की तरह प्रयोग किया गया है। इसी तरह संस्कृत में **पुत्र** से **पुत्रीयति**, **शिला** से **शिलायति**, **विष्णु** से **विष्णूयति**, **शब्द** से **शब्दायते** आदि बनाये जाते हैं। इस प्रकरण में यही प्रक्रिया बताई गई है।

५१७- सुप आत्मनः क्यच्। सुपः पञ्चम्यन्तम्, आत्मनः षष्ठ्यन्तं, क्यच् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है। **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **कर्मणः**, **इच्छायाम्** और **वा** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** के नियम से सुप् से सुबन्त का ग्रहण होता है।

इच्छार्थक इष् धातु के कर्म तथा इच्छुक के सम्बन्धी सुबन्त से चाहना **अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है।**

तात्पर्य यह है कि चाहने वाला व्यक्ति **अपने लिए कोई वस्तु चाहता है**, इस अर्थ को प्रकट करने के लिए अभीष्ट वस्तु के वाचक सुबन्त से वैकल्पिक **क्यच्** प्रत्यय इस सूत्र से हो जाता है।

ककार की **लशक्वतद्धिते** से तथा **चकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है, केवल **य** शेष रहता है। **क्यच्** प्रत्यय **सनादि** प्रत्ययों में पठित है। अतः यह अन्त में है जिसके, उस समुदाय की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है। **धातुसंज्ञा** के समय जिस सुबन्त से यह प्रत्यय किया गया है, वह **सुप्** भी रहता है, अतः यह सुप् धातु का अवयव बन जाता है। उसका अग्रिम सूत्र **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हो जाता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** धातु मानकर तब लट् आदि आते हैं। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष में वाक्य ही रह जाता है।

सुपो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

७२१. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७१॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक्।

ईकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७२२. क्यचि च ७।४।३३॥

अवर्णस्य ईः। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति।

....

५१८- **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः**। धातुश्च प्रातिपदिकञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो धातुप्रातिपदिके, तयोर्धातुप्रातिपदिकयोः। सुपः षठ्यन्तं, धातुप्रातिपदिकयोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् होता है।

५१९- **क्यचि च**। क्यचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अस्य च्वौ** से **अस्य** और **ई घ्राध्मोः** से ई की अनुवृत्ति आती है।

क्यच् के परे होने पर अवर्ण के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

पुत्रीयति। अपना पुत्र चाहता है। **आत्मनः पुत्रमिच्छति**। सुबन्त **पुत्र अम्** से **सुप आत्मनः क्यच्** से **क्यच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **पुत्र अम् य** बना। इसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होने के बाद **अम्** धातु का अवयव बना। इसका **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **पुत्र+य** बना। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से पुत्र को दीर्घ प्राप्त था, उसे बाध कर **क्यचि च** से अकार के स्थान पर ईकार आदेश हो गया- **पुत्रीय** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन धातु मानकर **लट्**, उसके स्थान पर परस्मैपद **ति** प्राप्त हुआ। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन धातु है, अतः मात्र परस्मैपद ही होगा। **पुत्रीय+ति** बनने के बाद शप्, अनुबन्धलोप करके **पुत्रीय+अ+ति** बना। **पुत्रीय+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **पुत्रीयति** सिद्ध हुआ।

परस्य पुत्रमिच्छति= दूसरे का पुत्र चाहता है। इस अर्थ में क्यच् नहीं होगा क्योंकि इच्छा करने वाला अपना पुत्र नहीं चाह रहा है अपितु दूसरे के पुत्र को चाह रहा है। यदि विग्रह में **आत्मनः** पद न दें तो ऐसे स्थलों में भी क्यच् आदि होने लगेंगे।

लट् के रूप- **पुत्रीयति, पुत्रीयतः, पुत्रीयन्ति। पुत्रीयसि, पुत्रीयथः, पुत्रीयथ। पुत्रीयामि, पुत्रीयावः, पुत्रीयामः।**

पुत्रीयाञ्चकार। पुत्रीय से लिट्, अनेकाच् होने के कारण आम्, आम् को आर्धधातुक मानकर **अतो लोपः** से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पुत्रीयाम्+लिट्** बना। आम् के परे रहते लिट् का लुक्, लिट् को परे लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, उससे भी परस्मैपद, **पुत्रीयाम्+कृ अ** बना। अब **गोपायाञ्चकार** की तरह कृ को द्वित्व, उरत्, हलादिशेष, वृद्धि आदि करके **पुत्रीयाञ्चकार** बन जाता है। इसके लिए पहले की प्रक्रिया याद रहनी चाहिए। आगे **पुत्रीयाञ्चक्रतुः, पुत्रीयाञ्चक्रुः** आदि। भू के अनुप्रयोग में **पुत्रीयाम्बभूव** और अस् के अनुप्रयोग में **पुत्रीयामास**। लिट् में- **पुत्रीयिता**। लुट्- **पुत्रीयिष्यति**। लोट्- **पुत्रीयतु**। लङ्- **अपुत्रीयत्**। विधिलिङ्-**पुत्रीयेत्**। आशीर्लिङ्- **पुत्रीय्यात्**। लुङ्- **अपुत्रीयीत्**। लृङ्- **अपुत्रीयिष्यत्**।

पदसंज्ञाविषये नियमार्थं सूत्रम्

७२३. नः क्ये १।४।१५॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं, नान्यत्। नलोपः। राजीयति। नान्तमेवेति किम्? वाच्यति। **हलि च**। गीर्यति। पूर्यति। धातोरित्येव। नेह- दिवमिच्छति दिव्यति।

....

७२३- **नः क्ये**। नः प्रथमान्तं, क्ये सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्य के परे होने पर नकारान्त ही पदसंज्ञक होता है, अन्य नहीं।

नः का अर्थ **नकारान्त शब्द** है, क्योंकि यह **नः** पद का विशेषण है। अतः तदन्त विधि होकर **नः** से नकारान्त अर्थ निष्पन्न होता है। **क्य** से **क्यच्, क्यङ्, क्यष्** इन तीनों प्रत्ययों का ग्रहण है।

आत्मनो राजानम् इच्छति इस विग्रह में **राजन्+अम्** से **क्यच्** प्रत्यय हुआ। **राजन्+अम्+क्य** की धातुसंज्ञा करने के बाद धातु के अवयव सुप् विभक्ति **अम्** के **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् करने के बाद भी **प्रत्ययलक्षण** से विभक्तित्व मानकर केवल **राजन्** में भी **सुप्तिङन्तं पदम्** से पदत्व तो है ही। अब पुनः पदसंज्ञा के लिए **नः क्ये** का कथन क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** अर्थात् कार्य सिद्ध वैसे भी हो रहा है तो पुनः उसी कार्य का विधान करना, विशेष नियम के लिए होता है। यहाँ पर पहले से ही पदत्व विद्यमान था तो पुनः पदसंज्ञा का विधान करके यह नियम बना कि **यदि क्य प्रत्ययों के परे रहते पूर्व में विद्यमान शब्द में पदत्व हो तो केवल नकारान्त शब्दों में ही हो, अन्य शब्दों में नहीं**। पदसंज्ञा के अनेक फल हैं। जैसे नकार का लोप, जश्त्व आदि। इस नियम से **राजन्+य** में **नः क्ये** से पदसंज्ञा के बाद नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप और ईत्व होकर **राजीयति** बन जायेगा और **आत्मनो वाचम् इच्छति** में **वाच्+य** में नकारान्त न होने से पदसंज्ञक नहीं है और पदत्व न होने से **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व और **चोः कुः** से कुत्व नहीं होगा जिससे **वाच्यति** सिद्ध होगा अन्यथा **वाग्यति** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः इस सूत्र को **नियम सूत्र** कहा जाता है।

राजीयति। आत्मनो राजानम् इच्छति। अपना राजा चाहता है(अपने देश का न कि अन्यदेश का) **राजन्+अम्** से **सुप आत्मनः क्यच्** से **क्यच्,** अनुबन्ध लोप, **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **अम्** का लुक्, **न क्ये** के नियम से **राजन्+य** के **राजन्** में पदत्व है ही। अतः **पदान्त नकार** का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **राज+य** बना। **क्यचि च** से जकारोत्तरवर्ती अकार को **ईत्व** करके **राजीय** बना। **एकदेशविकृतन्यायेन** धातुत्वात् लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **राजीयति** सिद्ध हो जाता है।

लट् के रूप- राजीयति, राजीयतः, राजीयन्ति, राजीयसि, राजीयथः, राजीयथ, राजीयामि, राजीयावः, राजीयामः। **लिट्** में **पुत्रीयाञ्चकार** की तरह **राजीयाञ्चकार**। आगे **राजीयाञ्चक्रतुः, राजीयाञ्चक्रुः** आदि। भू के अनुप्रयोग में **राजीयाम्बभूव** और अस् के

लोपविधयकं विधिसूत्रम्

७२४. क्यस्य विभाषा ६।४।५०॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके। **आदेः परस्य। अतो लोपः।** तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न। समिधिता-समिध्यिता।

....

अनुप्रयोग में **राजीयामास**। लुट् में- **राजीयिता**। लृट्- **राजीयिष्यति**। लोट्- राजीयतु। लङ्- **अराजीयत्**। विधिलिङ्-**राजीयेत्**। आशीर्लिङ्- **राजीय्यात्**। लुङ्- **अराजीयीत्**। लृङ्- **अराजीयिष्यत्**।

गीर्यति। आत्मनो गिरम् इच्छति। अपनी वाणी चाहता है। यहाँ पर **गिर्+अम्** इस प्रातिपदिक से **क्यच्**, धातुसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गिर्+य** बना। **हलि च** से उपधाभूत इकार को दीर्घ होकर **गीर्य** बना। इससे लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **गीर्यति** सिद्ध होता है। आगे आर्धधातुक के परे रहने पर अग्रिम सूत्र से **क्य** का लोप करके **गीराञ्चकार** भी बन जायेगा। लुट् आदि में **गीरिता, गीरिष्यति** आदि रूप होते हैं। **क्य** का लोप वैकल्पिक है। सार्वधातुक में तो **य** का लोप प्राप्त ही नहीं है। अतः **गीर्यतु, अगीर्यत्, गीर्येत्** आदि बनाते जायें। **आशीर्लिङ्** में **गीर्यात्** और **लुङ्** में **अगीरीत्** तथा लृङ् में **अगीरिष्यत्** बन जायेंगे।

पूर्यति। आत्मनः पुरम् इच्छति। अपने लिए नगर चाहता है। जिस तरह से **गिर्** से **गीर्यति** बना, उसी तरह से **पुर्** से **पूर्यति** बनता है।

दिव्यति। आत्मनो दिवम् इच्छति। अपने लिए स्वर्ग चाहता है। यहाँ पर **दिव्+अम्** से **क्यच्** करके **दिव्+य** बना। अब **हलि च** से दीर्घ नहीं होगा, क्योंकि वह रेफान्त और वकारान्त **धातु** के उपधा को दीर्घ करता है। **दिव्** यह धातु नहीं है, अपितु अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। अतः **दिव्यति** ही बनेगा। स्मरण रहे कि **गिर्, पुर्** शब्द **गृ** और **पृ** धातुओं से **क्विप्** प्रत्यय होकर बने हैं। प्रातिपदिक बन जाने के बाद भी इसमें धातुत्व बना हुआ है क्यों कि **क्विबन्ता विजन्ता विडन्ताः शब्दा धातुत्वं न जहति** अर्थात् क्विप् प्रत्ययान्त, विच् प्रत्ययान्त और विच् प्रत्ययान्त शब्द प्रातिपदिक बन जाने के बाद भी धातुत्व का त्याग नहीं करते। अतः **पुर्+य, गिर्+य** में धातु मान कर उपधा को दीर्घ हुआ और **दिव्+य** में दिव् के अव्युत्पन्न शब्द होने से धातु नहीं है, अतः दीर्घ नहीं हो सका।

समिध्यति। आत्मनः समिधमिच्छति। अपने लिए समिधा चाहता है। **समिध्+अम्** से **क्यच्** होकर, धातुसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **समिध्+य** बना। **नः क्ये** के नियम से पदसंज्ञा नहीं हुई, अतः धकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व भी नहीं हुआ। इस तरह **समिध्य** यह धातु बन गया। उससे लट्, तिप्, शप् करके **समिध्यति** सिद्ध हुआ। लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में अग्रिम सूत्र **क्यस्य विभाषा** से यकार का विकल्प से लोप किया जा रहा है।

७२४- क्यस्य विभाषा। क्यस्य षष्ठ्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **यस्य हलः** से **हलः** और **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

हल् से परे क्यच् और क्यङ् का विकल्प से लोप होता है आर्धधातुक के परे होने पर।

काम्यज्-विधायकं विधिसूत्रम्

७२५. काम्यच्च ३।१।९॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति। पुत्रकाम्यिता।

....

यस्य हलः से नित्य से यकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के विकल्प से किया गया। इस सूत्र से तो पूरे **य** अर्थात् यकार और अकार के समूह **य** का लोप प्राप्त होता है किन्तु **आदेः परस्य** इस परिभाषा के बल पर पर में जो आदि वर्ण हो, उसका ही लोप होता है। पर में आदि केवल **य्** है। अतः केवल **य्** का इससे लोप होगा और शेष बचे अकार का **अतो लोपः** से लोप होगा। इस तरह लोप तो पूरे **य** का ही होता है।

अकार के लोप का स्थानिवद्भाव हो जाने से लघूपधगुण नहीं होता।

समिधिता, समिध्यिता। लुट् लकार में **समिध्+य+इता** बन जाने के बाद **क्यस्य विभाषा** से विकल्प से यकार का लोप, शेष अकार का **अतो लोपः** से लोप हो जाने के बाद **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधागुण प्राप्त हो रहा था किन्तु अकार के लोप का स्थानिवद्भाव हो जाने से यहाँ पर अकार की विद्यमानता में उपधा में इकार मिल नहीं सकता। अतः गुण नहीं हो पाया। **यकार** के लोप के पक्ष में **समिधिता** बन जाता है। यकार के लोप न होने के पक्ष में भी **अतो लोपः** से अकार का लोप होता ही है। अतः **समिध्यिता** बन जाता है।

रूप- लट्- समिध्यति। **लिट्- यलोपपक्षे-** समिधाञ्चकार, समिधाम्बभूव, समिधामास। **यलोपाभावे-** समिध्याञ्चकार, समिध्याम्बभूव, समिध्यामास। **लुट्-** समिधिता, समिध्यिता। **लृट्-** समिधिष्यति, समिध्यिष्यति। **लोट्-** समिध्यतु। **लङ्-** असमिध्यत्। **विधिलिङ्-** समिध्येत्। **आशीर्लिङ्-** समिध्यात्, समिध्य्यात्। **लुङ्-** असमिधीत्, असमिध्यीत्। **लृङ्-** असमिधिष्यत्, असमिध्यिष्यत्।

अपना, अपने लिए, अपने सम्बन्धी को चाहना इस अर्थ को तीन प्रकार से प्रकट किया जा रहा है। **१-क्यच् प्रत्यय** के द्वारा, २- **काम्यच् प्रत्यय** के द्वारा और **३- वाक्य** के द्वारा। **वाक्य** के द्वारा **आत्मनः पुत्रमिच्छति** और **क्यच्** के द्वारा **पुत्रीयति** तथा **काम्यच्** के द्वारा दिखाने के लिए अग्रिम सूत्र का अवतरण किया जा रहा है।

७२५-काम्यच्च। काम्यच् प्रथमान्तं, च अव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **सुप आत्मनः क्यच्** से **सुपः, आत्मनः** की और **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **कर्मणः, इच्छायाम्** एवं **वा** की अनुवृत्ति आती है।

इष् धातु के कर्म तथा इच्छुक के सम्बन्धी सुबन्त से चाहना अर्थ में विकल्प से काम्यच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है। जिस तरह से उक्त अर्थ में प्रारम्भ में **क्यच्** का विधान किया गया था, उसी तरह से उसी अर्थ में **काम्यच्** भी होता है। **शब्द** और **काम्य** दोनों के समूह की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर **लट्** आदि लकार आते हैं। स्मरण रहे कि **क्यच्** के न रहने से **क्यचि च** से **ईत्व** नहीं होता और लुट् आदि में भी **क्यस्य विभाषा** की प्रवृत्ति नहीं होती एवं **यस्य हलः** से यकार का लोप भी नहीं होता।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि **काम्य** में भी **य** तो है ही तो फिर उसका लोप आदि क्यों नहीं होता, जैसा कि **क्यच्** का होता था? उत्तर यह है कि **अर्थवद्ग्रहणे**

क्यज्-विधायकं सूत्रम्

७२६. उपमानादाचारे ३।१।१०।।

उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्।

पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्।

वार्तिकम्- **सर्वप्रातिपदिकेभ्य क्विब्वा वक्तव्यः। अतो गुणे।**

कृष्ण इवाचरति कृष्णति। स्व इवाचरति स्वति। सस्वौ।

....

नानर्थकस्य ग्रहणम् अर्थात् अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता। **समुदायो ह्यर्थवान्, तस्यैकदेशोऽनर्थकः** अर्थात् समुदाय अर्थवान् होता है किन्तु उसका एकदेश अर्थवान नहीं होता। समूहात्मक **क्यच्, क्यङ्** आदि में केवल **य** अर्थवान् है। **काम्यच्** में केवल **य** एकदेश अर्थवान् नहीं है। अतः **यस्य हलः** के द्वारा निर्दिष्ट **य** से समूह के एकदेश **काम्य** का केवल **य** का ग्रहण नहीं किया जा सकता।

पुत्रकाम्यति। आत्मनः पुत्रमिच्छति। अपने लिए पुत्र चाहता है। यहाँ पर **पुत्र+अम्** इस सुबन्त से **काम्यच्च** से **काम्यच्** प्रत्यय हुआ। चकार की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद **पुत्र+अम्+काम्य** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हो गई और उसके अवयव **अम्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ- **पुत्रकाम्य** बना। इससे लट्, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप करके **पुत्रकाम्य+अति** बना। पररूप होकर **पुत्रकाम्यति** सिद्ध हुआ। अब इसके सभी लकारों के तीनो पुरुष और तीनों वचनों में रूप बनाये जा सकते हैं।

रूप- लट्- पुत्रकाम्यति। **लिट्-** पुत्रकाम्याञ्चकार, पुत्रकाम्याम्बभूव, पुत्रकाम्यामास। **लुट्-** पुत्रकाम्यिता। **लृट्-** पुत्रकाम्यिष्यति। **लोट्-** पुत्रकाम्यतु। **लङ्-** अपुत्रकाम्यत्। **विधिलिङ्-** पुत्रकाम्येत्। **आशीर्लिङ्-** पुत्रकाम्यात्,। **लुङ्-** अपुत्रकाम्यीत्। **लृङ्-** अपुत्रकाम्यिष्यत्।

अब **आचारार्थक** प्रत्ययों का वर्णन कर रहे हैं।

७२६- उपमानादाचारे। उपमानात् पञ्चम्यन्तम्, आचारे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सुप आत्मनः क्यच्** से **सुपः, क्यच्** और **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **कर्मणः** और **वा** की अनुवृत्ति आती है।

उपमानरूप कर्म सुबन्त से आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है।

जिससे उपमा दी जाती है, उसे **उपमान** कहते हैं। **सुप आत्मनः क्यच्** से **इच्छा** अर्थ में और यहाँ इस सूत्र से **आचार** अर्थ में **क्यच्** का विधान किया गया। प्रक्रिया में किसी तरह की भिन्नता नहीं है। अर्थ में भेद होने के कारण अलग से बताया जा रहा है। अन्तर केवल इतना ही है कि वह **इच्छा-क्यच्** और यह **आचार-क्यच्** है। प्रसंग के अनुसार अर्थ किया जाता है। इसके वाक्य में सुबन्त शब्द के बाद **इव आचरति** जोड़ा जाता है।

पुत्रीयति छात्रम्। पुत्रम् इव आचरति। पुत्र की तरह आचरण करता है अथवा शिष्य के साथ पुत्र का सा व्यवहार करता है। यहाँ पर **पुत्र** की उपमा दी जा रही है, अतः **पुत्र** उपमान हुआ और **पुत्र+अम्** उपमान रूप कर्म सुबन्त हुआ। **पुत्र+अम्** इस उपमानरूप कर्म सुबन्त से **उपमानादाचारे** से **क्यच्** प्रत्यय होने के बाद अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

अवयवरूप सुप् अम् का लुक् करके **क्यचि च** से इत्व करने के बाद लट्, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप, पररूप करके पहले की तरह ही **पुत्रीयति** आदि सभी रूप बनाये जाते हैं।

विष्णूयति द्विजम्। विष्णुम् इव आचरति। ब्राह्मण को विष्णु की तरह मानता है अथवा ब्रांह्मण से विष्णु भगवान् का सा व्यवहार रखता है, उसी तरह पूजता है। **विष्णु+अम्** इस उपमानरूप कर्म सुबन्त से **क्यच्** करके धातुसंज्ञा, अवयव सुप् का लुक करने के बाद **विष्णु+य** बना है। **विष्णु** में अकार न होने के कारण **क्यचि च से ईत्त्व** नहीं होता किन्तु **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से यकार के परे होने पर **विष्णु** के उकार को दीर्घ करने पर **विष्णूय** बनता है। इससे लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **विष्णूयति** बन जाता है। इसके सभी लकारों में पूर्ववत् रूप बनाये जाते हैं।

रूप- लट्- विष्णूयति। **लिट्-** विष्णूयाञ्चकार, विष्णूयाम्बभूव, विष्णूयामास। **लुट्-** विष्णूयिता। **लृट्-** विष्णूयिष्यति। **लोट्-** विष्णूयतु। **लङ्-** अविष्णूयत्। **विधिलिङ्-** विष्णूयेत्। **आशीर्लिङ्-** विष्णूय्यात्,। **लुङ्-** अविष्णूयीत्। **लृङ्-** अविष्णूयिष्यत्।

अब इसी तरह **आचार** अर्थ में अनेक रूप बनाये जा सकते हैं। जैसे कि-
शत्रुमिवाचरति मित्रम्- **शत्रूयति मित्रम्** मित्र के साथ शत्रु का व्यवहार करता है।
मातरमिवाचरति परस्त्रियम्- **मात्रीयति परस्त्रियम्** माता की तरह मानता है परस्त्रियों को।
मित्रमिवाचरति पुत्रम्- **मित्रीयति पुत्रम्** पुत्र से मित्र की तरह व्यवहार करता है।
प्राकारीयति कुटीम् **प्राकारीयति** कुटी को महल की तरह मानता है। आदि आदि।

क्यच् की तरह **क्विप्** प्रत्यय के द्वारा भी आचार अर्थ को प्रकट करने की प्रक्रिया प्राप्त होती है, जिसमें वार्तिक के द्वारा यह प्रत्यय किया जा रहा है-

सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **उपमानरूप सभी प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में विकल्प से क्विप् प्रत्यय होता है।** क्यच् और क्विप् के विधान में अन्तर यह है कि **क्यच्** उपमानरूप कर्म प्रातिपदिक से होता है और यह **क्विप्** उपमानरूप कर्ता प्रातिपदिक से होगा क्योंकि यह वार्तिक महाभाष्य में **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** में पढ़ा गया है। इस प्रत्यय के लिए **सुबन्त** होने की आवश्यकता नहीं है, सीधे प्रातिपदिक से ही होता है किन्तु वह **कर्ता** हो। सुप् न होने के कारण **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** की भी आवश्यकता नहीं होती। **क्विप्** में इकार **उच्चारणार्थक** है, **ककार** की **लशक्वतद्धिते** और **पकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है तथा अपृक्त **वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है। इस तरह प्रत्यय के सभी वर्णों का लोप हो जाता है, कुछ भी नहीं बचता। इसे सर्वापहार या सर्वापहारलोप कहते हैं। जैसा कि **हलन्तपुँल्लिङ्ग** में वर्णन आ चुका है। **क्विप्** प्रत्यय करने का फल यही हुआ कि प्रातिपदिक कर्ता **धातु** बन गया। **आचारार्थक क्विप्** को **सनादि** के अन्तर्गत माना गया है। अतः **सनाद्यन्ता धातवः** से इसकी धातुसंज्ञा हो जाती है। उसके बाद **लट्, तिप्, शप्, पररूप** आदि करके रूप सिद्ध होता है। ध्यान रहे कि यह प्रत्यय कर्म में नहीं होता। अतः **कृष्णाति भक्तम्** नहीं बनेगा किन्तु **कृष्णाति नटः, कृष्णाति शिशुः** आदि प्रथमान्त समानाधिकरण वाले ही रूप बनाये जाते हैं।

कृष्णाति। कृष्ण इवाचरति नटः। नट कृष्ण की तरह आचरण करता है। यहाँ पर उपमानरूप कर्ता प्रातिपदिक से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** प्रत्यय,

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

७२७. अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६।४।१५॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति इदामति। राजेव राजानति। पन्था इव पथीनति।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

सर्वापहार लोप, **कृष्ण** की धातुसंज्ञा, लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **कृष्णति** सिद्ध होता है। आगे सभी लकारों के रूप बनाये जा सकते हैं।

रूप- लट्- कृष्णति। **लिट्-** कृष्णाञ्चकार, कृष्णाम्बभूव, कृष्णामास। **लुट्-** कृष्णिता। **लृट्-** कृष्णिष्यति। **लोट्-** कृष्णतु। **लङ्-** अकृष्णत्। **विधिलिङ्-** कृष्णेत्। **आशीर्लिङ्-** कृष्ण्यात्,। **लुङ्-** अकृष्णीत्। **लृङ्-** अकृष्णिष्यत्।

स्व इवाचरति स्वति। अपनी तरह ही आचरण करता है। यहाँ उपमानवाचक कर्ता प्रातिपदिक **स्व** शब्द से **आचरण करना** अर्थ में **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से क्विप्, सर्वापहारलोप, धातुसंज्ञा, लट्, तिप्, शप् करके **स्व+अति** बना है। पररूप करने पर **स्वति** बनता है। आगे सभी वचनों के रूप बना लें। लिट् में अनेकाच् न होने के कारण **आम्** नहीं होता। अतः **तिप्** के स्थान पर णल् करने के बाद **स्व+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से अजन्त अकार की वृद्धि होने पर **स्वा+अ** बना। अब **आत औ णलः** से **णल्** के अकार के स्थान पर **औकार** आदेश होकर **स्वा+औ** बना। **स्वा** को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, ह्रस्व करके **सस्वा+औ** बना। वृद्धि होकर **सस्वौ** बन गया। **अचो ञ्णिति** से णित् परे रहने पर ही वृद्धि होती है। अतः णल् के अलावा अन्यत्र अतुस् आदि में वृद्धि नहीं होगी किन्तु **अतो लोपः** से अकार का लोप करके **सस्वतुः, सस्वुः, सस्विथ, सस्वथुः, सस्व** बनते है। उत्तमपुरुष के **णल्** में **सस्वौ** बनता है। वस्, मस् में **सस्विव, सस्विम।**

लुट्- स्विता **लृट्-** स्विष्यति। **लोट्-** स्वतु। **लङ्-** अस्वत्। **विधिलिङ्-** स्वेत्। **आशीर्लिङ्-** स्व्यात्,। **लुङ्-** अस्वीत्, अस्विष्टाम्, अस्विषुः। **लृङ्-** अस्विष्यत्।

७२७- अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति। क्विश्च झल् तयोरितरेतरद्वन्द्वः क्विझलौ, तयोः क्विझलोः। क् च ङ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः क्ङौ, तौ इतौ यस्य, यस्मिन् वा स क्ङित्, तस्मिन्। अनुनासिकस्य षष्ठ्यन्तं, क्विझलोः सप्तम्यन्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **नोपधायाः** से **उपधायाः** और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

क्वि या झलादि कित्, ङित् के परे होने पर अनुनासिकान्त अङ्ग के उपधा को दीर्घ होता है।

इदम् इव आचरति- इदामति। इसकी तरह आचरण करता है। **इदम्** इस कर्ता प्रातिपदिक सर्वनाम से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** करके सर्वापहारलोप करने पर **इदम्** ही बना। धातुसंज्ञा हुई और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **प्रत्ययलक्षणेन** क्वि परे मान कर अनुनासिकान्त उपधा दकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ हुआ- **इदाम्** बना। इससे लट्, तिप्, शप् करके **इदाम्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इदामति** सिद्ध हुआ।

क्यङ्-विधायकं विधिसूत्रम्

७२८. कष्टाय क्रमणे ३।१।१४॥

चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्।
कष्टाय क्रमते कष्टायते। पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

रूप- लट्- इदामति। **लिट्-** इदामाञ्चकार, इदामाम्बभूव, इदामामास। **लुट्-** इदामिता। **लृट्-** इदामिष्यति। **लोट्-** इदामतु। **लङ्-** ऐदामत्। **विधिलिङ्-** इदामेत्। **आशीर्लिङ्-** इदाम्यात्,। **लुङ्-** ऐदामीत्। **लृङ्-** ऐदामिष्यत्।

राजा इव आचरति- राजानति। राजा की तरह आचरण करता है। **राजन्** इस कर्ता प्रातिपदिक से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** करके सर्वापहार करने पर **राजन्** ही बना। धातुसंज्ञा हुई और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति से प्रत्ययलक्षणेन** क्वि परे मानकर अनुनासिकान्त उपधा जकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ हुआ- **राजान्** बना। इससे लट्, तिप्, शप् करके **राजान्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **राजानति** सिद्ध हुआ।

रूप- लट्- राजानति। **लिट्-** राजानाञ्चकार, राजानाम्बभूव, राजानामास। **लुट्-** राजानिता। **लृट्-** राजानिष्यति। **लोट्-** राजानतु। **लङ्-** अराजानत्। **विधिलिङ्-** राजानेत्। **आशीर्लिङ्-** राजान्यात्,। **लुङ्-** अराजानीत्। **लृङ्-** अराजानिष्यत्।

पन्था इव आचरति- पथीनति। मार्ग की तरह आचरण करता है। **पथिन्** इस कर्ता प्रातिपदिक से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** करके सर्वापहार करने पर **पथिन्** ही बना। धातुसंज्ञा हुई और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **प्रत्ययलक्षणेन** क्वि परे मानकर अनुनासिकान्त उपधा थकारोत्तरवर्ती इकार को दीर्घ हुआ- **पथीन्** बना। इससे लट्, तिप्, शप् करके **पथीन्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पथीनति** सिद्ध हुआ।

रूप- लट्- पथीनति। **लिट्-** पथीनाञ्चकार, पथीनाम्बभूव, पथीनामास। **लुट्-** पथीनिता। **लृट्-** पथीनिष्यति। **लोट्-** पथीनतु। **लङ्-** अपथीनत्। **विधिलिङ्-** पथीनेत्। **आशीर्लिङ्-** पथीन्यात्,। **लुङ्-** अपथीनीत्। **लृङ्-** अपथीनिष्यत्।

अब **क्यङ्** प्रत्यय का विधान बतलाते हैं।

७२८- कष्टाय क्रमणे। कष्टाय चतुर्थ्यन्तं, क्रमणे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** से **क्यङ्** तथा **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थात् उत्साह करना अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है।

ककार और **ङकार** की इत्संज्ञा होती है, **य** शेष रहता है। ङित् होने से आत्मनेपद होता है।

कष्टाय क्रमते- कष्टायते। कष्ट (पाप) करने का उत्साह करता है। **कष्ट+ङे** इस चतुर्थ्यन्त शब्द से **उत्साह करना** अर्थ में **कष्टाय क्रमणे** से **क्यङ्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **धातुसंज्ञा,** अवयव सुप् का लुक् करके **कष्ट+य** बना। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होने पर **कष्टाय** बना। इससे लट्, त, शप्, पररूप, एत्व

क्यङ्-विधायकं विधिसूत्रम्

७२९. शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ३।१।१७।।

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। शब्दं करोति शब्दायते।।

गणसूत्रम्- **तत्करोति तदाचष्टे।** इति णिच्।

गणसूत्रम्- **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च।**

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात्, इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्रस्थस्फाद्यादेश-भसंज्ञाः, तद्वण्णावपि स्युः। इत्यल्लोपः। घटं करोत्याचष्टे वा घटयति।

इति नामधातवः।।२६।।

....

करके **कष्टायते** सिद्ध हो जाता है। आगे सभी लकारों के सभी वचनों के रूप बना सकते हैं। क्यङ् के ङित् होने से तदन्त धातु भी आत्मनेपदी हुई।

७२९- शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे। शब्दश्च वैरञ्च, कलहश्च, अभ्रञ्च, कण्वश्च मेघश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघास्तेभ्यः। शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः पञ्चम्यन्तं, करणे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **कर्मणो रोमन्थ०** से वचनविपरिणाम करके **कर्मभ्यः, कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** से **क्यङ्** और **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ इन कर्मों से करना अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है।

शब्दं करोति शब्दायते। शब्द करता है। **कष्ट** से **कष्टायते** की तरह ही **क्यङ्**, अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा, **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ करके **शब्दाय** बनता है। इससे लट्, त, शप्, पररूप, एत्व करके **शब्दायते** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **वैर** से वैरायते- वैर करता है, **कलह** से **कलहायते** कलह करता है, **अभ्र** से **अभ्रायते** मेघ बनता है, **कण्व** से **कण्वायते** पाप करता है, **मेघ** से **मेघायते** बादल बनता है आदि बनाये जा सकते हैं।

तत्करोति तदाचष्टे। यह गणसूत्र है। यह **उसे करता है, उसे कहता है** इस अर्थ में **प्रातिपदिकों** से **णिच् प्रत्यय होता है।**

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च। यह भी गणसूत्र है। **प्रातिपदिकों से धातु के अर्थ में बहुल से णिच् प्रत्यय हो जाता है साथ ही इष्ठन् प्रत्यय के परे रहने पर जो-जो भी कार्य होते हैं वे वे कार्य इस णिच् प्रत्यय के परे रहने पर भी हो जायें।**

इष्ठन् के परे रहने पर क्या-क्या कार्य हो सकते हैं? उत्तर दिया- **इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्रस्थस्फाद्यादेश-भसंज्ञाः, तद्वण्णावपि स्युः।** अर्थात् इष्ठन् प्रत्यय के परे रहने पर जैसे प्रातिपदिक को पुंवद्भाव, रभाव, टि का लोप, विन् और मतुप् का लोप, यणादिलोप, प्र-स्थ-स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा आदि कार्य होते हैं, वैसे ही णि के परे होने पर भी ये सब कार्य होते हैं।

घटं करोति, घटमाचष्टे घटयति। घड़े को करता, बनाता है या घट को कहता

है। **घट** इस प्रातिपदिक से **तत्करोति तदाचष्टे** से **णिच्** प्रत्यय करके **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** से इष्ठवद्भाव का अतिदेश करके **घट+इ** में घट के भसंज्ञक न होते हुए भी इष्ठवद्भाव के कारण भसंज्ञा का अतिदेश हुआ। अतः टकारोवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **घट्+इ** बना। यहाँ **णिच्** को णित् मानकर के **अचो ञ्णिति** से वृद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से अकार के लोप को स्थानिवद्भाव करके बीच में अकार का व्यवधान दीखता है। अब **घटि** की धातुसंज्ञा करके **णिचश्च** से कर्तृगामि क्रियाफल में आत्मनेपद अन्यथा परस्मैपद का विधान होता है। अतः लट्, तिप् या त, शप्, गुण, अयादेश, वर्णसम्मेलन करके **घटयति, घटयते** सिद्ध हो जाते हैं। इसके भी सभी लकारों के सभी वचनों में रूप बनाये जाते हैं।

रूप- लट्- घटयति, घटयते। **लिट्-** घटयाञ्चकार, घटयाम्बभूव, घटयामास। लुट्- घटयिता, घटयितासि, घटयितासे। **लृट्-** घटयिष्यति, घटयिष्यते। **लोट्-** घटयतु, घटयताम्। **लङ्-** अघटयत्, अघटयत। **विधिलिङ्-** घटयेत्, घटयेत। **आशीर्लिङ्-** घट्यात्, घटिषीष्ट। **लुङ्-** ण्यन्त होने से **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से चङ्, उसके बाद द्वित्वादि होकर- अजघटत्, अजघटत। लृङ्- अघटयिष्यत्, अघटयिष्यत।

इसके बाद अनेक सुबन्तों से नामधातुओं की प्रक्रिया बताई गई है। कहीं उपधा को दीर्घ, कहीं काम्यच् प्रत्यय, कहीं इच्छा अर्थ के अतिरिक्त आचार अर्थ में क्यच्, चतुर्थ्यन्त कष्टशब्द से क्यङ्, शब्दादि शब्दों से क्यङ्, प्रातिपदिकों से णिच् और इष्ठवद्भाव आदि का विधान मिलता है।

नामधातु के लट् प्रथम पुरुष एकवचन के कुछ रूप नीचे दिये जा रहे हैं।

शब्द	**नामधात्वर्थ**	**लट् का रूप**
पुत्र	अपने को पुत्र चाहता है	पुत्रीयति
वाच्	अपने लिए वाणी चाहता है	वाचीयति
राजन्	अपने लिए राजा चाहता है	राजीयति
गिर्	अपने लिए वाणी चाहता है	गीर्यति
पुर्	अपने लिए नगर चाहता है	पूर्यति
दिव्	अपने लिए स्वर्ग चाहता है	दिव्यति
पुत्र	अपने लिए पुत्र चाहता है(काम्यच् प्रत्यय)	पुत्रकाम्यति
पुत्र	शिष्य से पुत्र की तरह व्यवहार करता है	पुत्रीयति छात्रम्
विष्णु	ब्राह्मण को विष्णु की तरह मानता है	विष्णूयति द्विजम्
मातृ	दूसरी स्त्री को माता की तरह मानता है	मात्रीयति परकीयाम्
गर्दभ	घोड़े को गदहे की तरह समझता है	गर्दभीयति अश्वम्
प्रासाद	कुटिया को महल की तरह समझता है	प्रासादीयति कुटीम्
कृष्ण	नट कृष्ण की तरह अभिनय करता है	कृष्णति
इदम्	ऐसा व्यवहार करता है	इदामति
कष्ट	कष्ट सहने के लिए तैयार रहता है	कष्टायते
शब्द	शब्द करता है	शब्दायते
वैर	वैर करता है	वैरायते

कलह	कलह करता है	कलहायते
मेघ	मेघ बनता है	मेघायते
घट	घट बनाता है	घटयति
प्रकट	प्रकट करता है	प्रकटयति
दृढ	दृढ़ करता है	दृढयति

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में **पुत्र** शब्द से बने **पुत्रीय** इस **नामधातु** के सारे रूप लिखें। १०

२- **शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे** इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या करें। १०

३- **नामधातु प्रकरण** के विषय में एक परिचय दें। १०

४- **तत्करोति तदाचष्टे** और **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** इन दो गणसूत्रों की सोदाहरण व्याख्या करें। १०

५- **उपमानादाचारे** तथा **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** इन सूत्र और वार्तिक का अन्तर स्पष्ट करें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का नामधातु-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ कण्ड्वादयः

यक्--प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७३०. कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे॥१॥ कण्डूयति। कण्डूयत इत्यादि।

इति कण्ड्वादयः॥२७॥

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **कण्ड्वादिप्रकरण** का आरम्भ होता है। कण्डू+आदि=कण्ड्वादि। पाणिनीय गणपाठ में एक कण्ड्वादिगण है। इसके अन्तर्गत आने वाले शब्दों को धातु और प्रातिपदिक दोनों मान लिया गया है। **कण्ड्वादि** से विहित यक् के कित् होने से यह सिद्ध होता है कि ये धातुएँ हैं, क्योंकि कित् का फल गुणनिषेध है जो धातुओं में ही दीखता है प्रातिपदिकों में नहीं। पुनः कण्डूञ् धातु में दीर्घ ऊकार का होना यह सिद्ध करता है कि यह प्रातिपदिक हैं क्योंकि यदि धातु ही होती तो ह्रस्व उकार होने पर य के परे रहते **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ हो ही जाता। अतः दीर्घ ऊकार ग्रहण करने का तात्पर्य यह है कि ये प्रातिपदिक भी हैं। प्रातिपदिक मानकर इनके तीनों लिङ्गों में सभी विभक्तियों में रूप चलते हैं और धातु मानकर यक् आदि करके धातु की तरह रूप बनाये जाते हैं।

७३०- **कण्ड्वादिभ्यो यक्।** कण्डूः+आदिर्येषां ते कण्ड्वादयस्तेभ्यः कण्ड्वादिभ्यः। कण्ड्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से वचनविपरिणाम करके **धातुभ्यः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **कण्डू आदि धातुओं से स्वार्थ में यक् प्रत्यय होता है।**

यक् में **ककार** इत्संज्ञक है, **य** शेष रहता है।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे। कण्डूञ् धातु **शरीर रगड़ने अर्थात् खुजलाने** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **कण्डू** शेष रह जाता है।

कण्डूयति। कण्डू से **कण्ड्वादिभ्यो यक्** से **यक्, ककार** का लोप करके **कण्डू+य** बना। **य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऊकार को गुण प्राप्त था, कित् परे होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो गया। अब **कण्डूय** ऐसा बना है। **सनाद्यन्ता धातवः** से इसकी धातुसंज्ञा करके **लट्**, उसके स्थान पर तिप्, शप् करके **कण्डूय+अति** बना। **अतो गुणे** से पररूप करके **कण्डूयति** सिद्ध हुआ। यह धातु ञित् होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी हो जाता है। अतः **कण्डूयते** भी बनता है। आगे के रूप स्वयं बनायें।

लट्- **कण्डूयति, कण्डूयते।**
लिट्- **कण्डूयाञ्चकार, कण्डूयाम्बभूव, कण्डूयामास, कण्डूयाञ्चक्रे।**
लुट्- **कण्डूयिता, कण्डूयितासि, कण्डूयितासे।** लृट्- **कण्डूयिष्यति, कण्डूयिष्यते।**
लोट्- **कण्डूयतु-कण्डूयतात्, कण्डूयताम्।** लङ्- **अकण्डूयत्, अकण्डूयत।**
विधिलिङ्- **कण्डूयेत्, कण्डूयेत।** आशीर्लिङ्- **कण्डूय्यात्, कण्डूयिषीष्ट।**
लुङ्- **अकण्डूयीत्, अकण्डूयिष्ट।** लृङ्- **अकण्डूयिष्यत्, अकण्डूयिष्यत।**

कण्डू धातु न होकर जब प्रातिपदिक रहता है, तब इसके रूप ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग में **वधू** शब्द की तरह होते हैं।

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग कण्डू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कण्डू:	कण्ड्वौ	कण्ड्व:
द्वितीया	कण्डूम्	कण्ड्वौ	कण्डू:
तृतीया	कण्ड्वा	कण्डूभ्याम्	कण्डूभि:
चतुर्थी	कण्ड्वै	कण्डूभ्याम्	कण्डूभ्य:
पञ्चमी	कण्ड्वा:	कण्डूभ्याम्	कण्डूभ्य:
षष्ठी	कण्ड्वा:	कण्ड्वो:	कण्डूनाम्
सप्तमी	कण्ड्वाम्	कण्ड्वो:	कण्डूषु
सम्बोधन	हे कण्डू:!	हे कण्ड्वौ	हे कण्ड्व:!

....

कण्ड्वादि गण के कुछ प्रसिद्ध शब्दों के धातु और सुबन्त के रूप देखें-

कण्ड्वादि शब्द	धातु रूप और अर्थ	सुबन्त और अर्थ
कण्डू	कण्डूयति=खुजलाता है	कण्डू:=खुजलाहट
सपर	सपर्यति=पूजा करता है	सपर्या=पूजा
मही	महीयते=पूजित होता है	मही=भूमि
सुख	सुखयति=सुखी होता है	सुखम्=सुख
भिषज्	भिषज्यति=चिकित्सा करता है	भिषक्=वैद्य
उषस्	उषस्यति=प्रात: होता है	उषा:=प्रात:काल
उरस्	उरस्यति=बलवान् होता है	उर:=छाती
पयस्	पयस्यति=गाय दूध देती है	पय:=दूध

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का कण्ड्वादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ आत्मनेपदप्रक्रिया

आत्मनेपदविधायकं सूत्रम्

७३१. कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम्।

व्यतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **आत्मनेपदप्रक्रिया** का आरम्भ होता है। धातुप्रकरण के आरम्भ में कहा जा चुका है कि धातु से विहित लकारों के स्थान पर **परस्मैपद** और **आत्मनेपद** दो तरह के तिङ् प्रत्यय आदेश के रूप में होते हैं। किस तरह के धातुओं से **परस्मैपद** और किस तरह के धातुओं से **आत्मनेपद** हो, इसका सामान्य कथन तिङन्त प्रकरण के आदि में ही हो चुका है। सामान्यतया **अनुदात्तेत्** और **ङित्** धातुओं से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** और **स्वरितेत्** और **ञित्** धातुओं से **कर्तृगामी क्रियाफल** होने पर **आत्मनेपद** अन्यथा परस्मैपद का विधान हो चुका है। इसी तरह जो धातु **आत्मनेपद** के लिए निमित्त नहीं बनता है, ऐसे धातुओं से **परस्मैपद** का विधान बताया जा चुका है। अब इस प्रकरण में विशेषतया **आत्मनेपद** का विधान दिखलाते हैं। यद्यपि **अष्टाध्यायी** के सूत्रानुसार **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसके लिए अनेक सूत्र बतलाये गये हैं किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल चौदह सूत्रों को दिखाया गया है।

७३१- कर्तरि कर्मव्यतिहारे। कर्मणो व्यतिहारः कर्मव्यतिहारस्तस्मिन्। कर्तरि सप्तम्यन्तं, कर्मव्यतिहारे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्रिया का विनिमय अर्थात् अदला-बदली अर्थ द्योत्य होने पर धातु से कर्तृवाच्य में आत्मनेपद होता है।

एक के योग्य कार्य को दूसरा करने लगे तो उसे **कर्मव्यतिहार** कहते हैं और एक दूसरे के साथ एक जैसी आपसी क्रिया को भी **कर्मव्यतिहार** कहते हैं।

व्यतिलुनीते। अन्य के योग्य काटने की क्रिया को कोई अन्य करता है। यहाँ पर **वि** और **अति** दो उपसर्ग पूर्वक **लूञ् छेदने** धातु है। यह धातु क्र्यादिगण में उभयपदी के रूप में पठित है। इसके परस्मैपद में **लुनाति** आदि तथा आत्मनेपद में **लुनीते** आदि रूप बनते हैं। **प्वादीनां ह्रस्वः** से इसको ह्रस्व होता है। इस प्रकरण में केवल इतना ही बतलाया गया

आत्मनेपदनिषधकं विधिसूत्रम्

७३२. न गतिहिंसार्थेभ्यः १।३।१५॥

व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३३. नेर्विशः १।३।१७॥

निविशते।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३४. परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८॥

परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते।

....

है कि यद्यपि यह धातु उभयपदी है फिर भी यदि इसका अर्थ **कर्मव्यतिहार** अर्थात् **अन्य के योग्य काटने की क्रिया को किसी अन्य के द्वारा होना** हो रहा हो तो केवल **आत्मनेपद** होता है। यहाँ पर केवल आत्मनेपद होता है, यह बतलाया गया। रूपसिद्धि तो तत्तत् प्रकरणों के अनुसार ही करनी चाहिए।

७३२- **न गतिहिंसार्थेभ्यः**। गतिश्च हिंसा च तयोरितरेतरद्वन्द्वो गतिहिंसे, गतिहिंसे अर्थौ येषां ते गतिहिंसार्थास्तेभ्यः। न अव्ययपदं, गतिहिंसार्थेभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** से **कर्मव्यतिहारे** और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

कर्मव्यतिहार अर्थ होने पर भी गति और हिंसा अर्थ वाले धातुओं से आत्मनेपद नहीं होता।

यह पूर्व सूत्र का अपवाद है। **गति** अर्थ वाले धातुओं और **हिंसा करना** अर्थ वाले धातुओं से **कर्मव्यतिहार** अर्थात् एक के करने योग्य को दूसरा करे तो भी **आत्मनेपद** नहीं होगा।

व्यतिगच्छन्ति। एक दूसरे की ओर जाते हैं। यहाँ पर कर्मव्यतिहार है और **गत्यर्थक** धातु है **गम्**। **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** से **आत्मनेपद** प्राप्त था, उसका **न गतिहिंसार्थेभ्यः** से निषेध हुआ तो **परस्मैपद** ही हुआ- **व्यतिगच्छन्ति**।

व्यतिघ्नन्ति। एक दूसरे की हिंसा करते हैं। यहाँ पर कर्मव्यतिहार है और **हिंसा** अर्थ वाला धातु है **हन्**। **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** से **आत्मनेपद** प्राप्त था, उसका **न गतिहिंसार्थेभ्यः** से निषेध हुआ तो **परस्मैपद** ही हुआ- **व्यतिघ्नन्ति**। इसी तरह **व्यतिसर्पन्ति, व्यतिहिंसन्ति, व्यतिधावन्ति** आदि में **कर्मव्यतिहार** होते हुए **गत्यर्थक** और **हिंसार्थक** धातुओं के प्रयोग में आत्मनेपद का निषेध हुआ।

७३३- **नेर्विशः**। नेः पञ्चम्यन्तं, विशः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

नि उपसर्ग पूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद होता है।

केवल एक ही **विश्** धातु जो **नि** उपसर्ग से परे हो तभी यह सूत्र लगता है।

निविशते। **विश्** धातु **तुदादिगण** में **परस्मैपदी** है किन्तु **नि** उपसर्ग के योग में **नेर्विशः** से **आत्मनेपद** का विधान हुआ- **निविशते**।

७३४- **परिव्यवेभ्यः क्रियः**। परिश्च विश्च अवश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः परिव्यवास्तेभ्यः।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३५. विपराभ्यां जेः १।३।१९।।

विजयते। पराजयते।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३६. समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२।।

संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते।

....

परिव्यवेभ्यः पञ्चम्यन्तं, क्रियः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

परि, वि और अव उपसर्गों से परे क्री धातु से आत्मनेपद होता है।

क्र्यादिगण का **डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये** धातु है। वहाँ पर **ञित्** होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से **उभयपदी** बना हुआ था किन्तु उक्त उपसर्गों के योग में केवल **आत्मनेपदी** ही होता है, परस्मैपदी अथवा उभयपदी नहीं होता।

परिक्रीणीते। निश्चित समय के लिए खरीदता है। **परि पूर्वक क्री** धातु से उभयपद प्राप्त था किन्तु **परिव्यवेभ्यः क्रियः** से केवल **आत्मनेपद** का ही विधान हुआ- **परिक्रीणीते।**

विक्रीणीते। बेचता है। **वि पूर्वक क्री** धातु से उभयपद प्राप्त था किन्तु **परिव्यवेभ्यः क्रियः** से केवल **आत्मनेपद** का ही विधान हुआ- **विक्रीणीते।**

अवक्रीणीते। खरीदता है। **अव पूर्वक क्री** धातु से उभयपद प्राप्त था किन्तु **परिव्यवेभ्यः क्रियः** से केवल **आत्मनेपद** का ही विधान हुआ- **अवक्रीणीते।**

७३५- **विपराभ्यां जेः**। विश्च पराश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो विपरौ, ताभ्याम्। विपराभ्यां पञ्चम्यन्तं, जेः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

वि और परा उपसर्गों से परे जि धातु से आत्मनेपद होता है।

धातुपाठ के अनुसार **जि** धातु से आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से परस्मैपद होता हैं किन्तु **वि** और **परा** उपसर्ग के परे होने पर इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान किया गया।

विजयते। जीतता है। **पराजयते**। पराजित होता है, घबराता है।

वि पूर्वक जि धातु के रूप- विजयते, विजयेते, विजयन्ते। विजिग्ये, विजिग्याते, विजिग्यिरे। विजेता, विजेतासे। विजेष्यते। विजयताम्, विजयेताम्, विजयन्ताम्, विजयस्व। व्यजयत। विजयेत। विजेषीष्ट। व्यजेष्ट, व्यजेषाताम्, व्यजेषत। व्यजेष्यत।

परा पूर्वक जि धातु के रूप- पराजयते। पराजिग्ये। पराजेता, पराजेतासे। पराजेष्यते। पराजयताम्। पराजयत। पराजयेत। पराजेषीष्ट। पराजेष्ट, पराजेषाताम्, पराजेषत। पराजेष्यत।

७३६- **समवप्रविभ्यः स्थः**। सम् च, अवश्च प्रश्च विश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः समवप्रवयस्तेभ्यः। समवप्रविभ्यः पञ्चम्यन्तं, स्थः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३७. अपह्नवे ज्ञः १।३।४४॥

शतमपजानीते। अपलपतीत्यर्थः।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३८. अकर्मकाच्च १।३।४५॥

सर्पिषो जानीते। सर्पिषोपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः।

....

सम्, अव, प्र और वि उपसर्गों से परे स्था धातु से आत्मनेपद होता है।

भ्वादिगण में **ष्ठा गतिनिवृत्तौ** धातु पठित है। **धात्वादेः षः सः** से **षकार** के स्थान पर **सकार** आदेश होने के बाद **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से **ठकार** भी **थकार** हो गया जिससे **स्था** बन गया और आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण उससे परस्मैपद होकर **तिष्ठति** आदि रूप बन गये थे किन्तु **सम्, अव, प्र और वि** इन उपसर्गों से परे इस सूत्र से **आत्मनेपद** का विधान किया गया।

सन्तिष्ठते। रहता है, निवास करता है, ठहरता है। **सम्** पूर्वक **स्था** धातु से **समवप्रविभ्यः स्थः** से आत्मनेपद का विधान होने पर **सन्तिष्ठते** बना। इसी तरह **अवतिष्ठते**। रूकता है, प्रतीक्षा करता है। यहाँ पर **अव** उपसर्ग पूर्वक **स्था** धातु है। **प्रतिष्ठते**। प्रस्थान करता है, रवाना होता है, चल पड़ता है। यहाँ पर **प्र** उपसर्ग पूर्वक **स्था** धातु है। **वितिष्ठते**। स्थिर होता है। यहाँ पर **वि** उपसर्ग है। इन सभी प्रयोगों में **समवप्रविभ्यः स्थः** से **आत्मनेपद** का प्रयोग किया गया।

७३७- अपह्नवे ज्ञः। अपह्नवे सप्तम्यन्तं, ज्ञः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

छिपाना, इनकार करना अर्थ हो तो ज्ञा धातु से आत्मनेपद ही होता है।

ज्ञा धातु **क्र्यादिगण** में **परस्मैपदी** है, जिसके **जानाति** आदि रूप बनते हैं किन्तु यदि इस धातु से **छिपाना** आदि अर्थ निकले तो उससे **आत्मनेपद** ही होता है, ऐसा इस सूत्र से कहा गया है। **अप** उपसर्ग के लगने से इस धातु का **छिपाना** आदि अर्थ हो जाता है।

शतमपजानीते। सौ को छिपाता है या इनकार करता है। यहाँ पर **अप** उपसर्ग पूर्वक **ज्ञा** धातु है। **अपह्नवे ज्ञः** से आत्मनेपद का विधान हुआ, जिससे **अपजानीते** बना।

७३८- अकर्मकाच्च। अकर्मकात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अपह्नवे ज्ञः** से **ज्ञः** और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है।

धातूनामनेकार्थाः अर्थात् धातु के अनेक अर्थ होते हैं। धातुपाठ में जो अर्थ निर्देश किया गया है, वह मुख्य अर्थ है। कभी-कभी धातु मुख्य अर्थ को छोड़कर अन्य अप्रधान अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ करती है। जैसे कि **ज्ञा** धातु का **जानना** यह मुख्य अर्थ है, जिसके **जानाति** आदि रूप बनते हैं किन्तु कभी-कभी **प्रवृत्त होना** भी अर्थ बनता है। **जानना** अर्थ में तो **सकर्मक** है, उससे **परस्मैपद** ही होता है किन्तु **प्रवृत्त होना** अर्थ में

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३९. उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३॥

धर्ममुच्चरते। उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४०. समस्तृतीयायुक्तात् १।३।५४॥

रथेन सञ्चरते।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४१. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५॥

सम्पूर्वाद् दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे।

दास्या संयच्छते कामी।

....

अकर्मक हो जाता है। ऐसी स्थिति में इस सूत्र के द्वारा **आत्मनेपद** का विधान किया जाता है।

सर्पिषो जानीते। घी के कारण भोजन में प्रवृत्त होता है। **सर्पिः** का अर्थ **घी** है। **प्रवृत्त होना** अर्थ में **ज्ञा** धातु अकर्मक बन गया है। ऐसी स्थिति में **अकर्मकाच्च** से **आत्मनेपद** हुआ- **सर्पिषो जानीते**। यहाँ पर **ज्ञा** धातु के योग में करण में षष्ठी होकर **सर्पिषः** बना है।

७३९- उदश्चरः सकर्मकात्। उदः, चरः, सकर्मकात्, एतानि सर्वाणि पदानि पञ्चम्यन्तानि, त्रिपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

उत् उपसर्ग पूर्वक सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद होता है।

धर्ममुच्चरते। धर्म का उल्लंघन करके चलता है। **भ्वादिगण** में **चर गतौ भक्षणे च** धातु पठित है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण उससे परस्मैपद होता है जिससे **चरति** आदि रूप बनते हैं। यहाँ पर **चर्** धातु **उत्** उपसर्ग से युक्त है और सकर्मक भी। अतः **उदश्चरः सकर्मकात्** से आत्मनेपद का विधान किया गया, जिससे **उच्चरते** बना।

७४०- समस्तृतीयायुक्तात्। तृतीयया युक्तस्तृतीयायुक्तस्तस्मात्, तत्पुरुषः। समः पञ्चम्यन्तं, तृतीयायुक्तात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **उदश्चरः सकर्मकात्** से **चरः** तथा **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

सम् उपसर्ग से परे चर् धातु तृतीयान्त पद से युक्त हो तो उससे आत्मनेपद होता है।

रथेन सञ्चरते। रथ से चलता है। यहाँ पर **चर्** धातु **रथेन** इस तृतीयान्त पद से युक्त है और **सम्** उपसर्ग का योग भी। अतः **समस्तृतीयायुक्तात्** से आत्मनेपद हो गया- **रथेन सञ्चरते**।

७४१- दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे। चतुर्थ्या अर्थश्चतुर्थ्यर्थस्तस्मिन् चतुर्थ्यर्थे। दाणः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, सा प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, चतुर्थ्यर्थे सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **समस्तृतीयायुक्तात्** यह पूरा सूत्र और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४२. पूर्ववत्सनः १।३।६२॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात्। एदिधिषते।

किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

७४३. हलन्ताच्च १।२।१०॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्। निविविक्षते।

....

सम् पूर्वक दाण् धातु यदि तृतीयान्त से युक्त हो तो उससे आत्मनेपद होता है परन्तु वह तृतीया यदि चतुर्थी के अर्थ में प्रयुक्त हो तो।

कारक के वार्तिक **अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थ्ये तृतीया** से अशिष्ट व्यवहार-पूर्वक देने में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति का विधान होता है। यदि ऐसी ही स्थिति हो और सम् उपसर्ग का योग हो तो **दाण्** धातु से आत्मनेपद का विधान किया जाता है।

दास्या संयच्छते कामी। कामुक व्यक्ति दासी को रति या अन्य वस्तु देता है। यहाँ पर अशिष्ट व्यवहार है और **चतुर्थी** के अर्थ में **तृतीया** का विधान हुआ है। **सम्** उपसर्ग का योग भी है। अतः **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थ्ये** से **आत्मनेपद** हुआ- **दास्या संयच्छते कामी।**

७४२- **पूर्ववत्सनः**। पूर्वेण तुल्यं पूर्ववत्। पूर्ववत् अव्ययपदं, सनः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

सन् प्रत्यय से पूर्व जिस धातु से आत्मनेपद हो, सन् प्रत्यय होने के बाद भी उससे आत्मनेपद ही होता है।

जैसे **णिजन्त** धातुओं से **णिचश्च** आदि के द्वारा **आत्मनेपद** का विधान होता है उसी तरह **सन्** प्रत्यय के बाद क्या हो? इसका उत्तर यह सूत्र देता है। यदि धातु सन् होने के पहले आत्मनेपदी हो तो सन् होने के बाद भी आत्मनेपदी ही हो अर्थात् यह सिद्ध होता है कि पूर्व अवस्था में यदि धातु परस्मैपदी हो तो सन्नन्त हो जाने के बाद भी परस्मैपदी ही होगा। **सन्** के पूर्व में धातु कैसी है, इसको जानने के लिए किसी अन्य सूत्र की आवश्यकता नहीं है क्योंकि **आत्मनेपद** के निमित्तों से हीन होने पर **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **परस्मैपद** हो जाता है और आत्मनेपद के निमित्त वाला हो तो उससे आत्मनेपद ही हो जाता है। जैसे कि **एध्** धातु पहले से ही **आत्मनेपदी** है। अतः सन्नन्त होने के बाद भी उससे **आत्मनेपद** ही होता है इसी तरह **भू** धातु पहले से ही **परस्मैपदी** है। अतः सन्नन्त होने के बाद भी **परस्मैपद** ही होता है।

एदिधिषते। आत्मनेपदी **एध्** धातु से सन्नन्त के बाद भी आत्मनेपद होकर **एदिधिषते** बना। इसी तरह परस्मैपदी **भू** धातु से सन्नन्त के बाद भी परस्मैपद होकर **बुभूषति** बनता है।

७४३- **हलन्ताच्च**। हल् लुप्तपञ्चमीकं पदम्, अन्तात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **इको झल्** पूरा सूत्र, **रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च** से **सन्** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४४. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२॥

गन्धनं सूचनम्- उत्कुरुते। सूचयतीत्यर्थः। अवक्षेपणं भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते। भर्त्सयतीत्यर्थः। हरिमुपकुरुते। सेवत इत्यर्थः। परदारान् प्रकुरुते। तेषु सहसा प्रवर्तते। एधो दकस्योपस्कुरुते- गुणमाधत्ते। कथाः प्रकुरुते, प्रकथयतीत्यर्थः। शतं प्रकुरुते, धमार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्? घटं करोति। **भुजोऽनवने**। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्? महीं भुनक्ति।

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया॥२८॥

इक् के समीप विद्यमान हल् से परे झलादि सन् को किद्वद्भाव होता है।

सन् में कित्त्व विद्यमान नहीं रहता क्योंकि ककार ही नहीं है, कित् बनने का प्रश्न ही नहीं है किन्तु उसे कित् बनाकर उसे कित् मानकर के **क्ङिति च** से लघूपधगुण का निषेध होना अपेक्षित है। अतः आचार्य ने **हलन्ताच्च** इस अतिदेश सूत्र का अवतरण किया है।

निविविक्षते। नि पूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद का विधान **नेर्विशः** से पहले ही हो चुका है। उस धातु से सन् प्रत्यय करने के बाद भी **पूर्ववत्सनः** से आत्मनेपद ही होगा। **नि+विश्** से **सन्** होने पर विश् के अनुदात्त होने से **एकाच उपदेशेऽदात्तात्** से इट् का निषेध हुआ है। सन् को आर्धधातुक मानकर **विश्** को उपधागुण प्राप्त होता है किन्तु **हलन्ताच्च** से सन् को किद्वद्भाव कर दिये जाने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। इसके बाद **सन्यङोः** से धातु को द्वित्व, हलादिशेष करके **निविविश्+स** बना है। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से शकार को षत्व करके **निविविष्+स** बना। **षढोः कः सि** से **षकार** के स्थान पर **ककार** आदेश करके ककार से परे सन् के सकार को षत्व करने पर **क्** और **ष्** के संयोग में **क्ष्** बना तो **निविविक्ष** बना। इससे **आत्मनेपद** का विधान होकर **निविविक्षते** बनता है।

७४४- गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः। गन्धनञ्च, अवक्षेपणञ्च, सेवनञ्च, साहसिक्यञ्च, प्रतियत्नश्च, प्रकथनञ्च, उपयोगश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गन्धनावक्षेपणसेवन-साहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगास्तेषु। गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु सप्तम्यन्तं, कृञः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

गन्धन, अवक्षेपण, सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन और उपयोग अर्थों में विद्यमान कृ धातु से आत्मनेपद होता है।

यह सूत्र कहता है कि **कृ** धातु से किसी उपसर्ग के लगने से या वैसे भी इन अर्थों की प्रतीति होती है तो उससे आत्मनेपद ही हो, न कि परस्मैपद। प्रत्येक अर्थ का उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

गन्धनं सूचनम्- गन्धन का अर्थ है- सूचित करना, दूसरे के दोष को प्रकट करना, चुगली करना आदि।

उत्कुरुते। सूचित करता है, चुगली करता है, दोष प्रकट करता है। **उत्** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः** से आत्मनेपद होकर **उत्कुरुते** बना।

अवक्षेपणं भर्त्सनम्। अवक्षेपण का अर्थ **भर्त्सना करना, निन्दा करना, तिरस्कार करना** आदि अर्थ है। **श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते**। बाज बटेर का तिरस्कार करता है। **उत्** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ भी बनता है। अत: **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्य-प्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः** से आत्मनेपद होकर **उत्कुरुते** बना।

सेवनम्। सेवा करना। **हरिमुपकुरुते**। हरि की सेवा करता है। **उप** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **उपकुरुते** बना।

साहसिक्यम्। बलपूर्वक विना विचारे किये जाने वाले निन्दित कर्म। **परदारान् प्रकुरुते**। पराई स्त्रियों में बलात् प्रवृत्त होता है। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **प्रकुरुते** बना।

प्रतियत्नः। गुणाधान, किसी वस्तु में नये गुण का आधान करना। **एधो दकस्योपस्कुरुते**। लकड़ी पानी को गरम या गुणयुक्त करती है। **उप** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद और **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से सुट् का आगम होकर **उपस्कुरुते** बना।

प्रकथनम्। अच्छी तरह से कहना। **कथाः प्रकुरुते**। कथाओं को भलीभाँति कहता है। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **प्रकुरुते** बना।

उपयोगः। उपयोग करना, लगाना। **शतं प्रकुरुते**। सौ रूपये का उपयोग करता है। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ भी बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **प्रकुरुते** बना।

एषु किम्? घटं करोति। यदि **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः** में इन अर्थों में ही आत्मनेपद होता है, ऐसा न कहते तो **घटं करोति** में आत्मनेपद भी हो जाता, जिससे अनिष्ट रूप की सिद्धि होती।

भुजोऽनवने। यह सूत्र **रुधादिगण** में आ चुका है। **पालन से भिन्न अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है।** इस धातु के **भक्षण** और **पालन करना** दो अर्थ हैं। **भक्षण करना** अर्थ में इस सूत्र से आत्मनेपद होकर **ओदनं भुङ्क्ते** और **पालन करना** अर्थ में **परस्मैपद** होकर **महीं भुनक्ति** बनता है। यदि **अनवने** न कहते तो **महीं भुनक्ति** में भी **आत्मनेपद** होने लगता।

कोई धातु किसी उपसर्ग के लगने से परस्मैपदी से आत्मनेपदी और आत्मनेपदी से परस्मैपदी हो जाता है। किसी शब्द-विशेष के योग में यह व्यवस्था बदल जाती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

**श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की
आत्मनेपद-प्रक्रिया पूरी हुई।**

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४५. अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९॥

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात्। अनुकरोति। पराकरोति।

....

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

अब **परस्मैपदप्रक्रिया** का आरम्भ होता है। धातुप्रकरण के आरम्भ में कहा जा चुका है कि धातु से विहित लकारों के स्थान पर **परस्मैपद** और **आत्मनेपद** दो तरह के तिङ् प्रत्यय आदेश के रूप में होते हैं। किस तरह के धातुओं से **परस्मैपद** और किस तरह के धातुओं से **आत्मनेपद** हो, इसका सामान्य कथन प्रकरण के आदि में ही हो चुका है। सामान्यतया **अनुदात्तेत्** और **ङित्** धातुओं से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** और **स्वरितेत्** और **ञित्** धातुओं से **कर्तृगामी क्रियाफल** होने पर **आत्मनेपद** अन्यथा परस्मैपद का विधान हो चुका है। इस प्रकरण से पूर्व के प्रकरण में **आत्मनेपद** होने में जो विशेष निमित्त होते हैं, उनका भी कथन किया। भ्वादि के प्रारम्भ में जो धातु **आत्मनेपद** के लिए निमित्त नहीं बनते, ऐसी धातुओं से **परस्मैपद** का विधान बताया जा चुका है। अब जिस धातु से सामान्यतया आत्मनेपद या उभयपद प्राप्त है, ऐसे कतिपय धातुओं से केवल **परस्मैपद** का विधान इस प्रकरण में होता है। यद्यपि **अष्टाध्यायी** के सूत्रानुसार **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसके लिए अनेक सूत्र बतलाये गये हैं किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल छः सूत्रों को दिखाया गया है।

७४५- **अनुपराभ्यां कृञः**। अनुश्च पराश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अनुपरौ, ताभ्याम्। अनुपराभ्यां पञ्चम्यन्तं, कृञः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर और गन्धन आदि अर्थ होने पर अनु अथवा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से परस्मैपद ही होता है।

कृ धातु के **ञित्** होने के कारण **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से **आत्मनेपद** और **परस्मैपद** दोनों प्राप्त थे तो इस सूत्र से पुनः परस्मैपद का विधान क्यों किया जा रहा है? इसका समाधान यह है कि **कृ** धातु से कर्तृगामी क्रियाफल न होने पर परस्मैपद प्राप्त था। क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर तो आत्मनेपद प्राप्त था। ऐसी स्थिति में **अनु** पूर्वक **कृ** और **परा** पूर्वक **कृ** से परस्मैपद ही हो, इसके इस सूत्र का आरम्भ किया गया है। इसलिए क्रियाफल के कर्तृगामी होने या न होने दोनों अवस्थाओं में **अनु** और **परा** उपसर्ग से परे **कृ** धातु से परस्मैपद ही होता है, न कि आत्मनेपद। गन्धन आदि अर्थों में

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४६. अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०॥

क्षिप प्रेरणे। स्वरितेत्। अभिक्षिपति।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४७. प्राद्वहः १।३।८१॥

प्रवहति।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४८. परेर्मृषः १।३।८२॥

परिमृष्यति।

....

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः से आत्मनेपद प्राप्त था, वहाँ पर भी **कृ** धातु के **अनु** और **परा** उपसर्ग पूर्वक होने पर तो परस्मैपद ही हो, इसके लिए भी इस सूत्र का आरम्भ किया गया है।

अनुकरोति। अनुकरण करता है, नकल करता है। **पराकरोति**। हटाता है, दूर करता है। यहाँ पर कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद प्राप्त था, उसे बाधकर के **अनुपराभ्यां कृञः** से **परस्मैपद** हुआ- **अनुकरोति, पराकरोति**।

७४६- अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः। अभिश्च प्रतिश्च अतिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व अभिप्रत्यतयस्तेभ्यः। अभिप्रत्यतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, क्षिपः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

अभि, प्रति और अति उपसर्गों से परे क्षिप् धातु से कर्ता अर्थ में परस्मैपद होता है।

क्षिप प्रेरणे यह धातु स्वरितेत् है और तुदादिगण में पठित है, जिससे कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद की प्राप्ति थी, उसे बाधने के लिए इस सूत्र का अवतरण है। अन्यत्र उभयपद हो किन्तु **अभि, प्रति, अति** उपसर्ग से परे हो तो उससे केवल **परस्मैपद** ही हो।

अभिक्षिपति। अभिभूत करता है, दबाता है। **स्वरितेत्** होने के कारण प्राप्त उभयपद को बाधकर **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः** से केवल **परस्मैपद** का विधान किया गया- **अभिक्षिपति**। इसी तरह **प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति** भी बनेंगे।

७४७- प्राद्वहः। प्रात् पञ्चम्यन्तं, वहः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

प्र उपसर्ग से परे वह् धातु से परस्मैपद होता है।

प्रवहति। भ्वादि गण में **वह प्रापणे** धातु उभयपदी है। प्र उपसर्ग से परे होने पर कर्तृगामी क्रियाफल में भी परस्मैपद के विधान के लिए **प्राद्वहः** आया। इससे परस्मैपद होने पर **प्रवहति** सिद्ध हुआ।

७४८- परेर्मृषः। परेः पञ्चम्यन्तं, मृषः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

परि उपसर्ग से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४९. व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३॥

रमु क्रीडायाम्। विरमति।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७५०. उपाच्च १।३।८४॥

यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्।

इति परस्मैपदप्रक्रिया॥२९॥

....

परिमृष्यति। दिवादि में **मृष तितिक्षायाम्** धातु पठित है। स्वरितेत् होने के कारण कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में आत्मनेपद की प्राप्ति थी। उसे बाधकर **परेर्मृषः** से **परस्मैपद** हो गया- **परिमृष्यति।**

७४९- व्याङ्परिभ्यो रमः। विश्च आङ् च परिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो व्याङ्परयस्तेभ्यः। व्याङ्परिभ्यः पञ्चम्यन्तं, रमः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है।

विरमति। भ्वादिगण में **रमु क्रीडायाम्** धातु अनुदात्तेत् है। अतः केवल **रम्** धातु आत्मनेपदी है किन्तु **वि, आङ्, परि** उपसर्ग के योग में यह धातु **व्याङ्परिभ्यो रमः** से परस्मैपदी हो जाता है, जिससे **विरमति**(रूकता है) **आरमति**(चारों ओर रमता है) और **परिरमति**(प्रसन्न होता है) आदि रूप बनते हैं।

केवल **रम्** धातु के अनुदात्तेत् और अनिट् होने के कारण इस तरह के रूप बनते थे- **लट्**- रमते, रमेते, रमन्ते आदि। **लिट्**- रेमे, रेमाते, रेमिरे, रेमिषे आदि। **लुट्**- रन्ता, रन्तारौ, रन्तारः, रन्तासे आदि। **लृट्**- रंस्यते, रंस्येते, रंस्यन्ते आदि। **लोट्**- रमताम्, रमेताम्, रमन्ताम्, रमस्व आदि। **लङ्**- अरमत, अरमेताम्, अरमन्त आदि। **विधिलिङ्**- रमेत, रमेयाताम्, रमेरन् आदि। **आशीर्लिङ्**- रंसीष्ट, रंसीयास्ताम्, रंसीरन् आदि। **लुङ्**- अरंस्त, अरंसाताम्, अरंसत आदि। **लृङ्**- अरंस्यत, अरंस्येताम्, अरंस्यन्त आदि। अब **वि** उपसर्ग के लगने से यह धातु **परस्मैपदी हो जाता है** जिसके रूप इस तरह से होंगे- **लट्**- विरमति, विरमतः, विरमन्ति आदि। **लिट्**- विरराम, विरेमतुः, विरेमुः, विरेमिथ-विररन्थ आदि। **लुट्**- विरन्ता, विरन्तारौ, विरन्तारः, विरन्तासि आदि। **लृट्**- विरंस्यति, विरंस्यतः, विरंस्यन्ति आदि। **लोट्**- विरमतु-विरमतात्, विरमताम्, विरमन्तु, विरम आदि। **लङ्**- व्यरमत्, व्यरमताम्, व्यरमन् आदि। **विधिलिङ्**- विरमेत्, विरमेताम्, विरमेयुः आदि। **आशीर्लिङ्**- विरम्यात्, विरम्यास्ताम्, विरम्यासुः आदि। **लुङ्**- व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, व्यरंसिषुः आदि। **लृङ्**- व्यरंस्यत्, व्यरंस्यताम्, व्यरंस्यन् आदि। इसी तरह- आरमति, आरराम, आरन्ता, आरंस्यति, आरमतु, आरमत्, आरमेत्, आरम्यात्, आरंसीत्, आरंस्यत् और परिरमति, परिरराम, परिरन्ता, परिरंस्यति, परिरमतु, पर्यरमत्, परिरमेत्, परिरम्यात्, पर्यरंसीत्, पर्यरंस्यत् आदि रूप बनते हैं।

७५०-उपाच्च। उपात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **व्याङ्परिभ्यो रमः** से **रमः** तथा **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

उप उपसर्ग से परे रम् धातु से भी परस्मैपद होता है।

यज्ञदत्तमुपरमति। यज्ञदत्त को हटाता है। यहाँ पर **रम्** धातु अन्तर्भावितण्यन्तार्थ है। अन्तर्भावितो ण्यन्तस्य अर्थो येन सः। जिसके अन्दर ण्यन्त का अर्थ रखा हुआ है वह धातु **अन्तर्भावितण्यन्तार्थ** कहलाती है अर्थात् जिस धातु में णिच् प्रत्यय का प्रेरणा आदि अर्थ भी विद्यमान रहता है, ऐसी धातुओं को अन्तर्भावितण्यन्तार्थ कहा जाता है। जैसे यहाँ **रम्** धातु का केवल **रमण करना** अर्थ न होकर **रमण कराने वाला** अर्थ भी है। इसलिए यहाँ पर प्रयुक्त **उपरमति** का **उपरमयति** ऐसा अर्थ किया जाता है। इसलिए उप पूर्वक **रम्** धातु से **अन्तर्भावितण्यन्तार्थ** अर्थात् **णिजन्तप्रक्रिया** में णिच् करने से जो प्रेरणा आदि अर्थ निकलता है, वह अर्थ णिच् के किये विना भी निकलने पर **उपाच्च** से **परस्मैपद** का विधान किया गया जिससे **उपरमति** सिद्ध हुआ।

णिच् प्रत्यय न करने पर भी धातुओं के अनेकार्थक होने के कारण कहीं कहीं धात्वर्थ के अन्दर णिच् का अर्थ भी सम्मिलित रहता है। इसी का नाम **अन्तर्भावितण्यर्थ** है।

परीक्षा

आत्मनेपद और **परस्मैपद प्रक्रियाओं** का सूत्र, उदाहरण देकर एक परिचय प्रस्तुत करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की परस्मैपद-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ भावकर्मप्रक्रिया

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७५१. भावकर्मणोः १।३।१३॥

लस्यात्मनेपदम्।

यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७५२. सार्वधातुके यक् ३।१।६७॥

धातोर्यक्, भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके।

भावः क्रिया। सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते।

युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः। तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **भावकर्मप्रक्रिया** का आरम्भ करते हैं। **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** से **कर्ता, कर्म** और **भाव** अर्थ में लकारों का विधान हुआ है। स्मरण रहे कि **सकर्मक धातुओं** से **कर्ता** और **कर्म** में तथा **अकर्मक धातुओं** से **कर्म** और **भाव** अर्थ में लकार होते हैं। वाक्यों को इसी के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया है- **कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य** और **भाववाच्य**। इसके पहले सभी प्रकरणों में धातुओं कर्ता अर्थ में लकार हुए थे। अब **भाव** और **कर्म** अर्थों में लकार किये जा रहे हैं। इस स्थिति में जो रूपों में अन्तर आता है, उनके कथन के लिए इस प्रकरण का आरम्भ किया गया है।

यह प्रकरण अनुवाद के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाना इस प्रकरण से समझें।

भाव और कर्म में लकार के स्थान पर आत्मनेपद का प्रयोग होता है। कर्म में लकार करने पर कर्ता तृतीयान्त और कर्म प्रथमान्त हो जाता है। भाववाच्य में कर्ता तृतीयान्त होता है और अकर्मक होने से कर्म होता ही नहीं। इसके लिए कारक प्रकरण को समझना चाहिए।

७५१- भावकर्मणोः। भावश्च कर्म च तयोरितरेतरद्वन्द्वो भावकर्मणी, तयोर्भावकर्मणोः। भावकर्मणोः सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

भाव और कर्म अर्थ में हुए लकार के स्थान पर आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं।

इस तरह **भाव** और **कर्म** में केवल **आत्मनेपद** होता है, परस्मैपद नहीं।

७५२- **सार्वधातुके यक्।** सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, यक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **चिण् भावकर्मणोः** से **भावकर्मणोः** तथा **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है।

भाव या कर्मवाचक सार्वधातुक के परे होने पर धातु से यक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, य शेष रहता है। कित् के कई फल हैं- गुणवृद्धि का निषेध, सम्प्रसारण आदि।

मूल में- **भावः क्रिया। सा च ....किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे।** भाव क्रिया को कहते हैं। उस क्रियया का भावार्थक लकार से अनुवाद किया जाता है। युष्मद् और अस्मद् के साथ सामानाधिकरण्य न होने से केवल प्रथम पुरुष ही आता है। तिङ्वाच्य क्रिया के द्रव्यरूप न होने से द्वित्व आदि की प्रतीति नहीं होती, अतः द्विवचन आदि नहीं होगं किन्तु उत्सर्गतः एकवचन ही होगा।

भाव-शब्द का अर्थ क्रिया है। इस भाववाच्य में कर्म नहीं होता। यदि कर्म होगा तो **कर्मणि प्रयोग** माना जायेगा। भाव अर्थात् क्रिया अद्रव्यरूप होता है। अतः इसमें द्वित्व आदि संख्या की प्रतीति नहीं होती। अतः उत्सर्गतः एकवचन मात्र होता है, क्योंकि संख्या की विवक्षा न होने पर भी पद बनाने के लिए **सुप्-तिङ्** कोई प्रत्यय का होना आवश्यक होता है। कारण यह है कि **अपदं न प्रयुञ्जीत।** अपद का प्रयोग नहीं करना चाहिए, अर्थात् विना पद बनाये किसी भी शब्द का लोक में प्रयोग नहीं किया जा सकता, ऐसा नियम है।

भाववाच्य में लकार का युष्मद्, अस्मद् या अन्य किसी के साथ भी सामानाधिकरण्य नहीं होता। अतः मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष नहीं होते, सामान्यतः केवल प्रथमपुरुष होता है। स्मरण रहे कि युष्मद् के साथ सामानाधिकरण होने पर **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम** से मध्यमपुरुष और अस्मद् के साथ सामानाधिकरण्य होने पर **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष होता है एवं अन्य किसी के साथ सामानाधिकरण्य होने पर प्रथमपुरुष होता है परन्तु जब किसी के साथ भी सामान्याधिकरण्य न हो तो सामान्यतः केवल प्रथमपुरुष का एकवचन होता है। भाववाच्य में भाव अर्थ में प्रत्यय होने से अर्थात् कर्ता या कर्म अर्थ में प्रत्यय न होने से युष्मद्, अस्मद् या अन्य किसी के साथ सामान्याधिकरण नहीं होता। अतः प्रथमपुरुष और एकवचन मात्र होता है, जिससे लट् में **भू** का केवल **भूयते** मात्र रूप बनता है। **त्वया मया अन्यैश्च भूयते।** इसी प्रकार सभी लकारों में प्रथमपुरुष का एकवचन मात्र बनेगा। कर्मवाच्य में तो कर्म के अनुसार पुरुष और वचन होते हैं अर्थात् तीनों पुरुष और तीनों वचन होते हैं। स्मरण रहे कि इस भावकर्मवाच्य में कर्तृ+अर्थ के न होने के कारण **कर्तरि शप्** आदि से शप् आदि विकरण नहीं होते किन्तु भाव या कर्म अर्थ को बताने वाले सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते किसी भी गण की किसी भी धातु से यक् विकरण ही होता है। इसीलिए **भूयते** की तरह अदादिगणीय **अद्** धातु का **अद्यते**, जुहोत्यादिगणीय **हु** धातु के **हूयते** आदि रूप बनते हैं।

भूयते। भू-धातु से भाव अर्थ में वर्तमान में लट् लकार, उसके स्थान पर **भावकर्मणोः** से आत्मनेपद के विधान होने से **भू+त** बना। उसकी सार्वधातुकसंज्ञा होने के

चिण्वद्भावादिविधायकमतिदेशसूत्रम्

७५३. स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२।।

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनाञ्च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः। भाविता, भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट।।

....

बाद **सार्वधातुके यक्** से **यक्** हुआ। ककार की इत्संज्ञा, **भू+य+त** बना। **य** के कित् होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हुआ। **त** को **टित आत्मनेपदानां टेरे** से **एत्व** होकर **भूयते** सिद्ध हुआ। **भाव** में- **त्वया भूयते**(तुम होते हो, तुम्हारे द्वारा हुवा जाता है)। **मया भूयते**(मैं होता हूँ, मेरे द्वारा हुवा जाता है)। **अन्यैर्भूयते**(अन्य होते हैं, अन्यों के द्वारा हुवा जाता है)। **तेन भूयते, ताभ्यां भूयते, तैर्भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्यां भूयते, युष्माभिर्भूयते, मया भूयते, आवाभ्यां भूयते, अस्माभिर्भूयते।**

लिट् में केवल- **बभूवे।** भू से लिट्, त, एश्, ए, वुक् का आगम, धातु को द्वित्व, हलादिशेष, अभ्यास को ह्रस्व, उकार को अकार आदेश, जश्त्व करके **बभूव्+ए** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बभूवे। त्वया मया अन्यैश्च बभूवे।** तुम्हारे मेरे एवं अन्यों से हुआ करता था।

७५३- स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च। स्यश्च सिच्च सीयुट् च, तासिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः स्यसिच्सीयुट्तासयः, तेषु स्यसिच्सीयुट्तासिषु। भावश्च कर्म च, भावकर्मणी, तयोर्भावकर्मणोः। अच्च, हनश्च ग्रहश्च दृश् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- अज्झनग्रहदृशस्तेषामज्झनग्रहदृशाम्। चिणि इव चिद्वत्। स्यसिच्सीयुट्तासिषु सप्तम्यन्तं, भावकर्मणोः सप्तम्यन्तं, उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अज्झनग्रहदृशां षष्ठ्यन्तं, वा अव्ययपदं, चिण्वत् अव्ययपदम्, इट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

भाव या कर्म अर्थ गम्यमान होने पर उपदेश अवस्था में अजन्त धातुओं एवं हन्, ग्रह्, और दृश् धातुओं को स्य, सिच्, सीयुट् और तासि के परे रहते विकल्प से चिण्वद्भाव होता है तथा चिण्वत् के पक्ष में स्य आदिओं को इट् का आगम भी होता है।

चिण्वद्भाव का तात्पर्य चिण् प्रत्यय के परे होने पर जो कार्य हो सकते हैं, वे कार्य इन धातुओं में भी हों। चिण् के परे होने पर होने वाले कार्य हैं- **अचो ञ्णिति** और **अत उपधायाः** से होने वाली वृद्धि, **आतो युक् चिण्कृतोः** से युक् का आगम, **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से हन् को कुत्व, **चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्** से उपधा को वैकल्पिक दीर्घ आदि।

भाविता, भविता। लुट् में **भू+तास्+त** है। भू अजन्त है। अतः **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च** से चिण्वद्भाव और **तास्** को इट् का आगम हुआ- **भू+इ+तास्+त** बना। चिण्वद्भाव होने से **भू** को **अचो ञ्णिति** से औकार वृद्धि हुई, **भौ+इ+तास्+त** बना। आव् आदेश होकर **भावितास्+त** बना। त को **लुटः प्रथमस्य**

चिणादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७५४. चिण् भावकर्मणोः ३।१।६६।।

च्लेश्चिण् स्याद् भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे।

अभावि। अभाविष्यत, अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः। अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम्। णिलोपः। भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। **चिण्वदिट्।** आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। भाविता, भावयिता। भाविष्यते, भावयिष्यते। अभाव्यत। भाव्येत। भाविषीष्ट, भावयिषीष्ट। अभावि। अभाविषाताम्। अभावयिषाताम्। बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। बोभूय्यते। बोभूयते। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः।** स्तूयते विष्णुः। स्ताविता, स्तोता। स्ताविष्यते, स्तोष्यते। अस्तावी। अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम्।

ऋ गतौ। गुणोऽर्तीति गुणः। अर्यते। **स्मृ स्मरणे।** स्मर्यते। सस्मरे। उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता, अर्ता। स्मारिता, स्मर्ता।

अनिदितामिति नलोपः। स्रस्यते। इदितस्तु नन्द्यते। सम्प्रसारणम्- इज्यते।

....

डारौरसः से **डा** आदेश, डित् होने के कारण **तास्** में **टिसंज्ञक आस्** का लोप होने पर **भावित्+आ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **भाविता** सिद्ध हुआ। चिण्वद्भाव न होने के पक्ष में **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् होकर **भविता** बनता है। **त्वया मया अन्यैश्च श्वो भाविता भविता वा**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से कल होगा।

इसी तरह **लृट्** में **चिण्वद्भाव** पक्ष में **भाविष्यते,** चिण्वद्भावाभाव पक्ष में **भविष्यते** बनते हैं। **त्वया मया अन्यैश्च भाविष्यते भविष्यते वा**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से होगा।

लोट् में- **भूयताम्। त्वया मया अन्यैश्च भूयताम्**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से हो।

लङ् में- **अभूयत। त्वया मया अन्यैश्च ह्योऽभूयत**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से कल हुआ था।

विधिलिङ् में- **भूयेत, त्वया मया अन्यैश्च भूयेत**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से होना चाहिए।

आशीर्लिङ् में- **चिण्वद्भाव** पक्ष में **भाविषीष्ट** और चिण्वद्भाभावाभाव पक्ष में **भविषीष्ट। त्वया मया अन्यैश्च भाविषीष्ट भविषीष्ट वा**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से हो। (आशीर्वाद)।

७५४-चिण् भावकर्मणोः। भांवश्च कर्म च भावकर्मणी, तयोर्भावकर्मणोः। **चिण् ते पदः** से **ते** की अनुवृत्ति आती है।

भाव और कर्मवाची त-शब्द के परे होने पर च्लि के स्थान पर चिण् आदेश होता है।

चिण् में चकार और णकार की इत्संज्ञा होती है, इ शेष रहता है। णित् वृद्धि के लिए है।

अभावि। लुङ् में **अभू+त** बना है। **च्लि लुङि** से **च्लि** प्रत्यय, उसके स्थान पर **चिण् भावकर्मणोः** से **चिण्** आदेश, अनुबन्धलोप होकर **अभू+इत** बना। णित् होने के कारण **अचो ञ्णिति** से **भू** की वृद्धि होकर आव् आदेश हुआ, **अभाव्+इत** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अभावि+त** वना। **चिणो लुक्** से **त** का लुक् हुआ- **अभावि। त्वया मया अन्यैश्च अभावि**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से हुआ।

अभाविष्यत। लृङ् में- **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च** से चिण्वत् और इट् आगम होकर **अभाविष्यत,** न होने के पक्ष में **अभविष्यत। सुवृष्ट्या चेदभाविष्यत (अभविष्यत) सुभिक्षेणाभाविष्यत(अभविष्यत)** सुवृष्टि होगी तो सुभिक्ष होगा।

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः। अकर्मक धातु भी उपसर्ग के योग से कभी कभी सकर्मक हो जाता है। जैसे कि भू धातु अकर्मक है, इसके साथ **अनु** इस उपसर्ग के योग से **अनुभव करना** है अर्थ बन जाता है। **देवदत्तः आनन्दम् अनुभवति**=देवदत्त आनन्द का अनुभव करता है। इसके कर्मवाच्य में **देवदत्तेन आनन्दः अनुभूयते** बन जाता है। भाववाच्य में तो केवल प्रथमपुरुष और एकवचन ही होता है किन्तु धातु के सकर्मक बन जाने की स्थिति में जब कर्मवाच्य का प्रयोग हो तो सभी पुरुष और सभी वचन के रूप बनते हैं। जैसे- **अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। (रामेण) त्वमनुभूयसे। (भवता) अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम्।**

इसी तरह-

तेन सुखमनुभूयते= उसके द्वारा सुख अनुभव किया जाता है।

साधकैः सुखमोक्षौ अनुभूयेते= साधकों के द्वारा सुख और मोक्ष अनुभव किये जाते हैं।

तेन शीतवर्षातपाः अनुभूयन्ते= उसके द्वारा शीत, वर्षा और धूप अनुभव किये जाते हैं।

ताभ्यां त्रिविधदुःखानि अनुभूयन्ते= उन दोनों के द्वारा तीन प्रकार के दुःख अनुभव किये जाते हैं।

तैः सच्चिदानन्दा अनुभूयन्ते= उन सबों के द्वारा सत्, चित् और आनन्द अनुभव किये जाते हैं।

त्वया धर्मार्थकाममोक्षा अनुभूयन्ते=तुम्हारे द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अनुभव किये जाते हैं।

युवाभ्यां सुखमनुभूयते=तुम दोनों के द्वारा सुख अनुभव किया जाता है।

युष्माभिः सुखदुःखे अनुभूयेते= तुम दोनों के द्वारा सुख और दुःख अनुभव किये जाते हैं।

मया लक्ष्मीनारायणौ अनुभूयेते= मेरे द्वारा लक्ष्मी और नारायण अनुभव किये जाते हैं।

आवाभ्यां शीतवर्षातपाः अनुभूयन्ते= हम दोनों के द्वारा शीत, वर्षा और धूप अनुभव किये जाते हैं।

अस्माभिर्ब्रह्मानुभूयते= हम लोगों के द्वारा ब्रह्म अनुभव किया जाता है।

रामेण सुखमनुभूयते= राम के द्वारा सुख अनुभव किया जाता है।

रामेण सुखदुःखे अनुभूयेते= राम के द्वारा सुख और दुःख अनुभव किये जाते हैं।

रामेण शीतवर्षातपाः अनुभूयन्ते= राम से शीत, वर्षा और धूप अनुभव किये जाते हैं।

रामेण त्वमनुभूयसे= राम के द्वारा तुम अनुभव किये जाते हो।
रामेण युवामनुभूयेथे= राम के द्वारा तुम दोनों अनुभव किये जाते हो।
रामेण यूयमनुभूयध्वे= राम के द्वारा तुम सब अनुभव किये जाते हो।
रमयाहमनुभूये= रमा के द्वारा मैं अनुभव किया जाता हूँ।
रमयावाममनुभूयावहे= रमा के द्वारा हम दोनों अनुभव किये जाते हैं।
रमया वयमनुभूयामहे= रमा के द्वारा हम सब अनुभव किये जाते हैं।

भाववाच्य और कर्मवाच्य के रूपों में कोई भेद नहीं है किन्तु **भाववाच्य** में केवल प्रथमपुरुष और एकवचन होता है तथा **कर्मवाच्य** में सभी पुरुष और सभी वचन होते हैं।

अब **भू** के कर्मवाच्य के रूपों का आनन्द लेते हैं-

लट्- अनुभूयते, अनुभूयेते, अनुभूयन्ते, अनुभूयसे, अनुभूयेथे, अनुभूयध्वे, अनुभूये, अनुभूयावहे, अनुभूयामहे।

लिट्- अनुबभूवे, अनुबभूवाते, अनुबभूविरे, अनुबभूविषे, अनुबभूवाथे, अनुबभूविढ्वे-अनुबभूविध्वे, अनुबभूवे, अनुबभूविवहे, अनुबभूविमहे।

लुट्- अनुभाविता, अनुभावितारौ, अनुभावितार:, अनुभावितासे, अनुभावितासाथे, अनुभाविताध्वे, अनुभाविताहे, अनुभावितास्वहे, अनुभावितास्महे।
अनुभविता, अनुभवितारौ, अनुभवितार:, अनुभवितासे, अनुभवितासाथे, अनुभविताध्वे, अनुभविताहे, अनुभवितास्वहे, अनुभवितास्महे।

लृट्- अनुभाविष्यते, अनुभाविष्येते, अनुभाविष्यन्ते, अनुभाविष्यसे, अनुभाविष्येथे, अनुभाविष्यध्वे, अनुभाविष्ये, अनुभाविष्यावहे, अनुभाविष्यामहे।
अनुभविष्यते, अनुभविष्येते, अनुभविष्यन्ते, अनुभविष्यसे, अनुभविष्येथे, अनुभविष्यध्वे, अनुभविष्ये, अनुभविष्यावहे, अनुभविष्यामहे।

लोट्- अनुभूयताम्, अनुभूयेताम्, अनुभूयन्ताम्, अनुभूयस्व, अनुभूयेथाम्, अनुभूयध्वम्, अनुभूयै, अनुभूयावहै, अनुभूयामहै।

लङ्- अन्वभूयत, अन्वभूयेताम्, अन्वभूयन्त, अन्वभूयथा:, अन्वभूयेथाम्, अन्वभूयध्वम्, अन्वभूये, अन्वभूयावहि, अन्वभूयामहि।

विधिलिङ्- अनुभूयेत, अनुभूयेयाताम्, अनुभूयेरन्, अनुभूयेथा:, अनुभूयेयाथाम्, अनुभूयेध्वम्, अनुभूयेय, अनुभूयेवहि, अनुभूयेमहि।

आशीर्लिङ्- अनुभाविषीष्ट, अनुभाविषीयास्ताम्, अनुभाविषीरन्, अनुभाविषीष्ठा:, अनुभाविषीयास्थाम्, अनुभाविषीढ्वम्-अनुभाविषीध्वम्, अनुभाविषीय, अनुभाविषीष्वहि, अनुभाविषीष्महि।
अनुभविषीष्ट, अनुभविषीयास्ताम्, अनुभविषीरन्, अनुभविषीष्ठा:, अनुभविषीयास्थाम्, अनुभविषीढ्वम्-अनुभविषीध्वम्, अनुभविषीय, अनुभविषीष्वहि, अनुभविषीष्महि।

लुङ्- अन्वभावि, अन्वभाविषाताम्, अन्वभाविषत, अन्वभाविष्ठा:, अन्वभाविषाथाम्, अन्वभाविढ्वम्, अन्वभाविध्वम्, अन्वभाविषि, अन्वभाविष्वहि, अन्वभाविष्महि।
अन्वभावि, अन्वभविषाताम्, अन्वभविषत, अन्वभविष्ठा:, अन्वभविषाथाम्, अन्वभविढ्वम्, अन्वभविध्वम्, अन्वभविषि, अन्वभविष्वहि, अन्वभविष्महि।

लृङ्- अन्वभाविष्यत, अन्वभाविष्येताम्, अन्वभाविष्यन्त, अन्वभाविष्यथा:, अन्वभाविष्येथाम्,

अन्वभाविष्यध्वम्, अन्वभाविष्ये, अन्वभाविष्यावहि, अन्वभाविष्यामहि।
अन्वभविष्यत, अन्वभविष्येताम्, अन्वभविष्यन्त, अन्वभविष्यथाः, अन्वभविष्येथाम्, अन्वभविष्यध्वम्, अन्वभविष्ये, अन्वभविष्यावहि, अन्वभविष्यामहि।

यहाँ तक तो सामान्य भू धातु से भावकर्म में होने वाले रूपों का वर्णन किया गया। **हेतुमति च** से णिच् होने पर ण्यन्त भू धातु से, सन्नन्त भू धातु से, यङन्त भू धातु से और यङ्लुगन्त भूधातु से भी भावकर्म में प्रयोग बनते हैं। इसी तरह सभी धातुओं से भावकर्म में रूप बनाये जाते हैं। इस तरह एक धातु से अनन्त रूप बनते हैं तो सभी धातुओं से कितने रूप बन जाते होंगे, यह अनुमान लगाना बहुत ही कठिन है।

कोई भी अकर्मक धातु प्रेरणार्थक णिच् प्रत्यय करने के बाद सकर्मक हो जाता है। जैसे **देवदत्तो भवति** में भू धातु अकर्मक है किन्तु जब प्रेरणार्थक णिच् करके **भावयति** बनाया जाता है तो यह ण्यन्त **भावि** धातु सकर्मक हो जाता है। इसलिए **यज्ञदत्तो देवदत्तं भावयति**=यज्ञदत्त देवदत्त को होवाता है, इस वाक्य में **भावि** धातु का कर्म **देवदत्त** हो गया। अतः ऐसी सभी ण्यन्त धातुओं के कर्मवाच्य में ही रूप बनते हैं। यहाँ पर भी ण्यन्त **भावि** धातु से कर्म में लकार करके सभी पुरुष के सभी वचनों के रूप बनाये जा सकते हैं।

णिलोपः, भाव्यते। भू धातु से **हेतुमति च** से णिच् होने के बाद **भावि** बना है। इसकी धातुसंज्ञा हुई है। उससे सकर्मक होने से कर्मवाच्य में लट् लकार, **भावकर्मणोः** से **त** प्रत्यय करके **सार्वधातुके यक्** से **यक्** करने पर **भावि+य+त** बना। अनिडादि आर्धधातुक के परे होने पर **णेरनिटि** से **णि** का लोप करके **त** को एत्व करने पर **भाव्यते** रूप बनता है। **भाव्यते, भाव्येते, भाव्यन्ते** आदि।

भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। लिट् में **भावि** से आम्, गुण अयादेश करके **भावयाम्** बनता है, लिट् का लुक् करके **कृ** का अनुप्रयोग करने पर क्रमशः **भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चक्राते, भावयाञ्चक्रिरे** आदि रूप तथा **भू** का अनुप्रयोग करने पर **भावयाम्बभूवे, भावयाम्बभूवाते, भावयाम्बभूविरे** आदि एवं **अस्** का अनुप्रयोग करने पर **भावयामासे, भावयामासाते, भावयामासिरे** आदि रूप बन जाते हैं।

आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। स्मरण रहे कि **असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२।।** अर्थात् षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद के बाईसवें सूत्र से इस पाद की समाप्ति तक के सूत्रों को **आभीय** कहा जाता है और यदि एक ही जगह दो **आभीय** सूत्र लग रहे हों तो दूसरे आभीय की कर्तव्यता में पहला आभीय सूत्र असिद्ध हो जाता है। जैसा कि **भाविता** में हो रहा है। **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२।।** और **णेरनिटि ६।४।५१।।** ये दोनों सूत्र उक्त रीति से **आभीय** हैं। **लुट्** में **भावि+ता** बन जाने के बाद **स्यसिच्सीयुट्तासिषु०** से चिण्वदिट् करके **भावि+इता** बना है। अब हमें दूसरा आभीय कार्य **णेरनिटि** से **णि** के इकार का लोप करना है। दोनों कार्य समानाश्रय (समान निमित्त वाले) हैं। अतः **असिद्धवदत्राभात्** के नियम से दूसरे आभीय की कर्तव्यता में पहला आभीय असिद्ध होता है अर्थात् पहले **आभीय** कार्य **स्यसिच्सीयुट्तासिषु०** के द्वारा **चिण्वदिट्** दूसरे आभीय शास्त्र **णेरनिटि** की दृष्टि में असिद्ध होगा तो **णेरनिटि** से णि के इकार का लोप हो जायेगा। **णेरनिटि** से णि के लोप करने में **अनिट् आदि आर्धधातुक** निमित्त है। जब तक **चिण्वत् इट्** असिद्ध नहीं होगा, तब तक यह **णि** का लोप नहीं कर सकता। इस तरह एक आभीय की कर्तव्यता में दूसरा आभीय असिद्ध होता है जिससे

णेरनिटि से णि का लोप होकर **भाव्+इता=भाविता** सिद्ध हुआ। चिण्वदिट् वैकल्पिक है। इसके न लगने के पक्ष में **भावि+ता** है। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से नित्य से इट् आगम हुआ- **भावि+इता** बना। यह इट् **णेरनिटि** की दृष्टि में असिद्ध नहीं होता, क्योंकि यह आभीय नहीं है। अतः णि का लोप भी नहीं हुआ। णि के इकार को गुण, अय् आदेश होकर **भावयिता** सिद्ध हुआ। इस तरह से दो रूप बन गये- **भाविता** और **भावयिता**। आगे तस् आदि में भी यही प्रक्रिया की जाती है, जिससे नौ दूने अठारह रूप **लुट्** में बन जाते है।

लृट् में भी इसी तरह की प्रक्रिया होती है जिससे दो-दो रूप बनते हैं।

भाविष्यते, भावयिष्यते। लृट् में **भावि** से चिण्वदिट् होकर उसके **आभीय** होने के कारण असिद्ध होने से **णि** का लोप होने पर **भाविष्यते, भाविष्येते, भाविष्यन्ते** आदि रूप बनते हैं और चिण्वदिट् न होने के पक्ष में **भावि+इष्यते** है, गुण, अयादेश, वर्णसम्मेलन करके **भावयिष्यते, भावयिष्येते, भावयिष्यन्ते** आदि रूप बनाये जाते हैं।

लोट् में **भाव्यताम्, भाव्येताम्, भाव्यन्ताम्** आदि। लङ् में **अभाव्यत, अभाव्येताम्, अभाव्यन्त** आदि। **विधिलिङ्** में **भाव्येत, भाव्येयाताम्, भाव्येरन्** आदि रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ् में- **चिण्वदिट्** के पक्ष में **णि** का लोप करके **भाविषीष्ट, भाविषीयास्ताम्, भाविषीरन्** आदि बनते हैं तो चिण्वदिट् न होने के पक्ष में **भावयिषीष्ट, भावयिषीयास्ताम्, भावयिषीरन्** आदि रूप बना लिए जाते हैं। इसी तरह **लुङ्** में चिण्वदिट् के पक्ष में **अभावि, अभाविषाताम्, अभाविषत** और उसके अभाव में **अभावि, अभावयिषाताम्, अभावयिषत** आदि रूप बन जाते हैं। **लृङ्** में चिण्वदिट्पक्षे- **अभाविष्यत** और उसके अभाव में **अभावयिष्यत** आदि।

अब **सन्नन्त** धातु से **कर्म या भाव** में प्रत्यय करने पर कैसे रूप बनते हैं? इसका विवेचन करते हैं। यदि धातु अकर्मक है तो **सन्** प्रत्यय करने के बाद भी सन्नन्त धातु अकर्मक ही रहेगी और धातु सकर्मक हो तो सन्नन्त भी सकर्मक ही होगी। अतः सन्नन्त अकर्मक धातुओं से भाव में और सन्नन्त सकर्मक धातुओं से कर्म में लकार होंगे। इसी तरह यङन्त और यङ्लुगन्त के विषय में भी जानना चाहिए। इसीलिए **रामेण भूयते** की तरह सन्नन्त **भू** का **रामेण बुभूष्यते**, यङन्त **भू** का **रामेण बोभूय्यते** और यङ्लुगन्त **भू** का **रामेण बोभूयते** आदि भाववाच्य में ही रूप बनेंगे किन्तु **ण्यन्त** भू धातु का तो **रामेण श्यामो भाव्यते** आदि कर्मवाच्य में रूप बनते हैं।

भू धातु से **इच्छा** अर्थ में **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **सन्** प्रत्यय होकर **सन्यङोः** से द्वित्व आदि हो जाने पर **बुभूष** बनता है। उसकी धातुसंज्ञा होती है। अकर्मक होने के कारण कर्ता या भाव में प्रत्यय होकर कर्तृवाच्य या भाववाच्य के रूप बनते हैं। कर्तरि प्रयोग तो **देवदत्तः बुभूषति** है किन्तु भाव के प्रयोग में **बुभूष** इस सन्नन्त धातु से लट्, त, यक् करके **बुभूष+यत** बनता है। यहाँ पर **अतो लोपः** से **षकारोत्तरवर्ती अकार** का लोप करके टि को एत्व करने पर **बुभूष्यते** बन जाता है। इसका वाक्य में प्रयोग- **तेन** बुभूष्यते अर्थात् **उससे होने की इच्छा की जाती है।**

लिट् में **बुभूष** से आम्, **अतो लोपः** से अकार का लोप, लिट् का लुक्, **कृ, भू, अस्** का अनुप्रयोग आदि करके **बूभूषाञ्चक्रे, बुभूषाम्बभूवे, बुभूषामासे।**

लुट् में **बुभूष** से **चिण्वदिट्** करने के पक्ष में भी **बुभूषिता** बनता है और चिण्वदिट् न होने के पक्ष में भी **वलादिलक्षण इट्** होकर **बुभूषिता** ही बनता है। इस तरह

लुट् के रूपों में अन्तर नहीं है। **अतो लोपः** से अकार का लोप करना न भूलें। यहीं बात **लृट्** में भी होती है जिससे दोनों पक्षों में **बूभूषिष्यते** ही बनता है। **लोट्** में **बुभूष्यताम्**। **लङ्** में **अबुभूष्यत**। **विधिलिङ्-** **बुभूष्येत**। **आशीर्लिङ्** में **बुभूषिषीष्ट**। **लुङ्** का रूप- **अबुभूषि** और **लृङ्** का **अबुभूषिष्यत**।

इस तरह **सन्नन्त** से भाववाच्य में रूप बनाने की सामान्य प्रक्रिया बताकर अब **यङन्त** से भाववाच्य के रूप बतलाने का उपक्रम कर रहे हैं। **बुभूय्यते**।

भू धातु से क्रियासमभिहार अर्थ में **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **यङ्, सन्यङोः** से द्वित्व आदि करके **गुणो यङ्लुकोः** से गुण करने पर **बोभूय** बनता है। यह धातु अकर्मक है। अतः भाव अर्थ में लकार करके **बोभूय+त** बनता है। इससे **सार्वधातुके यक्** से **यक्** करके **बोभूय+यत** बना। **अतो लोपः** से **बोभूय** में यकारोत्तरवर्ती अकार का **लोप** करके **बोभूय्+यत** बना। टि को एत्व करने पर **बोभूय्यते** सिद्ध हो जाता है।

सभी लकारों के रूप- बोभूय्यते। बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयाम्बभूवे, बोभूयामासे। बोभूयिता। बोभूयिष्यते। बोभूय्यताम्। अबोभूय्यत। बोभूय्येत। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयि। अबोभूयिष्यत। ध्यान रहे कि **भाव** में प्रत्यय होने पर केवल प्रथमपुरुष और एकवचन ही होता है। इन रूपों को बनाने में कोई परेशानी नहीं आयेगी यदि पहले की प्रक्रिया तैयार है तो, अन्यथा तो अन्ध ेरे में तीर चलाने जैसा ही रहेगा।

भू धातु अकर्मक है। **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** के अनुसार इससे **कर्ता** और **भाव** अर्थ में ही लकार हो सकते हैं। **कर्तरि लकार** तो **भ्वादि** में बताई गई है इसी तरह **ण्यन्त** से कर्ता में, **सन्नन्त** से कर्ता में, **यङन्त** से कर्ता में और **यङ्लुगन्त** से कर्ता में भी तत्तत् प्रकरणों में हो चुके हैं। अभी यहाँ **भावकर्मप्रक्रिया** में केवल भू धातु, ण्यन्त भू धातु, सन्नन्त भू धातु और यङन्त भू धातु से **भाव** या कर्म के रूपों का सामान्य विवेचन किया गया। अब **यङ्लुगन्त** से भी **भाव** अर्थ में कैसे रूप बनते हैं, इसकी प्रक्रिया शुरू होती है।

बोभूयते। भू से यङ् करके उसका लुक् करने पर **बोभू** आप उस प्रकरण में बना चुके हैं। **बोभू** की धातुसंज्ञा करके **भाव** अर्थ में **लट्** लकार, **सार्वधातुक यक्** प्रत्यय करके **बोभू+यत** बना है। टि को एत्व करके **बोभूयते** बन जाता है।

रूप- **बोभूयते। बोभवाञ्चक्रे, बोभवाम्बभूवे, बोभवामासे**। चिण्वदिट्पक्षे- वृद्धि, आवादेश होकर **बोभाविता** और न होने के पक्ष में वलादिलक्षण इट् होकर गुण करने पर **बोभविता**। इसी तरह **लृट्** में **बोभाविष्यते, बोभविष्यते। लोट्- बोभूयताम्। लङ्- अबोभूयत। विधिलिङ्- बोभूयेत। आशीर्लिङ्- बोभाविषीष्ट- बोभविषीष्ट। लिङ्- अबोभावि। लृङ्- अबोभाविष्यत, अबोभविष्यत।**

स्तूयते विष्णुः। अदादिगण में **ष्टुञ् स्तुतौ** धातु पठित है। इसके वहाँ पर कर्तरि प्रयोग **स्तौति, स्तुतः, स्तुवन्ति** आदि होते हैं। सकर्मक होने से इससे **कर्म** में लकार होकर **स्तूयते** आदि बनते हैं। **स्तु** से **लट्, त, यक्,** एत्व आदि करके **स्तु+यते** बना है। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **दीर्घ** होकर **स्तूयते** बनता है। इसका कर्ता तृतीयान्त होगा। **स्तूयते विष्णुर्भक्तेन**। यह धातु सकर्मक है। भक्त से विष्णु की स्तुति की जाती है। **लिट्** में **शर्पूर्वाः खयः** लगकर **तुष्टुवे** ही बनता है क्यों कि धातु के एकाच् होने के कारण आम्

आदि नहीं होते। लुट में **चिण्वदिट्** और उसके अभाव में दो-दो रूप-**स्ताविता**, **स्तोता**। इसी तरह **लृट्** में भी- **स्ताविष्यते, स्तोष्यते**। लोट् में - **स्तूयताम्, स्तूयेताम्, स्तूयन्ताम्**। लङ्- **अस्तूयत, अस्तूयेताम्, अस्तूयन्त** आदि। विधिलिङ्- **स्तूयेत**। आशीर्लिङ्- **स्ताविषीष्ट, स्तोषीष्ट**। लुङ्- **अस्तावि, अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम्, अस्ताविषत-अस्तोषत** आदि। लृङ्- **अस्ताविष्यत, अस्तोष्यत**।

अर्यते। ऋ गतौ यह धातु जुहोत्यादिगण में सकर्मक के रूप में पठित है। इससे **कर्तृवाच्य** में **इयर्ति, इयृतः, इय्रति** आदि रूप बनते हैं तो यहाँ **कर्मवाच्य** में यक् होकर **ऋ+यत** बना हुआ है। यक् में कित् होने के कारण गुण का निषेध होकर **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से **ऋ** को **रिङ्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर के **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** से गुण हुआ तो एत्व आदि करने के बाद **अर्यते** सिद्ध हुआ।

लट् में- अर्यते, अर्येते, अर्यन्ते आदि।

लिट् में- **ऋ** से लिट्, त, एश्, द्वित्व करके **ऋ+ऋ+ए** बनता है। अभ्यास को **उरत्** से अत्त्व, रपर होकर **अर्+ऋ+ए** में हलादिशेष होने पर अभ्यास अकार का **अत आदेः** से दीर्घ होकर **आ+ऋ+ए** हुआ। ऋ को यण् होकर **आ+र्+ए** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आरे** सिद्ध हुआ। आरे, आराते, आरिरे, आरिषे, आराथे, आरिढ्वे-आरिध्वे, आरे, आरिवहे, आरिमहे।

लुट्- में चिण्वदिट् के विकल्प से होने से आरिता-अर्ता। **लृट्**- **ऋद्धनोः स्ये** से इट्- आरिष्यते, अरिष्यते। **लोट्**- अर्यताम्। **लङ्**- आर्यत। **विधिलिङ्**- अर्येत। **आशीर्लिङ्**- आरिषीष्ट-ऋषीष्ट। **लुङ्**- आरि, आरिषाताम्-आर्षाताम्, आरिषत-आर्षत आदि। **लृङ्**- आरिष्यत-अरिष्यत आदि।

स्मर्यते। भ्वादि में परस्मैपदी **स्मृ स्मरणे** धातु है। उससे लट्, कर्म में यक्, **ऋतश्च संयोगादेर्गुणः** से गुण आदि करके **स्मर्यते** बन जाता है। **लिट्** में- सस्मरे। आगे- स्मारिता-स्मर्ता। स्मारिष्यते-स्मरिष्यते। स्मर्यताम्। अस्मर्यत। स्मर्येत। स्मारिषीष्ट, स्मृषीष्ट। अस्मारि, अस्मारिषाताम्-अस्मृषाताम्,, अस्मारिषत-अस्मृषत। अस्मारिष्यत-अस्मरिष्यत।

अब **स्रंसु(सन्सु)** जो भ्वादिगणीय अकर्मक आत्मनेपदी है, उससे भाव अर्थ में लकार होता है। **लट्** में **स्रन्स्+यत** बनने के बाद यक् के कित् होने के कारण **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से उपधा के नकार का लोप करके टि को एत्व करने पर **स्रस्यते** सिद्ध होता है। आगे के लकारों में **सस्रंसे, स्रंसिता, स्रंसिष्यते, स्रस्यताम्, अस्रस्यत, स्रस्येत, स्रंसिषीष्ट, अस्रंसिष्ट, अस्रंसिष्यत** आदि रूप बनते हैं। यक् होने के स्थलों में कित् को मानकर नकार का लोप होता है, अन्यत्र नहीं।

इदितस्तु नन्द्यते अर्थात् **इदित् धातु में** तो नकार का लोप नहीं हो सकता क्योंकि नकारविधायक सूत्र **अनिदिताम्** कहता है। **टुनदि समृद्धौ** से अनुबन्धलोप होने के बाद इदित् होने के कारण **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होकर के **नन्द्** बना हुआ है। इसीलिए उसके नकार का लोप नहीं होता। अतः **नन्द्यते, ननन्दे, नन्दिता, नन्दिष्यते, नन्द्यताम्, अनन्द्यत, नन्द्येत, नन्दिषीष्ट, अनन्दि, अनन्दिष्यत** बनते हैं।

इज्यते। भ्वादि में **यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु** धातु पठित है। उससे कर्मवाच्य में **लट्, यक्** करके **यज+यत** बना। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **यज्** में यकार को

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७५५. तनोतेर्यकि ६।४।४४॥

आकारोऽन्तादेशो वा स्यात्। तायते, तन्यते।

चिण्निषेधकं विधिसूत्रम्

७५६. तपोऽनुतापे च ३।१।६५॥

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च। अन्वतप्त पापेन। **घुमास्थे**तीत्वम्। दीयते। धीयते। ददे।

....

सम्प्रसारण होकर **इकार** बना। **इज्+यत** में एत्व होकर **इज्यते** बना। **लिट्-** ईजे। आगे- यष्टा। यक्ष्यते। इज्यताम्। ऐज्यत। इज्येत। यक्षीष्ट। अयाजि, अयक्षाताम्, अयक्षत। अयक्ष्यत।

७५५- **तनोतेर्यकि**। तनोतेः पञ्चम्यन्तं, यकि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से **आत्** और **ये विभाषा** से **विभाषा** की अनुवृत्ति आती है।

यक् के परे होने पर तन् धातु के नकार को विकल्प से आकार आदेश होता है।

तायते, तन्यते। तनु विस्तारे यह **तनादिगणीय** सकर्मक धातु है, इससे **कर्मवाच्य** में लट्, यक् होने के बाद **तनोतेर्यकि** से विकल्प से **नकार** को आत्व करके **त+आ+यते** बना है। सवर्णदीर्घ करके **तायते** सिद्ध हुआ, आत्व न होने के पक्ष में **तन्यते**। इस तरह दो रूप सिद्ध होते हैं। लिट् आदि आर्धधातुकों में यक् नहीं होता, अतः आत्व भी नहीं होगा किन्तु **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **एत्त्वाभ्यासलोप** होकर **तेने, तेनाते, तेनिरे** आदि रूप बन जाते हैं। लुट् में **तनिता** आगे **तनिष्यते, तायताम्-तन्यताम्, अतायत-अतन्यत, तायेत-तन्येत, तनिषीष्ट, अतानि, अतनिषाताम्, अतनिषत। अतनिष्यत** आदि रूप बनते हैं।

तप सन्तापे। भ्वादि में परस्मैपदी और **तपना** अर्थ में अकर्मक एवं **तपाना** अर्थ में सकर्मक दोनों में प्रयुक्त होने वाली धातु है। यहाँ पर **तपना** अर्थ वाली अकर्मक **तप्** धातु है। अतः भाववाच्य में रूप बनाये गये हैं। इसके कर्तृवाच्य में **तपति, तपतः, तपन्ति** आदि रूप इसके बनते हैं। इससे **भाववाच्य** में लकार, यक् करके **तप्यते, तेपे, तप्ता, तप्स्यते, तप्यताम्, अतप्यत, तप्येत, तप्सीष्ट, अतप्त, अतप्स्यत** ये रूप बनते हैं। कर्म अर्थ में सभी पुरुषों के सभी वचन हैं और भाव अर्थ में केवल प्रथमपुरुष का एकवचन ही होता है। लुङ् में कुछ विशेषता है, इसलिए निम्नलिखित सूत्र का अवतरण करते हैं।

७५६- **तपोऽनुतापे च**। तपः पञ्चम्यन्तम्, अनुतापे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः, चिण् ते पदः** से **चिण्, न रुधः** से **न** और **अचः कर्मकर्तरि** से **कर्मकर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

कर्मकर्ता या पश्चात्ताप अर्थ में तप् धातु से परे च्लि को चिण् आदेश नहीं होता।

कर्मकर्ता का अर्थ अगले प्रकरण से स्पष्ट होगा। यहाँ पर **पश्चात्ताप** अर्थ में **चिण् भावकर्मणोः** से प्राप्त **चिण्** आदेश का निषेध किया जा रहा है। जहाँ पर **पश्चात्ताप** अर्थ नहीं होगा, वहाँ पर **चिण्** होकर **उदतापि** भी बनता है।

युगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७५७. आतो युक् चिण्कृतोः ७।३।३३॥

आदन्तानां युगागमः स्यात् चिणि ञ्णिति कृति च।

दायिता, दाता। दायिषीष्ट, दासीष्ट। अदायि। अदायिषाताम्। भज्यते।

....

अन्वतप्त पापेन। पापी के द्वारा पछताया गया। यहाँ पर **अनु** पूर्वक **तप्** धातु का अर्थ **पश्चात्ताप करना** अर्थ प्रकट हो रहा है। इस लिए लुङ् लकार के **अनु+तप्+च्लि+त** में **चिण् भावकर्मणोः** से प्राप्त **चिण्** ओदश का निषेध किया गया। अतः **च्लेः सिच्** से **सिच्** आदेश होकर उसके सकार का **झलो झलि** से लोप होकर **अनु+अतप्त** बना। यण् होकर **अन्वतप्त** सिद्ध हुआ।

यहाँ पर **पाप**-शब्द पाप वाले **पापी पुरुष** का वाचक है। **पापम् अस्यास्तीति पापः। अर्शादिभ्योऽच्** से अच् प्रत्यय होकर बना हुआ है। इसका कर्तृवाच्य में **पापः अन्वतपत्** ऐसा रूप बनता है।

दीयते। डुदाञ् दाने, जुहोत्यादि का सकर्मक धातु है। **दा** से **ददाति** आदि रूप बनते हैं। यहाँ कर्मवाच्य में **लट्, त, यक्** करके **दा+यत** बना है। **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से **दा** के आकार को **ईत्त्व** होने के बाद टि को एत्व करके **दीयते** बन जाता है। आगे- **दीयेते, दीयन्ते** आदि। **लिट्** में **ददे, ददाते, ददिरे, ददिषे** आदि बनाइये। **लुट्** में **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च** से विकल्प से **चिण्वदिट्** होने के पक्ष में अग्रिम सूत्र से **युक्** का आगम होता है।

७५७- **आतो युक् चिण्कृतोः।** चिण् च कृत् च तयोरितरेतरद्वन्द्वश्चिणकृतौ, तयोः। आतः षष्ठ्यन्तं, युक् प्रथमान्तं, चिण्कृतोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् अथवा ञित्-णित् कृत् प्रत्यय के परे होने पर आदन्त धातुओं को युक् का आगम होता है।

युक् में उकार और ककार इत्संज्ञक हैं। केवल **य्** शेष रहता है। कित् होने के कारण धातु का अन्तावयव होकर बैठता है। ध्यान रहे कि यह आगम केवल **आदन्त धातुओं को चिण्** या **ञित्, णित्** प्रत्यय के परे रहने पर ही होता है।

दायिता, दाता। दा धातु से भावकर्म में **लुट्, त, तासि** करके **चिण्वदिट्** आदि करके **दा+इता** बना है। **चिण्वत्** होने के कारण **णित्** परे मिल जाता है। अतः **आतो युक् चिण्कृतोः** से **धातु के आकार** को **युक्** का आगम हुआ तो **दाय्+इता** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दायिता** सिद्ध हुआ। **चिण्वदिट्** न होने के पक्ष में इट् भी नहीं हुआ तो युक् का आगम भी नहीं हुआ। अतः **दाता** ही रह गया। इसी तरह **आशीर्लिङ् में चिण्वदिट्** होने के पक्ष में **युक्** होकर **दायिषीष्ट** और **चिण्वदिट्** न होने के पक्ष में **दासीष्ट** बनता है। इसी तरह **लुङ्** में **अदायि** बनता है। इसी के **तस्** में **अदायिषाताम्** और **चिण्वदिट्** न होने के पक्ष में **स्थाघ्वोरिच्च** से **दा** के आकार को **इकार** आदेश होकर **अदिषाताम्** बनता है। झि में **अदायिषत, अदिषत** आदि।

सकर्मक **दा** धातु के **कर्मवाच्य** के रूप- दीयते। ददे। दायिता-दाता। दायिष्यते-दास्यते।

वैकल्पिकनलोपविधायकं विधिसूत्रम्

७५८. भञ्जेश्च चिणि ६।४।३३॥

नलोपो वा स्यात्। अभाजि, अभञ्जि। लभ्यते।

वैकल्पिकनुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

७५९. विभाषा चिण्णमुलोः ७।१।६९॥

लभेर्नुमागमो वा स्यात्। अलम्भि, अलाभि॥

इति भावकर्मप्रक्रिया॥३०॥

...

दीयताम्। अदीयत। दीयेत। दायिषीष्ट-दासीष्ट। अदायि, अदायिषाताम्-अदिषाताम्, अदायिषत-अदिषत। अदायिष्यत-अदास्यत।

धीयते। इसी तरह की प्रक्रिया **डुधाञ् धारणपोषणयोः** धातु की है। यह भी **जुहोत्यादि** का सकर्मक और उभयपदी है। **कर्मवाच्य में धा** से धीयते, दधे, धायिता-धाता, धायिष्यते-धास्यते, धीयताम्, अधीयत, धीयेत, धायिषीष्ट-धासीष्ट, अधायि, अधायिषाताम्-अधिषाताम्, अधायिषत-अधिषत, अधायिष्यत-अधास्यत।

भज्यते। भञ्जो आमर्दने(भन्ज्) धातु **तोड़ना** अर्थ में रुधादि में सकर्मक पठित है। इससे कर्मवाच्य में लट्, यक् होकर **भन्ज+यत** बना है। **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से नकार का लोप करके **भज्+यत** बना। टि को एत्व करके **भज्यते** सिद्ध होता है। आगे- भज्येते, भज्यन्ते। लिट् में- **बभञ्जे, बभञ्जाते, बभञ्जिरे, बभञ्जिषे** आदि बन जाते हैं। यह धातु **चिण्वदिट्** का विषय बनता नहीं है क्योंकि **उपदेश अवस्था** में **अजन्त** या **हन्** आदियों में नहीं आता। वैसे भी यह धातु अनिट् है। अतः **लुट्** आदि में कर्तृवाच्य की तरह ही **भन्ज्+ता** में **जकार** को **चोः कुः** से कुत्व करके **गकार** और उसके योग में नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ङकार** करके **गकार** को **खरि च** से चर्त्व करके **भङ्क्ता** आदि रूप बनते हैं तो **लृट्** में कुत्व, अनुस्वार, परसवर्ण, षत्व, क्षत्व होकर के **भङ्क्ष्यते** बनता है। **लोट्** आदि में- **भज्यताम्, अभज्यत, भज्येत, भङ्क्षीष्ट** आदि रूप बनते हैं। **लुङ्** में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है-

७५८- भञ्जेश्च चिणि। भञ्जेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, चिणि सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **जान्तनशां विभाषा** से **विभाषा** और **श्नान्नलोपः** से **नलोपः** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् के परे होने पर भन्ज् धातु के नकार का विकल्प से लोप होता है।

लुङ् में **अभन्ज्+इत** बना है। **भञ्जेश्च चिणि** से विकल्प से नकार का लोप हुआ तो **अभज्+इत** में **अत उपधायाः** से **उपधावृद्धि** होकर **अभाज्+इत** बना। **चिणो लुक्** से **त** का लोप होकर **अभाजि** सिद्ध हुआ। नकार के लोप न होने के पक्ष में उपधा में अकार मिलेगा नहीं, अतः वृद्धि भी नहीं होगी। अतः **अभञ्जि** बनता है। **अभाजि-अभञ्जि, अभाङ्क्षाताम्, अभङ्क्षत** आदि। लृङ्- **अभङ्क्ष्यत, अभङ्क्ष्येताम्, अभङ्क्ष्यन्त** आदि।

लभ्यते। डुलभष् प्राप्तौ, यह धातु भ्वादि में पठित है। इत्संज्ञा आदि होकर **लभ्** बचता है। आत्मनेपदी और अनिट् होने के कारण **लभते, लेभे, लब्धा, लप्स्यते, लभताम्, अलभत, लभेत, लप्सीष्ट, अलब्ध, अलप्स्यत** आदि रूप कर्तृवाच्य में बनते हैं। सकर्मक

होने के कारण **कर्मवाच्य** में लकार होकर **लभ्यते, लेभे, लब्धा, लप्स्यते, लभ्यताम्, अलभ्यत, लभ्येत, लप्सीष्ट** बनाइये और **लुङ्** में अगला सूत्र लगाइये-

७५९- **विभाषा चिण्णमुलोः**। चिण् च णमुल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वश्चिणमुलौ, तयोः। विभाषा प्रथमान्तं, चिण्णमुलोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **लभेश्च** से **लभेः** और **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् या णमुल् के परे होने पर लभ् धातु को विकल्प से नुम् का आगम होता है।

अलम्भि, अलाभि। लुङ् में **अलभ्+इत** बनने के बाद **विभाषा चिण्णमुलोः** से **नुम्** का आगम करके **अलम्भ्+इत** बना। मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण करके **चिणो लुक्** से **त** का लोप करके **अलम्भि** सिद्ध होता है। **नुम्** न होने के पक्ष में उपधावृद्धि करके **अलाभि** बनता है। आगे के रूप- **अलप्साताम्, अलप्सत, अलब्धाः, अलप्साताम्, अलब्ध्वम्, अलप्सि, अलप्स्वहि, अलप्स्महि**। लृङ्- **अलप्स्यत**।

यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल भू के रूप दिखाये गये हैं। अब जिज्ञासुओं के लिए कुछ विशेष धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के रूप यहाँ पर व्याख्या में दिखाये जा रहे हैं जो लट्, प्रथमपुरुष एकवचन के हैं।

मूलधातु	**कर्तृवाच्य**	**भावकर्म**	**अर्थ**
अर्च्	अर्चति	अर्च्यते	पूजा जाता है।
अस्	अस्ति	भूयते	हुआ जाता है।
आप्	आप्नोति	आप्यते	पाया जाता है।
इङ्	अधीते	अधीयते	पढ़ा जाता है।
इष्	इच्छति	इष्यते	चाहा जाता है।
कथ्	कथयति	कथ्यते	कहा जाता है।
कृ	करोति	क्रियते	किया जाता है।
कृष्	कर्षति	कृष्यते	जोता जाता है।
क्री	क्रीणाति	क्रीयते	खरीदा जाता है।
क्षिप्	क्षिपति	क्षिप्यते	फेंका जाता है।
खाद्	खादति	खाद्यते	खाया जाता है।
गण्	गणयति	गण्यते	गिना जाता है।
गम्	गच्छति	गम्यते	जाया जाता है।
गै	गायति	गीयते	गाया जाता है।
ग्रह्	गृह्णाति	गृह्यते	ग्रहण किया जाता है।
चिन्त्	चिन्तयति	चिन्त्यते	सोचा जाता है।
चुर्	चोरयति	चोर्यते	चुराया जाता है।
ज्ञा	जानाति	ज्ञायते	जाना जाता है।
तृ	तरति	तीर्यते	पार किया जाा है।
त्यज्	त्यजति	त्यज्यते	छोड़ा जाता है।
दह्	दहति	दह्यते	जलाया जाता है।
दा	ददाति	दीयते	दिया जाता है।

दुह्	दोग्धि	दुह्यते	दोहा जाता है।
दृश्	पश्यति	दृश्यते	देखा जाता है।
ध्यै	ध्यायति	ध्यायते	ध्यान किया जाता है।
नम्	नमति	नम्यते	नमस्कार किया जाता है।
नी	नयति	नीयते	ले जाया जाता है।
पच्	पचति	पच्यते	पकाया जाता है।
पठ्	पठति	पठ्यते	पढ़ा जाता है।
पा	पिबति	पीयते	पिया जाता है।
पाल्	पालयति	पाल्यते	पाला जाता है।
पूज्	पूजयति	पूज्यते	पूजा किया जाता है।
प्रच्छ्	पृच्छति	पृछ्यते	पूछा जाता है।
बन्ध्	बध्नाति	बध्यते	बाँधा जाता है।
ब्रू	ब्रवीति	उच्यते	कहा जाता है।
भाष्	भाषते	भाष्यते	कहा जाता है।
याच्	याचते	याच्यते	मांगा जाता है।

अनुवाद में इस प्रकरण का बहुत ही उपयोग होता है। **भ्वादि** से **चुरादि** और **ण्यन्त, सन्नन्त, यङन्त** एवं **यङ्लुगन्त** तक सभी धातुओं से कर्ता अर्थ में लकार होने से इन धातुरूपों को लगाकर जो वाक्य बनते हैं, उन्हें कर्तृवाच्य वाक्य कहा जाता है। अब उन्हीं धातुओं से यदि वे धातु सकर्मक हैं तो **कर्म** अर्थ में **लकार** करके **कर्मवाच्य** के वाक्य बनाये जाते हैं और यदि धातु अकर्मक है तो **भाव** अर्थ में लकार करके **भाववाच्य** के वाक्य बनाये जाते हैं। वाक्यों के प्रयोग में भावकर्मवाच्य का प्रयोग बहुत सुन्दर लगता है।

ध्यान रहे कि लकार या प्रत्यय जिस अर्थ में होते हैं, वह अर्थ **उक्त** होता है और शेष सभी अर्थ **अनुक्त** होते हैं। **कारक** में उक्त और अनुक्त बहुत ध्यान रखना पड़ता है। **अनुक्त कर्म** में **द्वितीया** विभक्ति होती है और **उक्त कर्म** में प्रथमा विभक्ति। **अनुक्त कर्ता** और **अनुक्त करण** में **तृतीया विभक्ति** होती है। जैसे कर्तृवाच्य में **रामः ग्रन्थं पठति** यह वाक्य है। इस वाक्य में **पठ्** धातु से लट् लकार **कर्ता अर्थ** में हुआ है। अतः इस वाक्य का कर्ता उक्त है। एक उक्त होता है तो शेष सभी अनुक्त होते हैं। अतः कर्म आदि सभी अनुक्त हुए। **कर्ता** में प्रथमा होना सामान्य नियम है, अतः **राम** से प्रथमा विभक्ति हुई। कर्म अनुक्त है तो **कर्मणि द्वितीया** से कर्म **ग्रन्थ** में द्वितीया विभक्ति हुई। यह तो हुआ कर्तृवाच्य का वाक्य। इसी को कर्मवाच्य में बनाते हैं। क्योंकि **पठ्** धातु सकर्मक है। अतः इससे **कर्म** अर्थ में लकार होकर **लट्, यक्, एत्व** आदि करके **पठ्यते** बनता है। **कर्म** अर्थ में लकार हुआ है, अतः **कर्म उक्त** हो गया, शेष सभी अनुक्त हुए। अतः उक्त कर्म में प्रथमा हुई और अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति हुई तो वाक्य बना- **रामेण ग्रन्थः पठ्यते।**

कारक का प्रयोग वक्ता के अधीन में होता है। **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति**। यह कर्ता के अधीन है कि वह वाक्य को कर्तृवाच्य, भाववाच्य या कर्मवाच्य किस रूप में प्रयोग करना चाहता है! उसी रूप में वह बना सकता है।

कर्तृवाच्य	भाववाच्य या कर्मवाच्य
सः भवति	तेन भूयते।
त्वं भवसि	त्वया भूयते।
अहं भवामि	मया भूयते।
रामः ओदनं खादति	रामेण ओदनः खाद्यते।
त्वं घटं कुरु	त्वया घटः क्रियताम्।
त्वं पुस्तकं पठ	त्वया पुस्तकं पठ्यताम्।
अहं जलं न पास्यामि	मया जलं न पास्यते।
प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्	प्रसिद्धेन पुरुषेण भूयेत।
बालाः पुष्पाणि चिन्वन्ति	बालैः पुष्पाणि चीयन्ते।
भवान् ग्रामं गच्छतु	भवता ग्रामो गम्यताम्।
यूयं कार्यम् अकार्ष्ट	युष्माभिः कार्यम् अकारि।
ते देवान् यजेयुः	तैः देवाः इज्येरन्।
अहं त्वां नमामि	मया त्वं नम्यसे।
वयं युवां द्रक्ष्यामः	अस्माभिर्युवां द्रक्ष्येथे।
आवां युष्मान् रक्षेव	आवाभ्यां यूयं रक्षेध्वम्।
त्वं मां परिचिनु	त्वया अहं परिचीयै।
भवन्तः आवाम् अजानन्	भवद्भिरावामज्ञायावहि।
तौ अस्मान् अस्तौष्टाम्	ताभ्यां वयमस्ताविष्महि।

परीक्षा

विशेष प्रकरण होने के कारण इस परीक्षा में कोई समय निर्धारित नहीं है, फिर भी चिन्तन-मनन करते हुए आपको सामान्यतः तीन दिन में परीक्षा पूरी करनी होगी। ३०० पूर्णाङ्कों की परीक्षा में प्रथमश्रेणी के लिए २७५ से ऊपर, द्वितीयश्रेणी के लिए २४० से ऊपर और तृतीयश्रेणी के २०० से ऊपर अंक प्राप्त करने होंगे।

१.	भावकर्मप्रक्रिया पर एक विस्तृत लेख लिखें	५०
२.	अलग अलग कर्ता, कर्म और धातुओं का प्रयोग करके भिन्न-भिन्न पुरुष और वचन में **कर्तृवाच्य** के किन्हीं २५ वाक्यों को बदल कर भावकर्मवाच्य के अर्थ सहित वाक्य बनायें।	५०
३.	**भू, हस्** और **शीङ्** इन तीन अकर्मक धातुओं के भाववाच्य में अर्थ सहित २५ वाक्य बनायें।	५०
४	अलग-अलग कर्ता और कर्म का प्रयोग करके कर्मवाच्य में **अनु+भू**, के सभी लकारों के तीनों पुरुषों के सभी वचनों में अर्थ सहित ९० वाक्य बनायें।	१५०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की भावकर्म-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः।

कार्यातिदेशसूत्रम्

७६०. कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः। पच्यते फलम्। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावे- भिद्यते काष्ठेन।

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया॥३१॥

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **कर्मकर्तृप्रक्रिया** का आरम्भ होता है। **भावकर्मप्रक्रिया** की तरह इस प्रकरण का भी अनुवाद आदियों में और दैनिक प्रयोग में महत्त्वपूर्ण स्थान है। **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति।** कारक वक्ता की इच्छा के अधीन होते हैं। एक ही वाक्य को कर्ता भिन्न-भिन्न रूप में प्रयोग कर सकता है। जैसे कि **अहं काष्ठं भिनद्मि** मैं लकड़ी तोड़ता हूँ, यह कर्तृवाच्य में मैंने प्रयोग किया। अब इसको कर्मवाच्य में प्रयोग कर सकता हूँ- **मया काष्ठं भिद्यते** मेरे द्वारा लकड़ी तोड़ी जाती है। अब इसी वाक्य को दूसरे प्रकार से भी कह सकते हैं- **भिद्यते काष्ठम्** अर्थात् लकड़ी स्वयं टूट रही है। इस तीसरे वाक्य को **कर्मकर्ता** कहते हैं। **जहाँ पर कर्म का प्रयोग कर्ता की तरह किया जाता है, उसे कर्मकर्तृवाच्य** कहा जाता है। हिन्दी में भी **पैर भूमि में धंसा जा रहा है, कपड़ा फटा जा रहा है।, धागा टूटता चला जा रहा है** आदि प्रयोग हम रोज देखते, सुनते हैं।

अब यहाँ पर अन्य प्रकरणों की अपेक्षा इस प्रकरण में होने वाली भिन्नता को बतलाते हैं।

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः। जब वक्ता को **कर्म** ही **कर्तृत्वेन** कहना अभीष्ट हो तो **सकर्मक** धातुएँ भी **अकर्मक** बन जाती हैं। तब सभी सकर्मक धातुओं के भी **अकर्मक** होने से उन धातुओं से **कर्ता** और **भाव** अर्थ में ही **लकार** होते हैं अर्थात् जिस प्रकार से **लः कर्मणि च भावे**

चाकर्मकेभ्यः से सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म अर्थ में और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में लकार होते हैं, वैसे ही यहाँ पर **कर्मकर्ता** होने से धातु के अकर्मक बन जाने के कारण उससे **भाव** और **कर्म** अर्थ में ही लकार होते हैं।

७६०- **कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः**। तुल्या क्रिया यस्य स तुल्यक्रियः। कर्मण इव कर्मणि इव वा कर्मवत्। कर्मवत् अव्ययपदं, कर्मणा तृतीयान्तं, तुल्यक्रियः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। अत्र **कर्मणा** इत्यनेन कर्मकारकस्था क्रिया विवक्षिता। **कर्तरि शप्** से विभक्तिविपरिणाम करके **कर्ता** की अनुवृत्ति आती है।

कर्म में स्थित क्रिया के साथ तुल्य क्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है।

तात्पर्य यह है कि **कर्म** के **कर्ता** बनने के पूर्व जो क्रिया कर्म में स्थित होती है, यदि वही क्रिया अब **कर्मकर्तृप्रक्रिया** के कर्ता में स्थित हो तो, और यह कब हो सकता है? जब कर्म ही कर्ता बने तब। अतः इसके कर्ता को **कर्मवद्भाव** हो जाता है। जैसे- **देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति** अर्थात् देवदत्त लकड़ी को तोड़ता है। इस वाक्य में कर्ता है **देवदत्तः** और कर्म है **काष्ठम्।** अब इसमें **टुकड़े होना** रूप जो क्रिया कर्म **काष्ठ** में स्थित है, वही क्रिया **कर्म काष्ठ** को **कर्तृत्वेन** विवक्षा करके प्रयोग करने पर बने हुए कर्ता **काष्ठ** में भी विद्यमान है, अतः यह **तुल्यक्रियकर्ता** हो गया। फलतः **कर्मवद्भाव** हो जाता है। यहाँ **तृज्वत् क्रोष्टुः** आदि की तरह रूपातिदेश आदि न होकर कार्यातिदेश माना जाता है। अतः **कर्ता** को **कर्मवत्** रूप **अतिदेश** का फल यह निकलता है कि **कर्मवाच्य** में जो-जो कार्य होते हैं वे सब कार्य **कर्मकर्ता** में भी हो जायेंगे। कर्मवाच्य में होने वाले कार्य **आत्मनेपद, यक्, चिण्, चिण्वदिट्** आदि है, वे सभी कार्य **कर्मकर्ता** में भी अतिदिष्ट होते हैं। इस तरह यहाँ **कार्यातिदेश** सिद्ध माना गया।

पच्यते फलम्। फल स्वयं पकता है। यहाँ पर वस्तुतः **कालः फलं पचति** ऐसा कर्तृवाच्य का वाक्य बनता है किन्तु अतिशय सौकर्य या सरलता से कहने की वक्ता की अपेक्षा के कारण इस वाक्य को **कर्मकर्ता** में प्रयोग हुआ। उक्त वाक्य का कर्मकर्ता का वाक्य है- **पच्यते फलम्।** अर्थात् फल पकता है। **पकना** रूप जो क्रिया है, कर्मवाच्य और कर्मकर्ता के वाक्य में एक ही **फल** में अवस्थित है, अतः इसकी **कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः** से **कर्मवद्भाव** हो गया। फलतः **पच्** धातु से **आत्मनेपद, यक्** आदि होकर के **पच्यते** बना। नहीं तो **फलं पचति** ऐसा अनिष्ट वाक्य इस कर्मकर्तृविवक्षा में बनता।

और एक बात का ध्यान रखना जरूरी है- **पच्यते फलम्, भिद्यते काष्ठम्** आदि वाक्य कर्मकर्तृवद्भाव करने के बाद कर्तृवाच्य का है, न कि भाववाच्य का। अतः **काष्ठे पच्येते, काष्ठानि पच्यन्ते, त्वं पच्यसे, अहं पच्ये** आदि सभी रूप बनते हैं। कर्म को कर्ता बनाने के बाद वह कर्म कर्ता जैसा रहेगा, वैसे ही क्रियापद भी बनेंगे।

लिट् में **पेचे, पेचाते, पेचिरे** आदि बनेंगे तो **लुट्** में कर्मवद्भाव के बावजूद भी **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट्** से चिण्वद्भाव नहीं हुआ, क्योंकि यह धातु **उपदेश में अजन्त** आदि नहीं है। अतः **पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः** ही बनेगा, इट् आदि नहीं होंगे। आगे **लृट्** में **पक्ष्यते**। लोट् में **पच्यताम्**, लङ् में **अपच्यत**, विधिलिङ् में **पच्येत**, आशीर्लिङ् में **पक्षीष्ट**, लुङ् में **अपाचि, अपक्षाताम्, अपक्षत** और लृङ् में **अपक्ष्यत** सिद्ध होता है।

उक्त प्रकार से **भिद्यते काष्ठम्** लकड़ी अपने आप टूटती है। **भिद्यते, बिभिदे, भेत्ता, भेत्स्यति, भिद्यताम्, अभिद्यत, भिद्येत, भित्सीष्ट, अभेदि, अभित्साताम्, अभित्सत, अभेत्स्यत** आदि रूप बनाये जा सकते हैं। इसी कर्मकर्तृवाच्य में यदि लकार कर्ता अर्थ में न करके अकर्मक होने से भाव अर्थ में करेंगे तो सभी लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन में ही रूप बनेंगे। लकार के भाव अर्थ में होने से कर्मकर्ता अनुक्त हो जाता है। इसलिए इसमें तृतीया विभक्ति हो जाती है और उस कर्मकर्ता के बदलने पर भी क्रिया हमेशा वही रहेगी जैसा **काष्ठेन भिद्यते, काष्ठाभ्यां भिद्यते, काष्ठैर्भिद्यते, त्वया भिद्यते, मया भिद्यते आदि।**

कर्मकर्ता का उदाहरण **श्रीमद्भागवत** के प्रथमस्कन्ध के द्वितीय अध्याय स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की
कर्मकर्तृप्रक्रिया पूरी हुई।

अथ लकारार्थ-प्रक्रिया

लृट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

७६१. अभिज्ञावचने लृट् ३।२।११२॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट्। लङोऽपवाद:। **वस निवासे।** स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्याम:। एवं बुध्यसे, चेतयसे इत्यादिप्रयोगेऽपि।

लृट्-लकारनिषेधकं विधिसूत्रम्

७६२. न यदि ३।२।११३॥

यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि कृष्ण यद्वने अभुञ्जमहि।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **लकारार्थप्रक्रिया** का प्रारम्भ होता है। आपको ज्ञात है कि लट् आदि लकार दस हैं। किन-किन अर्थों में कौन-कौन से लकार हों, इसके सम्बन्ध में भ्वादि में दस लकारों के लिए **वर्तमाने लट्, परोक्षे लिट्** आदि से निर्णय दे दिया गया है किन्तु इतना मात्र पूर्ण नहीं है। ये सामान्य अर्थ हैं, अब उनके उत्सर्गापवादरूप अन्य अर्थों का निर्णय करने के लिए इस प्रकरण का आरम्भ किया गया है। इसके लिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल चार सूत्र बताये गये हैं, विशेष ज्ञान की अपेक्षा होने पर **अष्टाध्यायी** या **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करना चाहिए।

७६१- अभिज्ञावचने लृट्। अभिज्ञा स्मृति:, सा उच्यतेऽनेनेति अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्। अभिज्ञावचने सप्तम्यन्तं, लृट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भूते** का अधिकार आ रहा है और **अनद्यतने लङ्** से **अनद्यतने** की अनुवृत्ति आती है।

स्मृतिबोधक पद समीप में हो तो भूत अनद्यतन काल में धातु से लृट् लकार होता है।

भूत अनद्यतन में **अनद्यतने लङ्** से **लङ्** लकार का विधान हुआ है किन्तु **स्मृतिबोधक पद** के समीप में विद्यमान रहने पर **अनद्यतन भूत** में **लृट्** लकार होता है।

स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्याम:। याद है कृष्ण! हम लोग गोकुल में रहते थे। यहाँ पर **स्मृतिबोधकपद** है- **स्मरसि**। अत: इसके योग में भूतानद्यतन काल में भी **अनद्यतने लङ् अभिज्ञावचने लृट्** से **लृट्** लकार होकर **वत्स्याम:** बनता है। यहाँ **वस निवासे** धातु है। उससे लृट्, मध्यमपुरुष के बहुवचन में **वस्** होकर **स्यतासी लृलुटो:** से स्य, अनिट् धातु होने से इट् के निषेध होने पर धातु के सकार को **स: स्यार्धधातुके** से तकार

लट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

७६३. लट् स्मे ३।२।११८॥

लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः।

वर्तमानातिदेशसूत्रम्

७६४. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ३।३।१३१॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः।
कदागतोऽसि। अयमागच्छामि, अयमागमं वा।
कदा गमिष्यसि। एष गच्छामि, गमिष्यामि वा।

आदेश होकर **वत्स्यामः** बनता है। इसी तरह **बुध्यसे, चेतयसे अभिजानासि** आदि स्मृतिबोधक पदों के योग में **लृट् लकार** होता है।

७६२- न यदि। न अव्ययपदं, यदि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अभिज्ञावचने लृट्** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है साथ ही **भूते, अनद्यतने, धातोः** का अधिकार है।

यद् शब्द के योग में स्मृतिबोधक पद के समीप रहने पर भी भूतानद्यतन अर्थ में लृट् नहीं होता।

यह सूत्र पूर्वसूत्र का अपवाद है। इस सूत्र से स्मृतिबोधक पद के रहते हुए भी यदि उस वाक्य में **यत्** शब्द का प्रयोग हुआ है तो **लृट्** न होकर **लङ्** ही होता है।

अभिजानासि कृष्ण! यद् वने अभुञ्ज्महि। कृष्ण! क्या तुम्हें याद है कि हम लोग वन में खाते थे। यहाँ पर स्मृतिबोधक पद **अभिजानासि** है। इसके योग में **भुज्** से **भूतानद्यतन काल** में **अभिज्ञावचने लृट्** से **लृट् लकार** प्राप्त था, तो **यत्** के योग में **न यदि** से उसका निषेध हुआ। अतः लङ् लकार ही हो गया- **अभुञ्ज्महि**। भुज् लङ्, अडागम, महि, श्नम्, अलोप, अनुस्वार, परसवर्ण होकर यह रूप सिद्ध होता है।

७६३- लट् स्मे। लट् प्रथमान्तं, स्मे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनद्यतने लङ्** से **अनद्यतने** और **परोक्षे लिट्** से **परोक्षे** की अनुवृत्ति आती है।

स्म शब्द उपपद में हो तो भूतानद्यतन परोक्ष अर्थ में धातु से परे लट् लकार होता है।

परोक्षे लिट् से भूत, अनद्यतन, परोक्ष में **लिट्** लकार की प्राप्ति थी, उसे बाधकर यह लगता है। इस सूत्र के बाद **अपरोक्षे च** भी पढ़ा गया है। उसका अर्थ है- **अपरोक्ष भूत अनद्यतन में धातु से लट् लकार होता है, यदि स्म शब्द उपपद हो तो।** इस तरह से **स्म** के योग होने पर **परोक्ष** और **अपरोक्ष** दोनों अर्थों में **लट्** लकार का विधान है।

यजति स्म युधिष्ठिरः। युधिष्ठिर यज्ञ करते थे। यहाँ भूत, अनद्यतन और परोक्ष अर्थ है फिर भी **स्म** उपपद के रहते **लट् स्मे** से **लट्** का विधान हुआ। अतः **यजति स्म युधिष्ठिरः** बन गया है। **स्म** के न रहने पर **इयाज युधिष्ठिरः** बनता है। जब **अपरोक्षे च** से **अपरोक्ष भूत** अर्थ में भी **स्म** के योग में **लट्** का विधान होता है तो **एवं स्म पिता ब्रवीति** पिता जी ऐसा कहते थे, आदि वाक्यों में भी **लट्** का प्रयोग हो सकता है।

७६४- वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा। समीपम् एव सामीप्यम्, वर्तमानस्य सामीप्यं वर्तमानसामीप्यं,

लिङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

७६५. हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३।३।१५६।।

वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति।

भविष्यत्येवेष्यते। नेह। हन्तीति पलायते।

विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं नियोगकरणम्। आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। इहासीत।

अधीष्टं सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्।

सम्प्रश्नः सम्प्रसारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्।

प्रार्थनं याञ्ना। भो भोजनं लभेय। एवं लोट्।

इति लकारार्थप्रक्रिया।।३२।।

इति तिङन्तम्।

....

तस्मिन्। वर्तमानेन तुल्यं वर्तमानवत्। वर्तमानसामीप्ये सप्तम्यन्तं, वर्तमानवत् अव्ययपदं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्।

वर्तमान काल में जो प्रत्यय जिस अर्थ में कहे गये हैं, वे प्रत्यय वर्तमान काल के समीपवर्ती भूत और भविष्यत् काल में भी होते हैं विकल्प से।

वर्तमान काल के समीप **भूत काल** भी हो सकता है और **भविष्यत् काल** भी।

कदागतोऽसि, अयमागच्छामि, अयमागमं वा। यह वर्तमान के समीप भूत काल का उदाहरण है। किसी ने पूछा- कब आये हो? इस तरह से भूतकाल का प्रश्न हुआ तो उत्तर देने वाला व्यक्ति कुछ पहले ही आ चुका है किन्तु वह उत्तर देता है कि **यह आ ही रहा हूँ।** वह वर्तमान काल में उत्तर देता है। इस तरह **वर्तमान के समीप भूत काल में** भी **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा** से लट् लकार का ही विधान हुआ। यह विधान वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष भूत काल का ही लुङ् लकार हुआ- **अयम् आगमम्।**

कदा गमिष्यसि? एष गच्छामि, गमिष्यामि वा। यह वर्तमान के समीप भविष्यत् काल का उदाहरण है। किसी ने पूछा- कब जाओगे? इस तरह से भविष्यत्काल का प्रश्न हुआ तो उत्तर देने वाला व्यक्ति कुछ क्षण बाद जायेगा किन्तु वह उत्तर देता है कि **यह जा ही रहा हूँ।** वह वर्तमान काल में उत्तर देता है। इस तरह **वर्तमान के समीप भविष्यत् काल में** भी **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा** से **लट्** लकार का ही विधान हुआ। यह विधान वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष में भविष्यत् काल का ही लृट् लकार हुआ- **एष गमिष्यामि।**

७६५- **हेतुहेतुमतोर्लिङ्।** हेतुरस्यास्तीति हेतुमान्। हेतुश्च हेतुमान् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो हेतुहेतुमन्तौ, तयोर्हेतुमतोः। **विभाषा धातौ सम्भावन०** से **विभाषा** की अनुवृत्ति आती है।

हेतु और हेतुमान् अर्थात् कार्यकारण-भाव अर्थ क्रिया से प्रकट हो तो धातु से लिङ् लकार होता है।

हेतु और हेतुमान् भाव का तात्पर्य कार्यकारणभाव ही समझना चाहिए। जैसे ईंटे होते तो मकान बन जाता। परिश्रम से पढ़े होते तो परीक्षा में उत्तीर्ण होते। इन वाक्यों में यह दीखता है कि यदि कारण हुआ होता तो कार्य भी हो गया होता, हेतु विद्यमान रहता तो हेतुमान् अर्थात् उससे होने वाला कार्य भी सिद्ध हो गया होता आदि। अब इन वाक्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि कार्य अभी नहीं हुआ है अर्थात् क्रिया कि सिद्धि नहीं हुई है। इसमें भविष्यत्काल होना चाहिए। जैसे अच्छी वृष्टि अर्थात् वर्षा होगी तो अनाज भी अच्छा होगा। हेतु-हेतुमद्भाव तो भूतकाल और वर्तमान काल में भी होते हैं किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति में हेतु-हेतुमद्भाव के होते हुए भविष्यत्काल का होना आवश्यक है क्योंकि इस सूत्र में **भविष्यत्येव** यह वार्तिक पठित है।

कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। यदि कृष्ण को नमस्कार करोगे तो सुख प्राप्त करोगे। यहाँ पर सुख प्राप्ति रूप कार्य के लिए कृष्ण का नमन रूप कारण बताया जा रहा है। अतः हेतु **नम्** धातु और **हेतुमान् या** धातु दोनों से **लिङ्** लकार का प्रयोग होकर **नमेत्** और **यायात्** बने। यहाँ पर क्रमशः **नम्** और **या** धातु के **लिङ्** का रूप है। यह कार्य वैकल्पिक है। अतः एक पक्ष में **लृट्** भी होता है- **कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति।**

भविष्यत्येवेष्यते। नेह। **हन्तीति पलायते। हेतुहेतुमतोर्लिङ्** में **भविष्यति** अर्थात् **भविष्यत् काल** में ही, इतना अर्थ जोड़ना चाहिए। फलतः **हन्तीति पलायते** में **हेतुहेतुमद्भाव** अर्थात् **कार्यकारणभाव** के होते हुए भी **लिङ्** नहीं होगा। जैसे **हन्तीति पलायते** वह मारता है, इस लिए दूर भागता है। यहाँ पर कार्यकारणभाव है फिर भी भविष्यत्काल न होने से **लिङ्** न होकर **लट्** ही हुआ।

विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। यह सूत्र भ्वादि में पढ़ा जा चुका है। यह **विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थना** इन अर्थों में और आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् लकार का विधान करता है। इस सूत्र के विधान में काल अर्थात् समय से कोई मतलब नहीं है।

विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। अपने से छोटे अर्थात् पुत्र, भाई, सेवक आदि को आज्ञा देना **विधि** कहलाता है। जैसे- **तुम पुस्तक दो, बेटे! घर जाओ** आदि।

यजेत। यज्ञ करना चाहिए। यह विधि अर्थ है, अतः **विधिनिमन्त्रणाधीष्ट-सम्प्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ्** से **लिङ्** लकार होकर **यजेत** बना।

निमन्त्रणं नियोगकरणम्। आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। अवश्य-कर्तव्य में प्रेरणा देने को निमन्त्रण कहते हैं। जैसे- श्राद्ध आदि में दौहित्र अर्थात् अपनी लड़की के लड़के का भोजन अनिवार्य होता है तो वहाँ यह अनिवार्यरूप से भोजनार्थ आना ही है इस प्रकार से प्रेरणा देना ही निमन्त्रण है। **इह भुञ्जीत। भुज्** धातु के लिङ् का रूप है- **भुञ्जीत।**

आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। ऐसी प्रेरणा का नाम **आमन्त्रण** है कि जिसमें प्रेरक तो प्रेरणा देगा किन्तु जिसे प्रेरणा दी जाती है वह उस कार्य को करे या न करे, स्वतन्त्र होता है अर्थात् कामचारिता, अपनी इच्छा पर निर्भर होती है। जैसे- **आप सभी विवाह की पार्टी में आमन्त्रित हैं** इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि पार्टी में जाने की प्रेरणा मिल रही है

किन्तु हमें अपनी व्यवस्था के अनुसार जाना है। यदि अवकाश है तो जा सकते हैं, नहीं तो न जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है। दूसरा उदाहरण है- **इह आसीत**। यहाँ पर बैठ सकते हो। बैठने वाले की इच्छा और समय हो तो बैठेगा, नहीं तो नहीं भी बैठ सकता है। **आस** धातु से **लिङ्** का रूप है- **आसीत**।

अधीष्टं सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्। किसी बड़े गुरु आदि को सत्कारपूर्वक किसी कार्य को करने की प्रेरणा देना **अधीष्ट** है। जैसे किसी आचार्य से कहा जाय कि- आप मेरे पुत्र को पढ़ायें। **अध्यापयेत्** यह अधि पूर्वक इङ् धातु के लिङ् का रूप है।

सम्प्रश्नं सम्प्रसारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। किसी बड़े के समीप एक निश्चयार्थ प्रश्न करना **सम्प्रश्न** कहलाता है। जैसे- गुरु जी! या पिता जी! मैं वेद पढ़ूँ या न्यायशास्त्र? यहाँ पर **अधीयीय** यह लिङ् लकार का रूप है।

प्रार्थनं याच्ञा। भो भोजनं लभेय। मांगने का नाम **प्रार्थन** (प्रार्थना) है। जैसे- मैं भोजन चाहता हूँ।

इसी तरह **लोट्** सूत्र से इन्हीं अर्थों में **लोट्** लकार भी होता है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की लकारार्थ-प्रक्रिया पूरी हुई।